चित्त २, बुद्धि ३, अहंकार ४। उपनिषद् ५२ हैं—माण्डूक्य १, बृहदारण्यक २, ईशावास्य ३, मैत्रेय ४, मुण्डक ५, सर्व ६, हंस ७, नारायण ८, प्रणव ९, अथर्व १०, सर्हंस ११, अमृत १२, कोकनिक १३, शरत् १४, आसुर १५, वेद १६, महात्मा १७, प्रबोध १८ केवल १९, शतरुद्रिय २०, योग २१, अथर्वशिखा योगतत्त्वानन्द २२, अथर्वशिखा २३, शिवसंकल्प २४, आत्मा २५, ब्रह्मविद्या २६ अमृतवेद २७, तेजबन्ध २८, गवय २९, जाबालि ३०, महानारायण ३१, माण्डूक्य ३२, शुक्ल ३३, क्षुरिका ३४, परमहंस ३५, अर्बुक ३६, केन ३७, केवली ३८, आनन्दवल्ली ३९, भृगुवल्ली ४०, भृगुसूक्त ४१, योगशिखा ४२, मृतलांगूल ४३, अमृतनाद ४४, भांकली ४५, मास्कल ४६, तारक ४७, अरुक्षी ४८, प्रणव ४९, सुमक ५०, नृसिंह ५१, अमरमाध्वी ५२। ऊपर के लोक—भूर्लोक १, भुवर्लोक २, स्वर्लोक ३, महर्लोक ४, जनलोक ५, तपलोक ६, सत्यलोक ७। नीचे के लोक—अतल १, वितल २, सुतल ३, महातल ४, तलातल ५, रसातल ६, पाताल ७। वेद में काण्ड तीन हैं—कर्मकाण्ड १, उपासनाकाण्ड २, ज्ञानकाण्ड ३। अनहद शब्द दस प्रकार का है। घण्टा १, शङ्ख २, वीणा ३, ताल ४, बाँसुरी ५, मृदङ्ग ६, नफीरी ७, बादल के गरज के सदृश आदि। ८ स्वर—षड्ज १, ऋषभ २, गान्धार ३, मध्यम ४, पञ्चम ५, धैवत ६, निषाद ७। छः राग—भैरव १, मालकौस २, हिण्डोल ३, दीपक ४, श्री ५, मेघ ६। ३६ रागिनी—भैरव की रागिनी—भैरवी १, रामकली २, गुर्जरी ३, टोड़ी ४, बैराटी ५। मालकोस की रागिनी—बागेश्वरी १, ककुभा २, पर्णिका ३, सोहनी ४, खम्भावती ५, हिण्डोल की रागिनी—वसन्ती १, पञ्चमी २, विलावल ३, ललिता ४, देशाकुशनी ५। श्रीराग की रागिनी—मालवी १, त्रिबन्नी २, गौरी ३, पूर्बी ४, जटनकुटा ५। मेघराग की रागिनी—

सोरठी १, मलारी २, शार्ङ्गी ३, हरिवंशा ४, मधुमाधवी ५। दीपक की रागिनी—धनाश्री १, नट २, जैत ३, भीमपलाशी ४, कामोदा ५। कई रागमालाओं में और तरह के नाम लिखे हैं। यदि विस्तार से इनकी भार्या और पुत्र लिखे जायँ तो उसके लिए स्थान नहीं है। बाजा केवल साढ़े तीन हैं—खाल १, तार २ फूँक ३। पहले में नगाड़ा, ढोल, पखावज आदि गिने गये हैं। दूसरे में तम्बूरा, सारङ्गी, वीणा, सितार आदि और तीसरे में नफीरी, बाँसुरी, शहनाई आदि। आधे बाजे में मँजीरा, झाँझ आदि गिने गये हैं। चारयुग----सत्ययुग १, त्रेता २, द्वापर ३, कलियुग ४। इन चारों युगों की अवधि इस प्रकार है—सत्ययुग १७ लाख १८ हज़ार वर्ष। त्रेतायुग १२ लाख ९६ हजार वर्ष। द्वापरयुग ८ लाख ६४ हजार वर्ष। कलियुग ४ लाख ३२ हजार वर्ष। सब ३८ लाख ९२ हजार सातसौ सैंतालीस वर्ष हैं। बाक़ी कल्प और मन्वन्तरों का ब्योरा शिवपुराण में लिखा है। ६ ऋतुएँ—हेमंत १, शिशिर २, वसन्त ३, ग्रीष्म ४, वर्षा ५, शरद् ६। छः प्रकार की ईतियाँ—काल १, अवर्षण २, टिड्डी ३, मूषक ४, ओले पड़ना ५, अधिक वर्षा ६। चारवर्ण—ब्राह्मण १, क्षत्रिय २, वैश्य ३, शूद्र ४। प्रकट हो कि ब्राह्मण दस प्रकार के, क्षत्रिय छः भाँति के, वैश्य पाँच तरह के, शूद्र सात प्रकार के उत्तम हैं। बाक़ी और जो हैं वे भी अच्छे हैं, परन्तु वे लोग पुराणों में किसी वर्ण में गिने नहीं गये। उनको अधम और वर्णसंकर के नाम से लिखा है। इस जगह कुछ संक्षेप से ब्योरा लिखा जाता है। ब्राह्मण दस हैं—पञ्च गौड़ में सारस्वत १, कान्यकुब्ज २, गौड़ ३, मैथिल ४, उत्कल ५। पञ्चद्राविड़ में—गुर्जर १, द्राविड़ २, महाराष्ट्र ३, कर्णाटक ४, तैलङ्ग ५। क्षत्रिय बारह हैं। प्रथम सूर्यवंशी, जिनमें कछ-वाहा और राठौर आदि छः क्षत्रिय हैं। दूसरे सोमवंशी, जिनमें

यदुवंशी व चंदेल आदि छः क्षत्रिय हैं। वैश्य, जो बारह प्रकार के हैं और दस भाँति के भी हैं। इनमें सुनार आदि हैं। शूद्र में कायस्थ हैं, जो बारह प्रकार के हैं। अहीर, नाई, कोरी, काछी आदि संयुक्त हैं। यद्यपि कायस्थों का हाल भविष्योत्तर-पुराण में भी पाया जाता है, पर पद्मपुराण में अधिक है। चार आश्रम—पहला ब्रह्मचर्य अर्थात् सोलह वर्ष पर्यन्त विद्या सीखना। दूसरा गृहस्थ अर्थात् ३२ वर्ष पर्यन्त गृहस्थी के कार्य में प्रवृत्त रहना। तीसरा वानप्रस्थ अर्थात् अड़तालीस वर्ष तक योग में स्थित रहना। चौथा सन्यास अर्थात् चौंसठ वर्ष तक दण्ड को लिये रहे। फिर परमहंस का नाम आता है। पर कलियुग में सन्यास, अश्वमेधयज्ञ, गोमेधयज्ञ, मांस के पिण्ड और देवर से पुत्रोत्पत्ति का निषेध है। छन्द यद्यपि एक हज़ार तक हैं, पर मैंने छः सौ तक देखे हैं। छन्द नाम वेद का भी है। उसमें गायत्री, उष्णिक् आदि सात छन्द हैं। दस दिशा—पूर्व १, अग्नि २, दक्षिण ३, नैर्ऋत्य ४, पश्चिम ५, वायव्य ६, उत्तर ७, ईशान ८, स्वर्ग ९, भूमि १०, इनके अधिपति क्रम से इन्द्र १, अग्नि २, यम ३, कुबेर ४, वरुण ५. वायु ६, कुबेर ७, शिव ८, ब्रह्मा ९, बीभत्स १० हैं। अठारह वर्ण—चार वेद, चार वर्ण, चार युग, तीन लोक, तीन काल। विष्णु के दस अवतार—मत्स्य १, कूर्म २, वाराह ३, नृसिंह ४, वामन ५, परशुराम ६, राम ७, कृष्ण ८, बुद्ध ९, कल्कि १०। शिवजी महाराज के सौ अवतार—वामदेव आदि ५, शर्वादि ८, महाकालादि १०, अहिर्बुध्न्यादि ११, जैगीषव्यादि २८, ज्योतिर्लिङ्ग २ नन्दी, भैरव, वीरभद्र, स्कन्द, कृतमुख, सर्वचक्षुदुर्वासा, ग्रहपति, वागीश, पिप्पलादि, अवधूत-पति महेश, शार्दूल हनुमान्, वैश्वानर, जितनाथ, द्विज-द्विजेश, नरजरेश, भिक्षुकजटिल, नर्तक, नट आदि। सम्पूर्ण १००

ग्यारह रुद्र शिवपुराण में लिखे हैं, परन्तु कोष आदि की पुस्तकों में ग्यारह रुद्र और बारह सूर्य के नाम अन्य रीति पर इस प्रकार लिखे हैं—ग्यारह रुद्र—पशुपति १, भैरव २, रुद्र ३, विश्व ४, विशेष ५, अघोर ६, रूप ७, त्र्यम्बक ८, कपर्दी ९, शूल १०, ईशान ११। द्वादश सूर्य—सूर्य १, वरुण २, वेदांग ३, रवि ४, भानु ५, गभस्ति ६, विष्णु ७, दिवाकर ८, मित्र ९, यम १०, रैवत ११, आदित्य १२। सप्तऋषि—कश्यप १, अत्रि २, भरद्वाज ३, वशिष्ठ ४, गौतम ५, विश्वामित्र ६, जमदग्नि ७, ये इस मन्वन्तर में सप्त ऋषि हैं। सात प्रकार की राजश्री—मन्त्री १, शस्त्र २, घोड़ा ३, हाथी ४, देश ५, कोष ६, गढ़ ७। राजों को ये सात वस्तुएँ आवश्यक हैं। चौदह परम भागवत—प्रह्लाद १, नारद २, पराशर ३, अम्बरीष ४, व्यास ५, शुक ६, शौनक ७, भीष्म ८, रुक्माङ्गद ९, ध्रुव १०, अर्जुन ११, पुण्डरीक १२, वशिष्ठ १३, विभीषण १४। चौदह परम पशुपति—दुर्वासा १, कौशिक २, ब्रह्मा ३, मार्कण्डेय ४, ऐन्द्र ५, बाणासुर ६, विष्णु ७, शक्ति ८, मरीचि ९, रामचन्द्र १०, गणादि ११, भार्गव १२, बृहस्पति १३, गौतमादि १४। हथियारों के नाम—खट्वाङ्ग १, खड्ग २, चर्म ३, पाश ४, अंकुश ५, डमरू ६, शूल ७, चाप ८, बाण ९, गदा १०, शक्ति ११, भिन्दिपाल १२, तोमर १३, मुशल १४, मुद्गर १५, पट्टिश १६, परिघ १७, भुशुण्डी १८, चक्र १९ आदि। चौंसठ तन्त्र—वीर १, सुतन्त्र २, फट्कारी ३, गलचूड़ामणि ४, कालीकल्प ५, कालिकाकुल ६, काली ७, तत्त्व ८, भैरव ९, कुमारी १०, कालक ११, कौलार्णव १२, ज्ञानार्णव १३, कालकुलार्णव १४, शारदातिलक १५, कालिकाश्रुति १६, कुमारीकल्प १७, बीजचूड़ामणि १८, उत्तर विजयाकल्प १९, रुद्रयामल २०, सम्मोहन २१, नारायणी २२, सारस्वत २३, भावचूड़ामणि २४, श्रीकर्म

२५, क्षीणतुण्ड २६, विमलेश्वरी २७, मुण्डमाला २८, संकर्षण गन्धर्व २९, दक्षिणामूर्ति ३०, सन्धित ३१, तारातन्त्र ३२, नीलतन्त्र ३३, मन्त्ररत्नावली ३४, कुब्जका ३५, कालिकाश्रुति ३६, सिद्धेश्वर ३७, कोलककुल ३८, नीलभद्र ३९, कुलप्रकाश ४०, सिद्धसारस्वत ४१, कुलसद्भाव ४२, वामकेश्वर ४३, तारार्णव ४४, कालिकाकल्प ४५, योगिनीतन्त्र ४६, वीरतन्त्र ४७, शुक्रियामल ४८, लिङ्गागम ४९, ताराप्रदीप ५०, गोपतन्त्र ५१, कालिकामहोग्र ५२, ताराकल्प ५३, वाराहीसंहिता ५४, मत्स्यसूत ५५, उड्डीश ५६, मेरु ५७, तारास्वर ५८, चूड़ामणि ५९, गलसंभार ६०, गलतन्त्र ६१, ब्रह्मयामल ६२ आदि। चौदह विद्याएँ—ब्रह्मज्ञान १, गायनविद्या २, रसायनविद्या ३, ज्योतिष् ४, वद्यक ५, शस्त्रविद्या ६, पैरने की विद्या ७, व्याकरण ८, छन्द ९, कोक १०, काव्य ११, घोड़े आदि की सवारी १२, नटविद्या १३, चातुरी १४। वेद के छः अङ्ग—शिक्षा १, ज्योतिष् २, कल्प ३, निरुक्त ४, छन्द ५, व्याकरण ६। चौंसठकलाएँ—लिखना १, चोरी २, बजाना ३, नाचना ४, गाना ५, नटकर्तब ६, झूठ को सच दिखलाकर कहना ७, चित्र खींचना ८, तीर से फूल और चावल आदि काटना ९, फूलों की सेज सजाना १०, दाँतों की सफ़ाई ११, कपड़ों की सफ़ाई १२, बालों की सफ़ाई १३, रङ्गों की पहचान १४, स्वाँग करना १५, सोने की युक्ति १६, कुआँ नाला आदि बनाना १७, दरिया या किश्ती में निशाना मारना १८, मछली मारना १९, माला बनाना २०, जूड़ा बाँधना २१ मुकुट बाँधना २२, पोशाक की सजावट २३, फूलों के गहने बनाना २४, इत्र आदि बनाना २५, इन्द्रजाल २६, प्रसूति में सुगमता की युक्ति २७, जल्दी खेलना २८, तरकारी के प्रकार व चावल पकाना २९, कसार पकाने की युक्ति ३०, चूर्ण का बनाना ३१, मद्य और आसव आदि खींचना ३२,

सीना ३३, बद्धी खेलना ३४, डमरू का बजाना ३५, छलियों को खेल में परास्त करना ३६, सम्पूर्ण पुस्तकों को तुरन्त पढ़ लेना ३७, नाटक ३८, सामयिक श्लोक कहना ३९, लट्ठबाजी ४०, तलवार की लड़ाई ४१, बाण-युद्ध ४२, हास्य ४३, गढ़ी बनाना ४४, रत्नों का परखना ४५, रुपये का परखना ४६, सम्पूर्ण धातुओं की पहचान ४७, रत्नों के रङ्ग की पहचान ४८, बुरे और अच्छे आदमी की पहचान ४९, रस आदि बनाना ५० चिकित्सा ओषधि आदि तुरन्त करना ५१, मेढ़ों और पक्षियों आदि को लड़ाना ५२, तोता-मैना आदि को पढ़ाना ५३, बालों को गिराना ५४, बालों के धोने में नाना प्रकार की युक्ति ५५, मन और हाथ की चीज़ को, जो गुप्त हो, बताना ५६, बहुत देशों की भाषाएँ जानना ५७, पुष्प और उद्यान की सजावट ५८, सम्पूर्ण अक्षर यन्त्र में लाना ५९, अपनी ओर से अक्षर रखना ६० मन में श्लोक कहना ६१, काम करके छोड़ देना ६२, कपड़ों को चुरा लेना ६३, लड़कों को खिलाना ६४। आठ सिद्धियाँ—अणिमा, जिससे बहुत छोटा शरीर हो सकता है और दूसरा उसको देख नहीं सकता १; महिमा, जिससे उड़ने की शक्ति प्राप्त होती है २, गरिमा, जिससे उसको कोई उठा नहीं सकता ३; लघिमा, सूक्ष्म से सूक्ष्म बनना ४, प्राप्ति ५; प्राकाम्य ६; ईशित्व ७; वशित्व ८। चार फल—अर्थ १, धर्म २, काम ३, मोक्ष ४। चार प्रकार की मुक्ति—सालोक्य, अर्थात् परमात्मा के लोक में रहना १; सारूप्य, अर्थात् परमात्मा के स्वरूप के अनुसार स्वरूप धारण करके वहाँ रहना २; सामीप्य, अर्थात् परमात्मा के समीप रहना ३; सायुज्य अर्थात् परमात्मा में मिल जाना ४। पञ्चरत्न—सोना १, चाँदी २, मोती ३, लाजवर्द ४, प्रवाल ५। नवरत्न——माणिक्य १, मुक्ता २,

पन्ना ३, पुखराज ४, हीरा ५, नीलम ६, लहसुनिया ७, वैडूर्य ८, गोमेदक ९। ग्यारह रत्न--बिल्लौर १, हीरा २, पद्मराग ३, नीलम ४, मुक्ता ५, ये पाँच महारत्न कहलाते हैं। पुष्पराग १, वैडूर्य २, गोमेदक ३, स्फटिक ४, लहसुनिया ५, प्रवाल ६, ये छः मिलकर ग्यारह होते हैं। चौदह धातुएँ--पहली सात धातुएँ सोना १, चाँदी २, ताँबा ३, राँगा ४, जस्ता ५, सीसा ६, लोहा ७। दूसरी सात उपधातुएँ--सोनामाखी १, रूपा २, तूतिया ३, काँसा ४, सिन्दूर ५, शिलाजीत ६, रज ७। छः रस--मधुर १, कषाय २, खटाई ३, कटुक ४, तिक्त ५, लवणखार ६। छत्तीस व्यञ्जन--मुख्य चार प्रकार के भोजन हैं। भक्ष्य १, भोज्य २, लेह्य ३, चोष्य ४। उनकी ३६ शाखाएँ हैं—पञ्चामृत, यथा शिव-धर्मे—पञ्चामृतं दधिक्षीरं सिता मधु घृतं तथा। छः चक्र--मूला-धारचक्र १, स्वाधिष्ठानचक्र २, मणिपूरचक्र ३, अनाहतचक्र ४, विशुद्धचक्र ५, ब्रह्मरन्ध्रचक्र ६। तीन नाड़ी--पिङ्गला १, इङ्गला २, सुषुम्णा ३। ये तीनों सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि से सम्बन्ध रखती हैं। पिङ्गला दाहनी श्वासा, इङ्गला बाँई श्वासा और सुषुम्णा दोनों श्वासा कहलाती हैं। कुम्भक १, रेचक २, पूरक ३, अर्थात् वायु को खींचना, वायु को छोड़ना, पवन को रोकना इन्हीं तीन नाड़ियों से होता है। दस प्रकार की वायु—प्राण १, अपान २, समान ३, व्यान ४, उदान ५। इनका स्थान क्रम से चित्त १, गुदा २, नाभि ३, कण्ठ ४, और शरीर ५ है। और नाग १, कूर्म २, कृकल ३, देवदत्त ४, धनञ्जय ५, ये पाँच मिलकर दस हुए। महानाग—वासुकि १, तक्षक २, कर्कोटक ३, शंख ४ कुलिक ५, पद्म ६ महापद्म ७, महानाग ८। नवनाथ—परमानन्दनाथ १, प्रकाशनानन्दनाथ २, काकुलेश्वरानन्दनाथ ३, कोलेश्वरानन्दनाथ ४, भुगानन्दनाथ ५, सहजानन्दनाथ ६,

गङ्गतानन्दनाथ ७, विमलानन्दनाथ ८, गोरखनाथ ६। वाहन—शिव का वाहन नन्दीश्वर बैल है। विष्णु का गरुड़। ब्रह्मा का हंस। सूर्य का घोड़ा। गणेश का मूषक। इन्द्र का हाथी। अग्नि का तोता। चन्द्रमा का हरिण। स्कन्द का मोर। देवी का सिंह। यमराज का भैंसा। लक्ष्मी का कमल। बुध का शशा। जल का बादल। मेघ का वायु। राहु का कछुआ। शुक्र का मेढक। पञ्च उपासक—शैव १, वैष्णव २, शाक्त ३, सौर ४, गाणपत्य ५। बौद्ध व जैन मत इन पाँच से बाहर हैं। दश का व्यंग—शब्द १, अर्थ २, छन्द ३, प्रास ४, नायक ५, रीति ६, गुण ७, अलङ्कार ८, रस ६, व्यंग्य १०। शब्द तीन प्रकार का है—देवता १, नाग २, मनुष्य ३ अर्थात् ये तीन प्रकार की भाषाएँ हैं और इनका बहुत बड़ा विस्तार है। पुराण के दस लक्षण—सर्ग १, विसर्ग २, स्थान ३, पोषण ४, ऊति ५, मन्वन्तर ६, ईशान ७, निरुद्ध ८, मुक्ति ६, अश्रेयी १०। इसका भी बहुत विस्तार है, इससे नहीं लिखा। पाँच प्रकृति—दुर्गा १, राधा २, लक्ष्मी ३, वाणी ४, शाकम्भरी ५। आठ शक्ति—इन्द्राणी १, कौमारी २, ब्रह्माणी ३, वाराही ४, चामुण्डा ५, वैष्णवी ६, माहेश्वरी ७, विनायकी ८। दस महाविद्या—तारा १, काली २, भुवनेश्वरी ३, भैरवी ४, कमला ५, बगलामुखी ६, छिन्नमस्ता ७, धूमावती ८, मातङ्गी ६, महाविद्या १०। शक्ति—वैष्णवी १, ब्रह्माणी २, रुद्राणी ३, माहेश्वरी ४, नारसिंही ५, वाराही ६, इन्द्राणी ७, कौमारी ८, सर्वमंगला ६।

पीठ ५२, भैरवसमेत।

छन्द

हिंगुला पीठ भीमलोचन हैं कोटरिपीठ दिगम्बर।

कहि करवीर पीठ में भैरव तहाँ त्रिनेत्र अडम्बर ॥
सुगन्धा पीठ क्रोध है भैरव त्र्यम्बक पीठ सुनन्द ।
काश्मीर में हैं तिरलोचन कहि भैरव सानन्द ॥
ज्वालामुखी पीठ में उन्नत जालन्धर में भीषण ।
हृदपीठ में बैजनाथ नैपाल कपाली तीक्षण ॥
मालव में अमरेश बिराजैं भैरवरूप विशाल ।
उत्कलहू में जगन्नाथ कहि भैरवरूप कराल ॥
पीठमएडकी चक्रपाणि कहि भैरवजन सुखदानि ।
बहुलापीठ अभीरुरुभैरव उजइनि कपिल बखानि ॥
पट्टनपीठ चन्द्रशेखर करि त्रिपुर पीठ नकुलेश ।
तिस्रो पीठ उमानँद भैरव प्राग पीठ त्रलितेश ॥
भुवनेश्वरी पीठ सर्वोत्तम देवि भागवत गावै ।
वाराणसी कालभैरव हैं तन्त्र ग्रन्थ दरशावै ॥
मणिकर्णिका पीठ में भैरव निमिषि नाम अस गावै ।
कालपीठ असितांग नर्मदा भैरव चएड बतावै ॥
सावित्री में अश्वनाथ कहि गायत्री आनन्द ।
काञ्चीपुरी रुद्र भैरव कहि श्रीशैले बिन द्वन्द ॥
वृन्दावन भूतेश कहावै पीठ सँहारक रुद्र ।
बाराही में महा भैरवे जाकी कीर्ति समुद्र ॥
करतोया में वामन भैरव श्रीगिरि सुँदरानन्द ।
पीठ कपाली भीमरूप कहि भैरवरूप सनन्द ॥
प्रभास पीठ में भैरव राजैं चक्रतुएड तहँ छाजै ।
पीठवन्तिकापुरी में भैरव लम्बकरण छवि छाजै ॥
चित्रपीठ कृत्यायू भैरव गोदावरि दशपानि ॥
कीतुराख्य में वत्सनाभ कहि रत्नपीठ शिव जानि ॥
मिथिलापीठ जोमेश्वर भैरव कालिपीठ क्रोधेश ।

चक्रेश्वर में चक्रनाथ कहि भैरव पूजावेष ॥
पद्मपीठ में मञ्जुल राजैं कहिये भैरव चण्ड ।
अट्टहास में विश्वेश्वर कहि भैरव तेज अखण्ड ॥
हारपीठ में नन्दकेशव कहि भैरव तेज बखानि ।
लङ्कापुरी में राक्षसेश्वर कहि भैरव व्रज वरदानि ॥
उड्यानपीठ में रुरुभैरव हैं मणि हेरम्ब संहार ।
बावनपीठ में बावन भैरव फलदायक संसार ॥

पञ्चकन्या—अहल्या १, द्रौपदी २, तारा ३, कुन्ती ४, मन्दोदरी ५ ।

षोडशशृङ्गार यथा—

आदौ मज्जनचारुचीरतिलकं नेत्राञ्जनं कुण्डलं
नासामौक्तिकवेशहारकुसमं झङ्कारिणौ नूपुरौ ।
अङ्गे चन्दनचारुकञ्चुकिमणिं क्षुद्रावलीं घण्टिकां
ताम्बूलं करकङ्कणं चतुरता शृङ्गारकाः षोडश ॥ १ ॥

द्वादशभूषण यथा—

स०—शील औ लाज मिठाइ बतानिमों, तैसी इठाई सों धर्ममयूषन । साधुता और पतिव्रत तोष, मिताई सबै सों न काहू को दूषन ॥ तैसी बिनै औ अचार छमा, गुरुलोगन सेवे को कोषन भूषन । एई तियान को तीरथ से शुभ, कीरतिकारी हैं द्वादश भूषन ॥

९ रस—शृङ्गार १, हास्य २, करुणा ३, रौद्र ४, वीर ५, भयानक ६, बीभत्स ७, अद्भुत ८, शान्त ९ । भाव अभाव आदि असंख्य हैं, इस कारण नहीं लिखे गये । अठारह व्यसन—शिकार १, दिन में सोना २, निरर्थक बकना ३, स्त्री के अधीन होना ४, मैथुन आदि की वार्ता करना ५, मद्यपान ६, जुआ खेलना ७, गाना ८, नाच देखना ९, बाजा बजाना १०, व्यभिचार ११, शत्रुता १२, ईर्षा १३,

विपरीतवाक्य १४, कठोर वचन १५, शीघ्र मारना १६, गाली १७, और अपने स्वामी का अहित चाहना १८। षट्कर्म—वेद पढ़ना १, वेद पढ़ाना २, दान देना ३, दान लेना ४, यज्ञ करना ५, यज्ञ कराना ६। ब्राह्मण के मुख्य दस कर्म हैं—जैसे शान्ति, दम, संतोष आदि। उपचार ३८, १६, १०, ५ हैं।

व्रतार्के यथा

अर्घ्यं च पाद्याचमनं मधुपर्कमुपस्पृशम्। स्नानं नीराजनं वस्त्रमाचामं चोपवीतिकम्॥ पुनराचम्य भूषे च दर्शनालोकनात्ततः। गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यं च ततः परम्॥ पानीयं तोयमाचामं हस्तवासस्ततः परम्। ताम्बूलमनुलेपं च पुष्पदानं पुनः पुनः॥ गीतवाद्यं तथा नृत्यं श्रुतं चैव प्रदक्षिणम्। पुष्पाञ्जलिनमस्कारा अष्टत्रिंशत्समीरिताः॥ इत्यष्टत्रिंशदुपचाराः॥

आसनं स्वागतं चार्घ्यं पाद्यमाचमनीयकम्। मधुपर्कसमायुक्तां वसनाभरणानि च॥ सुगंधिसुमनो धूपदीपमन्नेन तर्पणम्। माल्यानुलेपनं चैव नमस्कारं विसर्जनम्॥ इति षोडशोपचाराः।

अर्घ्यं पाद्यं च वसनमधुपर्काचमान्यपि। गन्धादयो निवेद्यान्ता उपचारा दश क्रमात्॥ इति दशोपचाराः।

गन्धपुष्पौ धूपदीपौ नैवेद्यं पञ्चमं स्मृतम्॥ इति पञ्चोपचाराः।

नवधा भक्ति—सेवन १, स्मरण २, कीर्तन ३, अर्चन ४, श्रवण ५, दास्य ६, वन्दन ७, सख्य ८, समर्पण ९। दश इन्द्रियाँ—श्रवण १, त्वचा २, नेत्र ३, जिह्वा ४, नासिका ५, ये पाँच ज्ञानेन्द्रिय हैं; और हाथ १, मुख २, गुदा ३, लिङ्ग ४, पग ५ ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। सात धातु—चर्म १, रुधिर २, मांस ३, मेद ४, अस्थि ५, मज्जा ६, वीर्य ७। ५ तत्त्व—पृथ्वी १, जल २, तेज ३, वायु ४, आकाश ५। २५ प्रकृति—काम १, क्रोध २, लोभ ३, मोह ४, भय ५, ये पाँच आकाश के गुण हैं। दौड़ना १,

लेटना २, काँपना ३, चलना ४, संकोच ५, ये वायु के गुण हैं। ज्योति १, पसीना २, रक्त ३, लार ४, मूत्र ५, ये पाँच जल के गुण हैं। त्वचा १, केश २, मांस ३, नाड़ियाँ ४, अस्थि ५, ये पाँच पृथ्वी के गुण हैं। प्यास १, भूख २, नींद ३ थकना ४, आलस्य ५, ये पाँच अग्नि के गुण हैं।

८४०००००ः योनियाँ—वृक्ष २०,००,०००; जल से जो उत्पन्न जीव ६,००,०००; कृमि आदि ११,००,०००; पक्षी १०,००,०००; चौपाये ३०,००,००० और मनुष्य ४,००,०००, राजनीति—साम, अर्थात् मीठे वचन कहना १, दाम, द्रव्य और धन देना २, भेद, शत्रु के मित्रों को अपनी ओर कर लेना ३, दण्ड, प्रकट अथवा गुप्त रूप से शत्रु का नाश करना ४। सन्धि, विग्रह आदि इन्हीं चार उपायों के विषय हैं।

चार अवस्थाएँ—जाग्रत् १, स्वप्न २, सुषुप्ति ३, तुरीय ४। चार प्रकार के दर्शन—राजा १, यति, जो सम्पूर्ण विद्यानिधान हो २, पतिव्रता स्त्री ३, ब्राह्मण बौना ४। इनके दर्शन से अति पुण्य होता है।

आवश्यक कामों का ब्योरा

गुरु-शिष्य का सम्बन्ध

शिष्य को उचित है कि गुरु बहुत जान-बूझकर करे और गुरु को उचित है कि एक वर्ष तक शिष्य का आचरण देखकर फिर चेला करे। यथा सारसंग्रहे—

सद्गुरुःस्वाश्रितं शिष्यं वर्षमेकं परीक्षयेत्।

क्योंकि जिस तरह मन्त्री और अन्य सभासदों के पापों का भागी राजा होता है, उसी तरह गुरु-शिष्य की दशा है। यथा रुद्रयामले—राज्ञि चामात्यजो दोषः पत्नीपापं च भर्त्तरि। तथा शिष्यार्जितं पापं गुरुः प्राप्नोति निश्चितम्॥

दिव्यागम में लिखा है कि गुरु का वस्त्र, आसन, जटा, छाया, पानी (जहाँ नहाया हो वहाँ) नाँघना न चाहिए।

और गुरु * के निकट अन्य का पूजन, गर्व के साथ कोई काम करना, और शिष्यों को विद्या पढ़ाना तथा आज्ञा चलाना न चाहिए। जो मनुष्य गुरु को मनुष्य, मन्त्र को अक्षर और परमात्मा को पत्थर जानते हैं, वे नारकीय हैं। जैसा कि ज्ञानार्णव में लिखा है। देवता की प्रसन्नता से अधिक गुरु की प्रसन्नता जानना उचित है। जैसा कि तन्त्रराज में आज्ञा है। गुरु के न होने पर उनके भाई, स्त्री और लड़के की पूजा उचित है। जो मनुष्य मन्त्र को छोड़ देते हैं वे मानो मृत्यु के मुख में पड़े होते हैं। जो मनुष्य गुरु का त्याग करते हैं वे निर्धन रहते हैं। मनुष्य मंत्र और गुरु दोनों को त्यागने से घोर नरक में पड़ता है। गुरु के हाथ कोई चीज़ बेचना या गुरु से कुछ लेना मना है। गुरु को आते देखकर अगवानी करनी चाहिए। चलने के समय पीछे-पीछे चलना उचित है। गुरु का पद माता-पिता सबसे बड़ा है। जैसा कि आगम-कल्पद्रुम और चक्रसार में लिखा है। योगिनी-तन्त्र में लिखा है कि बाप, नाना, छोटा भाई आदि को गुरु न बनाना चाहिए। गणेशाघमर्षण में आज्ञा है कि यती, पिता, वनवासी, जो वर्णाश्रम से रहित हों, इनका दिया मन्त्र शुभ नहीं होता। स्त्री को अपने पति से मन्त्र लेना उचित नहीं। कुरुक्षेत्र या और किसी महातीर्थ में सूर्यग्रहण के समय मन्त्र लेना उचित है। मत्स्यसूक्त में लिखा है कि पिता अपने पुत्र को शिष्य बनाने का अधिकारी है।

"गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्रुशब्दस्तन्निरोधकः। अन्धकारनिरोधत्वाद्गुरुरित्यभिधीयते" ॥१॥

दीक्षा

चारों वर्ण दीक्षा लेने के अधिकारी हैं, क्योंकि दीक्षा बिना कोई कर्म फल नहीं देता। पूजा जप आदि फल नहीं देते। जैसे पत्थर से मोती नहीं उपजता। दीक्षा लेने से करोड़ों जन्मों के पाप दूर हो जाते हैं। जो लोग दीक्षा के बिना मर जाते हैं वे रौरवनरक में पड़ते हैं। जो मनुष्य आप पोथी में मन्त्र देखकर गुरु के बिना मन्त्र-जप करते हैं वे करोड़ जन्म तक नरक में रहेंगे। कदाचित् अपने जन्मनक्षत्र, राशि और नाम का ठीक चक्र मिले तो दूसरे चक्र में मन्त्र लेना आवश्यक नहीं। जिस मन्त्र में बीस से अधिक अक्षर होते हैं वह सिद्ध नहीं होता। सब महीनों से मन्त्र लेने को चैत्र का महीना अति लाभदायक है। वैशाख में मन्त्र लेने से रत्न प्राप्त होते हैं। ज्येष्ठ में मन्त्र लेने से आप और आषाढ़ में मन्त्र लेने से भाई मरता है। श्रावण में मन्त्र लेनेवाले के सब मनोरथ पूर्ण होते हैं। भादों में मन्त्र लेने से लड़का मर जाता है। कुवाँर में मन्त्र लेना धन की प्राप्ति का कारण है। कार्त्तिक में मन्त्र लेने से मन्त्र सिद्ध होता है। अगहन में मन्त्र लेना किसी बड़े शत्रु के भय का कारण है। माघ व फाल्गुन में मन्त्र लेने से बुद्धि बढ़ती है। इनकी महीनों की गणना संक्रान्ति से करे, चांद्र मास से नहीं। मन्त्र लेने के लिए रविवार, बुध, बृहस्पति और शुक्र बहुत अच्छे दिन हैं। दूज, तीज, पञ्चमी, छठ, सप्तमी, नवमी, द्वादशी और पूर्णमासी तिथियाँ मन्त्र लेने के लिए उत्तम हैं। सन्ध्या काल, बिजली गिरने और भूकम्प और अन्य उपद्रवों के समय मन्त्र लेना न चाहिए। जो नीचे लिखे हुए महीनों में मन्त्र लें उनको कुछ मास तिथि योग की आवश्यकता नहीं। अर्थात् भाद्रपद षष्ठी, आश्विन कृष्ण-

पक्ष की चतुर्दशी, कार्तिक की नवमी, अगहन की तीज, फाल्गुन की नवमी, पौष की नवमी, माघ के शुक्लपक्ष की चतुर्थी, चैत्र की चतुर्दशी, वैशाख की तीज, ज्येष्ठ की दशहरा तथा पञ्चमी, असाढ़ सुदी तीज, श्रावण-शुक्ला पञ्चमी बिना विचारे शुभ मुहूर्त्त हैं। पर सूर्यग्रहण सबसे उत्तम है। कदाचित् मङ्गल के दिन चौथ पड़े या इतवार को सप्तमी हो अथवा सोमवार के दिन अमावस हो तो सूर्यग्रहण से सौ गुना अधिक फल मिलता है। इसके सिवा जिस दिन गुरु कृपा करके मन्त्र दें, वही दिन सबसे उत्तम है।

माला, आसन, जप-मन्त्र का संस्कार

माला तीन प्रकार की हैं। एक कर-माला, दूसरी मनमाला, तीसरी मणिमाला। करमाला यह है, जैसा कि मालातन्त्र में लिखा है—

मालातन्त्रे श्लोकः

अनामिकाद्वयं पर्व कनिष्ठादिक्रमेण तु। तर्जनीमूलपर्यन्तं करमाला प्रकीर्तिता १ अंगुल्यग्रे च यज्जप्तं यज्जप्तं मेरुलङ्घनात्। पर्वसन्धिषु यज्जप्तं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् २ संस्थाप्य हृदये हस्तं तिर्यक्कृत्वा कराङ्गुलीः। आच्छाद्य हस्तं वस्त्रेण दक्षिणेन सदा जपेत्॥ ३॥

अर्थात् बीच में दो पोर छोड़कर बाकी सब पोरों में जप करे। कपड़े से हाथ ढककर हाथ को छाती पर रखकर तिरछे हाथ से जप करना चाहिए। पोरों की लकीरों में जप करने से वह जप व्यर्थ हो जाता है। सब मालाओं से रुद्राक्ष की माला श्रेष्ठतर है।

सौरसंहितायां यथा—

इन्द्राक्षशङ्खपद्माक्षपुत्रजीवकमौक्तिकैः। स्फटिकैर्मणिरत्नैश्च स्वर्णैश्च विद्रुमैस्तथा १ राजितैः कुशमूलैश्च गृहस्थस्याह मालिकाः। अंगुलीगणनादेकं पर्वपर्यन्तमुच्यते २ पुत्रजीवैर्दशगुणं

शतसंख्यैः सहस्रकम्। प्रवालैर्मणिरत्नैश्च दशसाहस्रकं फलम् ३ तदेव स्फाटिकैः प्रोक्तं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते । पद्माक्षैर्दशलक्षं स्यात् सौवर्णैः कोटिरुच्यते ४ कुशग्रन्थ्याकोटिशतं रुद्राक्षैःस्यादनन्तकम्। सर्वैर्विरचिता माला नृणां मुक्तिफलप्रदाः ५ ॥

और जब माला न मिले तब उँगलियों पर जप करना चाहिए। पचीस दानों की माला मुक्ति देनेवाली है। तीस दानों की माला धन, सत्ताईस दानों की सब कार्य और मनोरथ और पन्द्रह दानों की माला शत्रु को नष्ट करनेवाली है। चौवन दाने की माला से सभी कार्य सिद्ध होते हैं। एक सौ आठ दानों की माला सबसे उत्तम है।

आसन—सकाम लोगों के वास्ते लाल आसन अच्छा है। काला आसन ज्ञान और मुक्ति के चाहनेवालों को उचित है। माया के चाहनेवालों को बाघम्बर का आसन योग्य है । मन्त्र केवल कुशासन के ऊपर जप करने से सिद्ध होता है, और आसन के ऊपर मन्त्र जप करने से दुःख होता है। काठ के ऊपर आसन लगाने से निर्धनता प्राप्त होती है । पत्थर का आसन रोग उत्पन्न करता है। घास आदि का आसन यशकीर्ति नष्ट करनेवाला है। वृक्ष के पत्तों का आसन बुद्धि का कारण है।वस्त्र के आसन से जप और तप नष्ट हो जाता है।हाँ, यदि कुछ और न मिले तो कोई हानि नहीं। जो वस्त्र में रेशम या ऊन मिला हो तो अयोग्य नहीं । कोई गृहस्थ विना दीक्षा के, मृगचर्म पर किसी प्रकार बैठे नहीं।यह आसन उद्यमी ब्रह्मचारी और यती के लिए रक्खा गया है। भेड़, हाथी, शेर ऊँट, रीछ और साँप की खाल पर केवल मारण-मोहन आदि के मंत्र जपे जा सकते हैं। गृहस्थ को चाहिए कि माला को विधिपूर्वक डोरे में पिरोकर मन्त्रों से ठीक करे। फिर उसको छिपा रक्खे, नहीं तो जप नष्ट हो जाता है । जप चारों पदार्थ का देनेवाला है, जो विधि

से किया जाय। यज्ञ से कम जप नहीं है। यह जप तीन प्रकार का है—प्रथम वाचिक, द्वितीय उपांशु, तृतीय मानस। जब मन्त्र वचन के साथ पढ़ा जाता है तो यह वाचक जप कहलाता है। जब केवल अपने कान तक कुछ सुनने में आवे या होठभर हिलें, शब्द न निकले, यह उपांशु है। जब मन्त्र केवल मन ही मन में अक्षर और मात्राओं समेत जपा जाय तो यह मानस है। उचित है कि जप करने के समय मन्त्र के अर्थ समझता जाय। मन को दृढ़ करके दूसरी ओर न जाने दे। मानस जप अन्य दोनों प्रकार के जपों से दस हज़ार गुना बड़ा है। यदि कोई मनुष्य बहुत उतावली से मन्त्र का जप करता है तो रोगी होता है। जो बहुत धीरे-धीरे जप करता है उसके धन का अभाव होता है। इस कारण उचित है कि समनता को काम में लावे, जैसे कि तागे में मोती पिरोया जाता है। जो मनुष्य मन्त्र को प्रकट और स्तोत्र को गुप्त पढ़ता है और ऊँचे स्वर से जोर-जोर जप करता है उसको फल नहीं प्राप्त होता, जैसे कि कच्चे कुल्हड़ से पानी नहीं निकल सकता। जो मनुष्य अर्थ, चैतन्यता, भग और मुद्रा के जाने बिना सवा लक्ष पर्यन्त भी मन्त्र का जप करे तो भी वह सिद्ध नहीं हो सकता। मन्त्र के संस्कार दस प्रकार के रुद्रयामल तन्त्र में लिखे हैं।

मन्त्राणां संस्काराः—

जननं जीवनं पश्चात्ताडनं बोधनं तथा। तथाभिषेको विमली-करणात्पोषणं पुनः॥ तर्पणं दीपनं गुप्तिरित्येता मन्त्रसंस्क्रियाः॥

भूत, कलावती, भूषण, उपदेश, प्रयोग और पञ्च आदि को मालूम किये बिना किया गया जप या उपदेश व्यर्थ होता है।

त्रिपुण्ड्र तिलक आदि

शिवपुराण के नवें खण्ड में त्रिपुण्ड्र की विधि विस्तार से लिखी है। इस जगह पर कुछ संक्षेप में लिखा जाता है। दोनों

भौंहों के बीच भाल में अनामिका अर्थात् छिंगुनी के पास की और मध्यमा अर्थात् बीच की अंगुली से दो लकीरें भस्म से सजाकर तीसरी लकीर अंगुष्ठ से दोनों लकीरों के बीच सजावे। मृत्युञ्जय अथवा कालाग्नि मन्त्र से त्रिपुण्ड्र लगावे। द्वादश तिलक–शिर, माथा, गर्दन, छाती, पाँजर, दोनों भुजा, नाभि, कमर, कण्ठ, हृदय अथवा छाती के ऊपर बारह जगह तिलक लगाने को द्वादश तिलक कहते हैं। ब्राह्मण को अछिद्र तिलक लगाना चाहिए, बाक़ी तीन वर्ण छिद्रसहित तिलक लगावें। जो चारों वर्णों में नहीं है, वह तिलक लगाने का अधिकारी नहीं। शैव लोगों को त्रिपुण्ड्र लगाना उचित है। शाक्त लोगों को अर्द्धचन्द्र, सौर लोगों को गोल और गणेश के पूजकों को चौकोण तिलक लगाना उचित है। वैष्णव को दीपज्योति-सा सीधा और कनेर व बाँस के पत्ते के सदृश छिद्र-सहित द्वादश तिलक धारण करने योग्य हैं। पूजन से पहले भस्म को लगावे। पूजन के मध्य में मृत्तिका को काम में लावे और केसर व चन्दन आदि पूजन के पीछे धारण करे। भस्म, होम आदि की राख से बनाई गई हो। मृत्तिका तीर्थ या किसी देवता के स्थान की या तुलसीवृक्ष के नीचे की हो। चन्दन लाल, सफ़ेद और पीला, जो देवता के पूजन के पीछे बच रहा हो, धारण करना योग्य है। चन्दन विना कपूर मिलाये देवता को न चढ़ाना चाहिए। केवल अपने लिये चन्दन नहीं बनाना चाहिए। सूर्य को अञ्जलि दिये विना किसी देवता का पूजन उचित नहीं है।

षोडशोपचार

उपचार सोलह प्रसिद्ध हैं। अर्थात सोलह चीजों से पूजन

किया जाता है। परन्तु देवी आदि के पूजन में चौंसठ उपचार तक हैं। उपचार १६, १५, २८, ५, ८, ६ और ३ तक हैं। इस कारण हर एक का विस्तार अच्छे प्रकार से लिखते हैं। षोडशोपचार ये हैं—आवाहन १, आसन २, पाद्य ३, अर्घ्य ४, आचमन ५, स्नान ६, बिछौना ७, यज्ञोपवीत ८, चन्दन सुगन्ध ९, पुष्प १०, धूप ११, दीप १२, नैवेद्य १३, प्रणाम १४, प्रदक्षिणा १५, विसर्जन १६। जैसा कि लिंगपुराण में लिखा है——

श्लोको यथा लिङ्गपुराणे—

आवाहनासनं पाद्यमार्घ्यमाचमनीयकम्। स्नानं वस्त्रोपवीतं च गन्धं पुष्पं च धूपकम्। दीपमन्नं नमस्कारं प्रदक्षिणाविसर्जने॥१॥

जो कोई मनुष्य यह प्रश्न करे कि शालग्राम और नर्मदेश्वर लिङ्ग के पूजन में आवाहन १, विसर्जन २, ये दो उपचार नहीं होते तो सोलह किस तरह से होंगे? तो कहना चाहिए कि उनके पूजन में आवाहन की जगह पर ध्यान और विसर्जन की जगह पर क्षमापन संयुक्त किये जाते हैं। स्कन्दपुराण में षोडशोपचार ये लिखे हैं——

स्कन्दपुराणे यथा—

ध्यान १, आसन २, पाद्य ३, अर्घ्य ४, आचमन ५, स्नान ६, वस्त्र ७, उपवीत ८, भूषण ९, गन्ध १०, पुष्प ११, धूप १२, दीप १३, नैवेद्य १४, प्रदक्षिणा १५, नमस्कार १६।

यह पूजन पाँच प्रकार का है——पूजा १, आराधन २, यजन ३, अर्हण ४, अर्चन ५। पाँच प्रकार की पूजा का विवरण—उत्सव के अन्त तक पूजन है, दीपन (आरती) तक आराधन है, आचमन तक यजन है, हव्य तक अर्चन है और ब्रह्मभोजन तक अर्हण है।

आठ उपचार

अगर किसी मनुष्य को सोलह उपचार से पूजन करने की

सामर्थ्य न हो तो वह केवल आठ उपचार से पूजन करे। जैसी शैवागम में आज्ञा है--

गन्धं पुष्पं च धूपं च दीपमन्ननिवेदनम्।
ताम्बूलं च नमस्कारं प्रदक्षिणक्षमापने ॥ १ ॥

जो आठ उपचार की भी शक्ति न हो तो केवल इन ६ उपचारों से (जैसा कि स्कन्दपुराण की आज्ञा है) पूजन करे—स्नान १, गन्ध २, फूल ३, धूप ४, दीप ५, नैवेद्य ६। और जो इतनी भी सामर्थ्य न हो तो केवल इन तीन ही उपचारों से पूजन करे—स्नान १, नैवेद्य २, चरणों पर गिर पड़े।

तदुक्तं सौरसंहितायाम्—

अभिषेकं च नैवेद्यं नमस्कारस्तथैव च।
एतावदेव कर्तव्यं शिवभक्तेन यत्नतः ॥ १ ॥

और जो इतना भी न हो सके तो केवल पुष्प चढ़ावे।

प्रदक्षिणा।

उचित है कि दण्डवत् के साथ देवता की तीन प्रदक्षिणा करे; क्योंकि प्रदक्षिणा करने से पूजन सम्पूर्ण दोषों से मुक्त सफल होता है।

तदुक्तं पाराशरस्मृतौ—

प्रदक्षिणात्रयं कुर्यात्प्रकृत्या प्रणतिर्भुवि। शान्तिपूजातिकल्याणी सर्वदोषविवर्जिता ॥ १ ॥ अयत्नलभ्या सर्वेषां भुक्तिमुक्तिफलप्रदा।

और जो आदमी दण्डवत् करने से लाचार हो तो उसको चलते-फिरते, सोते-जागते में केवल स्मरण करने से पूजन का फल प्राप्त होता है।

बिल्वपत्र

विना बिल्वपत्र के शिवजी की पूजा, विना तुलसी के विष्णुजी की पूजा और बलिदान विना देवी की पूजा उत्तम और रुचिकारक नहीं है। जो कोई मनुष्य दो या तीन बिल्वपत्र भी

शुद्धतापूर्वक शिवजी के ऊपर चढ़ावे तो उसके मुक्त होने में कुछ भी सन्देह नहीं है। जो बिल्वपत्र कटी न हो, ऐसी एक भी बिल्वपत्र शिव के ऊपर चढ़ावे तो शिवलोक को प्राप्त हो। बिल्ववृक्ष के दर्शन, स्पर्श, प्रणाम करने से रात-दिन के सम्पूर्ण पाप दूर हो जाते हैं। चौथ, अमावस, अष्टमी, नवमी, चौदस, संक्रान्ति और सोमवार के दिन बिल्वपत्र तोड़ना मना है।

तदुक्तं लिङ्गपुराणे—

अमा रिक्ता च संक्रान्तावष्टम्यां चन्द्रवासरे।
बिल्वपत्रं न च च्छिन्द्याच्छिन्द्याच्चेन्नरकं व्रजेत् ॥ १ ॥

जो बिल्वपत्र किसी जगह पर न मिले तो बासी और सूखे बिल्वपत्र लेकर पूजन करे; क्योंकि तुलसी तीस दिन, बिल्वपत्र चालीस दिन, कमल तीन दिन और केतकी पाँच दिन तक के तोड़े हुए पवित्र और चढ़ाने के योग्य रहते हैं। जायफल, जावित्री, लौंग, केसर एक वर्ष पर्यन्त चढ़ाने के काम के रहते हैं। और कोई फूल व पत्ती बासी और दूसरे दिन के तोड़े हुए किसी देवता के चढ़ाने योग्य नहीं रहते। हाँ, माला और माली के घर के फूल में कुछ हानि नहीं। जहाँ कहीं हर दिन बिल्वपत्र न मिले, वहाँ सात दिन तक बिल्वपत्र रोज़ चढ़ाने के पीछे धोकर रख ले और रोज़ सात दिन तक वही चढ़ाया करे। आठवें दिन न चढ़ाना चाहिए। यदि संयोग से कहीं बिल्वपत्र न मिले तो नये और नर्म चावल को बिल्वपत्र के बदले चढ़ाना ठीक है। नारदीयपुराण में लिखा है कि बिल्वपत्र और तुलसी उलटी चढ़ाना चाहिए। बाक़ी और सब फूल और फल जिस तरह पैदा होते हैं, उसी तरह चढ़ाना चाहिए। पर स्कन्दपुराण व कई और पुराणों में आज्ञा कि है बिल्वपत्र फूल आदि औंधे कभी न चढ़ावें, वरन् जिस तरह उपजते हैं, उसी तरह चढ़ाना चाहिए। शिवजी महाराज का श्रीमुख से वाक्य है कि

हमको रत्न, मोती, मूँगा, हीरा आदि बिल्वपत्र के विना नहीं रुचते। बिल्वपत्र व कमल चढ़ाने की संख्या एक हज़ार तक है, पर एक या दो या आठ हज़ार से अधिक हो जाने चाहिए। जब बासी में कुछ हानि नहीं तो यह संख्या पूरी कर देनी चाहिए। जहाँ कहीं धूप, दीप और नैवेद्य आदि न हों, वहाँ बिल्वपत्रों से पूजा पूर्ण कर देनी चाहिए। जो अपने पुत्र, शिष्य या नौकर के सिवा किसी दूसरे मनुष्य की लाई हुई या शूद्र से मोल पर तुड़वाई हुई बिल्वपत्र कोई चढ़ावे तो बड़ा पाप होता है। जो अपने हाथ से कोई मनुष्य नर्म और साफ़ बिल्वपत्र लाकर चढ़ावे तो वह शिवलोक में पहुँचकर शिव के सदृश आप भी हो जाय। जो हर दिन एक बिल्वपत्र भी अपनी लाई हुई, कीड़े और मकड़ी आदि से साफ़, शिवजी महाराज के ऊपर चढ़ावे तो बहुत फल पाता है। जो शिवजी के पञ्चाक्षर मन्त्र (नमः शिवाय) से निश्चयपूर्वक बिल्वपत्र शिव के ऊपर चढ़ावे तो अवश्य शिव हो जाय।

फूल

जो कोई मनुष्य फूलों के विना शिव और विष्णु आदि की पूजा करे तो उसका कुल और धर्म नष्ट हो जाता है। जो एक फूल से भी शिव और विष्णु आदि की पूजा करे तो कुल समेत प्रसन्न बना रहे। फूल चाहे नदी में उपजें या फुलवारी के हों, पर सुगन्धित हों, ऐसे पुष्प चढ़ाने चाहिए। पत्र और पुष्प, जो जंगल या पहाड़ में उपजे हों, सब शिवजी के ऊपर चढ़ सकते हैं। पर उनमें कीड़े और छिद्र न हों। बासी और रङ्ग से लाल भी न हों। कनेर और कमल के फूल लाल रङ्गवाले भी शिवजी पर चढ़ाने चाहिए। इन दोनों की मनाही नहीं है। जैसा कि सौरपुराण में लिखा है—

यथा—

रक्तोत्पलैः कर्णिकारैर्यः करोति ममार्चनम्।
स भाग्यवान्मनुष्येषु मम स्यात्प्रियकृत्तमः ॥ १ ॥

तर्जनी अंगुली और अँगूठे से मुद्रा करके फूल देवतों के ऊपर चढ़ावे। मदार व धतूरे के फूल विष्णुजी के ऊपर न चढ़ाने चाहिए, मना हैं। लाल कनेर या सफ़ेद कनेर का एक फूल भी शिवजी व विष्णुजी के ऊपर चढ़ावे तो अवश्य मुक्ति पावे। कचरी, कुन्द, केतकी, गुड़हल, दोपहरिया, मालती और जूही, ये सात प्रकार के फूल किसी अवस्था में शिवजी के ऊपर न चढ़ावे। इसी प्रकार देवी के ऊपर दूब और मदार के फूल चढ़ाना अयोग्य है। तगर और अगस्त्य के पुष्प सूर्य के ऊपर चढ़ाना मना है। तुलसी किसी अवस्था में गणेश के ऊपर न चढ़ावे। ज्ञानमाला में यह आज्ञा है कि अक्षत विष्णुजी के ऊपर, तुलसी गणेश के ऊपर, दूब देवी के ऊपर, बिल्वपत्र सूर्य के ऊपर, धतूरा और मदार के पुष्प विष्णु के ऊपर किसी अवस्था में नहीं चढ़ावे। सफ़ेद व पीले पुष्प विष्णुजी को और लाल पुष्प देवी, सूर्य व गणेश को अतिरोचक और प्रिय हैं। जो फूल कीड़ों आदि के साथ हों, या बाल पुष्पों में चिपटे हों, या सुगन्धहीन हों, या सुगन्ध अतितीक्ष्ण हो, या कली हों, या मैले हों, या सूँघे हुए हों, या धरे हुए हों, या काले वस्त्र या वासन में बाँधे या रक्खे हों, या सूखे हों, या बासी हों, या ज़मीन के गिरे हों अथवा स्नान के पीछे तोड़े गये हों, इस भाँति के पुष्प सभी देवताओं पर न चढ़ाना चाहिए। परन्तु चम्पा और कमल की कली, इन दोनों को तोड़ना और चढ़ाना योग्य है। पर वे स्नान के बाद तोड़े गये हों। इस कारण ये दोनों प्रकार के पुष्प स्नान के पीछे तोड़ना योग्य है। जिस प्रकार से माला और माली के घर के

बासी फूल चढ़ाना मना नहीं है, उसी प्रकार पुष्पाञ्जलि देने में सीधे-उलटे का कुछ विचार नहीं है। तुलसी, चम्पा, कोकाबेली, मौलसिरी, कुश, दूब, पान, बिल्वपत्र, देवनी, फेरसा, मणिद्रुम, विष्णुक्रांता, आँवला, अपामार्ग (लटजीरा), इन सबके पत्ते देवताओं के ऊपर चढ़ाना उत्तमोत्तम है।

धूप आदि—पहले सर्वगन्ध

कस्तूरी दो भाग, चन्दन चौथाई भाग, कुंकुम तीसरा भाग और कपूर सबके बराबर मिलाकर देवता को धूप दे तो यह धूप देवताओं को रोचक है। इसका नाम सर्वगन्ध है।

दूसरी यक्षकर्दम—कपूर, अगुरु, कस्तूरी, चन्दन, कङ्कोल, इन पाँचों चीज़ों से यह धूप बनती है।

तदुक्तं व्रतार्के—

कर्पूरमगुरुश्चैव कस्तूरीचन्दनं तथा।
कङ्कोलं च भवेदेभिः पञ्चभिर्यक्षकर्दमः ॥ १ ॥

तीसरी धूप। अगुरु, चन्दन, मुस्ता, सिह्लाद और कस्तूरी बराबर लेकर धूप बनावे। जैसा कि भविष्यपुराण में आज्ञा दी है—

हेमाद्रौ भविष्ये—

अगुरुं चन्दनं मुस्ता सिह्लादं दृषदं तथा।
समभागं तु कर्तव्यं धूपोऽयममृताह्वयः ॥ १ ॥

धूप के दस अङ्ग हैं, जैसा कि इस श्लोक में लिखा है—

षड्भागकुष्ठं द्विगुणो गुडश्च लाक्षात्रयं पञ्च नरस्य भागः।
हरीतकीसर्जरसश्च मांसी भागैकमेकं त्रिलवं शिलाजम् १
घनस्य चत्वारि पुरस्य चैको धूपो दशाङ्गः कथितो मुनीन्द्रैः।

मुद्रा—शिवलिङ्ग की मुद्रा ये हैं—

स्कन्दपुराणे—

उच्छ्रिते दक्षिणाङ्गुष्ठे वामाङ्गुष्ठेन बन्धयेत्। वामाङ्गुली-दक्षिणाभिरङ्गुलीभिश्च वेष्टयेत्॥ १ ॥ लिङ्गमुद्रेयमाख्याता शिव-

सान्निध्यकारिणी । श्रीकामः शीर्षिण कुर्वीत राज्यकामस्तु नेत्रयोः ॥ २ ॥ मुखे त्वन्नादिकामस्तु ग्रीवायां रोगशान्तिकृत्। हृदये सर्वकामश्च ज्ञानार्थं नाभिमण्डले ॥ ३ ॥ राज्यकामस्तु बाह्वोर्वै राष्ट्रकामस्तु पादयोः ।

विष्णु की सत्रह मुद्रा ये हैं--रामार्चनचन्द्रिकायामगस्त्यः—

आवाहनी स्थापनी च सन्निधीकरणी तथा। सुसन्निरोधिनी मुद्रा सम्मुखीकरणी तथा ॥ १ ॥ संकलीकरणी चैव महामुद्रा तथैव च। शङ्खचक्रगदापद्मधेनुकौस्तुभगारुडाः ॥ २ ॥ श्रीवत्सवनमाले च योनिमुद्रां प्रदर्शयेत् ।

व्रत

जो मनुष्य अपने वर्ण और आश्रम में सन्तोष करता है, सत्यवादी है, जीवों के ऊपर दयालु है, ऐसे मनुष्य का व्रत नष्ट नहीं होता और शीघ्र ही फल देता है । कूर्मपुराण में यह आज्ञा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र महादेवजी का पूजन, दान, यज्ञ और व्रत करने से शिवजी के सायुज्य और सामीप्य मुक्ति को प्राप्त होते हैं ।

कूर्मपुराणे यथा—

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव द्विजोत्तम । अर्चयन्ति महादेवं यज्ञदानसमाधिभिः ॥ १ ॥ व्रतोपवासनियमैर्होमस्वाध्यायतर्पणैः । तेषां वै रुद्रसायुज्यं सामीप्यं नापि दुर्लभम् ॥ २ ॥ देवलोऽपि ॥ व्रतोपवासनियमैः शरीरोत्तापनैस्तथा । वर्णाः सर्वेऽपि मुच्यन्ते पातकेभ्यो न संशयः ॥ ३ ॥ भारते ॥ मामुपाश्रित्य कौन्तेय येऽपि स्युः पापयोनयः । स्त्रियो वैश्यास्च शूद्राश्च तेऽपि यान्ति पराङ्गतिम् ॥ ४ ॥ देवीपुराणे ॥ स्नातैः समुदितैर्हृष्टैर्ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नृपैः । वैश्यैः शूद्रैर्भक्तियुक्तैर्म्लेच्छैरन्यैश्च मानवैः ॥ ५ ॥ स्त्रीभिश्च कुरु शार्दूल तद्विधानमिदं शृणु ॥

और देवल का वाक्य है कि सब वर्ण व्रत और संयम से अपने शरीर को तपाकर सब पापों से रहित हो सकते हैं। महाभारत में लिखा है कि व्रत करने से स्त्री, शूद्र और वैश्य भी परम पद को प्राप्त होते हैं। देवीपुराण में स्त्री और म्लेच्छ को भी व्रत करने की आज्ञा दी गई है। परन्तु स्त्री को अपने स्वामी की आज्ञा विना किसी अवस्था में व्रत रखने की आज्ञा नहीं है। जैसा कि लिखा है--

मार्कण्डेयपुराणे—

नारी नाल्पमनुज्ञाता भर्त्रा पित्रा सुतेन वा।
निष्फलं तु भवेत्तस्या यत्करोति व्रतादिकम् ॥ १ ॥

कात्यायनोऽपि यथा—

पत्यौ जीवति या नारी तूपवासं व्रतं चरेत्।
आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥ १ ॥

विधवा स्त्री को अपने माता-पिता की आज्ञा लेने के उपरांत व्रत रखना उचित है। जब व्रत रक्खे तो पहले ताम्रपात्र हाथ में रखकर संकल्प करे। प्रभात को स्नान करके नित्यकृत्य से निश्चिन्त हो जाय, और हो सके तो उस दिन पृथ्वी पर लेटे और दिन भर कुछ न खाय। जप और होम करे। व्रत के अन्त में कुछ दान दे। चौबीस, बारह, पाँच या तीन ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा दे। व्रत के दिन चार बातें अवश्य करनी चाहिए। पहले ब्रह्मचर्य रहे, अर्थात् जूता आदि न पहने। दूसरे, सिवा सच के झूठ बात अपने मुख से न निकाले। तीसरे, किसी जीवधारी को न मारे। चौथे, आमिष अर्थात् मांस न खाय। ब्रह्मचर्य शब्द के अर्थ स्त्रीप्रसंग त्याग करने के भी हैं। कुछ शास्त्रकारों का मत है कि परस्त्री के साथ मैथुन मना है; परन्तु बहुत से महात्मा इस बात पर ज़ोर देते हैं कि उस दिन कोई स्त्री प्रसंग के योग्य नहीं है। आमिष शब्द से केवल मांस ही का

ग्रहण नहीं है, बरन् और चीज़ें भी मांस के सदृश उसमें गिनी गई हैं। कोई व्रत रखकर उसका छोड़ना महापाप है।

मदनरत्नच्छागले यथा—

पूर्वं व्रतं गृहीत्वा यो नाऽचरेत्काममोहितः।
जीवनेऽपि च चाण्डालो मृते श्वादोऽभिजायते॥ १॥

श्राद्ध और व्रत के दिन दन्तधावन नहीं करना चाहिए।

वृद्धवशिष्ठः—

उपवासे तथा श्राद्धे न कुर्याद्दन्तधावनम्। काष्ठं विनेति शेषः।

व्यासोक्तिः—

अपो द्वादशगण्डूषैर्विदध्याद्दन्तधावनम्।

देवल ऋषि का वाक्य है कि खाने, पानी पीने, पान खाने, दिन को सोने और स्त्रीप्रसंग से व्रतभंग होता है। पर अशक्त मनुष्यों को पानी पीने की मनाही नहीं है।

यथा देवलः—

असकृज्जलपानाच्च सकृत्ताम्बूलचर्वणात्।
उपवासः प्रणश्येत दिवास्वापाच्च मैथुनात्॥ १॥

व्रत के एक दिन पहले और पारण के दिन मांस न खाय। अपने पति के रोगी होने पर स्त्री व्रत रखने की अधिकारिणी है। वह अपने पति के बदले व्रत रक्खे। जो चीज़ें व्रत में खानी चाहिए और जिनकी मनाही है, वे नीचे लिखी जाती हैं। नियमित प्रण के उपरान्त व्रत का उद्यापन करना चाहिए।

अथ व्रतहविष्याणि कात्यायनः

हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनु व्रीहयः स्मृताः।
माषकोद्रवगौरादीन् सर्वाभावेऽपि वर्जयेत्॥ १॥

अग्निपुराणे—

व्रीहिषष्टिकमुद्गाश्च कलायाः सलिलं पयः।
श्यामाकाश्चैव नीवारा गोधूमाद्या व्रते हिताः॥ २॥

कूष्माण्डालाबुवार्त्ताकपालकीज्योत्स्निकास्त्यजेत् ।
चरु भैक्ष्यं सक्तुकणाः शाकं दधि घृतं मधु ॥ ३ ॥
श्यामाकाः शालिनीवारा यावकं मुद्गतण्डुलम् ।
हविष्यं व्रतनक्तादावग्निकार्यादिके हितम् ॥ ४ ॥
मधुमांसं विहायान्यद्व्रते च हितमीरितम् ॥ ५ ॥

भविष्ये यथा—

हैमन्तिकं सितास्विन्नं धान्यं मुद्गयवास्तिलाः । कलायकंगुनीवारा वास्तुकं हिलमोचिका ॥ १ ॥ षष्टिकाकालशाकं च मूलकं केमुकेतरत् । कन्दः सैन्धवसामुद्रे गव्ये च दधिसार्षपी ॥ २ ॥ पयोनुघृतसारश्च यवसाम्रहरीतकी । पिप्पलीजीरकं चैव नागरङ्गकतिन्तिडी ॥ ३ ॥ कदलीलवलीधात्रीफलानि गुडमैक्षवम् । अतैलपक्वं मुनयो हविष्याणि प्रचक्षते ॥ ४ ॥

महाभारतपुराण के अनुसार तीर्थयात्रा-प्रसंग

यद्यपि तीर्थयात्रा और सब तीर्थों के नाम महाभारत वनपर्व के तेरहवें अध्याय के बीच में विस्तार से वर्णन किये गये हैं, परन्तु विस्तार के भय से संक्षेपतः केवल प्रसिद्ध-प्रसिद्ध तीर्थों का वर्णन किया जाता है। जिनके हाथ, पैर और मन अपने अधीन हैं, जो विद्या और तप में प्रसिद्ध हैं, दान आदि नहीं लेते, अहंकार का त्याग किये हैं, कोई काम छल से नहीं करते, फलाहार करते हैं, पाप न करके क्रोध से अलग रहकर इन्द्रियों को जीतते हैं, सत्यशील और व्रत आदि को अङ्गीकार करते हैं, उनको घर बैठे तीर्थ का फल मिलता है । तीर्थयात्रा करने में यज्ञ से अधिक फल मिलता है । जो मनुष्य तीर्थ में जाकर तीन दिन उपवास अर्थात् व्रत नहीं करते और सोना या गोदान नहीं देते वे दरिद्री का जन्म पाते हैं । प्रथम पुष्करतीर्थ का वर्णन—यह तीर्थ इस सृष्टि में ऐसा है जहाँ तीनों सन्ध्या अर्थात् प्रातः, मध्याह्न, सन्ध्या में दस करोड़

हज़ार तीर्थ रोज़ जाया करते हैं; सूर्य, चन्द्रमा, मर्त्यगण, अप्सरा, गन्धर्व प्रतिदिन प्राप्त हो जाते हैं। ब्रह्मा सब समय वहाँ उपस्थित रहते हैं। यह वही स्थान है जहाँ अगले समय में सम्पूर्ण देवता और ऋषि तप करके सिद्धि पाते रहे। जो कोई मनुष्य पुष्कर में स्नान करके देवता और पितरों का पूजन करता है वह अश्वमेध यज्ञ से दस गुना अधिक फल पाता है। फिर उसको आवागमन का भय नहीं रहता। कार्त्तिकी पूर्णिमा को पुष्कर में नहाने से ब्रह्मलोक मिलता है। जो पुरुष प्रभात सन्ध्या में पुष्कर का स्मरण करता है उसको सब तीर्थों के स्नान का फल मिल जाता है।

रेवा अर्थात् नर्मदा, सरस्वती, चर्मण्वती, प्रभास, द्वारका, पिण्डारक, सिन्धु, सागरसंगम, भद्रतुङ्ग, कुमारी, पञ्चनदतीर्थ और सप्तचरुवंश आदि तीर्थ सौ-सौ अश्वमेध के फल देनेवाले हैं। कुरुक्षेत्र के जाने से फिर कोई पाप बाक़ी नहीं रहता, अर्थात् जो कुरुक्षेत्र की मिट्टी उड़कर किसी के ऊपर पड़ जाय तो वह भी परमगति पाता है। परशुराम ने वहाँ पुष्करतीर्थ को लाकर स्थापित किया है। कई कुण्ड वहाँ हैं, जो परशुराम ने क्षत्रियों के रुधिर से भरे थे। उन्हीं पाँच कुण्डों में उन्होंने अपने पितरों का तर्पण किया था। ब्रह्मावर्त, केदार, कपिल, श्यामकानन, ब्रह्मोदुम्बर, काशीसर तीर्थ की महिमा बड़ी है। केदार, जिसको कपिष्ठल तीर्थ कहते हैं, वहाँ कृष्ण चतुर्दशी में जाकर शिव पूजा करे तो सब मनोरथ पूर्ण हो। स्वर्ग में निवास हो। केदार में तीन करोड़ तीर्थ स्थिर रहते हैं। मिसरिख में श्रीव्यासजी ने सब तीर्थों को स्थापित किया था। वहाँ जाने से हज़ार गो-दान का फल प्राप्त होता है। नैमिष अर्थात् नैमिषारण्य की बड़ी महिमा है। जितने तीर्थ पृथ्वी भर में हैं वे सब नैमिषारण्य में हैं। वहाँ जाने से

दस पीढ़ी तक मुक्त हो जाती हैं। पृथूदक स्वामिकार्त्तिक का तीर्थ है। यहाँ स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। पञ्चवटी में महादेव का पूजन करने से सत्यलोक मिलता है। गङ्गाद्वार में स्नान करने से करोड़ों तीर्थों का फल होता है। कनखल में आकर तीन दिन व्रत करके स्नान करे तो अश्वमेध यज्ञ के फल को पाकर स्वर्गलोक को चला जाय। गोप्रतार अर्थात् गुप्तार, जो सरयू में है, और जहाँ से श्रीरामचन्द्रजी अपने सब कुटुम्ब और पुरवासी लोगों समेत सुरलोक को गये हैं, वहाँ यदि कोई मनुष्य स्नान करे तो उसे अवश्य स्वर्गलोक मिलेगा। वाराणसी में जाकर शिवजी की पूजा करे और कपिलाह्रद में स्नान करे तो राजसूय यज्ञ का फल मिलता है। मुक्तितीर्थ, जिसको 'काशी' कहते हैं, वहाँ जाने से और पापों के दूर होने की कौन कहे, ब्रह्महत्या भी दूर हो जाती है। वहाँ मरने से मोक्ष प्राप्त होता है। इसलिए संसार में और कोई तीर्थ काशीजी के बराबर नहीं। गया के जाने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। अक्षयवट के नीचे पिण्ड देने का बड़ा फल है। गण्डकी और बसत्तिया नदी के नहाने से बड़ा फल होता है। गोकर्ण में, जिसको ब्रह्मा आदि देवता नमस्कार करते हैं, जो कोई मनुष्य जाकर शिवजी की पूजा करे और बारह दिन व्रत करके वहाँ स्थित रहे तो उसका कोई पाप नष्ट हुए विना नहीं रहता। अश्वमेधयज्ञ का फल मिलता है। कालञ्जर, चित्रकूट और सुरङ्गवीरपुर में जाने से वाजपेय, अश्वमेध आदि यज्ञों का फल होता है। प्रयाग में ब्रह्मा आदि देवता, सब लोकपाल, सप्तर्षि, सनत्कुमार आदि नाग, सिद्ध, सूर्य आदि सब ग्रह, सम्पूर्ण नदी, समुद्र, अप्सरा, गन्धर्व, महादेव, विष्णु, प्रजापति आदि स्थित रहते हैं। वहाँ तीन कुण्ड अग्नि के हैं। सरस्वती वहाँ गङ्गा और यमुना से मिलकर तीनों लोकों

को पवित्र करने के लिए बहती हैं। वहाँ वेद यज्ञशरीर धारण किये हुए दिखाई देते हैं। संसार में जितने पुण्यतीर्थ हैं, उन सबसे प्रयाग बड़ा है। वहाँ एक के देने से करोड़ का फल होता है। वहाँ साठ करोड़ और दस हज़ार तीर्थ स्थिर रहते हैं। कनखल और प्रयाग में गङ्गास्नान करने का सब जगह से अधिक फल है। जिस तरह आग लकड़ी को जलाती है, उसी तरह प्रयाग में गङ्गा सब पापों को जला देती हैं। सत्ययुग में सब तीर्थ बराबर थे; त्रेता में पुष्कर का माहात्म्य था; द्वापरयुग में कुरुक्षेत्र बड़ा था; पर कलियुग में गङ्गा के बराबर दूसरा तीर्थ नहीं है। पुष्कर में जो मनुष्य तप करके बड़ा दान देते हैं, मलयाचल में जो मनुष्य जल जाते हैं और भृगुतुङ्ग में जो मनुष्य मर जाते हैं, उन्हें जो फल मिलता है, वह फल केवल गङ्गा, पुष्कर और कुरुक्षेत्र में स्नान करने से प्राप्त हो जाता है। गङ्गा का नाम लेने से मनुष्य पवित्र हो जाता है, दर्शन करने से मुक्ति मिलती है, स्नान करने और जल पीने से सात पीढ़ियाँ तर जाती हैं। जब तक मनुष्य की हड्डियाँ गङ्गा में रहती हैं, तब तक उस मनुष्य को स्वर्ग में बास मिलता है।

श्रीमहाभारतवनपर्वणि यथा—

न गङ्गासदृशं तीर्थं न देवः केशवात्परः।
ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति एवमाह पितामहः॥ १॥

गङ्गा जिस देश में हैं, वह तपोवन है, और श्रीगङ्गाजी का किनारा सिद्धक्षेत्र है। यह गुप्तभेद है। हर एक से कहने के योग्य नहीं। दूसरे धूम्र मुनि के वर्णन के अनुसार पूर्व दिशा के तीर्थ नैमिष में, जहाँ गोमती नदी और गय नाम पहाड़ है, वहाँ जाने से मनुष्य की पिछली दस पीढ़ियाँ और आगे की दस पीढ़ियाँ मुक्त हो जाती हैं। फल्गु नदी, कौशिकी नदी,

कान्यकुब्ज देश, गङ्गा-यमुना का संगम, जिसको प्रयाग कहते हैं, अगस्त्याश्रम, तपसारण्य, भृगुआश्रम, जो महेन्द्र के ऊपर है, केदारआश्रम, गरकुण्ड और नद, ये सब पूर्व के तीर्थ हैं। दक्षिण के तीर्थ ये हैं—गोदावरी, वेणी, चक्रपीयूषिणी, वाराहपीयूषिणी, हरशेखर, मातरीन, कण्वआश्रमवेदी, सूर्यचन्द्रतीर्थ, अशोकतीर्थ, व्रणतीर्थ, कुमारीतीर्थ (ये दोनों द्राविड़ देश में हैं), गोकर्णक्षेत्र, प्रभासवैदूर्य, अलस्यछुब्बूभेदन, पिण्डारक, उज्जयिनी-शिखर, द्वारावती। पश्चिम के तीर्थ ये हैं—चर्मण्वती, नर्मदा नदी (जो पश्चिम को बहती हैं), विश्रवाश्रम, गरवैदूर्य, शिखरमर्दनी नदी, पुण्यह्रद (जो मैनाक के ऊपर है), असितगिरि (जहाँ कच्छसेन मुनि का आश्रम है), च्यवनाश्रम, जम्बूमार्ग, केतुमाल, गङ्गाद्वार, सिन्धु, पुष्कर। उत्तर के तीर्थ ये हैं—मालिनी तीर्थ, सरस्वती (जो सिन्धु के संगम पर है), प्लक्षावतरण तीर्थ (यमुना के ऊपर), शरभङ्गाश्रम, दृषद्वती, न्यग्रोध (जो पाञ्चाल देश में है), दाल्भ्याश्रम, पलाशवन, किरात और किन्नरगिरि, कनखल, पुरग्र, भृगुतुङ्ग, बदर्याश्रम।

दान

महाभारत, शान्तिपर्व में लिखा है कि दानरूपी अथाह समुद्र की थाह नहीं है। इसलिए विस्तार और संक्षेप दोनों प्रकार उसका वर्णन असंभव है। केवल इतना ही कहा जाता है कि गोदान, भूमिदान, अन्नदान, सुवर्णदान, ये सबसे श्रेष्ठ दान हैं। महाभारत के *शान्तिपर्व में दानधर्म को अवलोकन करना चाहिए; क्योंकि उसके देखे विना ठीक-ठीक यह विषय मालूम नहीं हो सकता।

इति

* यह महाभारत, जिसमें शान्तिपर्व, दानधर्म, मोक्षधर्म आदि अठारहों पर्व पूर्ण हैं, (राजा) रामकुमार प्रेस, बुकडिपो, हजरतगंज लखनऊ से मिल सकता है।

हमको क्या करना है, कौन सुननेवाला, कौन कहनेवाला और कौन चलता है? तुम ये बातें कुछ भी नहीं समझते। फिर गिरिजा ने कहा कि तुम बड़े पुरुष हो और हम भी बड़ी माया हैं। हमारे अधीन तुम्हारा शरीर है। तुम्हारी मति से पुरुष और प्रकृति अलग हैं। पर हमारी मति से सब प्रकृति से मिला है। कहना, सुनना, तप करना सब माया है। जो माया से अलग है, उसको तप करने में क्या भय है? फिर शिव ने कहा कि यह मति जो तुम्हारी है, सो केवल अपने मन से उपजाई गई है और आनुमानिक है। केवल ब्रह्म सबसे श्रेष्ठ है। माया स्वाधीन नहीं है। वह जड़ है। जो तुमको ऐसा अहंकार है तो उसको क्यों नहीं रोकती हो? इतना कह शिव चुप हो रहे। हिमाचल स्तुति करने लगे और फिर गिरिजा को उसकी सखियों समेत उसी जगह पर छोड़ गये। गिरिजा अपनी सखियों समेत हर दिन सेवा करती थीं। वह वन से नाना प्रकार के पुष्प आदि तोड़कर शिव पर चढ़ाया करतीं और हर प्रकार से परीक्षा किया करतीं। पर शिव का चित्त न डोला। एक दिन गिरिजा को विचार हुआ कि देखिये, शिव हमको कब ग्रहण करेंगे। शिव ने मन में जाना और विचार किया कि जो इसी समय गिरिजा को ग्रहण करता हूँ तो इनको बड़ा अहंकार हो जायगा। इसके सिवा तीनों लोकों में मेरी बड़ी निन्दा होगी। लोग कहेंगे कि शिव ऐसे कामवेग से मूर्ख हो गये। सो जब गिरिजा हमारा बड़ा तप करेंगी, तब गिरिजा का मनोरथ पूरा करूँगा। यह सोच शिवशंकर ध्यान में मग्न हुए। उसी समय तारक से दुःख पाकर सब देवता मेरे पास आये। इन्द्र ने कामदेव को बुलाकर समझा-बुझाकर शिव को वश करने के लिए उसे शिव के पास भेजा। कामदेव गया; पर आप ही शिव की क्रोधाग्नि से जलकर भस्म हो गया, जिससे

तीनों लोकों में हाहाकार मच गया। गिरिजा ने वन में जाकर बहुत तप किया। शिव ने प्रसन्न हो उन्हें ग्रहण किया।

इकतीसवाँ अध्याय

इतना कहकर सूतजी बोले कि हे शौनकादि मुनियो! जब नारद ने इतना सुना तो संशययुक्त होकर विनय की कि आप तारक के दुःख देने, काम के जलने और गिरिजा को फिर ग्रहण करने का विस्तारपूर्वक वृत्तान्त सुनाइये। ब्रह्माजी बोले कि जो कश्यप की स्त्री दिति नाम की थी, उससे अति बलवान् दो पुत्र, एक हिरण्यकशिपु दूसरा हिरण्याक्ष उपजे, जो अतितेजवान्, बलवान् और हृष्ट-पुष्ट थे। उन्होंने तीनों लोकों को अपने वश में कर लिया। देवताओं को स्वप्न में भी आनन्द न मिलता था। विष्णु ने अवतार लेकर उनका वध किया और अपने भक्त को बचा लिया। हिरण्यकशिपु को नरहरि अवतार लेकर मारा और हिरण्याक्ष का दूसरी रीति से वध किया। तब देवता आदि सब प्रसन्न हुए और विष्णु की स्तुति की। दिति ने अति दुखी होकर कश्यप के पास जाकर रो-पीटकर सब वृत्तान्त कहा। फिर बड़ी सेवा करके प्रसन्न किया और एक लड़का आनन्द देनेवाला माँगा। कश्यप ने कहा कि तुम सहस्र वर्ष तक तप करो। जो तुम्हारा यह तप सिद्ध होगा तो अवश्य ही भाग्यवान् पुत्र उपजेगा। दिति ने बड़ा तप और व्रत आदि किये। निदान इन्द्र दिति के तप को जान उसकी सेवा करने लगे। दिति ने इन्द्र से पूछा कि तुम क्या चाहते हो और किस मनोरथ से हमारी सेवा करते हो? तुम्हारी जो इच्छा हो, वह तुमको दिया जाय। इन्द्र बोले कि सेवा के बदले हम यही वरदान माँगते हैं कि तुम जिस लड़के के लिए तप करती हो, वह लड़का जब उत्पन्न हो तो वह हमारे भाई के समान होकर हमारा

हितैषी हो और देवताओं के दुःख को दूर किया करे। यह सुन दिति ने दुखी हो अति चिन्ता की। वह कहने लगीं कि मेरे साथ बड़ा छल हुआ। मैं बहुत ठगी गई। निरुपाय हो इन्द्र से कहा कि अच्छा हमने माना। वह फिर तप करने लगीं। अकस्मात् एक दिन वह सोते समय अशुद्ध रह गईं। इन्द्र छिद्र के मार्ग से प्रवेश करके दिति के गर्भाशय में गये और जो बालक गर्भ में था, उसके सात खण्ड कर डाले। वह बोल उठा और जीता रहा, मरा नहीं। तब इन्द्र ने उन टुकड़ों के भी टुकड़े किये। पर तो भी वह सजीव रहा। अब ये सब उञ्चास खण्ड हो गये। पर प्राण उनमें बने रहे। तब दिति निद्रा से जागीं। उन्होंने चिन्तित होकर इन्द्र से पूछा। इन्द्र ने सत्य सत्य सब हाल कह दिया। तब दिति अति-प्रसन्न हुईं। वे उञ्चासों खण्ड उञ्चास मरुद्गण अर्थात् वायु हो गये और इन्द्र के भाई होकर देवताओं में गिने गये। दिति ने कश्यप की फिर बहुत सेवा की और कहा कि इस बार मुझको एक लड़का बज्राङ्ग दीजिये, जिसके कोई शस्त्र न लग सके। कश्यप ने कहा कि दश सहस्र वर्ष तप करो तो निस्सन्देह तुम्हारे ऐसा पुत्र उपजेगा। दिति ने अतिश्रम से दशहज़ार वर्ष तप किया। जब तप की अवधि पूरी हुई तो पुत्र उपजा। उसका नाम बज्रांग रक्खा गया। वह महाप्रतापी, पुष्ट, वीर, धीर, तेजस्वी हुआ, मानों विष्णु का चौथा अवतार हो। उसने अपनी माता दिति की आज्ञा से इन्द्र को पकड़कर सामने किया। और उनको लात-घूँसों से अच्छी तरह मारा और पृथ्वी पर भली भाँति घसीटा। निदान इन्द्र ने बज्राङ्ग की अधीनता अङ्गीकार की। तब मैंने और कश्यप ने जाकर पूछा कि इन्द्र मर गये या जीते हैं? अब उचित है कि हम पर कृपा करके इन्द्र को छोड़ दो। तुम अपने कुल में सूर्य हो। तुम्हारी स्तुति कहाँ तक

करें। बज्राङ्ग ने कहा कि मैंने तुम्हारे कहने से इन्द्र को छोड़ दिया। मुझको कुछ इन्द्रलोक लेने की इच्छा नहीं है। मैंने इन्द्र को यह दण्ड अपनी माता की आज्ञा से दिया है। यह कह वह फिर बोला कि हे ब्रह्मा और विष्णु ! आप तीनों लोकों के स्वामी हैं। मैं चाहता हूँ कि आप तीनों लोकों का सार मुझको दें। तब मैंने बहुत सोच-विचार कर तप और योग का सार उसको बता दिया। फिर मैंने एक वरांगी नाम की स्त्री उसको दी। यह उपाय कर मैं तो अपने लोक को चला गया और बज्राङ्ग कठिन तप करने लगा। उसने समुद्र में पैठकर तप किया। उसी समुद्र के तट पर पर्वत के निकट वरांगी तप करने लगी। इन्द्र ने अपने गणों को उसका तप भ्रष्ट करने को भेज दिया। उन्होंने नाना प्रकार के स्वरूप बनाकर वरांगी को डराया, पर उस स्त्री पर कुछ न चली। तब क्रोध में आकर पर्वत को बड़ी कड़ी बातें कहीं। तब वह पर्वत बहुत डर मनुष्यरूप रख शरण में आया। यह देखकर वह बैठ गया अर्थात् इन्द्र की माया लुप्त हो गई, जैसे शिव के देखने से सर्व पाप नष्ट हो जाते हैं। उसी समय मैं वर देने को बज्रांग के समीप गया। उसने मुझको प्रणाम किया और वरदान माँगा कि मैं राज्य नहीं चाहता, क्योंकि न तो उसमें कुछ आनन्द है और न परलोक बनता है। मुझे अपना सेवक समझ यह वर दीजिये कि मुझमें आसुरी भाव न हो। मेरा मन सदा धर्म और तप में लगा रहे और कुमार्ग में न जाय। मैं यह वर देकर अपने लोक को चला और बज्रांग भी जल से निकलकर बाहर आया और अपनी स्त्री को बुलाया। वह तुरन्त सामने गई और बहुत रोई-पीटी। जब बज्राङ्ग ने रोने का कारण पूछा तो स्त्री ने सब दुःख का कारण बताया। बज्राङ्ग ने उसको बहुत समझाया और धर्म का मार्ग अच्छी भाँति बताया। पर

उसके मन में उसके समझाने से कुछ काम न किया; क्योंकि वह बहुत क्रोधित थी। निदान वह अपने पति की सेवा उत्तम रीति से करती रही। एक दिन समय पाकर विनय की कि इन्द्र बड़ा शत्रु है। वह बड़ा दुःख देता है। आप बदला लेनेवाला एक लड़का मुझे दीजिये और मेरा मनोरथ पूरा कीजिये। यह कह वह अपने पति के चरणों पर गिर पड़ी।

बत्तीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! बज्राङ्ग ने अपनी स्त्री से ऐसी बातें सुनकर अति दुःख में विचार किया कि मैं क्या करूँ? स्त्री की इच्छा तो है कि देवताओं से शत्रुता हो, पर मैं नहीं चाहता। मालूम नहीं होता कि क्या उचित है और क्या अनुचित। रीति है कि जो स्त्री का मनोरथ पूरा हो जाय तो वह बड़ा दुःख देनेवाला होता है। तीनों लोकों में कोई प्रसन्न नहीं। जो पुरुष स्त्री का मनोरथ पूरा नहीं करता, उसको बड़ा दुःख होता है और वह अन्त को नरक में गिरता है। इसी सोच में बज्राङ्ग बहुत दुखी होकर तप करने लगा। बहुत काल तक उसी अवस्था में रहा। निदान मैं अति प्रसन्न हुआ और वरदान देने के लिए उसके पास चला गया। उसने यह वर मुझसे माँगा कि मेरे एक पुत्र उपजे जो अपनी माता को आनन्द दे, बड़ा बलवान् और तेजस्वी हो। मैंने मान लिया और अपने लोक को चला गया। बज्राङ्ग ने भी अपने घर आकर अपनी स्त्री से वरदान पाने का हाल कह सुनाया। थोड़े दिनों में वह गर्भवती हुई। वह लड़का गर्भ में बहुत बढ़कर अन्त को बहुत भयानक उपजा। उसके उपजते ही संसार में बड़ा उपद्रव होने लगा। धरती में भूकम्प हुआ। तारे आकाश से गिरने लगे। तीनों लोकों में अकाल पड़ गया, जिससे देवता आदि सब दीन हो गये। बिना वायु वृक्ष गिरने

लगे और समुद्र पहाड़ पर चढ़ने लगे। जब वह उपजा तो पिता ने सब रीतें पूरी कीं। उसकी माता अति प्रसन्न हुई। वह माता-पिता के दुःख दूर करनेवाला उपजा, इससे उसका नाम तारक रक्खा गया। उसी तारक ने माता की आज्ञा से पारिजात पर्वत पर जाकर विजय की इच्छा से तप आरम्भ किया। पहले सौ वर्ष तक दोनों हाथ ऊपर को उठाये हुए, दृष्टि जमाये खड़ा रहा। फिर सौ वर्ष तक अँगूठे के बल खड़े रहकर तप किया। गर्मियों में आग तापी और शेष दिवसों में वनों में और जाड़ों में पानी के भीतर बैठ रहा और पवन आदि भक्षण करता रहा। पर शिव कुछ भी प्रसन्न न हुए। तब तो तारक ने आसुरी तप प्रारम्भ किया। अपने शरीर को काटकर अग्नि में होम करने लगा और दृढ़तापूर्वक यही तप करने लगा। उसके इस कठिन तप से तीनों लोक जलने लगे। तब देवताओं ने मेरे निकट पहुँच अपना दुःख वर्णन किया और कहा कि यह क्या हुआ कि तीनों लोकों में इस तरह अग्नि ने जोर पकड़ा है, जिससे सब जले जाते हैं। हे नारद! मैंने शिव के चरित्र को कुछ न जाना और सबको अपने साथ लेकर विष्णु के पास गया। उन्होंने भी शिव की माया न जानी। फिर शिव के पास गया और प्रणाम और स्तुति के उपरान्त सब वृत्तान्त निवेदन किया। कहा कि अब तो आपकी शरण में आये हैं। आप सबसे श्रेष्ठ हैं। इससे अनुग्रह करके हमारे दुःखों को दूर कीजिये। शिव ने हँसकर कहा कि तारक के कठिन तप से तीनों लोकों की यह दशा है। वह देवतों को दुःख देने के लिए तप करता है, इसी कारण हम वरदान देने में संकोच करते हैं। यह सुन देवतों ने आश्चर्य में होकर कहा कि बहुत अच्छा, आप तारक को वरदान दें; क्योंकि आपके वरदान से इतनी हम जल्दी न नष्ट हो जायँगे, जैसे कि

अब मरे जाते हैं। शिव बोले—तुम में से कोई ऐसा बलवान् और पुष्ट नहीं है कि तारक के तप को माया करके भ्रष्ट कर दे। विष्णु ने गर्वपूर्वक कहा—जो मुझको आज्ञा हो तो मैं निस्सन्देह यह कर सकता हूँ। शिव ने आज्ञा दी। विष्णुजी चले और उन्होंने अपना मोहिनीरूप धारण किया, पर शिव की लीला से तारक पर कुछ प्रभाव न पड़ा। इतना कह ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! शिव की माया अति बलवान् है। देखो, विष्णु मोहिनीरूप से तारकासुर का, जो शिवभक्त था, कुछ न कर सके। तब शिवजी को जीतना कितनी कठिन बात है। निदान विष्णु ने शिव के निकट जाकर विनय की कि आप जाकर तारक को वरदान दीजिये। आपकी माया बहुत बड़ी है। यह सुन शिव वरदान देने के लिए चले गये और ऊँचे शब्द से कहा कि वरदान माँगो; मैं तुम्हारे तप से अति प्रसन्न हूँ। तारक ने प्रसन्न हो नेत्र खोल शिव को प्रणाम किया। वह स्तुति करने लगा और यह वरदान माँगा कि मैं तुम्हारे हाथ के सिवा और किसी के मारे न मरूँ और करोड़ों वर्ष तक लोक में राज्य करूँ। शिवजी ने मान लिया और विमन हो अपने गणों समेत चले गये। तब तारक अति प्रसन्न हुआ और प्रसन्नतापूर्वक अपने घर गया।

तैंतीसवाँ अध्याय

इतनी कथा सुन नारदजी बोले कि हे ब्रह्मा! ऐसा वरदान पाकर तारक ने क्या कार्य किया? तारक का शेष वृत्तान्त सुनाइये। ब्रह्मा बोले कि तारक वरदान पाकर अपने घर आया और अपनी स्त्री से सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा। सब असुर इकट्ठे होकर तारक को अति प्रतिष्ठित और बड़ी पदवीवाला विचारकर उसकी स्तुति करने लगे। असुरों की सब सेना इकट्ठी हो गई, जिसमें करोड़ों वीर थे। उनके नाम ये हैं—कुम्भक, कुञ्ज, महिष, कुञ्जर, कालनेमि, निमि, कृष्णजठर, प्रजम्बुक, शुम्भ और काल-

केतु। ये दसो बड़े प्रसिद्ध वीर सेनाधिप थे। जो सब असुर सेना का सेनानी था, उसका नाम ग्रसन था। ये सब तीनों लोकों को तुच्छ समझते थे। यह सेना लेकर तारक ने पहले इन्द्र पर चढ़ाई की और देवताओं के लोक और इन्द्र के देश को घेर लिया। देवता और दैत्यों का घोर युद्ध हुआ। नाना प्रकार के शस्त्र चले। तारक और इन्द्र से युद्ध हुआ। निमि और अग्नि भिड़े। कालनेमि और यमराज ने लड़कर रुधिर बहाया। नमुचि और निर्ऋति ने लड़ाई करके अपनी-अपनी विजय चाही। महिषासुर और वरुण परस्पर भिड़े। मेघ और पवन ने युद्ध किया। कुञ्ज भिरिड से लड़े। जृम्भक और इन्द्र ने लड़ाई करके बल दिखाया। शुम्भ और दाहपति ने घोर युद्ध मचाया। कुम्भज और चन्द्रमा ने अच्छी मारपीट की। सूर्य और कुञ्जर ने प्रलय मचा दिया। ग्रसन सेनापति ने विष्णु से लड़ाई की। इसी तरह बड़ा युद्ध हुआ और दैत्यों ने कुपित होकर देवताओं को युद्धस्थान में दुखी कर दिया। तारक ने अपना प्रताप प्रकट करके इन्द्र को परास्त कर दिया और विष्णु के सामने जा खड़ा हुआ। विष्णु ने आश्चर्य किया। तारक का यह प्रताप शिवजी के वरदान से समझकर गुप्त हो गये। तारक ने सबको जीत लिया, सबको परास्त करके बन्दि में डाला और अपनी राजधानी में ले जाकर निर्भय होकर राज्य के सहायकों समेत राज्य करने लगा। दैत्य बन्दीगृह में देवताओं की रखवाली करने लगे। जहाँ पर महानदी समुद्र में मिल गई है, उस स्थान पर तारक की राजधानी थी। वहाँ सब दैत्य और देवता इकट्ठे होकर रहते थे। तारक ने निर्भय निष्कण्टक होकर सब देश अलग-अलग भागों में बाँटकर उनका राज्य असुरों

को दिया, जहाँ वे अपने परिवार, मित्रों और स्त्रियों सहित आनन्द उठाया करते थे। विष्णु के स्थान पर तारक आप तीनों लोकों का स्वामी हुआ। निमि को अग्नि की पदवी दी। कालनेमि को यमराज के बदले नियत किया। निर्ऋति की पदवी नमुचि को दी। वरुण के देश का प्रबन्ध महिषासुर को सौंपा। पवन के बदले मेघ हुआ। कुबेर के स्थान पर कच्छ हुआ। इन्द्र की जगह पर जृम्भक ने नाम पाया। अहिपति के स्थानापन्न शुम्भ किया गया। मेरी जगह पर कुम्भ काम करने लगा। मित्र के बदले कुञ्जर स्थित हुआ। इसी प्रकार सब देवताओं के स्थान पर दैत्य-दानव नियत हुए। सब असुर संसार भर के स्वामी होकर राज्य करने लगे। उनके राज्य में देवताओं के सिवा कोई मनुष्य दुखी न था। थोड़े दिन बीतने पर विष्णु ने गुप्त देवताओं के निकट जाकर उनको यह उपाय बताया कि तारक बड़ा बलवान्, प्रतापवान् है; क्योंकि उस पर शिवजी की बड़ी कृपा रहा करती है। इससे हम विचार करते हैं कि वे तुमसे कभी परास्त न होंगे। इसलिए अपने मनोरथ पूर्ण करने के लिए उसकी तुम सब सेवा करो। उसको नट बनकर प्रसन्न करो। जब वह प्रसन्न होगा, तब तुमको अवश्य छोड़ देगा। ऐसा उपाय बताकर विष्णु तो अपने धाम को गये और देवता भी नटरूप से तारक के पास पहुँचे और ऐसे उपाय से बात की कि तारक अति प्रसन्न होकर कहने लगा—जो तुम्हारा मनोरथ हो, वह मुझसे माँगो। देवताओं ने अति विनीत होकर कहा कि हमको बन्दि से छुड़ा दीजिए। तारक ने मान लिया। देवताओं ने बन्दि से छुट्टी पाकर चाहे अपना-अपना पद भी पाया, पर तो भी दुखी रहा करते थे। तारक राज्य करता रहा। उसके राज्य में सिवा देवताओं के और किसी को कुछ भी दुःख न था।

चौंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! जब देवताओं ने असुरों के साथ नाना प्रकार के दुःख उठाये, तब अति शोकयुक्त होकर कहने लगे कि कहाँ जाइये, किससे अपना दुःख कहिए। न कोई ऐसा मित्र है और न कोई ऐसा सहायक। सूर्य, चन्द्रमा, जो संसार के जीवन हैं, वे तो आप ही तारक की सेवा करते हैं। तो भी उनको भय बना रहता है। न जानिये, यह दैत्य कब तक हमको दुःख देता रहेगा। इसी प्रकार बहुत समय तक देवता दुःख और चिन्ता में डूबकर अन्त के मेरे पास पहुँचे। इन्द्र और बृहस्पति भी उनके साथ थे। उन्होंने मेरी स्तुति की और बार बार मेरी पूजा करके मुझे प्रणाम किया। देवताओं की उस विनय से मैं प्रसन्न हुआ। मैंने हँसकर कहा कि देवताओ! तुम्हारी सन्तान और बल तुम्हारे अधीन है या नहीं? मैं तुमको बहुत दुखी, मुँह सुखाये हुए चिन्तित देखता हूँ। इन्द्र के मुख पर कुछ तेज नहीं पाता। संसार में ऐसा कौन बलवान् है, जिसने तुम सबको दुखी किया है? हे पुत्रो! मुझसे अपने यहाँ आने का कारण वर्णन करो। देवताओं ने बृहस्पति से कहा कि आप हम सबकी ओर से उत्तर दीजिये; क्योंकि आप विष्णु और इन्द्र के समान हैं। तब बृहस्पति ने हाथ जोड़ मुझसे कहा कि आप हमारे दुःख को क्यों नहीं जानते? देखो, तारक दैत्य सकल ऐश्वर्य इकट्ठा कर सृष्टि को बड़ा दुःख देता है। उसको शिव ने वरदान दे दिया है, जिससे उसने तीनों लोकों को जीत लिया है। सूर्य भी उसके देश में ठंडे होकर रहते हैं और चन्द्रमा भी अपनी सब कलाओं से उसकी सेवा में विद्यमान रहकर भयभीत रहते हैं। वह केवल शिव को मानता है। उसके उद्यान में पवन इस-लिए नहीं चल सकते कि फूल न गिर पड़ें। उसकी सेवा में

सब ऋतुएँ बनी रहती हैं और भय से सब ऋतुएँ के फल फलते हैं। वासुकि नाग दीपक बनकर अपने शीश के मुक्ता से मन्दिर में प्रकाश करते हैं। इन्द्र आप ही उसकी नित्य सेवा करते हैं। यद्यपि सब इस प्रकार उसकी सेवा-टहल करते हैं, पर वह कुछ भी कृपा नहीं करता। जिन वृक्षों की पत्तियाँ देवताओं की स्त्रियाँ बहुत समझ-बूझकर तोड़ती थीं, उन तरुओं को असुर जड़ से उखाड़ डालते हैं। देवपत्नियाँ उसके सोने के समय उसकी स्तुति करके अपने आँसू पृथ्वी पर छोड़ती हैं। उन्होंने पर्वतों के शिखर काटकर वहाँ विहार के स्थान और अन्तःपुर बनाये हैं। देवता अपने लोक की ओर आँख उठाकर नहीं देख सकते। वे आप ही यज्ञ का भाग ले लेते हैं, इन्द्र आदि को कौन पूछता है। हमारा कोई उपाय नहीं चलता, जैसे सन्निपात के हो जाने पर कोई ओषधि काम नहीं करती। हम लोगों को विष्णु के चक्र पर बड़ा भरोसा था; पर वह भी व्यर्थ हो गया। इससे हे ब्रह्माजी! आपको कोई उपाय करना उचित है। मैंने कहा कि हे देवतो! तारक ने शिवजी से वरदान पाया है। शिव के सिवा और कोई नहीं, जो उसको मार सके। जो शिव के वीर्य से कोई पुत्र हो तो वह तारक का वध कर सकता है। पर यह बात बहुत कठिन है। फिर मैंने कहा कि देखो, शिव हिमाचल पर्वत पर तप कर रहे हैं और गिरिजा अपनी सखियों समेत उनकी सेवा करती हैं। जो उन दोनों का मिलाप हो जाय तो निस्सन्देह तुम्हारा कार्य पूर्ण हो। सिवा गिरिजा के और कोई तुम्हारा काम नहीं कर सकता। यही उपाय है। अब तुमको उचित है कि कामदेव को भेजो। वह शिव के पास जाय और शिव के मन में प्रीति का अंकुर उपजे। यह सुन सब देवता मेरी बहुत बिनती और स्तुति कर अपने

अपने घर आये। इन्द्र ने कामदेव का ध्यान किया। तुरन्त कामदेव इन्द्र के निकट स्त्री सहित आया और हाथ जोड़ विनय की कि आपने मुझे क्यों स्मरण किया है? इन्द्र ने दोनों को कृपादृष्टि से देखा और कहा कि तुम धन्य हो, जो देवताओं के हितैषी हो और हमारे कार्य में मन लगाते हो। जिस कार्य के लिए मैंने तुमको स्मरण किया है, वह वास्तव में तुम्हारा ही काम है। यद्यपि हमारे बहुत से मित्र हैं, पर तुम्हारे बराबर और कौन हमारा सहायक है? अब हमारे काम पर तत्पर हो जाओ और जिस तरह पर ब्रह्माजी ने युक्ति कही है, उसी प्रकार पूर्ण करो। हे प्यारे मित्र! वीरों की परीक्षा युद्ध के समय ली जाती है। उदार लोग काल के समय जाने जाते हैं। मित्र की परीक्षा तब होती है, जब कोई आपदा पड़ती है। दरिद्रता और आपत्ति में स्त्री की परीक्षा का अवसर मिलता है। इसलिए अब मुझको तुम्हारी मित्रता की परीक्षा मिल जायगी। यह केवल मेरा ही प्रयोजन नहीं, वरन् सबके कार्य इसमें संयुक्त हैं। कामदेव ने यह सुनकर कहा कि आप इतनी घबराहट की बातें क्यों कहते हैं? मैं सब काम करने को वर्त्तमान हूँ। जो कोई तुम्हारे पद को लेने के लिए तप करता हो, उसको उसी समय पापी बना डालूँ। मेरे सहायक स्त्रियों के तीक्ष्ण कटाक्ष बाण हैं, जिनके बल से मैं सब संसार को जीत सकता हूँ। देवता, दैत्य, ऋषि, सब मेरे वश में हैं। मनुष्य तो सेवकों के समान मुझे पूजते हैं। ये बातें सुन इन्द्र अति प्रसन्न हुए। उन्होंने कामदेव से कहा कि बैठ जाओ। फिर अपना प्रयोजन यों बखानने लगे—हे मन्मथ! जो काम मुझे तुमसे कहना था, वह तो तुम आप ही कह रहे हो। देखो, तारक दैत्य ने तप करके शिवजी से बड़ा वर पाया है। उसने धर्म को नष्ट कर देवताओं के सब रत्न छीन लिये हैं। उस

पर सबके शस्त्र निष्फल हो गये हैं। इससे सब देवता चिन्तायुक्त और दुखी हो रहे हैं। इसलिए ब्रह्माजी ने मुझसे कहा है कि जो शिव के वीर्य से कोई पुत्र उपजे तो तारक का वध होगा। इस समय शिव हिमाचल पर्वत पर स्थित हैं। वहाँ गिरिजा उनकी सेवा कर रही हैं। जो तुम शिव को मोहित कर गिरिजा के साथ उनका संयोग करा दो तो सब मनोरथ पूरे हो जायँ, तुम्हारी कीर्ति तीनों लोकों में फैले और देवताओं को अति प्रसन्नता प्राप्त हो।

पैंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! कामदेव ने इन्द्र से यह बात सुनकर मान ली और शिव के विजय करने की सामग्री कुछ कठिन न समझ वह अपनी पत्नी सहित इन्द्र से बिदा हुआ। उसके चलने के समय कई असगुन हुए; पर होनी वश उसने उन असगुनों का कुछ विचार न किया। वसन्त आदि सब सामग्री इकट्ठी की और बड़ी धूमधाम और गर्व के साथ चला। मार्ग में इस बात को विचारता हुआ चला कि क्योंकर शिव को वश करूँ? शिव के निकट पहुँच देखा—चारों ओर वसन्तऋतु फैल गई; मोर बोलने लगे, वन में कुसुम फूल उठे, टेसू के वृक्ष प्रफुल्लित हुए और सब प्रकार के पक्षी मधुर वाणी से बोलने लगे, जिससे सब देवता भी कामवश हो गये। जिनको अहंकार था, वे भी मोहित होकर कामजाल में फँस गये। और कामी लोग तो मानों उसके चेले ही हो गये। कोई चराचर प्राणी न रहा जिसके कामदेव के बाण न लगे हों। सबका तप और संयम एकदम जाता रहा। बुद्धिमान् काँप उठे। सब देवता अपने शुद्ध मार्ग को छोड़कर काम के बाणों से दुखी हो गये। यद्यपि संसार में यह अवस्था केवल मुहूर्त भर रही और किसी के भी धैर्य और संतोष न रहा; पर शिव और उनके गणों

पर कामदेव का कुछ प्रभाव न हुआ। जब शिव के निकट कामदेव गया, तब शिव को देख अति भयभीत हुआ। तुरन्त संसार से कामदेव का बल नष्ट हो गया। जैसे पहले सब लोग थे, उसी तरह के हो गये। जैसे नशा पिये हुए आदमियों का मद उतर जाता है, उसी तरह से सब लोगों का मद उतर गया। मन्मथ अपने मन में कहने लगा कि मुझसे यह बड़ा अपराध हुआ! शिव के कोप से मेरी मृत्यु होगी। फिर विचारा कि जो मैं शिव के हाथ से मारा जाऊँगा तो उत्तम है; क्योंकि मैं भी शिव के गणों में गिना जाऊँगा। बहुत से लोग शिव के हाथ से मरकर अन्त को शिव के चरणों में पहुँच गये हैं। यह विचार फिर अपने तेज से सृष्टि भर को पहले की तरह उसने कर दिया। फिर सब लोग कामदेव के फंदे में पड़ गये। शिव ने यह दशा देखी। दृढ़तापूर्वक मन को अपने वश से जाने न दिया, परिपूर्ण योग साधा। तब कामदेव बाण चढ़ाकर शिव के बाईं ओर जा खड़ा हुआ। तब शिव के सिवा उस तपोभूमि में कोई ऐसा न था, जिसको कामदेव ने मोहित न किया हो। कामदेव घात लगाये समय की बाट देखता था। जब शिव ध्यान को छोड़कर अपने स्थान पर बैठे, तब गिरिजा सब पूजा की सामग्री लेकर शिव के पास आईं। जब गिरिजा पूजा से निवृत्त होकर अपने सुन्दर अङ्ग ढाँपने लगीं तो कामदेव ने अवसर पाकर अपना बाण कान तक तानकर मारा, जिससे कुछ प्रीति का अंकुर शिव के मन में जमा। शिव हँसकर गिरिजा के अङ्गों की प्रशंसा करने लगे और चाहा कि गिरिजा का हाथ पकड़ूँ; पर गिरिजा स्त्रियों के स्वभाव के अनुसार लज्जित होकर पीछे हट गईं। यह देख शिव मन में सब बात जान गये। गिरिजा

की प्रीति को भुलाकर विचार किया कि क्यों हम इस स्त्री से छले गये, जिसने मुझे विवश कर दिया! जब चारों ओर देखा तो कामदेव को अपनी बाईं ओर छिपा हुआ देख कुपित हुए, जिससे तीनों लोक काँप उठे। सबने जाना कि प्रलय होनेवाला है। शिव ने अपना तीसरा नेत्र खोल काम की ओर देख दिया। ज्यों ही देखा त्यों ही कामदेव भस्म हो गया। तीनों लोकों में हाहाकार मच गया। देवता अप्रसन्न और दैत्य अति प्रसन्न हुए। देवता अति भयभीत, महादुखी और दीन हो गये।

इतना चरित्र सुनकर नारद ने ब्रह्माजी से पूछा कि हे स्वामी! यह चरित्र सुनकर मुझे आश्चर्य होता है; क्योंकि शिव तो परब्रह्म, निष्पाप, तीनों लोकों के स्वामी, मायारहित, तीनों देवताओं द्वारा सेवित, योग में स्थित हैं। उनका नाम कामञ्जय और मृत्युञ्जय है। जिनकी शुभ दृष्टि से उनके भक्त कामदेव को वश किये रहते हैं, ऐसे शिव को काम ने क्यों ऐसा फँसाया? कैसे काम ने सुगमता से विजय पाई? ब्रह्माजी बोले कि इससे पहले मेरे एक कन्या उपजी थी, जिसका नाम संध्या था। फिर एक लड़का उत्पन्न हुआ, जिसको मन्मथ और काम कहते हैं। मैंने उसको वरदान दिया कि तुम तीनों लोक पर प्रबल रहोगे। मैं, विष्णु और हर भी तुम्हारे वश में रहेंगे। यह सुन उसने पहले मुझे ही बाण मारा और मुझसे कुकर्म कराना चाहा। मैंने क्रोधित होकर उसे शाप दिया कि तुम शिव के तीसरे नेत्र से जल जाओगे। इसी कारण काम ने पहले तो शिव को वश में कर लिया और फिर शिव के तीसरे नेत्र से भस्म हो गया। अब फिर पिछला चरित्र सुनो। जब काम को शिव ने जला दिया, तब कोई तो दुखी और कोई सुखी हुआ। गिरिजा अति आश्चर्य में हुईं। उनके शरीर से बहुत पसीना छूटा। वह अपनी सुन्दरता

का अहंकार छोड़ मूर्च्छित हो गईं। उनका मुखकमल प्रभात के चन्द्रमा के समान निस्तेज हो गया। गिरिजा की ऐसी अवस्था देख सब सखियों ने उनका हाथ पकड़ सँभाला। जब गिरिजा चैतन्य हुईं तो लज्जित होकर अपने घर लौटीं। उधर शिव हिमाचल पर्वत छोड़ कैलास पर्वत पर जाकर स्थित हुए। शिव के चले जाने के उपरान्त गिरिजा की यह दशा हो गई कि वह जिस तरह शिव प्रतिदिन चरित्र करते थे, उनको करके शिव का ध्यान किया करती थीं। कामदेव की स्त्री रति रोने-पीटने लगी। अपने पति के चरित्र बखान कर हाय-हाय करती थी। उसको अपने शरीर की कुछ सुध न रही। जब चैतन्य हुई तो अति खेद से रोकर अपने पति के शव से कहने लगी कि मैंने तुमको बहुत सीख दी, पर दूसरे के वश में पड़ तुमने कुछ विचार न किया। शिव जो रचते हैं, वह अमिट है। हे नाथ, तुमने मुझसे कुछ न कहा और मुझसे बिछुड़ कर शिवपुरी को चले गये। अब मैं अनाथ हूँ। तुमने जैसा किया, वैसा फल पाया। किसी को प्राण का दुःख देकर किसी ने आनन्द उठाया है। फिर सबके जीव जो शिव हैं, उनसे ऐसा करके आनन्द की क्या आशा है? तुमने जो इन्द्रलोक में अहंकार की बातें कही थीं, उन्हीं का यह फल मिला; क्योंकि अहंकारी को परलोक में आनन्द कहाँ है? तुम तो शिव के गणों में मिल गये, हमारा अब कौन है? इसी प्रकार की बातें कहकर रति ने अति विलाप किया। देवता रति को इस प्रकार रोते हुए देख अति शोकाकुल हुए और रति को बहुत तरह से समझाकर शिव के निकट गये।

छत्तीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद ! विष्णु और मैं सब देवताओं

को साथ लिये हुए शिव की शरण में गये और प्रणाम करके बहुत स्तुति की। फिर विनय की कि हे शिव! हम सब डूबते हैं, आप डूबने से बचावें। हम सब आपकी शरण में आये हैं। यह हमारी विनय सुनकर शिव प्रकट हुए। वह परमहंसों के समान सब सामग्री सजाये हुए थे, जिसको देख हम सब प्रसन्न हुए। एक बार हम सबों ने खड़े होकर अलग अलग शिव की स्तुति की। शिव ने प्रसन्न होकर कहा कि हम अति प्रसन्न हैं। जो इच्छा हो, वह माँगो। और जो स्तुति तुम सबने की, वह हमको अति प्रिय है। जो कोई इसको पढ़ेगा, हम उससे अति प्रसन्न होंगे। फिर हम सबने विनय की कि आप तो जानते ही हैं; हम क्या कहें। आपसे कौन बात छिपी है? यह सुन शिव हँस पड़े और कहा कि हमने जो काम को जलाया तो केवल ब्रह्मा का शाप था। हमारे भक्त ब्रह्मा बहुत बड़े हैं, जैसे कि विष्णु हमारे भक्त हैं। अब हमारा यह कहना है कि आज से काम शरीर-रहित होकर अतनु नाम से प्रसिद्ध होगा और शरीर विना केवल मन से उपजा करेगा। फिर समय पाकर रति को उसका स्वरूप दिखला देंगे और वह हमारे पास कैलास में रहा करेगा। जब विष्णु का कृष्ण अवतार होगा, तब कामदेव कृष्ण का पुत्र होगा और रति को मिलेगा। अब चाहिए कि उस समय के आने तक रति इन्द्र के यहाँ जाकर रहे। वह विना परिश्रम अपने पति कामदेव को पावेगी। उसको उचित है कि कुछ दुःख न माने और कहीं न जाय। जब रुक्मिणी के पुत्र उपजेगा, उसको तुरन्त इन्द्र उठा ले जायँगे और समुद्र में डाल देंगे। एक मछली उसे निगल जायगी। पर वह हमारे प्रताप से नहीं मरेगा; बरन् उसको एक केवट ले जाकर एक असुर को देगा। जब मछली का पेट फाड़ा जायगा, तब वह प्रकट होकर रति के

यहाँ गुप्त रहा करेगा। फिर उस असुर को कृष्ण का पुत्र वध करके यहाँ आवेगा। इतना कह सबके देखते शिव अन्तर्धान हो गये। देवताओं ने रति को समझा-बुझाकर इन्द्र के साथ कर दिया और अपने-अपने स्थान को सब चले गये। इतना कह ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! यह शिवचरित्र हमने कहा। अब गिरिजा की कथा सुनो।

सैंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! जब गिरिजा ने काम को जलते हुए देखा तो तुरन्त वहाँ से भागकर अति-चिन्तायुक्त विह्वल होकर उठती-बैठती अपने घर पहुँचीं। यह दशा देख माता-पिता तुरन्त गिरिजा के पास आये। नगर भर में खलभल पड़ गई। जब गिरिजा कुछ चैतन्य हुईं तो उनकी माता ने पूछा कि तुमको इस तरह किसने भयभीत कर दिया कि तुम बार-बार ऊर्ध्व श्वास लेती हो? गिरिजा ने जैसा कि देखा था, सब वृत्तान्त वर्णन किया। माता-पिता ने गिरिजा को सान्त्वना दी और बहुत प्रकार से आश्वस्त किया। पर गिरिजा को कुछ संसार का आनन्द न मिला। वह चलते, बैठते, जाग्रत् और स्वप्नावस्था में, खाने-पीने-नहाने आदि के समय में प्रतिक्षण शिव के चरित्र को न भूलती थीं। उन्हें किसी वस्तु की इच्छा नहीं रही। हे नारद! समयान्तर में तुम गिरिजा के पास गये। गिरिजा ने लज्जित होकर तुमसे कहा कि हे नारदजी! तुम कोई ऐसी युक्ति बताओ, जिससे हमको शिव मिलें। तुमने उत्तर दिया कि शिव केवल तप के अधीन हैं। जो तुम शिव को अपना पति किया चाहती हो तो वन में जाकर शिव का कठिन तप करो; क्योंकि शिव केवल तप के अधीन होकर संसार को वश करके पालते और फिर उसका नाश कर दिया करते हैं। रुद्र भी केवल तप करके प्रलय करते

हैं। शेषनाग पृथ्वी को सिर पर रक्खे रहते हैं। ऐसे तप से देवता आदि क्या-क्या नहीं प्राप्त करते ? गिरिजा बोलीं—सत्य है; अब मुझे आप अपनी शिष्या कीजिये और तप की विधि बताइये; क्योंकि गुरु बिना गति नहीं। गुरु के बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। विष्णु, ब्रह्मा और हर भी गुरु बिना नहीं हैं। हे नारद ! तब तुमने शिव का ध्यान करके गिरिजा को पञ्चाक्षर मन्त्र का उपदेश किया। तुम तो वहाँ से चलकर मेरे पास आये और गिरिजा वह उपदेश पाकर तप की दृढ़ इच्छा से अपनी सखियों समेत हिमाचल के पास गईं। सखियों ने गिरिजा की ओर से विनय की कि गिरिजा कहते हुए लजाती हैं। उनकी ओर से हमारी यह विनती है कि अब गिरिजा की इच्छा है कि शिव का तप करें। इसके लिए वह आपकी आज्ञा चाहती हैं। हिमाचल ने प्रसन्न हो इस विनय को मान लिया और आज्ञा दे दी। फिर गिरिजा ने उन्हीं सखियों समेत अपनी माता के पास पहुँचकर विनती की तो मैना अति चिन्तित हुईं। उन्होंने अँधियारी रात्रि के समान मलिन होकर गिरिजा से कहा कि अपने घर में तप करो। माता-पिता के घर को किसी स्थल, देवालय या तीर्थ से कम न समझो। पहले तुमने जाकर क्या किया ? अब फिर क्या करोगी ? व्यर्थ ही दुःख सहती हो। अपने घर को देवताओं का घर समझो और यहाँ रहकर मुझे आनन्द देती रहो। गिरिजा ने कहा—हे माता ! शिव केवल तप के वश में हैं। विना तप के क्या हो सकता है ? संसार में जिसने जो पाया है, वह केवल तप का फल है। तप से बड़ा सुख मिलता है। मैना बोलीं कि हे गिरिजे ! मेरे सौ पुत्र हैं; पर तुम मुझे सबसे प्यारी हो। मेरी आँखों से तुम दूर न हो। जो तुम कहो, वही मैं करूँगी। तुम घर छोड़कर बाहर मत जाओ। जो जो माँगोगी, वह मैं तुमको दूँगी।

गिरिजा बोलीं—हे माता! बिना जप-तप के शिव मेरे साथ विवाह न करेंगे। वह तप केवल वन में हो सकता है, न कि घर में; क्योंकि घर अहंकार, मूर्खता, दुःख, चिन्ता आदि की खानि है। जो घर बैठे तप हो सके तो मुनि और राजा लोग क्यों वन में जायँ? यह सुन माता ने फिर चिन्तित हो कहा कि वन बड़े भय का स्थान है। वहाँ सिंह और हाथी आदि फिरा करते हैं। बड़े विषैले जीव रहते हैं। उनकी हवा भी अभी तुमको नहीं लगी। तुम वन के दुःख क्योंकर उठाओगी? गिरिजा बोलीं कि संसार में श्रम के बिना कोई अच्छा मनोरथ या वस्तु प्राप्त नहीं होती। मेरा यह मत है कि घर और बाहर सब जगह शिव रक्षक हैं। ऐसे कुल या सन्तान को धिक्कार है, जिसने शिव के चरणों का ध्यान न किया। बिना शिव के मुक्ति कहाँ है। मैना ने कहा कि देखो, वह विष और मादक वस्तु भङ्ग आदि खाकर एक वृषभ पर चढ़ता है, वह नग्न शरीर और अशुभ वेष रक्खे हुए दरिद्री है। तुमको उसकी भक्ति से क्या फल प्राप्त होगा? अपनी माता से यह बात सुनकर गिरिजा ने कहा कि ब्रह्मा, विष्णु, देवता, मुनि आदि जिस आदि-पुरुष का ध्यान करते हैं, वही हमारे मन में स्थित हो गया है। वही तीनों गुणों से प्रकट होकर नाना प्रकार के चरित्र करता है। अब मुझे आज्ञा दीजिये। यह सुन मैना प्रसन्न हुई, और अति हर्षपूर्वक कहा कि बहुत अच्छा, हमारे कुल को पवित्र करो। मैंने जान-बूझकर तुम्हारे निश्चय को देखने के लिए वचन कहे थे। वास्तव में शिव का तप तेरा मनोरथ पूरा करेगा। इस प्रकार गिरिजा माता-पिता की आज्ञा पाकर शिव की बहुत स्तुति कर हर हर कहती हुई वन को चलीं। जब मैना ने गिरिजा को वन की ओर जाते हुए देखा तो महादुखी होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। इसी प्रकार सब कुल के लोगों और नगरवासियों ने खेदसंयुक्त

गिरिजा को फिर भी वन में जाने से बर्जा और वन के दुःख हर प्रकार के वर्णन करके यही सम्मति दी कि घर में तप करना उचित है। पर जिस तरह से चकवे के जोड़े को रात भर की उजियाली अच्छी नहीं लगती, उसी प्रकार गिरिजा को ये बातें समझाने की न भाईं। उन्होंने कहा कि तुम लोग कुछ चिन्ता न करो। हम शीघ्र ही शिव का वरदान पावेंगी। हमको वन का रहना शुभ होगा। इसी प्रकार सबसे मधुरवाणी के साथ वार्ता कर ब्राह्मणों को प्रणाम किया और अपने लौट आने तक उनके कालक्षेप को सब कुछ दिया। सब प्रकार के मंगनों और भिक्षुकों को इसलिए पूर्ण कर दिया कि इससे शिव तृप्त होते हैं। इसी प्रकार अपनी सब सखियों को देखती और नाना प्रकार समझाती हुई अपने माता-पिता को प्रणाम कर अच्छे मुहूर्त में चल दीं। सब लोगों ने आशिष दिये। देवताओं ने जय-जय शब्द कर फूलों की वर्षा की और दुन्दुभी बजाये। चलने के समय गिरिजा के बायें अङ्ग भुजा और नेत्र फड़क उठे, जिससे विदित हुआ कि उनको शिव अवश्य मिलेंगे। यद्यपि उस समय नगर-निवासी अतिचिन्तित थे, पर अशुभ समझ कोई रोता न था। गिरिजा के चले जाने के उपरान्त उनके माता-पिता और भाई सब लोगों समेत मूर्च्छित हो गये। हिमाचल के नगर का सारा चमत्कार उड़ गया। नगर मानों कालरात्रि हो गया। उस नगर के निवासी कालस्वरूप भासने लगे। वे अपने को देख आप ही भय खाते थे। घर श्मशान के समान विदित होते थे। मित्र यमदूतवत् प्रकट होते थे। नाना प्रकार के उद्यान पुष्पवाटिका सींचने पर भी चिताभूमि सदृश सूख गये। सब जीवों का तेज जाता रहा। नदी-नाले अच्छे मालूम न होते थे। सब मनुष्य गिरिजा के दुःख और वियोग से चित्रवत् आश्चर्य में रहा करते

थे। वे अहर्निश गिरिजा की बालक्रीड़ाओं को स्मरण करते थे। हे नारद! तुम इस बात को अच्छी तरह से समझो कि शक्ति बिना संसार में कुछ भी आनन्द नहीं है। शक्ति ही के प्रकट होने से लोक में बल प्रकट होता है। वह अपने चरित्रों से सब प्रकार के दुःखों को दूर करती है। जैसे कि इन्द्रियाँ जीव बिना, निशा चन्द्रमा बिना, मीन जल बिना प्रसन्न नहीं रहती, उसी तरह गिरिजा बिना वह नगर सूना हो गया। यह दशा देखकर वेदज्ञ मुनि उस नगर में पहुँचे, जिनकी पूजा वहाँ के सब नगर-वासियों ने की। मुनि बोले कि हे हिमाचल! किस शोक में हो? पर हिमाचल दुःख और चिन्ता की अधिकता से बोल न सके। फिर धैर्य धर कहा कि हमारी पुत्री शिव के तप के लिए वन में गई है। मैना ने भी बहुत रो-रोकर कहा कि जिस गिरिजा के कभी उष्ण पवन भी न लगी थी, वह वन में गई है। जो करोड़ों प्रकार के भोजन खाती थी, वह वन में क्या खाती होगी? जिसके सोते हुए उसकी सखियाँ स्तुति किया करती थीं, उसके लिए सन्देह है कि कहीं वन में उसको कोई सिंह आदि न खा डाले। अब हमारा जीना कठिन है। यह सुन मुनि ने माया को बार-बार धन्य कहा। फिर कहा कि हे शिव! जब जैसा तुम चाहते हो, वैसा ही करते हो। तुम्हारी माया सबको भुलाये रहती है। किसी को दुखी और किसी को सुखी करती है। फिर हिमाचल और मैना से कहा कि तुम कुछ खेद मत करो। तुम्हारी कन्या अनादि है। ब्रह्मा और विष्णु आदि देवता उसकी सेवा करते हैं। तुम उसको नहीं जानते। वह अपने तप से हम सबको आनन्द देगी। तुम्हारी बड़ी कीर्ति होगी। इसलिए उचित है कि कुछ दुःख न करो और शिव के ध्यान में मग्न बने रहो। यह कह मुनि ने गिरिजा को नमस्कार किया और बिदा हुए। हिमाचल,

मैना और सब नगरवासी प्रसन्न हुए और शिव का ध्यान करते रहे।

अड़तीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! हिमाचल और मैना का दुःख दूर हो गया और शिव की प्रीति अधिक हुई। गिरिजा ने मुनीश्वरों के समान अपने को बनाया और वन में जाकर शिव के सिवा सबको भुला दिया। फिर तप के लिए शृङ्गतीर्थ को गईं, जो उस समय से गौरीशिखर के नाम से प्रसिद्ध है। सब लोग उस स्थान को प्रणाम करते हैं। वह पर्वत उत्तम तपोभूमि है। वहाँ नाना प्रकार के वृक्ष और फल और सिद्धपीठ हैं। गिरिजा ने एक तप का स्थान नियत किया। वहाँ बैठ अपना कार्य करने लगीं। चौंसठ वर्ष तक सिर नीचे किये एक ही आसन से बैठी रहीं। उष्णकाल में अग्नि ताप कर, वर्षा में खुले मैदान में रहकर और शीतकाल में जल के बीच बैठ महाउग्र तप किया। जब ऐसे उग्र तप से भी फल न पाया, तब उससे भी महाकठिन तप में मन लगाया। अर्थात् सहस्र वर्ष पर्यन्त वृक्षों के मूल और पत्र खाकर रहीं। फिर एक वर्ष तक केवल हरी घास और साग आदि खाया। फिर थोड़े समय तक पवन भक्षण ही किया। कुछ समय तक जल मात्र पीकर कालक्षेप किया। जब ऐसे तप से भी सिद्धि न हुई तो उससे भी कठिन तप किया। पर ऐसे-ऐसे कठिन तपों के करने से भी उनका मनोरथ पूरा न हुआ। तब हिमाचल के घर को लौट गईं और अर्घा समेत तीन कोटि पार्थिव बनाकर उनकी पूजा की। हर रङ्ग के नाना प्रकार के पुष्प गिनकर शिव पर चढ़ाये। रात-दिन शिव के गुण-कथन, गुण-श्रवण, पूजा और ध्यान के सिवा और किसी बात से प्रयोजन न रक्खा। इतनी शिव की प्रीति में मोहित हुईं कि प्राणायाम करके अपने को आप में

लय कर दिया और ब्रह्मरूप में स्थित रहीं। ऐसे कठिन तप करने में नाना प्रकार की कठिनता सामने आई। भूतों की सेना ने गिरिजा को चारों ओर से घेर लिया, जिनके अति भयानक शब्द थे। उनमें कई तो सिंह, कई हस्ती, कई भैंसा और बैल, चमगादर आदि का मुख बनाये हुए गिरिजा को डराने लगे। कइयों के एक ही आँख थी। कई अन्धे, काने और हज़ारों नेत्र लगाये थे। कई हाथों बिना और कइयों के बहुत से कर, कई मुखरहित और कई असंख्य मुखसहित, कइयों के बहुत चरण और कई बिना पाँव के थे। उनके शरीर का वर्ण श्याम, रक्त, पीत, श्वेत आदि भिन्न-भिन्न विचित्र प्रकार का था। कोई नाचता, कोई दौड़ता, कोई उछलता, कोई गाता था। वे नाना प्रकार के भयदायक रूपों से आपस में लड़ते-झगड़ते मरते-मारते हुए दिखाई दिये। कोई-कोई जम्हाकर अपनी दाढ़ें दिखाता। कोई गिरिजा के निकट आकर अपने को बहुत लम्बा बनाता। कोई मार-मार शब्द करता हुआ गिरिजा पर चढ़ाई करता। कोई गिरिजा की माता का स्वरूप रच रो-रो कहता था कि तुम्हारे पिता ने तुम्हारे वियोग में खाना-पीना छोड़ मर जाने की इच्छा की है। इसलिए घर चलो। यद्यपि भूत-प्रेतों ने इस प्रकार के बहुत से चरित्र और छल किये, पर गिरिजा का ध्यान शिव में दूना लगा। गिरिजा के तेज से सब भूत आदि भाग गये। कोई जल गया। कोई पृथ्वी पर गिर पड़ा। कोई डूब गया। गिरिजा के तप के स्थल की यह दशा हुई कि कैलास पर्वत के समान हो गया। वहाँ के वासियों ने अपने आप ऐसा ज्ञान पाया कि संसार की माया छोड़ ब्रह्मज्ञान में दृढ़ हो गये। सिंहों की यह दशा हुई कि बालकों के समान गायों के आगे खेला करते। बिल्ली चूहों को प्यार

करके लाड़ करती। मोर साँपों की पीठ खुजलाते और वे भी मोरों के शरीर से लिपट जाते थे। घोड़ा और भैंसा मिलकर परस्पर प्रीति प्रकट करते। यहाँ तक कि जिसको कुछ भी किसी प्रकार का दुःख होता, वह उस जगह पर जाकर रहता। उस स्थान पर वैर का नाम भी न था। तालाब, नदी और नाले अति उत्तमता से बहते। वृक्षों में फूल और फल खिले हुए थे। निदान वहाँ किसी वस्तु की कमी न थी। तोता, मैना आदि पक्षी मधुर शब्द से प्रीतिपूर्वक बोलते थे। निदान उसी स्थान पर सब ऋद्धि-सिद्धि इकट्ठी हुईं। गिरिजा का ऐसा तप प्रसिद्ध हुआ। मैं, विष्णु, इन्द्र और सब देवता आदि वहाँ पर पहुँचे और देखा कि गिरिजा सिद्धि-रूपा हो बैठी हैं। सबने प्रणाम किया। इन्द्र ने देवतों से कहा कि गिरिजा का तप सबसे श्रेष्ठ है। इस प्रकार का तप किसी ने नहीं किया। गिरिजा को धन्य है। इनके माता-पिता और नगर को भी धन्य है। हमको भी धन्य है कि हमने गिरिजा के तप को देखा। फिर सब लोग शिव के निकट गये। पहिले कैलास पर्वत को देखा, जिसमें अति उत्तम सुन्दर वन है। वहाँ छहों ऋतुएँ साक्षात् वर्त्तमान हैं। गङ्गाजी की धारा बहती है। वायु मन्द-मन्द सुगन्धित चलती है। वहाँ किसी को भी दुःख न था। कहीं मुनि लोग ध्यान करते थे। कहीं सिद्ध तप में लगे थे। कहीं किन्नर गाना गाते थे। ऐसा आनन्द कैलास में देखते हुए शिव के निकट पहुँचे और शिवजी को योग में स्थित शरीर धारण किये दर्शन किया। शिव का स्वरूप देख प्रेम इतना उमड़ा कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। चन्द्रमा भाल पर विराजमान, शीश पर गङ्गाजी की धारा बह रही, माथे पर त्रिपुण्ड्र लगाये, साँपों को कानों में पहने, नेत्र

लाल-लाल, जिनके देखने से संसार भर के दुःख नाश को प्राप्त हों, इस प्रकार शिव का सुन्दर स्वरूप देख मैंने उनकी स्तुति की।

उन्तालीसवाँ अध्याय

देवगण बोले कि हे शिव! तुम्हारी बड़ाई और अमित तेज को कहकर हम पार नहीं पा सकते। उसको नारद भी कहकर आश्चर्य में हो जाते हैं। तुमने कृपा करके शबरी को मुक्त कर दिया और सुमना को भी मोक्ष दिया, जो महाव्यभिचारिणी थी। तुम्हारी सेवा करके बहुत से पापी तुम्हारे लोक में आ गये हैं, जिनको कोई दुःख नहीं है। जब तक कोई तुम्हारी आराधना में दृढ़ नहीं होता, तब तक उसको संसारसागर से मुक्ति नहीं प्राप्त होती। तुम्हीं परब्रह्म परमेश्वर सबके ईश्वर हो। उत्पन्न करना, पालना, मारना, सब तुम्हारे वश में है। तुम्हीं हमारे स्वामी हो। तुम्हीं जड़ और चैतन्य की बात जानते हो। संसार में तुमसे भिन्न कोई पदार्थ नहीं है। यह जगत् एक वृक्ष के समान है, जिसका एक अंकुर, दो फल, तीन मूल और चार रस हैं। तुम्हीं आकाश और पृथ्वी हो, दूर और निकट हो। मनुष्य तुमको माया के कारण नहीं जान पाते। जो तुम्हारे भक्त हैं, वे तो सबको शिवमय जानते हैं। तुमसे भिन्न किसी वस्तु को नहीं मानते। तुम निर्गुण हो, पर कृपा करके सगुण भी बन जाते हो और भक्तों के दुःख दूर करने को अवतार लेते हो। कोई-कोई तुम्हारे चरणों की नाव के सहारे संसारसागर के पार लग गये हैं। जो अहंकार से हीन बुद्धिमान् हैं, वे धीरे-धीरे तुम तक पहुँच जाते हैं। तुम्हारी भक्ति के बिना आवागमन बना रहता है। पर तुम्हारे भक्तों को यह दुःख नहीं है। वे निर्भय रहा करते हैं और तुम्हारे चरणों की सेवा करके

परमपद प्राप्त करते हैं। तुम उत्पत्ति के समय ब्रह्मा, पालने के समय विष्णु और प्रलय के समय हर हो जाते हो। ये तीनों तुम्हीं अकेले हो। तुम वेद, कर्म, तप, जप और योग-ध्यान से मिलते हो। जो तुम सगुण रूप धारण न करते तो हमको सुगम रीति से क्योंकर मुक्ति प्राप्त होती। हम तुम्हारे नाम और गुण वर्णन करने में असमर्थ हैं। हममें न आप ऐसी बुद्धि है। तुम्हारी महिमा अपरम्पार है। तुम हमारे कार्य पूरे करो। तुम देवों के देव, सब सृष्टि के इन्द्र, भक्तों को शुभ मार्ग में स्थित करनेवाले, सब सृष्टि के कारणरूप अविनाशी, अनादि, अप्रमेय हो। तुम्हारा शरीर केवल विद्या और बुद्धि से पूर्ण है। ऐसा तुम्हारा शुभ शरीर भक्तों के मन में बसा रहता है। भक्त लोग कुसंगति और काम को छोड़कर तुम्हारी आराधना में प्रसन्न रहा करते हैं। तुम पूर्ण-ब्रह्म, काल के भी काल, हर्ष की खान, दुखरहित और संसार पर अति कृपालु हो। तुम इच्छारहित, अद्वितीय, निरीह और परब्रह्म हो। यद्यपि तुम तीनों गुणों से परे हो, तो भी संसार की भलाई के लिए अवतार लेते हो। तुमने सबसे पहले शरीर धारण किया था। सो यह शरीर और तुम्हारा अवतार केवल हमारे मनोरथ पूर्ण करने को है। इस तुम्हारे अवतार की महिमा असंख्य और अप्रमेय है। हम लोगों का मन, जो केवल प्रसन्नता के विचार में लगा रहता है, वह तुमको क्या जान सकता है? तुम्हारे जानने की बुद्धि संसार को नहीं है। जो लोग तुम्हारे गुण मन लगाकर सुनते हैं, वे ही तुमको जीत लेते हैं, और कोई तुमको नहीं पाता। बहुत लोग धर्ममार्ग छोड़ केवल तुमसे प्रीति रखते हैं और अपनी भक्ति तुम पर दृढ़ कर अति सुगमता से तुम्हें पाते हैं। संसार में तुम्हारे भक्त सदा तुम्हारी कथा सुनते हैं। वे सबसे अधिक तुमको प्रिय हैं। तुम उन्हीं के सामने प्रकट होते हो।

तुम देवता, मनुष्य, मुनि, पशु और पक्षी आदि समस्त जीवों में अवतार लेकर अपने भक्तों के कार्य बनाते हो। यह स्तुति कह मैं, विष्णु और सब देवता चुप हो गये और शिव प्रसन्न होकर बोले कि हे विष्णु, ब्रह्माजी और सब देवता! यह तुम्हारी सेना क्यों आई है? तुम बहुत चिन्तित प्रतीत होते हो। सब वृत्तान्त वर्णन करो। विष्णु और मैंने विनय की कि हमारे धन्य भाग्य हैं जो आपकी कृपादृष्टि हम पर हुई। संसार में वे लोग पुण्यात्मा हैं, जिन पर आपकी अनुग्रह की दृष्टि है। हे शिव! आपकी महिमा विचित्र है। आप हर शरीर में वर्त्तमान हैं। आप कानों बिना सुनते हैं, बिना वाणी वेद प्रकट करते हैं, बिना त्वचा स्पर्श का अनुभव करते हैं, जिह्वा बिना स्वाद जानते हैं, पाँव बिना तीनों लोकों की यात्रा करते हैं। आपमें असंख्य कला हैं। आप अपने भक्तों को दुखी देखकर उन्हें बहुत आनन्द देते हैं। यह कह मैं और विष्णु, दोनों चुप हो गये।

चालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारदजी! इतनी विनती और स्तुति सुन शिवजी ने कहा कि जिस मनोरथ के लिए तुम सब हमारे पास आये हो, उसे कहो। हे ब्रह्माजी और विष्णु! तुम देवताओं के स्वामी हो। विष्णु और मैंने विनय की कि तुम सब जानते हो। तुम तो बैठे-बैठे तीनों लोकों को देखते हो। तुम्हारी माया संसारभर को वश किये हुए है। सो तुम हमसे अनजान सदृश क्या पूछते हो? पर आपने आज्ञा दी है तो हम विनय करते हैं कि नारद से उपदेश पाकर गिरिजा महाकठिन तप कर रही हैं। ऐसे परिश्रम से कठिन तप आज तक किसी ने नहीं किया। इसलिए आपको उचित है कि वहाँ चलकर गिरिजा को वरदान दीजिये; क्योंकि देवताओं की बड़ी इच्छा है कि आपका विवाह

गिरिजा के साथ देखें और आपकी बरात में चलें। शिव ने हँसकर कहा कि मूर्ख लोग विवाह करके संसारजाल में फँसते हैं। यह काम बुद्धिमानों का नहीं। यद्यपि वेद ने इस विषय में बहुत सी बातें वर्णन की हैं, पर बुरी स्त्रियों की संगति के समान और कोई बुरा कर्म नहीं। पर जो हम तुम्हारा कहना नहीं मानते तो वेद और धर्मशास्त्र की प्रतिष्ठा कम होती है। हम तप के वश में होकर तुम्हारा कहा मानते हैं, चाहे हमको बहुत दुःख मिले। जब राजा कामरूप ने इच्छा की, तब हमने दैत्य को मारकर आनन्द दिया और गौतम के सब दुःख दूर किये। फिर कृपा करके हलाहल विष पी लिया ; क्योंकि सब देवता जले जाते थे। रामचन्द्र के लिए हनुमान् का अवतार लेकर उनके सेवक बनकर नाना प्रकार के दुःख सहे। जहाँ-जहाँ हमारे भक्तों पर कोई कष्ट पड़ा, हमने तुरन्त उनको आनन्द दिया है। हमने ग्रहपति नाम अवतार लेकर विश्वामित्र मुनि के दुःख को दूर किया। इसी तरह तुम्हारे लिए भी हम तत्पर हैं। जो तुम्हारी इच्छा है, वह हम करेंगे। हम गिरिजा के साथ विवाह करेंगे। तुम सब विदा होकर अपने-अपने लोक को जाओ। यह सुन हम सब बहुत प्रसन्न हुए और शिव से विदा होकर और उनके गुण कहते-सुनते-गाते हुए घरों को आये। शिव ने हम सबको बिदा कर सप्तऋषियों का स्मरण किया। वे आये और स्तुति कर नीचे सिर करके खड़े हुए और कहा कि जो आज्ञा हो, वह हम पालन करें। शिवजी बोले कि गिरिजा बड़ा कठिन तप कर रही हैं। तुम वहाँ जाकर गिरिजा को छलो और उनके प्रेम की परीक्षा करो। वे उसी समय गिरिजा के पास गये और देखा कि गिरिजा तपरूप बनकर बैठी हैं। उन्होंने अतिचतुरता और वाचालतापूर्वक कहा कि तुम क्यों ऐसा तप करती हो ? तुम किसका किस काम

के लिए ध्यान करती हो ? सत्य-सत्य हमसे कहना, क्योंकि सारा संसार सत्यता पर स्थित है। पार्वती ने उत्तर दिया कि यद्यपि मुझे अपने मनोरथ के कहने में लज्जा आती है और निश्चय ही तुम उसे सुनकर हँसोगे, पर मैं कहती हूँ मन लगाकर सुनो। मैं देवता और मुनियों के वचनों को सत्य जान इसलिए यह तप करती हूँ कि शिव के साथ मेरा विवाह हो। यह वही बात है, जैसे किसी को पङ्खों बिना अन्तरिक्ष में उड़ने की इच्छा हो। यह बात सुन मुनि बोले कि तुम नारद के चरित्र नहीं जानती हो। उनकी बातों से तो नगर-गाँव उड़ जाते हैं। अब हम एक इतिहास कहते हैं। उसको ध्यान धरकर सुनना। ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष ने विवाह कर दस सहस्र पुत्र उपजाये। वे विष्णु की उपासना करने लगे। किन्तु नारद ने तुरन्त पहुँचकर उनको उपदेश किया तो वे दक्ष के पुत्र फिर घर नहीं लौटे। दक्ष ने यह सुनकर और उतने ही पुत्र उपजाये। वे भी नारद का उपदेश पाकर जहाँ उनके भाई पहले जा चुके थे, वहीं चले गये। इसके सिवा नारद ने चित्रकेतु का घर तो नष्ट ही कर दिया। हिरण्यकशिपु का भी घर बिगाड़ दिया। नारद ने जिनको अपने मत का उपदेश किया, वे सब द्वार-द्वार भीख माँगते हैं। हम नारद को अच्छी तरह जानते हैं। उनका मन तो मलिन है, परन्तु प्रकट में श्वेतवस्त्र पहने रहते हैं। वह और हम बहुत दिनों एक साथ रहे हैं, इससे उनके बहुत दोष हम जानते हैं। क्योंकि सहवासियों को सहवासी का हाल अच्छी तरह मालूम हो सकता है। सो तुम भी नारद के कहने पर भूल गई हो। इसके सिवा जिन शिव के लिए तुम यह तप करती हो, वह शिव सदा उदास रहा करते हैं। वे निर्गुण, अशुभरूप, निर्लज्ज और बुरे वस्त्र पहननेवाले हैं। उनके कुल, परिवार और नौकर-चाकर कुछ नहीं। उसी ठग ने

तुमको इतना मोहित किया है कि तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो गई है। ऐसा पति पाकर तुमको क्या सुख मिलेगा? इस बात को भली भाँति अपने मन में विचारो। पहले शिव ने दक्ष की पुत्री के साथ विवाह करके कुछ दिन भी निर्वाह न किया और दोष लगाकर उसको छोड़ दिया। आप अपने ध्यान में लगे रहकर निश्चिन्त रहने लगे। जो केवल एकान्त में रहता है, उसके यहाँ स्त्री का कैसे निर्वाह होगा? इसलिए अब भी कुछ नहीं गया, अपना हठ छोड़ घर चली जाओ। हाँ, विष्णु तुम्हारे विवाह व योग्य हैं, जो स्वर्ग के सब देवताओं के स्वामी हैं। उनको लाकर तुमसे मिला देंगे। पार्वती ने उत्तर दिया कि शायद यह सब सत्य हो, पर हमारे हठ में कुछ कमी न होगी। हम अपना वही राग गावेंगी, जो आज तक गाती चली आई हैं; क्योंकि हम पहाड़ से उपजी हैं, इससे हम में जड़ता विशेष है। हम नारद के वचन का त्याग न करेंगी। हे मुनिश्रेष्ठ! जो अपने गुरु के वचन को सत्य मानते हैं, वे सदा प्रसन्न रहकर आवागमन से छुट्टी पाते हैं। जो अपने गुरु के वचन को झूठ समझते हैं, उनको ईश्वर नहीं मिलता, चाहे वे कल्पभर भटकते फिरें। हमने इस बात को माना कि विष्णु में सब गुण हैं, और शिव में सब अवगुण भरे हुए हैं, पर वे निर्गुण हैं और उन्होंने केवल अपने भक्तों के लिए शरीर धारण किया है। उनको अपनी शक्ति और ऐश्वर्य दिखाना स्वीकार नहीं। वह परमहंस गति में हैं और अपने को लोक में अवधूतों के समान दिखाते हैं। वस्त्र और आभूषण पहनना मनुष्यों का काम है। वे तो तीनों गुणों से रहित और बड़े हैं। धर्म और कुल की सब बातें माया के कारण प्रकट होती हैं, सो इनको तो शिव स्वीकार नहीं करते; क्योंकि वह ऐसे ही हैं। हमने शिव को अपने गुरु की कृपा से अच्छी तरह पहचाना है। हम

निश्चय करके इस बात को कहती हैं कि जो शिव हमसे विवाह न करेंगे तो हम जन्म भर क्वाँरी रहेंगी। चाहे सूर्य पूर्व से पश्चिम में उदय हों और सुमेरु पर्वत अपने स्थान से दूसरे स्थान पर चला जाय, चन्द्रमा में उष्णता उपजे, अग्नि शीतल हो जाय, पर मैं अपना हठ न छोड़ूँगी। हमारे झगड़े में तुमको न पड़ना चाहिए। यह कह गिरिजा ने सप्तऋषि को प्रणाम किया और चुप हो गईं। वह पहले ही की तरह शिव के ध्यान में मग्न हो गईं। ऐसा निश्चय गिरिजा का देखकर सप्तऋषि जय-जय कह उठे और मन में अशीषें देने लगे। कहा कि तुमको शिव अवश्य मिलेंगे। फिर धन्य-धन्य कहकर प्रणाम किया और शिवलोक को चले गये। शिव के पास पहुँचकर उन्होंने कहा कि हमने गिरिजा की अच्छी तरह पर परीक्षा की और अपनी बुद्धि और वाग्जाल से बहुत छला, पर उन्होंने कुछ भी धोखा न खाया। इसलिए हे शिव! आपको उचित है कि वहाँ चलकर कृपा करके पार्वती को वरदान दीजिये। यह कह सप्तऋषि चले गये।

इकतालीसवाँ अध्याय

इतना सुन नारद ने ब्रह्माजी से पूछा कि जब सप्तऋषि बिदा होकर अपने घर चले गये तो फिर शिवजी ने क्या किया? हमको सुना दीजिये। ब्रह्माजी बोले कि सप्तऋषि के चले जाने के उपरान्त शिवजी ने ब्राह्मण का रूप धारण किया और ब्रह्मचारियों के समान दण्ड लेकर, माथे में त्रिपुण्ड्र लगाया, रुद्राक्ष की माला गले और हाथ में पहनी और जहाँ पार्वती तप करती थीं, वहाँ ऐसा स्वरूप बनाकर गये। गिरिजा ने प्रणाम कर कुशल पूछी और कहा कि तुम कौन हो? कहाँ आये हो? यह सुन ब्राह्मण ने ठंढी साँस लेकर कहा कि हम ब्रह्मचारियों का व्रत धारण किये हुए सृष्टि के उपकार के निमित्त इधर-उधर भ्रमण

करते हैं। तुमने हमको धर्मनिष्ठ जानकर प्रतिष्ठा और आदर किया। इससे हमको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ है। अब हम तुम से पूछते हैं, तुम ठीक-ठीक हमसे कहो कि तुम कौन हो? किसकी कन्या हो और यहाँ क्यों आई हो? श्रीजगदम्बा ने विचारपूर्वक एक अपनी सखी से सैन की। उसने आदि से अन्त-तक सब वृत्तान्त, जिस प्रकार नारदजी ने आकर भविष्यवाणी की थी कि गिरिजा का विवाह शिव से होगा, कह सुनाया। तब तो ब्राह्मण ने पछताते हुए कहा कि हे गिरिजे! हमसे यह क्या हँसी करती हो? तुम क्यों आप हमको उत्तर नहीं देतीं? गिरिजा बोलीं कि जो कुछ मेरी सखी ने आपसे कहा है, वह सब ठीक है। मैं यह चाहती हूँ कि मेरा विवाह शिव के साथ हो। यद्यपि मेरा यह मनोरथ अतिकठिन और दुर्लभ है, पर मुझको निश्चय है कि शिवजी मेरा मनोरथ पूरा करेंगे। मुझे नारदजी के वचन पर पूरा विश्वास है। तब ब्राह्मण ने वाग्जाल फैलाते हुए कहा कि हे गिरिजे! जो चाहो वह करो, हमको क्या प्रयोजन है? पर तुमने आदर से मेरा सम्मान किया, इसलिए बिना कहे मुझसे नहीं रहा जाता। इसके सिवा जान-बूझकर कोई ठीक बात छिपाना बड़ा पाप है। हे गिरिजे! तुम हिमाचल की कन्या होकर इतनी मूर्ख हो गई हो! अपने ऐसे शरीर को, जो तप रहा है, क्यों राख किये डालती हो? अपनी सुन्दरता को क्यों मिटाती हो? तुम राजा की कन्या होकर दासी बना चाहती हो। पर भाग्य बड़ा प्रबल है। तुम विष्णु और ब्रह्मा को छोड़कर शिव के लिए तप करती हो, यह भाग्य की बात है। क्या तुम्हारे लिए शिव-जैसा अशुभ और अनुचित पति चाहिए। शिव क्या विष्णु और इन्द्र की बराबरी कर सकते हैं? शिव की चालढाल संसार से न्यारी है। देखो, विष्णु आदि सब गुणवान्, कुलवान् और

प्रतिष्ठित हैं। शिव में इनमें से कोई बात नहीं। उनके माता-पिता भी तो नहीं हैं। हाँ, साँप और भस्म शरीर से लिपटे रहते हैं। वे तीनों लोकों से न्यारे हैं, और उनका कोई बन्धु-बान्धव भी नहीं हैं। वे बैल पर सवार हो नाना प्रकार के विष और भंग खाते हैं। सिंगी और डमरू हाथ में लिये हुए भूतों के साथ लीला करते हैं। वे अकेले वन में उदास बैठे रहते हैं। उन्होंने कामदेव को जला दिया, जो स्त्रियों को प्रिय है। जो अच्छे गुण हैं, वे उनमें एक भी नहीं। नारद ने भी उनके अवगुण न जानकर तुमको ऐसा छला है। इसके सिवा नारद का तो यह स्वभाव है कि सारी सृष्टि में इसी प्रकार के उत्पात करते फिरते हैं। देखो, उन्होंने दक्षप्रजापति के सब लड़के नष्ट कर डाले और हिरण्यकशिपु के लड़के को कितना छला! फिर चित्रकेतु का तो राज्य ही छुड़ा दिया। वह ऊपर से तो बड़ा स्वच्छ और सच्चा रहता है, पर मन उसका महामलिन है। प्रकट में साधु बनकर सबको दुःख दिया करता है। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। तुम सावधान होकर समझ से काम लो और अपना काम करो। सोने की जड़ाऊ अँगूठी छोड़कर काँच को क्यों ग्रहण करती हो? हाथी को छोड़कर भैंसे की सवारी की क्यों इच्छा करती हो? चन्दन छोड़ नीम क्यों चाहती हो? गङ्गाजल छोड़ कूप के जल की क्यों अभिलाषा करती हो? सूर्य को छोड़ जुगुनू की क्यों लालसा रखती हो? घर छोड़ वन क्यों चाहती हो?

ऐसी बातें कहकर शिव गिरिजा के स्वरूप की प्रशंसा करने लगे। बोले—देखो तुम्हारे मुखकमल पर असंख्य चन्द्रमाओं की कान्ति छा रही है। तुम्हारा मुखचन्द्र कैसा सुन्दर है! मानों सुन्दरता की खान है। तुम्हारे नेत्रों की प्रशंसा नहीं हो सकती। तुम्हारे ओठ कैसे उत्तम कुँदुरू के फल से लाल हैं, जिनसे मानों

मधु टपकता है। इसी प्रकार अलग-अलग हरएक अङ्ग की प्रशंसा की, और कहा कि ऐसे सुन्दर शरीर को क्यों नष्ट करती हो? तुम्हारे ब्याह के योग्य केवल विष्णु हैं। उनसे विवाह करो। कहाँ तो मृदङ्ग का शब्द और कहाँ सिंगी और डमरू का अप्रिय नाद! हम तुमसे कहते हैं कि यह बात बहुत ही अनुचित है। तुम अब भी चेत करो। इस प्रकार छल की बातें कहकर ब्राह्मण तो खेद-युक्त और रूखे हो अलग बैठ गये और गिरिजा ने शिवनिन्दा सुन मन में कुपित हो बार-बार मन में खेद किया। बोलीं कि ब्राह्मण जान मैंने यह धोखा खाया। जो मैं पहले से इस ब्राह्मण को इतना दुष्ट और शिव के विरुद्ध जानती तो चुप ही रहती। इसने वेद के विरुद्ध शिव की इतनी निन्दा की, जो इसको अब मैं उत्तर नहीं देती हूँ तो शिव की निन्दा सुनने का पाप मुझको होगा। यह विचार गिरिजा ने उत्तर दिया कि हे ब्राह्मण! तू हमको क्या धोखा देता है। तूने तो वेद के विरुद्ध शिव की अतिनिन्दा की है। तुझे ऐसा उचित न था। तू ब्राह्मण है, इसलिए वध का दण्ड तुझे नहीं दिया जा सकता। अब मैं वेद, पुराण, श्रुति, स्मृति के वचनों के अनुकूल वर्णन करती हूँ, सुन। तूने शिव को नहीं जाना, इसी से तेरा वचन वेद के विरुद्ध है। कदाचित् तू शिव को जानता तो तेरा वचन विपरीत न होता। शिव की सब अशुभ सामग्री शुभ ही है। कोई देवता शिव से श्रेष्ठ नहीं है। वे माया से परे भगवान् हैं। शिव का कोई कुल परिवार नहीं है। वे भक्ति के वश में होकर यह वेष धारण करते हैं। वे सब विद्याओं के ज्ञाता, पूर्ण ब्रह्म, अलख, जगदीश हैं। उन्होंने अपने श्वासमार्ग से ब्रह्मा को वेद दिये। वही शिव सबका आदि, मध्य और अन्त हैं। उनका तेज और प्रताप किसी ने नहीं जाना। जिससे प्रकृति ने उत्तम रूप पाया, उसको क्या शक्ति की प्रीति से प्रयोजन नहीं है? शिव

स्वाधीन हैं और उनका मार्ग तीनों लोकों से न्यारा है। वही अपने भक्तों को तीनों लोक देते हैं। उनकी सेवा से मनुष्य मृत्यु को जीतते हैं। ऐसे शिव की निन्दा करने से मनुष्य बड़ा दुःख पाते हैं। जो संसार में शिव की निन्दा करनेवाले हैं, उनको स्वप्न में भी आनन्द नहीं मिलता। जो दुष्ट और अनाचारी ब्राह्मण शिव के विरुद्ध हैं, वे करोड़ों जन्म तक दरिद्र रहा करते हैं। तुमने शिव की निन्दा करके अपने लिए नरक का मार्ग खोला है। तुम्हारे आदर करने से मुझे कुछ फल न मिला, वरन् मेरे सब पुण्य क्षीण हो गये। अब तुम शीघ्र अपने घर सिधारो; क्योंकि मेरा मन अब शिव में लग रहा है। यह सुन ब्राह्मण हँसा और मन में गिरिजा की बड़ी प्रशंसा करके चाहा कि और कुछ कहें। गिरिजा ने ब्राह्मण की इच्छा समझ अपनी एक सहेली से कहा कि अब इस जगह को छोड़ और कहीं चलें; क्योंकि यहाँ रहने से बड़ा दुःख होता है। यह ब्राह्मण शिवनिन्दा करके हमको बड़ा दुःख देता है। शिव की निन्दा करनेवाले को आँख से न देखना चाहिए। उसकी ऊटपटाँग बातें सुनने से महापाप होता है। और पाप नरक भोग से नष्ट हो जाते हैं, पर शिवनिन्दा का पाप कभी नहीं नष्ट होता। इस ब्राह्मण को देखकर मैं और अधिक अपवित्र होऊँगी और मेरे सब पुण्य नष्ट हो जायँगे। जो शिव-निन्दा करने-वाले को आँख से देख ले तो तुरन्त स्नान कर डाले, और जो अपना वश चले तो उसकी जिह्वा को काट डाले, नहीं तो दोनों कान बंदकर वहाँ से उठ जाना चाहिए। यही वेद कहते हैं। अब विलम्ब न करो। उठो किसी और वन में चलकर रहें। मुझे एक क्षण भी वर्ष समान बीतता है। मैं शिवनिन्दा नहीं सह सकती। वहाँ जाकर तप करूँगी। यदि मेरा दृढ़ निश्चय है तो शिव अवश्य प्रसन्न होंगे। किसी के धोखा देने से क्या होता है? शिव तो

केवल प्रेम से प्रसन्न होते हैं। मैंने गुरु से सुना है कि तप करने में इसी प्रकार के सैकड़ों विघ्न सामने आते हैं। जो धोखा खा जाते हैं, वे मूर्ख हैं और तप का फल नहीं पाते। जो दृढ़तापूर्वक धोखे से बचे रहते हैं, वे ही सिद्धि पाते हैं। शिव अपने भक्तों के पालन-कर्ता हैं। वे अपने भक्तों को सब प्रकार आनन्द देते हैं। वे पहले तो अपने भक्तों की परीक्षा करते हैं। फिर प्रसन्न हो जाते हैं। यह कह गिरिजा अपनी सखियों समेत वहाँ से चली गईं।

बयालीसवाँ अध्याय

इतना कह ब्रह्माजी बोले कि हे नारदजी ! इस प्रकार गिरिजा का हठ और प्रेम देखकर शिव प्रसन्न हुए और अपना यथार्थ मुख्य स्वरूप, जैसा नारदजी ने उमा से कहा था, धारण किया। शिर पर जटा, गङ्गा की धारा और चन्द्रमा विराजमान। भाल पर त्रिपुण्ड्र लगाये हुए, कानों में कुण्डल पहने। गोल-गोल सुडौल कपोल। तीनों नेत्र सूर्य, चन्द्र, अग्नि, ललाई लिये। पर एक आँख मूँदे हुए। कण्ठ में हलाहल विष की श्यामता सुशोभित। नाक और ओठ परमसुन्दर। हाथ-पाँव की उँगलियाँ लाल लाल इसी प्रकार हरएक अङ्ग-प्रत्यङ्ग अतिसुन्दर और सुभग, जैसा कि गिरिजा ध्यान करती थीं उसी प्रकार का स्वरूप धारण कर शिव ने दर्शन दिये और कहा कि तुमने हमारी इतनी आराधना और तप किया है कि जितना आज तक किसीने नहीं किया। हमारे चरणों की सेवा करके देवता, मुनि आदि अति प्रसन्न हुए हैं। तुम वही हमारी आदिशक्ति हो। तुमको ग्रहण करके हम भी लोक में शुभ होते हैं। हमारा तप और संयम अति दृढ़ है, पर वह भी तुम्हारे तप के कारण हिल गया। हमने पहले भूतों को, फिर सप्तऋषियों को भेजा जिसमें तुम्हारे दृढ़ तप की कीर्ति संसार भर में प्रसिद्ध हो। तुम कुछ क्रोध न करो, क्योंकि ये सब बातें मैंने तुमसे, प्रकट होने के लिए, परीक्षा

लेने के लिए की हैं। जैसा कि कुंभार घटके सँवारने को ऊपर से कैसी मार देता है। तुमतो हमारी अनादि शक्ति हो। हमने संसारी रीति के कारण तुम्हारी भक्ति को देखा। तुम्हारे बिना संसार में कोई वस्तु नहीं है। तुम्हारी सेवा सृष्टि भर करती है। तुम संसार भर की माता और सदा की देवी हो, जिनके चरणकमलों की सेवा देवता आदि सब करते हैं। तुम उत्पत्ति, पालन और प्रलय के निमित्त तीन गुण धारण करती हो। तुम तो तीनों लोकों की आनन्द-दायिनी हो। तुम्हारे रूप, गुण और प्रभाव असंख्य हैं। तुम्हारा ही अंश लक्ष्मी, वाणी, ब्रह्माणी और विष्णु की स्त्रियाँ हैं। तुमने मुझे सगुण अवतार लेते हुए जानकर गिरिजा का अवतार लिया है। तुम कभी मुझसे अलग नहीं हो। हम तुम सदा संसार के निमित्त चरित्र रचते हैं। जैसे शब्द और अर्थ में अन्तर नहीं है, वैसे ही हमारे और तुम्हारे बीच में अन्तर नहीं है। केवल संसारी जीवों की दृष्टि में हम तुम दो शरीर रखते हैं। पर वास्तव में एक हैं। यह समझकर क्रोध शान्त करो। हमारे तुम्हारे चरित्र वेद भी नहीं जानते। तुम्हारा तप पूरा हो गया है। हम सच कहते हैं कि हम तुम्हारे सेवक हैं। इस समय हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं। जो इच्छा हो वह माँगो। यह कह शिव चुप हो गये। गिरिजा ने एक बार लज्जा के साथ शिव का रूप देख उसको मन में रक्खा और हाथ जोड़ बिनती की कि हम संसार भर के नाते तोड़ कर आपकी शरण में आई हैं। जो आप मुझसे प्रसन्न हैं तो मुझको मेरी इच्छा के अनुसार वर दीजिये, मेरे पति होइये और संसार की रीति के अनुसार मेरे साथ विवाह कीजिये। मेरे अपराध को क्षमा कीजिये। अब आप मेरे पिता से जाकर बिनती करें और अपने संसारी चरित्र को दिखावें। यह कह गिरिजा चुप हो गई। शिव ने कहा कि जो वरदान तुमने माँगा वह हमको

भाया और हम उसे अङ्गीकार करते हैं। यह कह शिव अन्तर्द्धान हो गये। तब देवताओं ने जय जयकार किया। आकाश से फूलों की वर्षा हुई। विष्णु और मैं आदि गिरिजा के चरणों पर आकर गिर पड़े और हर्ष के कारण गिरिजा की स्तुति करने लगे। जो कोई इस स्तुति को पढ़ेगा, वह सब मनोरथ पावेगा। यह स्तुति सुन गिरिजा ने सब देवताओं से कहा कि तुम सब अपने-अपने घर जाकर प्रसन्न रहो। देवताओं के सब काम पूरे होंगे; क्योंकि मैंने बड़ा तप किया है। शिव ने मुझको वर दिया है कि कोई काम तुम्हारा बाकी न रह जायगा। देवता तो यह सब आज्ञा लेकर चले गये और गिरिजा घर पहुँचीं। तब जो हर्ष हिमाचल और मैना को प्राप्त हुआ, उसको कह नहीं सकते। निदान हिमाचल ने सब प्रकार से आनन्दमङ्गल मनाया और असंख्य द्रव्य दान दिया। यद्यपि गिरिजा ने वरदान का वृत्तान्त किसी से न कहा, पर वह सब लोगों पर प्रकट प्रसिद्ध हो गया। सखियों से सबने सुन और मङ्गल मनाया।

तेंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद ! कोई मनुष्य चाहे करोड़ वर्ष पर्यन्त तप किया करे, पर सदाशिव की महिमा जानना महा कठिन है। वे शरीर धारण कर नाना प्रकार की लीला रचते हैं और संसारी जीवों के समान प्रकट होकर अपने भक्तों के काम पूरे करते हैं। हे नारद ! सावधान होकर सुनो। जब शिव गिरिजा को वर देकर चले गये तब वहाँ आपने भिक्षुक का रूप धारण किया और नाचने और गाने में पूर्ण अभ्यास करके एक सहस्र गति के ज्ञाता बन गये। अपने बायें हाथ में सिंगी और दाहने हाथ में डमरू लिया और शरीर भर में श्वेत भस्म लगाकर लाल वस्त्र पहने। आप वृद्ध बन गये। बुड्ढों के समान

शरीर काँपता था; पर वाणी अति मधुर थी। निदान ऐसे अनूप रूप और वस्त्राभरणों से अलंकृत होकर श्रीसदाशिवजी हिमाचल पर्वत के पास गये और इस प्रकार के नृत्य-गान, नटकर्तब, मधुर स्वर, प्रिय सिंगी और डमरू के नाद से नगर-निवासियों को रिझाया कि चारों ओर से ठट्ठ के ठट्ठ पर्वतनिवासी इकट्ठे हो गये। यहाँ तक कि कोई बूढ़ा, बालक, स्त्री, पुरुष घरों में न रहा। कोई भी वह मधुर शब्द सुन घर में न रहा और कोई भी शिव के उत्तमोत्तम ताल और प्रिय स्वर समेत राग से मोहित, विह्वल और अधीर होने से न बचा। यहाँ तक कि मैना मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं और गिरिजा भी उस आनन्ददायक स्वर में मग्न हो गईं। शिव की मूर्ति का मन में ध्यान कर प्रसन्न हुईं और मन में शिव की स्तुति की। तब शिव कृपालु होकर बैठ गये। मैना को चेत आया। वह योगी से अति प्रसन्न होकर हीरा, पन्ना, मोती, मणि आदि थाल में भरकर देने लगीं, पर उस योगी ने न लेकर गिरिजा को माँगा और फिर नाचने को खड़ा हो गया। तब मैना ने अप्रसन्न होकर बहुत डराया-धमकाया और इच्छा की कि उस योगी को निकाल दें। इस इच्छा को दृढ़ कर मैना ने उच्च स्वर से कहा कि क्या कोई यहाँ नहीं है, जो इस योगी को मारकर बाहर निकाल दे। यह मूर्ख हमारी कन्या की इच्छा रखता है। यह कैसी ढिठाई है। इतने में हिमाचल पहुँचे और सब वृत्तान्त सुन क्रोधित हुए। उन्होंने आज्ञा दी कि इस योगी को यहाँ से निकाल दो। हिमाचल के नौकर निकालने को उद्यत हुए। पर उस योगी के प्रताप से उसके निकट न जा सके। हिमाचल ने विचारा कि यह कौन मनुष्य है। जब विचारपूर्वक योगी को देखा तो उनको शिव चतुर्भुजी

स्वरूप, शिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल लटकते हुए, पीले वस्त्र पहने और जो फूल कि विष्णु पर चढ़ाये जाते हैं, उनसे भूषित देखा। फिर उसी समय हिमाचल ने द्विभुजी मूर्ति इस तरह पर देखी कि अपने को गोपों के समान भूषित किये, मुरली कर-पङ्कज में लिये, चन्द्रमा के समान उत्तम किशोर अवस्था को प्राप्त देख पड़े, जिस रूप को देख मन को प्रसन्नता होती थी। फिर मेरे रूप में रक्तवर्ण वेद पढ़ते, फिर सूर्य के रूप में, फिर अग्नि के, फिर गणपति के, जो वक्रतुण्ड लम्बोदर हैं देखा॥ कुछ समय बाद उन्होंने अष्टभुजा भवानी के स्वरूप को देखा॥ फिर शिव ने अपना मुख्य स्वरूप इस तरह हिमाचल को दिखाया कि शीश पर जटा और गङ्गा की धारा, माथे पर चन्द्रमा और त्रिपुण्ड्र, चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख, तीनों नेत्र ललाई लिये, कीर समान नासिका, लाल ओठ, कण्ठ में तीन रेखा श्यामता लिये, गले में हार पहने, चार भुजा, जिनमें शूल-कपाल-अभय आदि, नाना प्रकार के वस्त्राभूषणों से अलंकृत, उदर बहुत कोमल, जिसमें त्रिबली पड़ी हुई, उत्तमोत्तम कटि और पगतली लाल कमल-सी लाल-लाल, नितम्ब गोल, नख रक्त-वर्ण। ऐसा मनोहर विचित्र स्वरूप देख हिमाचल ने अति आश्चर्यान्वित होकर जाना कि यह सदाशिव हैं। जब सदाशिव ने जाना कि हिमाचल ने हमको पहचान लिया तो तुरन्त उसी योगी का स्वरूप धारण किया और फिर हिमाचल से गिरिजा को पाने की इच्छा प्रकट की। हिमाचल ने तुरन्त प्रणाम कर स्वीकार कर लिया। योगी तो अन्तर्द्धान हो गये, और मैना और हिमाचल ने होश में आकर शिव को सबसे श्रेष्ठ जाना। देवताओं ने अपने मन में इस बात को ठहराया कि शिव और गिरिजा का विवाह उनको, संसारभर को और गिरिजा के माता-पिता

को शुभदायक होगा। इस इच्छा से उन सबने हिमाचल के गुरु के घर में जाकर उनको प्रणाम किया। कहा कि इस समय शिव के चरित्र से मैना और हिमाचल ने शिव को सबसे बड़ा समझ लिया है। तुम जाकर ऐसी युक्ति करो, जिससे शिव-गिरिजा का विवाह हो जाय। गुरु बहुत क्रोधित होकर दोनों हाथ कानों पर रखकर कहने लगे कि हे देवताओ! तुम बड़े मतलबी हो। तुमको अन्त का कुछ हाल मालूम नहीं है। तुम शिष्य होकर गुरु को उपदेश देते हो। तुम हमारी अच्छी सेवा करते हो, जिसमें हमको नरक प्राप्त हो। जो मनुष्य विष्णु, महादेव, ब्रह्मा आदि देवता, ब्राह्मण, अपने गुरु, पतिव्रता स्त्री, योगी, सेवक, अपने पति, गौ, तुलसी, पुराण, गङ्गा, वेदमाता गायत्री, वेद और दान की निन्दा करता है, वह निस्सन्देह नरक में जाकर असंख्य कल्पों तक दुःख-कष्ट भोगता है। जो तुम यह कार्य करना आवश्यक समझते हो तो तुमको चाहिए कि ब्रह्मा के पास जाकर उनसे सहायता माँगो और अपनी बुद्धि के अनुसार तुम भी उपाय करो। पर मन में शिव के चरणों का ध्यान रक्खो। हमको विश्वास है कि ब्रह्मा अरुन्धती और सप्तऋषियों के साथ जाकर हिमाचल को समझावेंगे। हमको अपने तपोबल से दृढ़ विश्वास है कि शिव के सिवा और कोई गिरिजा को नहीं पावेगा। यह कह गुरु चुप हो रहे।

चवालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! गुरु की आज्ञा से सब देवताओं ने हमारे पास आकर अपना मनोरथ अक्षर-प्रतिअक्षर कहा। हमने अति अप्रसन्न होकर देवताओं को धिक्कारा और धर्म का उपदेश किया। अर्थात् हमने कहा कि तुम मुझे शिव की निन्दा कराना सिखाते हो? क्या अच्छे लड़कों का यही धर्म है?

मुझको नरक का मार्ग बतलाते हो। क्या पिता की यही सेवा करना लड़कों को उचित है? शिव की निन्दा सबको दुःख देनेवाली है। उससे अर्थ, धर्म, काम नष्ट होते हैं। वह आपदा की जड़ और सब प्रकार के आनन्द-मङ्गल को नष्ट करनेवाली है। मैं इस विषय में तुम्हारी कुछ भी सहायता न करूँगा। तुम सब मिलकर शिव के समीप जाओ और विनय करो; क्योंकि दूसरे की निन्दा दोनों लोकों में दुःख देती है और मनुष्य की निन्दा कराती है। यह सुन वे सब कैलास पर्वत में जाकर शिव की प्रशंसा और स्तुति करने लगे। बोले कि हिमाचल आपका बड़ा भक्त है। उसने आपको परब्रह्म जानकर इच्छा की है कि अपनी कन्या आपको देकर मुक्ति प्राप्त करे। इस प्रस्ताव को आप स्वीकार करें। शिव देवताओं की यह विनती सुनकर हँस दिये और उनको अति प्रसन्न कर बिदा किया। फिर अति सुन्दर शरीर धारण कर, हाथ में श्वेत रत्नों की माला पहनी। माथे पर तिलक लगाकर गले में शालग्राम की मूर्ति बाँधी। उत्तमोत्तम वस्त्र पहने। वैष्णवी वस्त्रों से भूषित हुए और अति चतुरता से हिमाचल के घर चले। हिमाचल अपने सब परिवार समेत आदर के लिए उठ खड़ा हुआ। गिरिजा ने बड़ी भक्ति से उस ब्राह्मण-रूप की पूजा की। उन्होंने पहचान लिया कि यह शिव हैं। ब्राह्मण ने आशीष देकर कुशल पूछी। हिमाचल ने कहा कि आप कौन हैं और किस कार्य से आये हैं? ब्राह्मण ने कहा—मैं ब्राह्मण हूँ। पृथ्वी भर का पर्यटन करता रहता हूँ। अपने गुरु की कृपा से तीनों लोकों को पहचानता और सब बातों को जानता हूँ। जो मनुष्य तीनों लोकों में कोई काम करता है, उसे मैं अपने मन ही में जान लेता हूँ। इस बात का प्रमाण देता हूँ। तुम्हारी इच्छा है कि गिरिजा का विवाह शिव के साथ कर दें। तुम्हारी यह मूर्खता

जानकर मैं तुम्हारी भलाई के लिए तुम्हारे घर आया हूँ। मैं तुम्हारे भले के लिए कहता हूँ कि तुम ऐसी अच्छी कन्या को ऐसे बुरे और निर्गुण व्यक्ति को क्यों देते हो? यह तुम्हारी इच्छा असंगत, अनुचित और अशुभ है। जिनकी सेवा सम्पूर्ण सृष्टि, देवता, मुनि, दैत्य, सिद्ध आदि सब करते हैं, उन विष्णु ही के साथ गिरिजा का विवाह करना उचित है। तुम्हारे अधीन एक लक्ष पर्वत हैं। इसी प्रकार विष्णु भी बड़े महाराजाधिराज हैं। किन्तु शिव के आगे-पीछे भाई-बन्धु आदि कोई नहीं है। यह बात तुम अपने भाई-बन्धुओं ही से पूछ लो। जो तुम यह कहोगे कि गिरिजा को शिव के सिवा दूसरा पति स्वीकार नहीं, तो यह बात प्रकट है कि रोगी को कुपथ्य ही भाता है, कोई गुणकारी औषध नहीं भाती। यह कह ब्राह्मण चल दिये। हिमाचल के अति-खेद और चिन्ता से आँसू बह चले। मैना ने हिमाचल से कहा कि मेरी बात सुनो, जो अन्त को अच्छा फल देगी। तुमको उचित है कि सब पर्वतों को बुलाकर उस ब्राह्मण के कथन के विषय में अवश्य पूछो; क्योंकि उस ब्राह्मण की बातें सुनकर मुझको बड़ा सन्देह हुआ है। जब तक इस बात की सफ़ाई न होगी, मुझे बहुत ही भय बना रहेगा। तुम भी ब्राह्मण की बातों पर अच्छी तरह विचार करो। नहीं तो मैं या तो घर छोड़ वन में जा रहूँगी, या विष खाकर मर जाऊँगी, या गिरिजा को साथ लेकर तुम्हारे घर से निकलकर किसी निर्जनस्थल में जा रहूँगी। यह कह मैना अति कुपित होकर गिरिजा को साथ लेकर, कोपभवन में जा बैठीं। मैले-कुचैले वस्त्र पहन, सब प्रकार के वस्त्र-आभूषण उतार धरती पर लेट गईं। क्रोध से अनाप-शनाप बकती हुई पैर के अँगूठे से धरती को खोदती थीं। यह चरित देख हिमाचल बहुत दुखी हुए और मैना के पास जाकर ठहर-ठहरकर समझाने लगे। कहा कि क्यों

पृथ्वी पर पड़ी हो ? फिर हिमाचल बड़ा अचरज करने लगे। यह चरित्र शिव ने कैसा किया ?

पैंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद ! यह दशा देख हिमाचल के सब परिवार के लोग और सब नगरनिवासी अतिदुखी हुए। देवताओंने परस्पर कहा कि क्या करते क्या हो गया ! सब स्त्री-पुरुष शिव का ध्यान करने लगे। बोले—हे शिव, आपने जो किया, वह सब शुभ हो। यह कह चुप हो गये। गिरिजा बहुत उदास होकर शिव का ध्यान करने लगीं। शिवने गिरिजा की चिन्ता जानकर सप्तऋषियों का स्मरण किया। वे तुरन्त आये। वे सूर्य के समान महातेजस्वी, प्रकाशमान गङ्गाजी के जल से भीगी हुई जटा धारण किये, हाथ में माला, शरीर में भस्म रमाये, महाउज्ज्वल-स्वरूप, मुख से शिव-शिव कह रहे थे। उन्होंने शिव को प्रणाम किया। और धरती पर गिर कर दण्डवत् प्रणाम किया, हाथ जोड़े हुए शिर झुकाया और बड़ी स्तुति की। शिव बोले—हमने तारक दैत्य को मारने के लिए गिरिजा के साथ विवाह करने की देवताओं से प्रतिज्ञा की थी। वह समय निकट है। इससे तुम हिमाचल के पास जाकर उनसे और उनकी स्त्री से हमारे विवाह के निमित्त कहो। जिस तरह देवताओं का काम बने, वह सब तुमको करना उचित है। हमारा सगुण स्वरूप केवल देवताओं के निमित्त है। यह सुन सप्तऋषि अतिप्रसन्न होकर परस्पर कहने लगे कि हम बड़े भाग्य-वान् हैं। जिसकी ब्रह्मा, विष्णु प्रेम से रात्रि-दिन सेवा किया करते हैं, वह आज हमको सृष्टि के उपकार के लिए अपने विवाह के निमित्त भेजते हैं। वे वहाँ से चलकर हिमाचल के समीप गये। हिमाचल ने प्रणाम करके पूजन किया और आने का कारण पूछा। सप्तऋषि बोले कि शिव सृष्टि के पिता और गिरिजा सृष्टि

वृत्तान्त वर्णन किया और कहा कि यह गिरिजा तो सनातन से शिव की शक्ति हैं। इसलिए तुमको उचित है कि इनका विवाह शिव के साथ कर दो। इसमें दोनों लोकों में तुम्हारा यश फैलेगा, तुम्हारा कुल पवित्र होगा और सब देवता तुम्हारे वश में हो जायँगे। नहीं तो गिरिजा तो अवश्य ही शिव को पावेंगी, पर तुम पश्चात्ताप के सिवा कुछ न पाओगे। जो वरदान शिव ने गिरिजा को दिया है, वह क्या पूर्ण नहीं होगा? शिव की इच्छा झूठी नहीं होती। देखो, शची के पति इन्द्र ने बहुत से पर्वतों के पङ्ख काट डाले, और एक पवन ने बल करके कनकशैल के शृङ्ग को फोड़ा, इसलिए उचित नहीं है कि शिव से हठ करो। तुमको अपने कुल की रक्षा करनी चाहिए, नहीं तो बड़ा उपद्रव होगा। देवता आदि सब तुम्हारे शत्रु हो जायँगे। जैसे राजा अनरण्य ने अपनी कन्या ब्राह्मण को देकर अपने कुल को बचा लिया, वैसे ही तुमको उचित है कि गिरिजा शिव को देकर कुल की रक्षा करो। हिमाचल ने कहा कि अनरण्य राजा की कथा कहो। वशिष्ठ बोले कि वेदचन्द्र, जो चौदहवाँ मनु था, उसकी सोलहवीं पीढ़ी में अनरण्य नाम का राजा उपजा। वह मङ्गलारण्य राजा के सदृश प्रजा का पालन करनेवाला राजगद्दी पर बैठकर न्यायपूर्वक राज्य करता रहा। उसके सात पुत्र और एक कन्या उपजी। कन्या का नाम पद्मा था। वह राजा और रानी को प्राण के समान प्रिय थी। जब वह ब्याहने योग्य हुई, तब राजा उसके लिए पति ढूँढ़ने लगे। इतने में पिप्पलाद मुनि ने अपने आश्रम को जाते समय वन में देखा कि एक गन्धर्व अपनी स्त्री से विहार कर रहा है। यह देख मुनि भी काम के वशीभूत होकर स्त्री से भोग की इच्छा करने लगे। मुनि ने पुष्पभद्रा नदी के तट पर पद्मा को देख सबसे पूछा कि यह किसकी

पुत्री है ? लोगों ने उत्तर दिया कि अनरण्य राजा की लड़की है। मुनि स्नान और विष्णु का पूजनकर राजा के समीप गये और कामवश होकर उससे लड़की को माँगा। राजा चुप रहे। मुनि ने बारम्बार उस लड़की को माँगा, पर उत्तर न पाया। तब क्रोधित होकर कहा कि तू हमको लड़की नहीं देता, चुप्पी मारे बैठा हुआ है। मेरे पास वह विद्या है, जिससे इसी समय तुझे जलाये देता हूँ। मुनि के ऐसे कोप के वचन सुन राजा स्त्री, पुत्र और भृत्यों समेत आश्चर्य में होकर रोने लगा। तब एक बुद्धिमान् पण्डित ने राजा को सीख दी कि अब आपको उचित है कि मुनि को लड़की दे दें। कुल को जलने से बचावें। राजा ने मान लिया और लड़की दे दी, अपने कुल परिवार पर आँच न आने दी। हे हिमाचल ! यही तुमको भी करना चाहिए। अब विवाह के शुभ मुहूर्त्त को केवल सात दिन शेष रह गये हैं। उस दिन मृग-शिरा नक्षत्र, चन्द्रवार, उत्तम योग करण, केन्द्र के शुभग्रह हैं। लग्न का स्वामी अपने स्थान पर आवेगा। यह अति उत्तम मुहूर्त होगा। उसी दिन तुम गिरिजा को शिव के साथ ब्याह दो। सप्त-ऋषि तीन दिन तक ठहरे रहे। चौथे दिन हिमाचल ने लग्न लिखाया। उसे लेकर सप्तऋषि शिव के पास गये और हिमाचल ने बड़ा मङ्गलाचार मनाया।

सैंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद ! सप्तऋषियों ने शिव के पास जाकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया। शिवजी बोले—तुमने अच्छा काम किया है। तुम बड़े निष्पाप, ब्रह्मज्ञानी, धर्मात्मा, वेदज्ञ, तीनों लोकों का हित चाहनेवाले हो। तुम भी हमारे विवाह में अपने शिष्यों समेत निमन्त्रण में आना। यह सुन सप्तऋषि तो बिदा हुए और हे नारद ! फिर शिवजी ने तुमको स्मरण किया।

तुम तुरन्त प्रसन्नतापूर्वक पहुँचे। तुमने हाथ जोड़कर शिवकी स्तुति और विनती की कि मेरे बड़े भाग्य हैं, जो आपने मुझे स्मरण किया। अब मुझ सेवक को आज्ञा दीजिये। शिवजी ने संसार की रीति के अनुसार कहा कि गिरिजा ने हमारी बड़ी आराधना की है। हमने प्रेम के वश होकर उनको वर दिया है कि उनके साथ विवाह करेंगे। तुमको चाहिए कि हमारी ओर से सब देवताओं को निमन्त्रण दो। और, यह बात अच्छी तरह समझा देना कि जो हमारी बरात में सम्मिलित न होगा, वह हमारा प्यारा न होगा। नारदजी तुरन्त चले। पहले विष्णुजी के पास और इसी तरह सनकादिक, भृगु आदि के समीप पहुँचे। सबको शिवजी का संदेश सुनाया। फिर इन्द्रलोक में ध्रुवलोक में, फिर सप्तऋषि और नन्दालोक आदि, और सूर्य चन्द्र और भूलोक आदि सभी स्थानों में संदेश और विवाह का निमन्त्रण दे आये। सबने अति प्रसन्नता से अङ्गीकार किया। फिर हे नारद! तुम देवताओं, मुनीश्वरों के यहाँ गये। तीनों लोकों में कोई ऐसा स्थान नहीं रहा, जहाँ तुमने जाकर शिव की ओर से निमन्त्रण न पहुँचाया हो। निमन्त्रण देने के उपरान्त तुम शिव के समीप पहुँच स्तुति करने लगे। और यह भी कहा कि महाराज! आपके निमन्त्रण को ब्रह्मा, विष्णु और सारी सृष्टि ने बड़ी प्रसन्नता से अङ्गीकार किया है। फिर तुम शिव की आज्ञा से वहीं रह गये। ब्रह्मा, विष्णु, सनकादिक, लोकपाल, इन्द्र आदि, गणपति, अग्नि, धर्मराज, वरुण, कुबेर, पवन, ईशान, दिग्पाल, सूर्य, चन्द्रमा, हिंगुलाज, ज्वालामुखी, देवी, देवता, मुनि आदि धीरे-धीरे समय-समय पर कैलास में अपनी सारी सामग्री, परिवार, स्त्री, गण, सेना और सभासद् लेकर आये और अपने पद के अनुकूल बैठे। इस प्रकार बारात अच्छी तरह इकट्ठी होने लगी। यहाँ नाना प्रकार के खेल-तमाशे

और लीलाएँ होने लगीं। विष्णु और मैं शुभ लग्न पाकर शिवजी के समीप आये और प्रणाम के उपरान्त विनय की कि अब तो चलने का समय आगया।

अड़तालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! शिवजी ने आज्ञा दे दी कि बरात तैयार हो। यह सुनते ही तुरन्त सबने अपने को भूषित किया और सब शृङ्गार करने लगे। विष्णु, मैं और देवता आदि बरात साजने में लगे। चारों ओर ध्वजा, पताका, चँवर आदि शुभ सामग्री स्थापित हुई। देवपत्नियाँ शुभगीत गाने लगीं। रत्न और मोतियों से चौक पुराये गये। हर एक द्वार में सोने के कलश, कदलीखम्भ और इसी प्रकार की और आनन्द देनेवाली सामग्रियाँ रक्खी गईं। उस समय की शिव की सुन्दरता हम कह नहीं सकते। वह कहने से बाहर है। विष्णु, मैं और इन्द्र आदि देवता अपने अपने प्रसिद्ध वस्त्रों से भूषित हुए सवारों के रिसाले, हाथियों के समूह और घोड़ों के छलबल प्रशंसा के योग्य, देखने के लायक थे। जब शुभमुहूर्त आया, तब शिवजी महाराज बरात समेत चले। नन्दी, वीर भद्र, भैरव आदि भी अपने गणों सहित साथ हुए। उस बरात में असंख्य सेना चली। शिवजी ने पहले संसारी रीति के अनुसार ब्राह्मण के चरणों का ध्यानकर डमरू बजाया, फिर चले। आकाश से फूलों की वर्षा हुई और नगाड़े बजे। और बहुत से बाजे-गाजे, बन्दीजन आदि बरात के साथ चले।

उञ्चासवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! हिमाचल ने भी अपने भाई, बान्धव और सब नदी, नद और समुद्रों को स्त्रियोंसहित निमन्त्रण दिया और अपने नगर को हर प्रकार से सजाया। बहुत से

मन्दिरों को रत्नादिकों से पूर्णकर भूषित किया। अच्छा मँडवा अच्छी तरह छाकर बन्दनवार और मोतियों के झालर लटका दिये। सब भाई-बन्धु, जिनको निमन्त्रण गया था, उनके घर इकट्ठे हुए। वहाँ एक आश्चर्यजनक सामग्री प्रस्तुत हुई। हिमाचल ने अपने दान से सब मंगनों को अयाचक किया। हर स्त्री-पुरुष ने अपने को सजाया। नाना प्रकार के साज सजने लगे। स्त्रियों के समूह ने इकट्ठे होकर गिरिजा को नहलाया। जो-जो कुल देवता आदि की पूजा नियत है, सब गिरिजा से कराई। शिव की ओर से तुमको देवताओं ने पहले हिमाचल के पास भेजा, जहाँ तुम्हारा बहुत ही सत्कार हुआ। सब रीतें के पूरी करने के उपरान्त हिमाचल ने पहले अपने पुत्र को बरात की अगवानी के लिए भेजा और आप भी बरात आने की राह देखने लगा। जब बरात निकट पहुँची तो हिमाचल अपने सब बान्धवों सहित आप ही अगवानी को चले। ऐसी बरात की बहार, असंख्य सेना और विचित्र सामग्री देखकर साथियों समेत बहुत आश्चर्य में हुए। उन्होंने झुककर हम सबको प्रणाम किया और बहुत कुछ स्तुति की। चारों ओर बड़ी प्रसन्नता छाई हुई थी। हिमाचल ने एक बहुत अच्छा पहाड़ बरात के रहने को दिया। फिर हिमाचल विदा होकर गये और तैयारी करने के बाद अपने पुत्र को भेजा कि अब बरात हमारे द्वार पर आवे। उस समय सब बरात बड़ी सजधज के साथ अपने अपने वाहनों पर चढ़कर चली। उस समय की शोभा का वर्णन कोटियों जिह्वाओं से सैकड़ों वर्षों में भी नहीं हो सकता। मैना के मन में आई कि पहले मैं अपने जामाता को देखूँ, तब द्वारचार की रीति पूरी की जाय। यह विचार हे नारद! मैना ने तुमको बुलाया और अपना मनोरथ वर्णन किया। कहा कि जिसको तुम परब्रह्म और सबसे श्रेष्ठ

कहते थे, उसे देख सब काम किये जायँगे। यह तुमसे कहकर मैना शीशमहल में बैठ गई।

पचासवाँ अध्याय

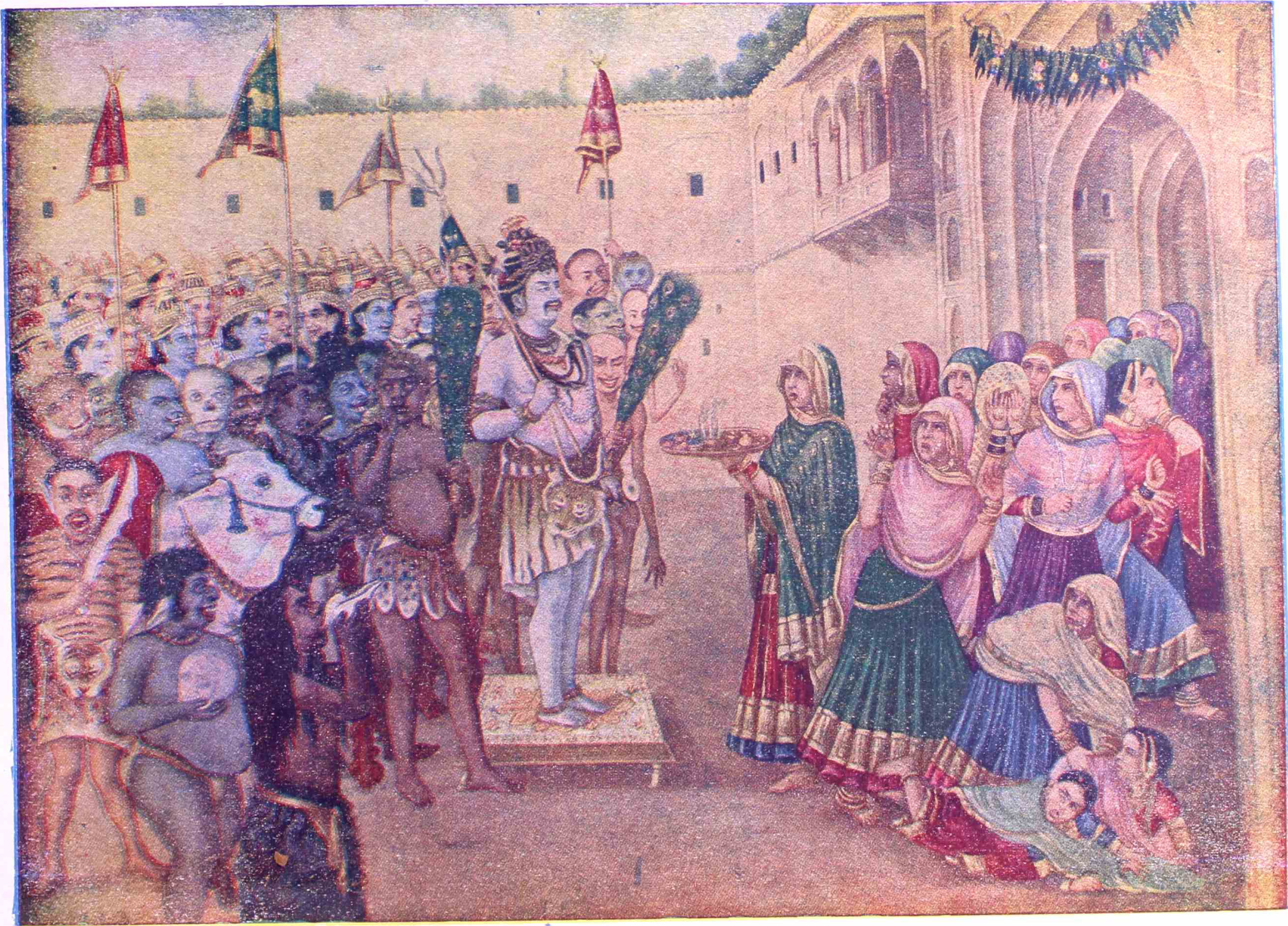
ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! जब मैना राज्य के अहंकार से यह अनुचित विचार अपने मन में लाई और शिवजी के स्वरूप की परीक्षा करनी चाही, तब शिव ने यह सब जाना और अप्रसन्न हुए। मन में कहा कि इस बुद्धिहीन स्त्री ने मेरी कई बार परीक्षा की। यह तो संदेह की खानि है। देखो, मैं क्या चरित्र करता हूँ, जिसमें यह मूर्खा स्त्री ऐसी बातों को भूल जाय। यह विचार विष्णु को बुलाया और कहा कि तुम और ब्रह्मा बड़े हित चाहनेवाले हो। तुमसे अधिक हमको कोई प्रिय नहीं। अब हम आज्ञा देते हैं कि तुम सब पहले अलग अलग अपनी अपनी सेना सहित हिमाचल के द्वार पर चलो। सबके पीछे हम आवेंगे। यह सुन विष्णु ने सबको आज्ञा सुनाई, जिसके अनुसार अलग अलग सब चले और हिमाचल के द्वार में प्रवेश करने लगे। मैना ऐसी धूमधाम के साथ बरात देख बड़ी प्रसन्नता से कहने लगी कि वाह वाह कैसी अच्छी बरात है! उसकी यह दशा हुई कि जिसको देखती, तुमसे पूछती कि क्या यही गिरिजा के पति हैं? पहले जब मैना ने गन्धर्वों के राजा वसु को देखा तो तुमसे कहा कि क्या यही शिव हैं? तुमने उत्तर दिया कि नहीं। यह तो शिव की सभा के गानेवाले हैं। मैना बोली कि जिसकी सभा के ऐसे गानेवाले और नाचनेवाले हैं, वह कब मुझको देख पड़ेंगे? फिर यक्षों के स्वामी मणिग्रीव को देखा और तुमसे पूछा कि क्या यही शिव हैं? तुमने उत्तर दिया कि नहीं। फिर मुंच नाम लोकपाल चक्षुगणों सहित आ निकला। मैना ने पूछा कि क्या यह शिव हैं? तुमने कहा कि नहीं। इसी प्रकार धर्मराज, निर्ऋति, सर्प, वरुण, पवन,

कुबेर, ईशान, आठों दिग्पाल, रुद्र, इन्द्र, चन्द्र, ग्रहपति, शुक्र, प्रजापति, सप्तऋषि, ब्रह्मा, विष्णु, जो एक के पीछे एक आते थे उनको देख मैना ने तुमसे प्रसन्न होकर पूछा कि क्या यही शिव हैं? तुम उत्तर देते थे कि नहीं, यह शिव नहीं, शिव के भक्त हैं। मैना अति प्रसन्न हुई और अपने को धन्य समझा। वह समझीं कि हमारा कुल कृतार्थ हो गया; क्योंकि जिसको हमने देखा वही शिव का भक्त ठहरा। वही शिव गिरिजा के पति हैं। मैना के सब दुःख दूर हो गये।

इक्यावनवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! मैना ने तुम्हारी और गिरिजा की बहुत प्रशंसा करके तुमसे कहा कि मैंने शिव को नहीं देखा। इतने में शिव सम्मुख आ गये। तुमने तुरन्त कहा कि यही शिव हैं। गिरिजा के पति यही हैं। अच्छी तरह देखो। मैना ने देखा और शिव की माया से उसकी आँखें ऐसी हो गईं कि उसकी दृष्टि में सन्देह उत्पन्न हुआ। इस समय शिव का दल उनको ऐसा दिखाई दिया कि वे सभी भूत प्रेत हैं। कइयों के तो हाथ ही नहीं, और कुछ के बहुत हाथ हैं। मैना ऐसा दल देख बहुत डरी। उस सेना में शिव को बैल पर चढ़े, त्रिनेत्र, चन्द्रमा और मुकुट विराजमान, व्याघ्राम्बर और गजचर्म धारण किये, हाथों में डमरू, कपाल, त्रिशूल और सब शस्त्र लिये, शीश पर जटाजूट, कानों में सर्प, पाँच मुख, मुण्डों की माला धारण किये, कण्ठ में हलाहल की श्यामता, शरीर में सर्प लिपटाये हुए देखा। हे नारद! उस समय तुमने मैना से कहा कि इधर उधर क्या देखती हो? अब शिव का रूप क्यों नहीं देखतीं! जब मैना ने ऐसा रूप और वैसी सेना देखी तो भयभीत होकर महादुखी हुई और मूर्च्छित हो धरती पर गिर पड़ीं। तब बड़ा हाहाकार

शिवबरात



कञ्चन थार सोह वर पानी। परिछन चलीं हरहिं हरखानी॥
विकट वेष जब रुद्रहिं देखा। अबलन उर भय भयउ बिसेखा॥ (तुलसीदास)

R. K. P

हुआ। सबको बड़ा खेद हुआ। सब लोग ओषधि आदि उपायकर मैना को चेत में लाये। मैना ने तुमसे कहा कि तुझे धिक्कार है! तू बड़ा झूठा, बुद्धिहीन, पापों की खान, नास्तिक और छली है। तुझे लोग वृथा ही विष्णु का भक्त कहते हैं। यहाँ से तू दूर हो। अब तेरा मुँह न देखूँगी। तू बड़ा छली है। तूने मेरी कन्या का जन्म नष्ट कर दिया। यह अवधूत भूतों की सेना लेकर मेरी लड़की के साथ विवाह करने आया है। मेरा और हिमाचल का जन्म वृथा हुआ। मेरे साथ सभी ने छल किया। सप्तऋषियों ने क्या कुछ कोताही की है। और वह अरुन्धती कहाँ गई, जिसने मुझको गुड़ देकर ईंट मारी। यह कह गिरिजा को बुलाकर कहा कि तुमने वन में जाकर यह क्या काण्ड किया है? तुमने रत्न छोड़ काँच मोल लिया। चन्दन छोड़ काठ को अपनाया। हंस न लेकर कौआ लिया। गङ्गाजल छोड़ कुएँ का पानी पिया। सूर्य से प्रयोजन न रखकर जुगुनू से मनोरथ चाहा। घी न भाया और रेंड़ी के तेल से रुचि हुई। तुमने यज्ञ की भस्म को दूरकर चिता की भस्म लगाई। विष्णु और अन्य देवताओं को छोड़ शिव के लिये तप किया। तुम बड़ी भाग्यहीन हो। तुमको धिक्कार है। तुम्हारे कर्मों को धिक्कार है। तुम्हारे उपदेशक को धिक्कार है। तुम्हारी सखियों और तुमको भी धिक्कार है। अब मुझको आनन्द कहाँ है। संसार में ऐसा कौन है, जो मेरे इस दुःख को दूर करे। दुःखसमुद्र में डूबती हुई मुझको भुजा पकड़कर निकाले। यह मेरे कर्मों का फल है। मैंने बड़े प्रेम से पुत्री के लिए तप किया था। पर ऐसा भयावना स्वरूप और उसका दुःख देनेवाला फल मुझको मिला! वह बारम्बार पृथ्वी पर गिरकर मूर्च्छित हो गई। जब फिर चेत में आई तो गिरिजा की ओर से आँखें मूँदकर

धिक्-धिक् कहने लगीं। कहा कि खेद है तू मर न गई। वन में भी तुझे किसीने न पूछा। इस समय हमारे कुल में बट्टा तो न लगता! मैं तेरा शिर काट डालूँगी; पर शिव को तुझे न दूँगी। तुझे लेकर कुएँ में कूदकर मरूँगी। चाहे जैसा अधर्म मुझे हो, पर तुझे अवधूत के साथ नहीं ब्याहूँगी। हिमाचल ने भी बड़ी मूर्खता की, जो नारद के वचन पर इतना विश्वास किया। अब मैं क्या करूँ, जिससे मेरा दुःख दूर हो। ऐसे वचन कहती हुई रो-रो धरती पर गिर पड़ीं। यह देख सब आनन्द दुःख में बदल गया। पर समझाने के पीछे सब लोगों ने आनन्द मनाया।

बावनवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! जब मैना की यह दशा हुई, तब नगर भर में उदासी छा गई। तब देवता आदि वहाँ पहुँचकर मैना को समझाने लगे कि तुम क्या करती हो? सब शुभ उत्सव को अशुभ किये देती हो! मैना ने यह सुनकर जो कुछ मन में आया, देवताओं को बुरा-भला कहा, और दिग्पाल आदि को वहाँ से उठा दिया। तब हे नारद! तुमने मैना से कहा कि तुम्हारी बुद्धि कहाँ गई है? तुम उठकर सब अपना काम करो। यह सब शिव की लीला है। शिव परब्रह्म हैं। तुम उनको अवधूत के स्वरूप में देख कुछ संशय मत करो। तुम्हारे इस वचन को सुनकर मैना ने "दूर-दूर" कहकर तुमको फटकारा। तब अरुन्धती समेत सप्तऋषि आकर मैना को समझाने लगे। उनको भी मैना ने क्रोधित होकर निकाल दिया। तब तो मैं आप गया। जब अच्छी तरह से शिव की स्तुति की, तब मैना ने महाकोप करके कहा—चुप रहो, ऐसी झूठी बातें मत कहो। अन्त को हिमाचल ने मैना को आकर बहुत समझाया कि सबके स्वामी और पिता शिव मेरे द्वार पर आये हैं। तुमको जो उचित है, वह करो। शिव के बराबर दूसरा कौन है? इस बात

को वेद कहते हैं। देखो, एक बार पहले शिव अवधूत स्वरूप बनाकर मेरे यहाँ आये थे और ऐसे नाचे-गाये कि स्त्री-पुरुष सब अधीर हो गये। उन्होंने कैसे कैसे रूप दिखलाये थे, जिनको देखकर मैं और तुम दोनों ने गिरिजा को देना मान लिया। यद्यपि ऐसी ऐसी बातें कहकर हिमाचल ने समझाया, पर मैना के मन में कुछ न आया। उन्होंने कहा—चाहे तुम गिरिजा को गर्दन बाँध-कर पहाड़ से डाल दो या समुद्र में डुबा दो, पर निश्चय जानो कि शिव गिरिजा को न पावेंगे। तब गिरिजा ने मैना से कहा और अच्छी तरह समझाया कि मैं शिव के सिवा और किसी के साथ विवाह न करूँगी। यह बात क्योंकर हो सकती है कि सिंह का भाग सियार को मिले? यह शिव हैं। मुझे इनके सिवा और कोई भर्ता नहीं चाहिए। यह सुन मैना अतिक्रोध में आई और गिरिजा को पकड़कर भलीभाँति तमाचों से मारा। तब तुमने और देवताओं समेत गिरिजा को मैना से छुड़ाकर भगा दिया। जब मैना का कोप शान्त न हुआ, बरन् और बढ़ा, तब आप विष्णुजी समझाने के लिए गये।

तिरपनवाँ अध्याय

विष्णुजी ने कहा कि हे मैना! तुम शिव को नहीं जानती हो। वह सबसे बड़े, सबके स्वामी और अनादि हैं। उन्हीं से प्रकृति पुरुष सनकादिक, मैं और ब्रह्मा आदि सब उत्पन्न हुए। वे हमारी बिनती से सगुणरूप धारण करते हैं और सृष्टि के हित चाहने-वाले हैं। उन्होंने मुझको वेद कृपा करके दिये। मैं उन्हीं की सेवा करता हूँ इसी प्रकार बहुत स्तुति की और फिर कहा कि सब को शिव और शिव में सबको समझो। हम तुम सब शिव हैं। बरन् सारी सृष्टि को शिव समझो। जिस प्रकार एक शरीर नाना प्रकार के वस्त्र पहनता है, इसी प्रकार शिव को समझना चाहिए।

शिव की भक्ति बड़ा आनन्द देनेवाली है। वही माता-पिता और भाई हैं। शैवधर्म बड़ी प्रसन्नता प्राप्त करानेवाला और दुःख मिटानेवाला है। मैं सभी कार्य उन्हीं की शक्ति से करता हूँ। उन्हीं के तप से मुझको चक्र प्राप्त हुआ है। शिव-सेवा से सब देवता अमर हो गये हैं। शिव के लिए सम्पूर्ण मुनि संसार को छोड़ देते हैं। हे मैना! तुमको सब धर्मरूप कहते हैं, सो आज मैं तुमको समझाता हूँ। तुम्हारे बड़े भाग्य हैं, जो सदाशिव हम सब समेत तुम्हारे द्वारपर आये हैं। तुम इस बात को अच्छे प्रकार से समझो कि शिव की भक्ति बिना संसार भर का बखेड़ा वृथा है। शिव का तप बहुत सरल है। शिव की भक्ति और तप बिना अन्य तप, व्रत, वेदपठन, विद्या, धन-द्रव्य, दया, दान, सत्य, मौन-धारण, योगादि सब वृथा और निष्फल हैं। ये सब बातें शिव-भक्ति के बिना कुछ भी आनन्द नहीं देतीं। उनके बहुत रूप और असंख्य लीला हैं। जैसे तुमने तब अनेक रूप देखे थे और अब भयानक स्वरूप को भी देख लिया। जो मनुष्य किसी को कुछ देने को कहे और न दे, उसके बराबर और कोई पापी नहीं। मैंने बहुत जीव देखे हैं, पर ऐसा किसी को नहीं देखा, जो देकर ले ले। अब उठो और अपना काम करो। शिव तुम्हारा कल्याण करेंगे। मैं सत्य ही कहता हूँ कि शिव-गिरिजा का अब विवाह होगा।

चौवनवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! विष्णुजी के पवित्र वचन सुनकर मैना को कुछ ढाढ़स हुआ। वह उठकर लज्जापूर्वक विष्णु से बोलीं कि आपने मुझको समझा कर बड़ा धीरज दिया। पर मैं अपने मन से निरुपाय हूँ। वह बात को समझ लेता है, पर उसमें समझने की समाई नहीं। मेरा मन यह काम करने को नहीं चाहता। हे नारद! यह सुनकर श्रीविष्णुजी ने तुमसे कहा

कि तुम शिवजी के पास जाकर विनती करो कि मैना के मन से अपनी माया को खींच लें, जिसमें मैना अपनी दशा पर आ जाय, जिसमें गिरिजा का विवाह हो और सब मनुष्य प्रसन्न हो जायँ। जब तुम शिवजी के चरणों में विष्णु की आज्ञा से पहुँचे तो शिव विष्णु की इच्छा समझ अतिसुन्दर हो गये। एक मुख, दो नेत्र, शरीर का रङ्ग चम्पा के फूल के समान, सब प्रकार से मोहनी-रूप धारण किया। उत्तमोत्तम र और जड़ाऊ कपड़ों से शरीर को सजाया। खिला माथा, जो अग्निसमान चमकता, चन्दन, कस्तूरी, अगर, कुमकुम, इतर आदि लगाये, मणियों से जड़ी हुई अँगूठियाँ हाथों में पहने हुए और आँखों में काजल लगाये, रत्नों से जड़ा हुआ मुकुट रक्खे, जड़ाऊ कुण्डल कानों में विराज-मान, किशोर अवस्था को प्राप्त, मानों संसार भर की सुन्दरता इकट्ठी होकर शिव में स्थित हुई थी। हे नारद! जो परब्रह्म, आदि-मध्य-अन्तरहित, सृष्टि उपजानेवाला है, उसने ऐसे रूप से प्रकट होकर कैसी-कैसी लीला की। हे नारद! तुमने शिवजी का ऐसा स्वरूप देख अति आनन्द माना। तुम स्तुति करने लगे और मैना से कहा कि शिवजी के रूप को देखो। मैना ने शिवजी का रूप देखा तो जो आनन्द उनको प्राप्त हुआ, वह लिखा या वर्णन किया नहीं जा सकता। मैं, विष्णु और इन्द्र आदि शिव की सेवा करने लगे। फिर हर ओर प्रसन्नता छा गई। देवता ऊँचे स्वर से "जय शिव शम्भु" कहने लगे। अप्सरा नाचने लगीं। शङ्ख मृदङ्ग आदि बाजे बजने लगे। मैना ने कहा—हमारे बड़े भाग्य हैं। शिव सब बरात समेत हिमाचल के द्वार को चले।

पचपनवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! वे लोग संसार में बड़े भाग्य-वान् हैं, जो शिवजी की भक्ति रखते हैं। वे लोग भी पूजने योग्य

हैं; क्योंकि वे मुक्त होकर औरों को भी मोक्ष देते हैं। शिवजी की भक्ति तीनों लोकों को भाग्य से प्राप्त होती है। चाहे करोड़ों जन्मों तक तप किया करे, पर शिव को पाना कठिन है। वही सदाशिव देवताओं को साथ लिये हुए संसारी मनुष्यों के समान हिमाचल के द्वार पर चले। तब नगर की सब स्त्रियाँ देखने को चलीं। अति प्रसन्नता से जो जिस दशा में बैठी थीं, उसी प्रकार से वह चलीं। शिवजी को देख परस्पर कहने लगीं कि गिरिजा को तप के कारण ऐसा पति मिला है। सब मिलकर परस्पर गाने लगीं। मैना ने अति प्रसन्नतापूर्वक शिव की आरती उतारी। गिरिजा ने अपनी माता से छिपकर शिव को देखा। जैसा स्वरूप गिरिजा को दिखाई दिया, उसकी कहाँ तक प्रशंसा हो सकती है? ऐसे रूप का गिरिजा ने मन में ध्यान किया। फिर उनको दूसरा स्वरूप दिखाई दिया कि शिर में जटा, पञ्चमुख, शीश में गङ्गाजी की धारा बहती हुई, जैसा कि कई स्थान पर वर्णन हो चुका है। इस प्रकार का रूप गिरिजा को दिखाई दिया। ऐसे स्वरूप को देख गिरिजा ने प्रणाम किया। हिमाचल ने कुल और संसार की रीति के अनुसार बड़ी धूमधाम से सब रीतें पूरी कीं। द्वारचार हुआ। तब गाना, नाचना और फूलों की वर्षा और नाना प्रकार के आनन्द मङ्गल होने लगे। इस रीति के पूर्ण होने पर बरात जनवासे को गई।

छप्पनवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! हिमाचल ने सब प्रकार की सामग्री, दास, दासी, सब कुछ बरात के लिए भेज दिया। गिरिजा ने ध्यान करके बरात में सिद्धि को प्रकट कर दिया, जिससे किसी बात की कमी न रह गई। विष्णु आदि सब देवता हिमाचल की बड़ाई करने लगे, पर यह न जाना कि यह सब

सिद्धि गिरिजा की है। किन्तु शिव इस बात को जान गये और मन में अति प्रसन्न हुए। फिर मैंने हिमाचल के पास आकर कह दिया कि अब विलम्ब मत करो, लग्न का मुहूर्त आ पहुँचा है। हिमाचल ने प्रसन्न होकर अपने पुरोहित को बुलाया। पण्डित वेद पढ़ते हुए नाना प्रकार के बाजे बजवाते हुए चले और शिवजी से विनय की कि अब आप हमारे घर चलें। तब मैं शिव सहित हिमाचल के घर को गया। हम सब देवता जाकर उचित स्थानों पर बैठे और गिरिजा को भीतर से बुलवाया। जब सबने गिरिजा को आते हुए देखा तो प्रणाम किया। गिरिजा को उत्तम स्थान पर बैठाकर विवाह की सब रीतें होने लगीं। गिरिजा को सब प्रकार के भूषण पहनाये गये। दोनों ओर से दान आदि बहुत हुआ। जिसको जो इच्छा थी, वही उसको मिला। उस समय बड़ा आनन्द और मङ्गलाचार हुआ। सबकी जिह्वा से "जय शिव गिरिजा" निकलता था। स्त्रियाँ मङ्गलगीत गाती थीं। फिर बरात चलकर जनवासे में आई। तब हर प्रकार के भोजन परोसे गये। हिमाचल ने छप्पन प्रकार के भोजन अपने घर में बनवाये और सँदेसा भेजा कि भोजन करने को बरात आवे। सब बरात चली। हिमाचल ने सबके पाँव धोये। जब शिव के चरण धोने लगे तो प्रसन्नता से विह्वल हो गये, क्योंकि उन्होंने यह विचारा कि ये वही चरण हैं, जिनका विष्णु और ब्रह्मा ध्यान करते हैं। अच्छी सोने की चौकी पर बैठाया और रसोईदार भोजन लाने लगे। हर प्रकार के स्वादिष्ठ भोजन सामने रक्खे गये। वे भोजन चारों प्रकार के थे, जिनमें छहो रसों का स्वाद था। देवता और मुनि आदि पहले पाँच ग्रास खाकर फिर भोजन करने लगे। स्त्रियों ने गालियाँ गाईं, जिनमें वे सबके नाम लेती थीं। बराती प्रसन्न होकर बहुत धीरे धीरे भोजन करते थे। जब भोजन

कर चुके, तब पान बाँटे गये। हिमाचल ने सबके आगे बहुत विनय की। बरात बिदा होकर जनवासे में आई। जब हमने विवाह की शुभ लग्न पहले के विचार के अनुसार देखी तो हिमाचल से विवाह का विचार कह दिया। हिमाचल ने अपना एक लड़का शिवजी के लाने को भेज दिया। शिवजी देवता और मुनियों सहित तुरन्त चले। नाना प्रकार के बाजे बजने लगे। नाच होने लगा। आकाश से फूलों की वर्षा हुई। ऊँचे स्वर से वेद पढ़े गये। उस समय का आनन्द करोड़ों जिह्वाओं से भी वर्णन नहीं हो सकता।

सत्तावनवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! उस समय सबको प्रसन्नता थी कि शिवजी का विवाह अपने नयनों से देखेंगे। शिवजी की सुन्दरता ऐसी थी कि मैं और विष्णुजी देखकर बहुत अचम्भे में हुए। मैना ने शिवजी की आरती की। शिव भीतर गये। देवता और मुनि आदि भी जाकर भीतर बैठे। वे शिवजी के मुखचन्द्र को चकोर की भाँति देखने लगे। उस समय मँड़वे के चारों ओर की धरती चार प्रकार से पवित्र की गई। उसके नीचे सिंहासन के ऊपर शिवजी बैठे। गिरिजा आईं। वह सोलहो शृङ्गार किये सखियों को साथ लिये थीं। उनको देखकर कौन स्तुति करने की शक्ति रखता है? विष्णुजी और हम सब देवताओं ने हाथ जोड़ गिरिजा को प्रणाम किया। मुनि आदि ने शुभ आशीष दी। दोनों ओर के मुनियों ने पहले गणपति और गौरी का पूजन किया। फिर और रीतें पूरी करने लगे। हे नारद! पञ्च देवता अनादि हैं, और पाँचों को बराबर जानकर पाँचों की पूजा करनी चाहिए। जिस प्रकार वेद में विवाह की रीतें लिखी हैं, उसी प्रकार हिमाचल ने कीं। मैना

ने बहुत महीन और उत्तम चीर शिवजी को दिये। दो उसी प्रकार के गिरिजा को दिये। दो आप पहने। गिरिजा हिमाचल के दाहनी ओर आकर बैठीं। शिव गिरिजा के सामने बैठे। मुनीश्वरों ने वेद पढ़ा। मैना भी कन्यादान के समय आईं। पुरोहित दूसरे पक्ष का गोत्र-नाम पूछने लगे और अपने कुल का कहने लगे। हिमाचल ने गर्ग विष्णु और मुझसे कहा कि अब आप लोग कन्यादान करा दीजिये। पर हम लोग शिवजी का गोत्रोच्चारण न कर सके। विवश होकर चुप हो रहे। तब हिमाचल ने शिवजी से कहा कि अपना गोत्र और कुल वर्णन करो; क्योंकि इसके विना कन्यादान नहीं हो सकता। शिवजी ने लीला करके कुछ मुख से न कहा, चुप हो गये। तब सब लोग आश्चर्य करने लगे। सबको बड़ा दुःख हुआ; क्योंकि आशा टूट गई। हिमाचल का यह वचन और हठ किसी को न भाया। परस्पर एक दूसरे को देखने लगे। शिवजी की लीला किसी ने न जानी। गिरिजा सबसे अधिक अपने पति के मुख को देख चिन्तित हुईं और शिव का ध्यान किया। शिवजी ने गिरिजा की ऐसी चिन्ता जानकर नारद पर अपनी इच्छा प्रकट की। नारद तुरन्त हँसकर अपना बीणा बजाने लगे। यह दशा देख और भी सबको अचम्भा हुआ। हिमाचल मन में अति अप्रसन्न हुए। सब लोगों ने नारद को मना किया कि यह क्या करते हो। दुःख में बीणा बजाने का कौन समय है। नारद बोले—तुमने जो शिवजी का गोत्र और कुल पूछा है, सो हमने शिवजी की सैन के अनुसार उत्तर दिया; अर्थात् शिवजी का कुल और गोत्र नाद है। नाद ही से शिव स्थित हैं। शिव का शरीर नादरूपी है और नादपूर्ण शिव हैं। शिव का कुल और गोत्र ब्रह्मा, विष्णु और

हम सब कोई नहीं जानता। मनुष्य कौन उसकी बात कर सकता है ? तुम तो मूर्खों के समान बातें करते हो। जिस शिव के एक दिन में असंख्य विष्णु और ब्रह्मा बीत जाते हैं, वह गिरिजा के तप और ध्यान से तुम्हारे पुत्र के समान हो गये। शिव शरीर-सहित, शरीर-रहित, निष्कुल, सकुल, अगोत्र, सगोत्र, सब कुछ हैं। ऐसे शिवजी को भक्ति विना कोई नहीं जान सकता। अब समय जाता है, तुरन्त कन्यादान कर दो। यही बात सबने हिमाचल से कही। हिमाचल ने कुश और जल लेकर कन्यादान कर दिया और गिरिजा का हाथ शिवजी के हाथ में पकड़ा दिया। इससे हिमाचल की तीनों लोक में कीर्ति हुई। शिव ने गिरिजा का हाथ पकड़ा। यही विवाह की रीति लोक में प्रसिद्ध हुई।

अट्ठावनवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद ! उस समय सबके मन में आनन्द उपजा। दासी सेवक चाकर पारितोषिक से भरपूर हुए। पुरोहित गिरिजा को शिवके वामभाग में बैठाकर होम करने लगे। उत्तम रीति से भाँवरें होने लगीं, जिनको देखकर कौन ऐसा था जिसको अति आनन्द न प्राप्त हुआ हो। तब शिवजी ने ऐसा चरित्र किया कि भाँवरें फिरते हुए गिरिजा का एक अँगूठा कपड़े के हट जाने से मेरी दृष्टि में पड़ गया। मैंने भावीवश उसको काम की दृष्टि से देखा। यद्यपि मैंने सँभाला, पर मेरा वीर्य धरता पर गिर पड़ा, उससे असंख्य वटुक और जटाधारी तेजस्वी उपजे। वे मेरी स्तुति करके शिव के सामने खड़े हुए। शिव ने उनको देखकर बड़े क्रोध से त्रिशूल उठा लिया। उस समय सब देवता, मुनि आदि काँप उठे और हाथ जोड़कर सब शिवजी की स्तुति करने लगे। सबने मिलकर जब बिनती की तब शिवजी प्रसन्न होकर कहने लगे कि अच्छा ब्रह्माजी, तुम

सुखपूर्वक अपना कार्य करो। हम अप्रसन्न नहीं हैं। मैंने सब वटुकों को सूर्य को सौंप कर कहा कि तुम सब इनकी सेवा में रहा करो। वे सूर्य की सेवा में ब्रह्मचारी रहकर वेद के बड़े जाननेवाले हुए। इसके उपरान्त जो विवाह का कार्य शेष रह गया था, वह मैंने सब करा दिया। फिर हिमाचल ने हम सबको जो उचित था, दिया। शिव को रत्नआदि और हर प्रकार का धन-द्रव्य दहेज में दिया। उदारता का ऐसा हाथ खोला कि उस समय कोई भिक्षुक और मंगन न रहा। बिनती पढ़ी गई, फूलों की वर्षा हुई, बाजे आदि बजे और नाच-गान से संसार में प्रसन्नता छा गई। हम सब तो बासस्थान को चले आये और स्त्रियाँ शिव को घर के भीतर ले जाकर सब रीतें पूरी करने लगीं। उन स्त्रियों ने शिव के साथ नाना प्रकार के हास्य किये। फिर शिव-गिरिजा को अन्तःपुर में ले गईं। तब चारों ओर जय जय का शब्द व्याप्त हो गया। सबने आयु और धन की वृद्धि के आशीर्वाद दिये।

उनसठवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! सब रीतें पूरी होने के उपरान्त स्त्रियाँ शिव और गिरिजा को अन्तःपुर में ले गईं और उत्तम शय्या पर अच्छे-अच्छे बिछौने बिछाकर दोनों को बैठाला। तिरछी दृष्टि और बाँकी नज़र से सब स्त्रियाँ देखने लगीं। उस समय शिव और गिरिजा के स्वरूप का, जो कपड़ों और भूषणों से सजा था, वर्णन नहीं हो सकता। सब देवपत्नियाँ शिव के निकट गईं, जिनमें सावित्री मेरी स्त्री और जाह्नवी, सती, लक्ष्मी, सरस्वती, अगस्त्य की स्त्री, गौतम की स्त्री अहल्या, तुलसी, स्वाहा, रोहिणी, शतरूपा, संज्ञावती, अदिति और सोलहों संसार की माता, जो अपनी कृपा [illegible] संसार के दुःख का नाश कर देती हैं, तथा सब देवताओं की पुत्रियाँ थीं। इन सबने आकर चारों ओर से शिव को घेर लिया।

पहिले सरस्वती ने कहा कि हे देवताओं के देवता ! तुमने प्राण के समान स्त्री पाई। अपनी प्यारी के मुख को देखो। लक्ष्मी ने कहा कि हे देवताओं के देवता ! सब लज्जा दूर करके अपनी प्यारी को हृदय से लगा लो। जिनके विना तुम्हारा जीवन दुखी था, अब उनके साथ भली भाँति विहार करो। फिर सावित्री ने कहा कि तुम भोजन करके अपनी प्यारी को भोजन कराकर पान खिलाओ और अपनी स्त्री को पाकर प्रसन्न रहो। तुम तो बड़े कामी हो। जाह्नवी बोलीं कि हे कामी महापराक्रमी ! बाज़ार से अच्छी कंघी लाकर अपने हाथ से अपनी प्यारी के बालों को सुधारा करो, इसमें बड़ा आनन्द मिलता है। अदिति ने कहा कि हे काम के मद भरे हुए शिव ! गिरिजा को आनन्द से रक्खो और बहुत प्यार करो; क्योंकि स्त्रियों को इससे अधिक आनन्द नहीं है। अति प्रीति से उनके दुःख दूर करो। शची बोलीं—हे शिवजी ! सब सुन्दरों के राजा कामदेव के वश हो जिनके शरीर को लिये चारों ओर संसार में फिरे हो और लज्जा दूर करके भस्म को शरीर में लगाये घूमते रहे, उन सती को अब तुमने पा लिया। इससे अधिक तुमको कौन सिद्धि प्राप्त होगी ? अब गिरिजा से भली भाँति विहार करो। लोपामुद्रा ने कहा कि अच्छे-अच्छे भोजन खाकर, उत्तमोत्तम अन्तःपुर में पान चबा-चबा कर सोने की अच्छी रीति अङ्गीकार करो। यह बात स्त्रियों को अति प्रसन्नता देनेवाली है। हमने तुमको गिरिजा से मिला दिया, यद्यपि यह बात मैना मानती न थीं। अब भली भाँति भेंटें कीजिये। अहल्या बोलीं कि तुमने बुढ़ापा छोड़ किशोर अवस्था को धारण किया और स्त्री के निमित्त बहुत उपाय किये। तुमने बहुत युक्तियाँ करके जाया पाई। तुमको शुभ हो। तुलसी बोलीं कि हाँ तुमने तो स्त्री को छोड़कर कामदेव को भस्म कर दिया

था और बड़े संसार के त्यागी और कामरहित बन गये थे; फिर तुमने क्यों अरुन्धती को सिखाकर भेजा? स्वाहा ने कहा—वाह-वाह, स्त्री के वचन सुनकर लज्जित मत होना। जो वह कोई ढिठाई सैन लाड़ दुलार की बातें कहे तो उसका बुरा न मानना; क्योंकि यही रीति है। रोहिणी बोलीं—तुम तो कामशास्त्र के बहुत ज्ञाता हो। अपनी स्त्री के समीप रहकर अपना काम करो और स्त्रियों के कामरूपी समुद्र में पैरकर पार हो। वसुन्धरा ने कहा कि तुम सब जानते हो। स्त्री के मनोरथ को समझकर उसकी इच्छा पूरी करो, जिसमें भेंट से वियोग का दुःख दूर हो जाय। शतरूपा बोलीं कि भूखा खाने के विना तृप्त नहीं होता, यह छिपी हुई बात जानकर प्यारी के साथ रमण करो। शङ्खा ने कहा कि अब गिरिजा को शिव के साथ भेज दो, जहाँ अच्छा मन्दिर पुष्पों से सजा हो और वहाँ रत्नों का दीपक जलता हो।

इतना कह ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! शिव ऐसी ऐसी हास्य की बातें सुनकर अति लज्जित हुए और कहा कि हम तुम सब स्त्रियों के हाथ जोड़ते हैं और विनय करते हैं कि हमारे समीप ऐसी बातें मत कहो। तुम तो संसार की माता हो, हम तुम्हारे पुत्र के तुल्य हैं। ऐसा हलकापन तुमको उचित नहीं। यह वचन सुनकर सब स्त्रियाँ लज्जित हो गईं और चित्र समान चुप होकर रह गईं। उस समय शिव को प्रसन्न पाकर रति बोली कि हे शिवजी! तुमने तो अपनी स्त्री को पाया और प्रसन्न हुए, पर तुमने मेरे पति को वृथा ही जला दिया। अब आशा रखती हूँ कि मेरे पति को जिला दीजियेगा। इस समय सारे संसार में मेरे विना सबको आनन्द है। यह कह रति रोने लगी, जिससे सबको बड़ा दुःख हुआ। रति, जो अपने पति की जली हुई भस्म बाँधे थी, उसको खोलकर शिवजी के आगे खड़ी हो गई। रति का

रोना सुनकर सब स्त्रियाँ रोने लगीं। शिव ने रति का रोना और देवपत्नियों का शब्द सुनकर एक बार अमृतदृष्टि से देख दिया, जिससे तुरन्त कामदेव अपनी भस्म से उत्पन्न हो गया। रति अति प्रसन्न हुई और कामदेव शिवजी की स्तुति करने लगा। शिवजी ने कहा कि तुम कुछ शोक मत करो और बाहर बरात में जा बैठो। कामदेव ने जनवासे में जाकर मुझको और विष्णुजी को प्रणाम किया। मैंने अशीष दी कि तुम शिव और गिरिजा के प्यारे हो। अब तुमको कोई भय नहीं। कामदेव वहीं स्थित हुआ। शिवजी ने गिरिजा को अपने वामभाग में बैठाकर भोजन कराया और आप भी भोजन किया। फिर स्त्रियाँ अति प्रसन्नता से शिवजी और गिरिजा को मुख्य अन्तःपुर में ले गईं, जो नाना प्रकार की विचित्र वस्तु और रत्नादि से भूषित था। उसको अपने हाथ से विश्वकर्मा ने बनाया था। दोनों ने एक ही जड़ाऊ सेज पर बैठकर पान खाया। शिवजी इधर-उधर मन्दिर को देखने लगे। देखा, वहाँ स्वर्ण का दीपदान और सोने के कलश, उत्तमोत्तम सोने के शीशे ठौर-ठौर पर रक्खे थे। चारों ओर मोतियों की झालरें लगी हुई थीं। चन्दन, कस्तूरी, अगर आदि से मन्दिर सुगन्धित हो रहा था। विष्णु-लोक, ब्रह्मलोक, इन्द्रलोक और गोलोक, जिसमें रासमण्डल गोपियों का हो रहा था, उनके चित्र लिखे थे। कहीं पर कैलास पर्वत बना हुआ था, जहाँ बुढ़ापे और मौत का भय नहीं। ऐसी-ऐसी चीजें देखकर शिव अति प्रसन्न हुए। वहाँ पर शिव और गिरिजा ने नाना प्रकार के विहार किये। जब प्रभात हुआ तो चारों ओर से बाजे बजने लगे और देवता, मुनि आदि पूर्ववत् जयकार आनन्द करने लगे। विष्णुजी ने धर्मराज से कहा कि तुम जाकर किसी उपाय से शिवजी को निद्रा से जगाकर उठाओ।

धर्मराज ने जाकर कहा कि महाराज, कृपा करके उठिये और जनवासे में चलकर सबको आनन्द दीजिये। शिवजी धर्मराज की यह बात सुनकर हँसे और कहा--तुम चलो। फिर बिछौने पर से उठकर लज्जा से शिर नवाये चलने की इच्छा की। बड़ों की आज्ञा पाकर अपने जनवासे को मन में हँसते हुए चले।

साठवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! जब शिव जनवासे में गये, तब हमने सब देवता आदि को बुला लिया और सबने मिलकर शिव को प्रणाम किया। फिर विष्णु और मैंने उच्च स्वर से कहा कि हे नारद और सप्तऋषियो! तुमने बड़ी कृपा की। केवल तुम्हारी कृपा से विवाह हुआ, जिससे आज के दिन कितना आनन्द फैल रहा है। फिर विष्णु और मैंने बहुत सा दान दिया और हिमाचल से बिदा माँगी। हिमाचल बहुत लोगों समेत आकर विनय करने लगा कि हे देवतो! मुझको मत छोड़ो। यद्यपि मुझसे आप लोगों की कुछ सेवा न बन पड़ी, सेवा तो क्या, मैं तो आपके चरण भी न धो सका। मैं अति लज्जित हूँ। केवल झूठा नाम ज्यवनार को करके वृथा ही आपके आहार-विहार का विघ्नकर्ता हुआ। केवल ढाख के पत्ते आप लोगों के आगे रखकर आपका समय वृथा गँवाया। यहाँ तक कि पुष्प भी आप लोगों की भेंट न कर सका। मैं अति लज्जित हूँ। आशा करता हूँ कि आप मेरी छुटाई का विचार न करके फिर मेरे गृह को पवित्र कीजियेगा। इसके उपरान्त मैं और विष्णुजी और सब देवताओं ने कहा कि तुमको धन्य है। हमने ऐसा आनन्द कहीं नहीं पाया। इस प्रकार का मनहरण ठौर और भोजन कहीं नहीं मिला। तुम कल्पवृक्ष हो। ऋद्धि-सिद्धि तुम्हारी चेरी हैं। तुम्हारे घर जगदम्बा उपजीं। तुम्हारे समान संसार में और कौन है? तुम धन्य हो। तुम्हारी सभा

और नगर धन्य है, जहाँ शिवजी आकर सुशोभित हुए। इसी प्रकार दोनों ओर से बड़े नम्रता के वचन कहे गये। फिर हिमाचल बरात को अपने घर भोजन कराने को ले गये और बरात को भोजन कराने लगे। स्त्रियाँ गालियाँ गाने लगीं, जिनका आशय यह था कि हे शिवजी! यद्यपि तुम अपनी सम्पूर्ण सामग्री अशुभ रखते हो, पर अपने भक्तों को सब कुछ देते हो। शिव ने ये वचन सुन वरदान दिया कि जो इसको पढ़ेगा, वह सर्वदा प्रसन्न रहेगा।

इकसठवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! इस प्रकार तीन दिन तक हिमाचल ने बिनती करके बरात को जाने न दिया। चौथे दिन मैंने पश्चिम मुख से शिव गिरिजा को बिठलाकर होम कराया और लखौर, सेंदुर, चोभी, जुवे और गोली आदि की जो रीतें शेष थीं, वे सब पूरी की गईं। फिर अभिषेक किया गया। सबने असीसें दीं। फिर सब बरात को भोजन दिया गया। जनवासे में आकर रातभर सब देवता आदि ने हिमाचल की स्तुति में भोर कर दिया। जब प्रभात को हिमाचल से बिदा माँगी तो हिमाचल अति विनयपूर्वक आज्ञा न देकर कई दिन तक बरात को ठहराये रहे। हिमाचल के शील और प्रीति की अधिकता से किसी को यह इच्छा न हुई कि ऐसी संगति छोड़ दें। सबने वहाँ के रहने को और संगति को उत्तम जाना। जब कुछ दिनों पीछे बिदा होने का वचन मुख पर लाये तो हिमाचल अपने को वियोग का दुःख उठाने में असमर्थ समझकर चुप हो रहे। देवताओं ने बहुत समझाकर हिमाचल की बहुत स्तुति की और कहा कि शिव परब्रह्म, जिनके हम सेवक हैं, तुम्हारे घर आये। तुमसे अधिक संसार में कौन भाग्यवान् है? यह कह सब

देवता और मुनि आदि दुःख की अधिकता से लौट आये और कोई किसी से कुछ न कह सका। निदान निरुपाय होकर हिमाचल ने लज्जा से एक सभा इकट्ठी कर सबसे कहा कि शिव बिदा होनेवाले हैं। यह सुन सबके चेत जाते रहे और सब मुरझा गये। पर हिमाचल ने गुरु की आज्ञा से सब प्रकार की सामग्री उपस्थित कर बरात को घर के भीतर बुला लिया। बरात के लोग आये। मैंने शिव और गिरिजा को बीच में बैठा दिया। फिर गौरी-गणपति की पूजा कराकर सब काम जो करने के योग्य थे, पूरे करा दिये। हिमाचल ने दहेज में पकवान, फल, हाथी, घोड़, रथ, दासी, दास, गौ आदि इतने दिये, जिनकी संख्या नहीं हो सकती। इसके उपरान्त हिमाचल ने मैना और सब परिवार समेत खड़े होकर हाथ जोड़ विनय की कि हमारे बड़े भाग्य से गिरिजा जैसी पुत्री हमारे घर उपजी, जिससे हमारा कुल भर पवित्र हो गया। मुझको आशा है कि जो ढिठाई या अपराध मुझसे हुआ हो, वह आप लोग क्षमा करें। यह सुनकर सब देवता बोल उठे कि हे हिमाचल ! तुम मुक्त हो गये; क्योंकि शिवजी ने तुम पर दया की है और क्योंकि तुमने गिरिजा को शिवजी के साथ ब्याह दिया, यह हम पर बड़ी कृपा हुई। इसी प्रकार देवताओं ने मैना की बड़ी प्रशंसा की। फिर शिव और गिरिजा के गुणों का वर्णन होने लगा।

बासठवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद ! हिमाचल और मैना समेत सब परिवार बार-बार शिवजी की स्तुति करने लगा। फिर सब बरात बास-स्थान में आई और हम सब बिदा होने के लिए हिमाचल के द्वार पर गये। शिवजी हिमाचल के घर के भीतर गये, जहाँ सब स्त्रियाँ इकट्ठी होकर शिव को बिदा करने लगीं।

शिवजी ने कहा कि सब बरात बिदा हो गई, मुझे भी आज्ञा दो कि बिदा हो जाऊँ। यह सुन मैना ने बड़े प्रेम के साथ शिवजी को गिरिजा सौंपी और कहा कि यह गिरिजा मुझे प्राण से भी अधिक प्रिय है, और अभी इसकी छोटी अवस्था है, यह अति कोमलाङ्गी है। इसको संसार की रीति अब तक मालूम नहीं। बहुत सीधी है। आप इसको प्रीति और कृपा से रक्खें। इसके अपराध क्षमा करें। मैं तुम्हारे निछावर होती हूँ, इसको अपनी दासी जान प्रसन्न रखना। यह कह शिवजी के चरण पकड़ मोहित हो गई। शिवजी बोले कि तुम और हिमाचल धन्य हो, जिनकी संसार में सब स्तुति करते हैं। तुम अपने कुल परिवार समेत मुक्ति पाओगे। देखो, हमको भक्तजन बैर भय प्रीति भक्ति और सम्बन्ध हर प्रकार से पाते हैं। यह कह और मैना से बिदा हो शिवजी हिमाचल के समीप आये और हाथ जोड़ खड़े हो बिदा माँगी। हिमाचल अति प्रेम और भक्ति से आँसू बहाते हुए कहने लगे कि मेरे अपराध क्षमा करना और मुझे अपना चेरा समझ सब दुःख दूर करना। यह कह शिवजी को बिदा किया। बरात बड़ी धूमधाम से चली। सब प्रकार के बाजे बजने लगे।

तिरसठवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! शिवजी तो इस तरह बिदा होकर नगर के बाहर स्थित हुए, उधर मुनियों ने हिमाचल से कहा कि अब गिरिजा को भी बिदा कीजिये। जब यह सन्देश भीतर मैना के पास भेजा तो मैना प्रीतिसागर में डूब गई। नगर भर की स्त्रियों को बुलाया। वे सब सज-सजाकर गिरिजा को बिदा करने आईं। मैना ने गिरिजा को स्नान कराकर विचित्र वस्त्राभूषणों से अलंकृत किया। सब स्त्रियाँ गिरिजा के भाग्य का बखान करने लगीं। फिर ब्राह्मणों की स्त्रियों ने गिरिजा को पातिव्रत

धर्म की शिक्षा दी और कहा—हे गिरिजे ! अपने पति की सेवा लोक में अति आनन्द देनेवाली है। तुम रात-दिन पति की सेवा में लगी रहना। इसके समान स्त्री के लिए दूसरा तप नहीं है। यद्यपि माता-पिता अपनी संतान के बड़े हितैषी हैं, पर वे अपनी संतान को मुक्ति नहीं दे सकते। संसार में चार वस्तुएँ अति सुखदायक हैं। पहला प्रियतम, दूसरा धर्म, तीसरी स्त्री, चौथा सन्तोष। पर इन चारों की परीक्षा आपत्तिकाल में हो सकती है। वेद कहते हैं कि अपना पति चाहे मूर्ख, रोगी, दरिद्री, लँगड़ा, काना, निर्दय, व्यभिचारी, छली, धूर्त, कठोर या नम्र हो अथवा उसमें किसी प्रकार का दोष हो, तो भी स्त्री को उचित है कि उसे शिव और विष्णु के समान समझे। यह स्त्रियों के लिए मुक्ति का बड़ा द्वार है। जो स्त्रियाँ अपने पति का सम्मान नहीं करतीं, वे निस्सन्देह सीधी नरक में जाती हैं। उनको कोई भी करोड़ों कल्प तक नरक से नहीं निकाल सकता। इसलिए स्त्री को सब छोड़ केवल अपने पति की सेवा करनी उचित है। स्त्री को उचित है कि मन, कर्म, वचन, इन तीनों से अपने पति की सेवा करे। उसके लिए यही बड़ा धर्म, तप, व्रत, योग, जप आदि है। वेदों में लिखा है कि चार प्रकार की पतिव्रता स्त्रियाँ होती हैं। पहली उत्तम वह है, जो स्वप्न में भी दूसरे पुरुष का मन में विचार न लावे। दूसरी मध्यम, जो दूसरे पुरुष को अपने पुत्र व पिता व भाई के समान समझे। तीसरी निकृष्ट, जो अपने धर्म का विचार करके दूसरे पुरुष की संगति से बची रहे। चौथी अति अधम, जो अपने पति व कुल के भय से दूसरे की संगति से बच जावे। और समय का भय न करना, यह भी चौथे प्रकार की स्त्री में गिना गया है। पतिव्रता स्त्रियों की बड़ी प्रतिष्ठा है। जो स्त्री अपने पति को छोड़ यारों के साथ भोग करे, वह असंख्य

कल्प तक रौरव नरक में बास पाती हैं। वे पुंश्चली स्त्रियाँ केवल एक क्षण के आनन्द के निमित्त बहुत युगों तक नरक के दुःख उठा पछिताती हैं। स्त्री से चाहे करोड़ों पाप हुए हों, पर वह केवल अपने पतिव्रत धर्म से परम पद पाती हैं। शिवजी जितनी स्त्रियों पर कृपा करते रहे हैं, उतनी दूसरों पर नहीं। यह भी प्रकट हो कि और सब धर्म प्रयास बिना प्राप्त नहीं होते, पर स्त्रियों का धर्म परिश्रम-रहित है; क्योंकि वह अपने पति की सेवा से मोक्ष प्राप्त करती हैं। जो स्त्रियाँ अपने पति के विरुद्ध होती हैं, वे निस्सन्देह नारकी हैं। उनकी पहचान यह है कि वे दूसरा जन्म धारण कर युवावस्था में ही विधवा हो जाती हैं या पति-सहित भी हैं, पर उसी प्रकार के पापों को भोगती हैं। यद्यपि स्त्री की जाति भ्रष्ट प्रसिद्ध है, पर जो स्त्रियाँ अपने पति की सेवा करती हैं, वे पवित्र हैं। वेद भी पतिव्रता स्त्रियों की बड़ाई करते हैं। उसकी समानता संसार में किसी को प्राप्त नहीं है। स्त्री को उचित है कि पहिले अपने पति को भोजन कराकर पीछे आप खावे और पति को सुलाने के पीछे आप सोवे। उसको बिठलाकर आप बैठे। अपने पति से किसी अवस्था में क्रोधित न हो और न अपने पति का नाम मुख पर लावे। जब पति बुलावे, अपने घर के सब काम छोड़ उसके पास जावे और हाथ जोड़ विनय करे कि क्यों आपने इस दासी को स्मरण किया है? फिर जो पति आज्ञा दे, उसको हठ बिना पूरा करे। द्वार पर देर तक खड़ी न रहे और अपने पति के सब धन-द्रव्य की रक्षा करे। कोई बस्तु अपने पति की आज्ञा बिना अपने आप न दे। आप पति का जूठा खावे और कोई भी व्रत पति की आज्ञा बिना न रक्खे। किसी नाच-गाने की सभा को न देखे। ऋतु के दिनों में अपना मुख तीन दिन तक पति को न

दिखावे। जब तक स्नान कर पवित्र न हो जावे, तब तक कोई शब्द अपने पति को न सुनावे। स्नान कर, पवित्र हो या तो अपने पति के कमलमुख को या जो पति न हो तो पति का स्मरण कर सूर्य को देखे। इससे पति की आयु बढ़ती है। सदा अपने को अलंकृत रक्खे और नेत्रों में काजल लगाये रहे। बुरी स्त्रियों से प्रीति और संगति न रक्खे। अपने मुख से पति की निन्दा की बात न निकाले। एकान्त में न रहे। दूसरे के घर जाकर नङ्गी न हो। न ढिठाई करे। जहाँ अपने पति की प्रसन्नता और इच्छा देखे, वहाँ अधिक आप भी प्रीति बढ़ावे और अपने पति को किसी समय में न छोड़े। आपत्तिकाल में भी पति को एकसा ही देखे। जो घर में कोई वस्तु कम हो जाय तो अपने पति से न कहे। पर ऐसी युक्ति करे, जिससे उसका पति जान जाय। ऐसी रीति पकड़े, जिससे पति को परिश्रम न पड़े। यदि किसी तीर्थ-यात्रा की इच्छा हो तो अपने पति के चरणों को धोकर जल पी ले; क्योंकि उसके लिये उसका पति विष्णु और महादेवजी से भी श्रेष्ठ है। जो स्त्री अपने पति की इच्छा बिना व्रत आदि करती है, वह अपने पति की आयु को कम करती है और आप नरक में जाती है। जो अपने पति को क्रोधित होकर उत्तर देती है, वह स्यारिन होकर वन में रहती है। स्त्री को उचित है कि पति से ऊँची जगह पर न बैठे और न किसी स्त्री की बात करे। झूठ और बुरे वचन मुख से न निकाले। लड़ाई-बखेड़े को तो अपने पास न आने दे। जो किसी समय उसका पति मारपीट करे तो स्त्री को क्रोध न करना चाहिए और न भागना चाहिए। कदाचित् स्त्री क्रोध में पति के मारे जाने का उद्योग करे तो दूसरे जन्म में शेरनी होती है। जो स्त्री अपने पति को छोड़ आप अकेले मिष्ठान्न भोजन करे, वह मेढ़कनी होती है। जो स्त्री अपने

स्वामी की दृष्टि बचाकर दूसरे मनुष्य पर काम की दृष्टि डाले, वह कानी व कुरूपिणी आदि होती है। जो स्त्री अपने भर्ता को बाहर से आते देख आगे ले, नाना प्रकार की सेवा करे और अच्छे मीठे वचनों से प्रसन्न करे, उसको हर जन्म में बहुत ही आनन्द मिलता है। मानों उस स्त्री ने संसारभर को अपने ऊपर प्रसन्न कर लिया। देखो, अत्रि ब्राह्मण की स्त्री अनसूया ने इस धर्म से कितना आनन्द उठाया और वराह मुनि को अपने तेज से जलाकर दूसरे एक ब्राह्मण को जिलाया। एक कथा पतिव्रताधर्म की मुनि कहते हैं कि एक तपस्वी तप करते थे। एक बगली ने उनके शिरपर विष्ठा कर दी। जब तपस्वी ने ऊपर देख दिया, तो उसी समय बगली जलकर भस्म हो गई। तपस्वी ने जाना कि हमारा तप पूर्ण हो गया। इसी विचार से तप को छोड़ चलते-फिरते एक पतिव्रता स्त्री के द्वार पर आये। उसने तपस्वी की बड़ी सेवा की और द्वार पर तपस्वी को ठहराकर आप घर में दान के लिए वस्तु लेने गई। संयोग से उसके पति ने घर में किसी काम को कहा। वह उसी कार्य में लग गई और ब्राह्मण की बात भूल गई। जब वह पति की सेवा कर चुकी तो दान लेकर द्वार पर आई। उसको देख तपस्वी ने क्रोधित होकर शाप देने की इच्छा की। स्त्री ने कहा कि मुझको भय नहीं है। क्या मैं बगली हूँ? इतना क्रोध क्यों करते हो? इतना सुन तपस्वी का अहंकार जाता रहा। उसने बारम्बार प्रशंसा कर इस बात को निश्चय जाना कि पतिव्रतधर्म सब धर्मों से बड़ा है। इसलिए हे गिरिजे! तुम इस बात पर भली भाँति विश्वास करो कि संसार में पति से बड़ा स्त्री के लिए कोई देवता नहीं है।

चौंसठवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! मैना ने बहुत सी बातें इसी प्रकार

की गिरिजा को सुनाकर फिर उनको बिदा करने की इच्छा की। गिरिजा के वियोग का दुःख स्मरणकर अतिदुखी हुईं। गिरिजा को बार बार लिपटाकर फिर छोड़ दें और फिर लिपटा लें। इसी प्रकार शिवजी की सेवा के लिए बारम्बार कहती हुई रोने लगीं। कहा कि दूसरे के फन्दे में पड़कर कुछ आनन्द नहीं मिलता। गिरिजा भी प्रीति से चरणों पर गिर पड़ीं और मूर्च्छित हो गईं। मैना ने उन्हें अपनी छाती से लिपटा-लिया। फिर गिरिजा की सखियाँ गिरिजा को मैना से छुड़ाकर ले चलीं। इसी प्रकार गिरिजा हरएक से बिदा होकर आप रोती और दूसरों को रुलाती चलीं। यद्यपि सब स्त्री पुरुष प्रेम के वश में थे, पर गिरिजा की सखियों को बहुत ही दुःख था। उस समय मानों वियोग रूप ही रखकर हिमाचल पर्वत पर स्थित हुआ। ऐसी-ऐसी बातें कहकर गिरिजा रोती थीं, जिनको सुनकर बड़े धैर्यवान् अधीर होते थे। यहाँ तक कि पशु-पक्षी भी रोने लगे। हिमाचल को भी बड़ा दुःख हुआ। यद्यपि बहुत गम्भीरता की, पर सह न सके। वह भी रोने लगे। कोई पण्डित ज्ञानी शेष न रहा, जिसको उस समय सिवा रोने पीटने के कुछ ज्ञान रहा हो। तब ब्राह्मणों ने हिमाचल और उनके मित्रों से कहा कि शुभ समय जाता है, वेग ही बिदा करो। हिमाचल ने निरुपाय होकर गिरिजा को पालकी पर सवार कराकर स्त्रियों का धर्म सिखाया। मैना आदि सब स्त्रियाँ और पुरुष एकमति होकर गिरिजा को आशिष देने लगे। हिमाचल ने वे दासियाँ जिनको गिरिजा चाहती थीं, शिवरानी को दे डालीं। जितने तोता, कोकिला, सारिका आदि मधुरवाणी के पक्षी गिरिजा के थे, सब साथ कर दिये। सब गिरिजा को देकर बिदा किया। गिरिजा के चलने के समय मार्ग में शुभ शकुन हुए तब बाजे बजने लगे

और प्रसन्नता की सब बातें दिखाई देने लगीं। धन-द्रव्य बहुत लुटाया गया। हिमाचल और शिवजी की ओर से जिनको उचित था, हाथी-घोड़े आदि धन समेत दिये गये। हिमाचल ने चलने के समय अपने पुत्र समेत बिनती की कि हम कुछ दूर तक आपके साथ चलेंगे। जब कुछ दूर तक गये तो देवताओं ने हिमाचल को बिदा किया। हिमाचल यह कहकर कि मुझे तीनों लोकों में बड़ाई प्राप्त हुई और सबको प्रणाम कर बिदा हुए। शिवजी से विनय की कि मुझे आप अपनी भक्ति कृपा करके दीजिये और बड़ी स्तुति की। शिवजी ने प्रसन्न होकर हिमाचल को बिदा किया। हिमाचल के यहाँ जितने बुलाये हुए लोग आये थे, वे भी बिदा हुए। विन्ध्यपर्वत ने हिमाचल से कहा कि तुम शिवजी से सम्बन्ध करके हम सबसे श्रेष्ठ हुए। जब शिव कैलास में बरात समेत पहुँचे, तब हर प्रकार के आनन्द की सामग्री इकट्ठी हुई। बाजे बजने लगे और शिवजी की आरती उतारी गई। शुभ लग्न पाकर शिव-गिरिजा ने मन्दिर में प्रवेश किया।

पैंसठवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! मन्दिर में प्रवेश करने के उपरान्त सब स्त्रियाँ इकट्ठी होकर शिव-गिरिजा की आरती उतारने लगीं। नाच, गाना और फूलों की वर्षा होने लगी। विष्णु और मैं, सबने दोनों का पूजन किया। हम सबको ऐसा आनन्द प्राप्त हुआ, जैसे गूँगे को वचन, दरिद्री को धन, अन्धे को नेत्र, योगी को योग और रोगी को अमृत प्राप्त होने से होता है। वरन् इससे करोड़ गुनी अधिक प्रसन्नता हुई। हम सबने अलग-अलग स्तुति की, जिससे शिव अति प्रसन्न हुए। सबको उत्तम-उत्तम भोजन दिया। इसी प्रकार कई दिन तक हम कैलास पर्वत पर रहे। फिर बिदा होने की आज्ञा

माँगकर यह विनय की कि जो हम सबका मनोरथ है, वह आप भली प्रकार जानते हैं। क्रमशः सब बिदा हुए। शिवजी ने विष्णु और मुझसे कहा कि हमको तुमसे अधिक कोई प्रिय नहीं है। तुम्हारे कहने से मैंने गिरिजा के साथ विवाह किया। अब तुम अपने लोक को जाओ। तुम्हारे सब काम पूर्ण होंगे। तारक दैत्य वेग ही यमलोक में जावेगा। तुम सब देवताओं को निर्भय कर दो और हमारी सेवा में कोई बात न भूलना। यह कह शिवजी हँसे और चुप हो रहे। विष्णु और मैं भी हँसकर बड़े आनन्द से "जय जय शिव शम्भु" कहते हुए बड़ी स्तुति करके चले। बरात के चले जाने के उपरान्त शिव-गण उनकी सेवा करने लगे। शिवजी संसार के पिता और गिरिजा संसार की माता हैं। हम उनका शृङ्गार क्या वर्णन करें। शिव समान संसार में और कौन सहायक है। उन्होंने परब्रह्म होकर संसार के दुःख दूर करने को विवाह किया कि उनकी यह लीला कह-सुनकर संसारी जीव मोक्ष प्राप्त करें। यह शिव-गिरिजा का विवाह अति मङ्गलदायक है। जो इसको न सुने, वह पशु है। इस संसार में मुक्ति मिलने की इससे अधिक और कोई युक्ति नहीं कि शिवजी का यश गावे। यद्यपि उनका यश अनन्त है, पर जितना सुन सके उतना ही उसके लिए उसकी भलाई को बहुत है। जो इस कथा को प्रीतियुक्त सुनेगा, वह प्रसन्न रहकर शिवजी के समान हो जायगा। जो यह कथा दूसरों को सुनावेगा, वह भी आनन्द में रहेगा। जो थोड़े में भी थोड़ा पढ़ा करेगा, वह भी धन्य होगा। जो चारों वर्ण इस कथा को पढ़ेंगे, वे मुक्ति पावेंगे, उनके सब रोग दूर होंगे और अन्त में मुक्ति मिलेगी।

इति श्रीशिवपुराणे श्रीशिवविलासे तीर्थखण्डे ब्रह्मानारदसंवादे साङ्गोपाङ्ग शिवगिरिजाविवाहवर्णनन्नामतृतीयखण्डस्समाप्तः ॥ ३ ॥

ॐ नमः शिवाय

शिवपुराण भाषा



चतुर्थ खण्ड

पहला अध्याय

इतना सुन शौनक ने कहा कि हे सूतजी! शिवजी का विवाह सुन नारदजी ने ब्रह्मा से फिर क्या पूछा? सूतजी बोले——नारद ने ब्रह्माजी से यह प्रश्न किया कि मैंने बहुत कुछ वेद पुराणों में पढ़ा; पर मेरे मन की उत्सुकता न गई। मैं संसार भर में फिरता रहा। पर शिव का तत्त्वभेद न मिला। फिर विष्णुजी के कहने के अनुसार मैंने आपकी सेवा में पहुँचकर थोड़ासा शिवजी का चरित्र सुना तो मन को उत्तम रीति से पूर्ण धैर्य प्राप्त हुआ और इस बात का पूरा विश्वास हो गया कि शिवजी का चरित्र संसार के लिए बहुत ही आनन्द-मङ्गल देनेवाला है, और शिव के तप बिना संसार में किसी को कुछ भी सुख नहीं मिलता, न किसी के दुःख और रोग नष्ट होते हैं। सो अब मुझे यह इच्छा है कि आप मुझसे यह वर्णन करें कि जब शिवजी गिरिजा के साथ विवाह करके कैलास पर्वत पर सुशोभित हुए तो फिर उन्होंने कौन से भक्तों के सुखदायक चरित्र किये? और हिमाचल ने बिदा होकर कौन-कौन कार्य किये। तारकदैत्य का वध, कार्त्तवीर्य की उत्पत्ति और त्रिपुरासुर का प्रकट होना आदि सब सुना दीजिये; क्योंकि आपसे अधिक तीनों लोक में कोई शैव नहीं है और न आपके बराबर कोई शिवजी के चरित्र जाननेवाला है। यह प्रश्न

सुनकर ब्रह्माजी अति प्रसन्न हुए और शिवजी के प्रेमानन्द में डूब गये। थोड़ी देर के पीछे ब्रह्मा ने कहा कि हे पुत्र! तुमको धन्य है और तुम्हारी बुद्धि धन्य है। मुझको इस बात का भली भाँति विश्वास हुआ कि तुम्हारे मन में शिवजी विराजमान् हैं। अब सुनो। जब सदाशिव गिरिजा को विवाह कर घर लाये, तब देवताओं का मनोरथ समझ तारकासुर के वध की इच्छा की। अर्थात् मैं, विष्णु और सब देवता बिदा होकर अपने घरों को गये और शिवजी की कृपा का भरोसा रक्खा। पर कोई बात प्रकट न हुई। एक समय सब देवता, मुनि आदि एक स्थान पर इकट्ठे हुए और सम्मति करके कहने लगे—बड़े आश्चर्य की बात है कि इतनी देर हुई और हमारा कार्य सिद्ध न हुआ। फिर तेज अर्थात् अग्नि से कहा कि तुम चतुरता से शिवजी के समीप जाकर देखो कि वे क्या कर रहे हैं। इतना समय व्यतीत हो गया, और शिवजी ने हमारी सुधि न ली, इसका कारण क्या है? यह आज्ञा पाकर अग्नि देवता बिदा होकर, कपोत का स्वरूप धारण कर शिवजी के निवास स्थान में पहुँचे। विष्णुजी और मैं, सब देवताओं को साथ लेकर कैलास पर्वत पर गये। हम सब लोग अति चिन्तित और दुखी थे। जब शिवजी को वटवृक्ष के नीचे न देखा तो हम सबने गणों से पूछा कि महाराज सदाशिवजी कहाँ हैं? गणों ने उत्तर दिया कि वे तो बहुत समय से घर के भीतर गिरिजा के पास हैं, बाहर नहीं आये। हम क्या जाने कि शिवजी घर के भीतर क्या करते हैं? यह सुन विष्णुजी, मैं और देवता आदि सदाशिवजी के द्वार पर गये और बहुत ऊँचे शब्द से पुकारा। शिवजी शब्द सुन तुरन्त गिरिजा को छोड़ बाहर आये। जब हमने उनका दर्शन किया तो स्तुति करने लगे। उस समय हमारे मन में शिव के प्रति अनन्त प्रेम उत्पन्न हुआ। यहाँ तक

कि प्रसन्नता से हम सबके आँसू निकल आये। हमने कहा कि हम सब आपकी शरण में आये हैं। आशा है, आप कृपा करके हमारे दुःख को दूर करेंगे। आपको वेद, ब्रह्मा सगुण और निर्गुण करके कहते हैं। आपके कृपाकटाक्ष से हमारा कार्य सुधरता है। हम आपकी महिमा कहाँ तक वर्णन करें? आपकी महिमा नारद शारद, शेष, वेद कहकर थक जाते हैं और अन्त को नेति नेति कहकर अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं। आपकी कृपा से एक मूर्ख मनुष्य भी आपके चरित्र और महिमा का वर्णन कर सकता है। जैसे कि सन्त और वेद कहते हैं। आप भक्ति और तप के अधीन हैं; दया के समुद्र व सब संसार के स्वामी हैं। आप तो निर्गुण और ब्रह्मा विष्णु हर से श्रेष्ठ हैं। गुणनिधि आदि ने आपकी सेवा से जो कुछ पाया, वह उदय से अस्त तक प्रसिद्ध है। कुछ वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। हमारी ओर क्यों दयादृष्टि नहीं करते? हम आपकी शरण में आये हैं। अब हमको बहुत सुख देना चाहिए। आप केवल हम भक्तों के उपकार के लिए सगुण स्वरूप धारण करते हैं। ऐसी स्तुति शिव की करके मैं और विष्णु सब शिव के आगे शिर झुकाये खड़े रहे।

दूसरा अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! यह देवताओं की बनाई हुई स्तुति सुनकर शिवजी ने प्रसन्नता और हर्ष से हँसकर कहा कि तुम सब जिस कार्य के निमित्त आये हो, वह विस्तार से वर्णन करो। यह सुन सब देवताओं ने हाथ जोड़ बिनय की कि अपना सब विहारानन्द छोड़कर देवताओं का काम पूरा करो। शिवजी ने कहा कि अच्छा हमारा वीर्य जाता है, जिसमें शक्ति हो वह धारण कर ले। विष्णु ने अग्नि को सैन की और शिवजी ने विष्णुजी की इच्छा जानकर वह वीर्य पृथ्वी पर डाल दिया। अग्नि ने

देवताओं की आज्ञा पाकर तुरन्त उसको धारण कर लिया। अग्नि कपोत का शरीर धारणकर अपनी चोंच से वीर्य को निगल गये और अपने घर की ओर उड़ गये। हे नारद! शिवजी की माया धन्य है, जिसके वश में संसार भर है। जब शिवजी के लौट जाने में विलम्ब हुआ तो गिरिजा चिन्तित होकर जहाँ सब देवता शिवजी के पास खड़े थे, आईं और इतना क्रोध प्रकट किया कि सब देवता भयभीत हुए। गिरिजा ने होंठ चबाकर कहा कि हे देवताओ! तुम सब अपने स्वार्थ के साथी हो। बिना प्रयोजन तुम किसी के मित्र नहीं। तुमने अपने प्रयोजन के लिए मुझको बाँझ कर दिया। मुझको और शिवजी को अपने पास बैठा रक्खा। कदाचित् मुझे अप्रसन्न करके अपना मनोरथ पूरा हुआ जानते हो तो यह बात स्वप्न में भी न होगी। तुमने हमारे विहार में विघ्न डाला, इससे तुम्हारी सब स्त्रियाँ बाँझ होंगी। यह देवताओं को शाप देकर अग्नि से कहा कि हे भाग्यहीन वह्नि! तुम इतने दुष्ट हो कि तुमने भक्ष्य अभक्ष्य का कुछ विचार न किया अब तुम सब चीज़ें खाया करोगे; क्योंकि तुमने शिवजी का वीर्य खा लिया है। तुमको बहुत दुःख मिलेगा। तुमने शिवजी को नहीं जाना। जब यह शाप गिरिजा ने अग्नि को दिया, तब सब देवता आदि दुःखी हुए। शिव और पार्वती अन्तःपुर में गये। सब देवता आदि ने गर्भ धारण किया। सब अपने उदर को गर्भ से पूरित देख बहुत ही लज्जित और दुखी हुए। निदान सब देवता मिलकर शिवजी की शरण में गये और शिवजी की स्तुति करने लगे कि हे देवताओं के देवता दीनजनों के रक्षक! हमारे ऊपर कृपा करो। तुम्हीं तीनों देवता, त्रिनेत्र, तीनों भुवन के रखनेवाले, तीनों वेद हो। अब हमको मुक्त करो। तुम त्रिमूर्ति, तीनों पद, तीनों धाम, तीनों अग्नि, तीनों गुण और

त्रिशूल धारण करनेवाले हो। इसी प्रकार बहुतसी स्तुति सुन-कर शिवजी प्रकट हुए, जिनको देखकर देवता अति प्रसन्न हुए और फिर स्तुति करके बोले कि हमारी सहायता करो और हमारे दुःख मिटाओ। हम आपके सेवक हैं। हमारे प्राण बचा-इये। अब हमारी लोक में निन्दा होती है। जब से हमने गर्भ धारण किया है, तब से महादुखी हैं। हमारे हृदय जले जाते हैं। यह सुन शिवजी हँस पड़े और कहा कि हे विष्णु और सब देव-ताओ! तुम तुरन्त वीर्य को मुख के मार्ग से बाहर निकाल दो, जिसमें हम प्रसन्न हो जावें। यह आज्ञा पाकर देवताओं ने तुरन्त वीर्य निकाल दिया, जिसका वर्ण स्वर्णवत् मानों सोने का एक पर्वत आकाश तक हो गया। देवता उस दुःख से छूटे। पर अनल को यह शिव ने आज्ञा न दी और उसको कुछ भी आनन्द न हुआ। तब अनल बहुत दुखी होकर शिवजी की स्तुति करने लगे और महादुखी होकर कहने लगे कि हे देवताओं के देवता! अब आपको मेरी सहायता करनी चाहिए। मेरे इस कष्ट को दूर कीजिये और आज्ञा दीजिये कि अब मैं क्या करूँ। आपके चरण छोड़ कहाँ जाऊँ? अब वह उपाय बताइये, जिससे यह मेरा दाह दूर हो। शिवजी ने कहा कि हमारे वीर्य को तुम स्त्रियों को दे दो, जिसमें तुमको शान्ति मिले। अग्नि ने धैर्य धारणकर विनय की कि आपके वीर्य के तेज को स्त्रियाँ क्योंकर धारण कर सकेंगी? तब हे नारद! तुमने शिवजी की आज्ञा से उत्तर दिया कि हे बह्नि! जो स्त्रियाँ माघ मास में आग तापती हों, उनके शरीर में तेज को बाँट दो। यह सुन अग्नि प्रसन्न होकर प्रभात को उठ नदी किनारे आग जलाकर बैठगये। उस समय बहुतसी स्त्रियाँ स्नान करने को उस स्थान पर आईं, क्योंकि सरदी ने उनको बहुत दुःख दिया

था। जलती हुई आग देखकर उनको आग तापने की इच्छा उपजी। पर अरुन्धती ने रहस्य समझकर स्त्रियों को आग तापने से निषेध किया। अरुन्धती ने बहुत मना किया, पर किसी ने न माना। वे आग के पास बैठकर तापने लगीं। तब वह वीर्य धीरे धीरे निकलकर रोम के मार्ग से स्त्रियों के शरीर में प्रवेश करने लगा, जिससे अग्नि का बोझ हलका हुआ और वह अति प्रसन्न होकर दाह को दूर हुआ देख मग्न हो गये। वे स्त्रियाँ तुरन्त गर्भवती हुईं और दुखी होकर अपने घरों को गईं। वहाँ ऋषीश्वरों ने यह दशा देखकर इतना क्रोध किया कि वे स्त्रियाँ पक्षियों के समान उड़ने लगीं। अपनी यह अवस्था देख अति दुखी हो हिमगिरि के ऊपर उन्होंने वीर्य को छोड़ दिया। उसका तेज सोने सा झलकने लगा। फिर उठाकर गङ्गानदी में डाल दिया। जब वह वीर्य देव नदी में पड़ा तो नदी काँप कर बहने से थम गई और शिवजी के वीर्य को न सह कर दुखी हो बड़ा नाद करने लगी। गंगा ने उस वीर्य को अपनी लहरों से किनारे फेंक दिया। उस जगह पर सरपत के बोझ पड़े हुए थे। वहीं वीर्य जाकर रुक गया और लड़के के स्वरूप से प्रकट हुआ। तब आकाश से जय जय शब्द हुआ। उस लड़के का अति सुन्दर स्वरूप, मुख, नाक और हाथ बहुत ही सुडौल, और जलती हुई अग्नि के समान वर्ण, नख परम सुन्दर, चरण, जिनको देख-कर करोड़ों कामदेव लज्जित हो जावें। उसी समय गिरिजा की दोनों छातियों से दुग्ध की धारा बह निकली, जिसको देख शिव और गिरिजा अति प्रसन्न हुए गिरिजा ने शिवजी से कहा कि क्यों यह दूध हमारी छाती से निकला है ? शिवजी ने मुसकराकर कुछ न कहा।

तीसरा अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद ! उस समय सब देवता, सिद्ध, मुनि और गण आदि इकट्ठे होकर बड़ा आनन्द मनाते हुए फूलों की वर्षा करते कैलास पर पहुँचे। अप्सरा नाचती, किन्नर गाने बजाने में लगे। गन्धर्वों ने प्रसन्न होकर आनन्द के बाजे बजा दिये। इसी प्रकार बड़ी धूमधाम से उत्सव हुआ और तीनों लोकों में सबको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। सबके दुःख एकबारगी दूर हो गये। ये सब प्रकार के मङ्गल उस लड़के के उत्पन्न होते ही चारो ओर हुए। उसी समय गाधि के पुत्र बिश्वामित्र, जो प्रसिद्ध ब्राह्मण हैं, तुरन्त वहाँ आये। उन्होंने उस लड़के की स्तुति कर आदर किया। वह बालक विश्वामित्र की बनाई हुई स्तुति सुन प्रसन्न हो कहने लगा कि हमारा संस्कार करो। आज से तुम हमारे पुरोहित हुए। तुम तीनों लोकों के सम्मान के योग्य होगे। विश्वामित्र ने विनयपूर्वक कुछ सोचकर कहा कि मैं ब्राह्मण के घर नहीं उपजा, जो आपका संस्कार करूँ। मैं तो गाधि से, जो क्षत्रिय हैं, उपजा हूँ और नाम मेरा विश्वामित्र है। ये संस्कार आदि कार्य करना ब्राह्मण का धर्म है और उन्हीं के योग्य है। और करावे तो दुःख पाता है। अब आप अपना वृत्तान्त कहिये कि आप बालक रूप धारण किये हुए कौन हैं? आपके माता पिता कौन हैं ? वे दोनों आपको छोड़कर कहाँ चले गये ? क्योंकि मैं तुमको अकेला देखता हूँ। आपका तेज अद्भुत है। आप ब्रह्मचारी या गृहस्थ हैं, या तीनों देवताओं में से कोई हैं, या आपही ब्रह्मस्वरूप बालरूप से प्रकट हुए हैं ? मैंने ऐसा बालक आज तक नहीं देखा। आप तो उपजते ही बातें करके आनन्द देते हैं और अपने संस्कार के लिए मुझे आज्ञा देते हैं। मुझ पर कृपा करके सच-सच कह दीजिए। यह

सुन लड़के ने हँसकर कहा कि हे विश्वामित्र! हम अपना चरित्र तुमसे कहते हैं। पर उसको अभी छिपा रखना और पूछने पर भी किसी से न कहना। हम गिरिजा और शिव के पुत्र हैं और दैत्यों को मारकर तीनों लोकों को आनन्द देनेवाले हैं। फिर अपना प्रताप विस्तार से कह सुनाया, और कहा कि हे विश्वामित्र! तुम ब्रह्मर्षि होकर सब ब्राह्मणों से प्रतिष्ठा पाओगे। यहाँ तक कि ब्रह्मा के पुत्र वशिष्ठ भी तुमको 'ब्रह्मर्षि' कहेंगे। यह हमारा वर है। अब तुम शिव और गिरिजा की लीला को अप्रमेय समझ कर हमारे संस्कार में विचार और विलम्ब न करो। विश्वामित्र ने तुरन्त आज्ञा मानकर संस्कार किया। तब शिवजी के पुत्र ने प्रसन्न होकर विश्वामित्र को वर देकर अपना पुरोहित किया। उसी समय अग्नि ने भी तुरन्त वहाँ पहुँच और शिवजी के पुत्र को देख बड़ा आनन्द पाया और लड़के को प्रणाम किया। विश्वामित्र ने जो बातें कहीं, उनका उत्तर ठीक-ठीक उस बालक से पाया। उस बालक ने अपनी सब कथा अनल से वर्णन की। अग्नि और विश्वामित्र उस लड़के में पूर्ण बल और प्रताप देखकर बहुत प्रसन्न हुए। अग्नि ने अपना लड़का समझकर उसको अपनी गोद में उठाकर छाती से लगा लिया और मुख चूमा। अति प्रीति से उस लड़के को अपना पुत्र माना। अति प्रसन्न होकर बहुत से अपने शस्त्र दिये और शिवजी का पूर्ण तेज उस बालक में स्थापित करके उसे असंख्य वर दिये। और एक साँग अर्थात् शक्ति भी दी और अपना हाथ उसके सिर पर फेरा। तब लड़के ने कहा कि अब आप दोनों जायँ, क्योंकि अभी हमको बहुत से चरित्र करने हैं। यह कह दोनों को बिदा कर आप अनल की दी हुई शक्ति हाथ में ले श्वेतगिरि पर चढ़ गये और अति

भयानक शब्द से नाद किया, मानों प्रलय हुआ चाहता हो। फिर देवताओं के मनोरथ पूर्ण करने के लिए अपनी शक्ति पर्वत के शिखर पर मारी, जिससे तीनों लोकों में हाहाकार मच गया और पर्वत फटकर गिर पड़ा, उसके दो टूक हो गये और बड़ा ही शब्द हुआ। उस समय महावीर दशपद्म राक्षस कालवश हुए जो पहले वहाँ रहते थे और उतने उनके मारने को चले। धरती काँप उठी। तीनों लोक हिल गये। देवता और मुनि चिन्ताकुल होकर कहने लगे कि यह क्या होता है? पर कुछ भेद न समझे। इन्द्र आदि देवता देखने के लिए चले। देखा कि गुह अर्थात् वही लड़का पर्वत पर खड़ा है। उस पर्वत ने मनुष्यों के समान अपना रूप बनाकर इन्द्र से भेंट की और हाथ जोड़ इन्द्र से विनय की कि हे इन्द्र! आप तीनों लोकों के राजा हैं। सृष्टि का पालन आपका धर्म है। इस समय मुझको बड़ा दुःख हुआ है। इस बालक ने मुझको शक्ति मारकर ऐसा भयानक शब्द किया कि सब जीवों को दुःख पहुँचा, धरती काँप उठी और सब पर्वत वन नदी भी काँप उठे। असंख्य जीव मर गये। यह सब इस बालक ने किया है, जो खड़ा है। नहीं मालूम, यह कौन और किसका पुत्र है। इसने वृथा इतना दुःख मुझे शत्रुता से दिया है। हे इन्द्र! आप इसका जल्दी से वध कर डालें, नहीं तो यह प्रलय ही कर डालेगा। यह सुन इन्द्र ने उस लड़के पर बड़ा क्रोध किया और कुछ छिपा हुआ भेद न जानकर उस बालक के मार डालने की दृढ़ इच्छा की। पर शिवजी की लीला से इन्द्र भी चूका। इन्द्र ने धावा करके वज्र उसकी दाहिनी कोख में मारा। बस तुरन्त उस स्थान से एक मनुष्य उपजा, जो बल-पराक्रम में बराबर था। उसका नाम शाख रक्खा गया। वह सबके मनोरथ पूरे करता है। शाख ने उपजते ही एक बड़ा भयानक शब्द किया।

इन्द्र ने क्रोधित होकर अपना वज्र बाईं कोख में मार दिया। उससे एक दूसरा मनुष्य उपजा, जिसको शाख कहते हैं। उपजते ही वह भी नाद करने लगा। इन्द्र ने क्रोधित होकर उस बालक के हृदय में अपना वज्र मारा, पर कुछ फल न हुआ और एक व्यक्ति और प्रकट होकर खड़ा हो गया। उसका नाम नैगमेय कहते हैं। वे तीनों पहले बालक के सहायक हो गये। चारो प्रलयकाल की अग्नि के समान प्रकट हुए। उस बालक ने अपने तीनों गणों समेत इन्द्र पर आक्रमण किया। इन्द्र रुद्र का प्रलय करनेवाला तेज उनमें देख निर्बल हो काँप उठे और हाथ जोड़ उनकी शरण में आये। अपने सब शस्त्र फेंक दण्डवत् की। इन्द्र के साथ जो सेना थी, उसने भी उनका आदर और मान करने में कोई बात उठा न रक्खी। उस बालक ने इन्द्र की यह दशा देख कुछ ढाढ़स पाया और इन्द्र को अभय किया। इन्द्र निर्भय होकर प्रसन्न हुए। सब देवताओं ने हाथ जोड़ स्तुति की और कहा कि तुम बालक नहीं हो, बरन् तुम तो ब्रह्म हो। हमने तुम्हारा प्रताप नहीं जाना। अहंकार से हमारी यह दशा हुई। अब तुमको न पहचान कर ग्लानिपूर्वक देखा। कृपा करके हमारा सब अपराध क्षमा कर दो। हम शरण में हैं। हमको अपनी शरण में लीजिये। हमको इस बात का निश्चय है कि तुम ब्रह्मरूप हो। किसी भक्त पर प्रसन्न होकर तुमने अवतार लिया है। अब सच कहिये कि आप कौन हैं, किसके पुत्र हैं और क्यों उपजे हैं? तब बालक ने कहा कि हे इन्द्र! वेग ही सिधारो और प्रसन्नतापूर्वक अपना राज्य करो। यह कह बिदा किया और कुछ भी भेद न बताया। इन्द्र अपने राज्य में जा पहुँचे।

चौथा अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! वही स्त्रियाँ जिनका हम पहिले वर्णन कर चुके हैं, उसी समय स्नान के निमित्त उस नदी के तट पर आ पहुँचीं। सुन्दर बालक देख उस बालक के निकट चली आईं। बालक को अति सुन्दर पाकर हर स्त्री का मन चाहा कि इसको लेना चाहिए। सबने उठा लेने की इच्छा की और कहने लगीं कि यह बालक मेरा है, मैं इसे लूँगी। यह मेरे गर्भ से उपजा है। सब परस्पर झगड़ने लगीं। बालक ने उनके झगड़े को इस प्रकार से दूर किया कि सबकी छातियों से दूध पिया। इससे वे माता के समान हो गईं। उसके असंख्य नाम रक्खे गये—पार्वतीनन्दन, सेनानी, पावकभू, स्कन्द, गङ्गासुत, शरजन्मा, षण्मुख, गुह आदि। फिर उन स्त्रियों ने बालक को अपने घर ले जाकर बड़ा उत्सव मनाया। बेद के अनुसार संस्कार कर्म किये, वेद पढ़ाया। बालक के जन्म का महीना कार्त्तिक की छठ थी। शुभ लग्न और मुहूर्त में उन्होंने जन्म लिया था। स्कन्द ने अपनी माताओं को विचित्र चरित्र दिखलाये। हे नारद! एक दिन ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र आदि सब इन्द्र की सभा में विराजमान थे कि तुमने उचित समय जान कर शिव के ध्यान के उपरान्त स्कन्द के जन्म का वृत्तांत वर्णन किया। देवता बोले—विदित होता है, शिव ने हम पर कृपा की कि अपने लड़के को उपजाया। अब हमारे सब काम पूरे हो गये। हमारी प्रसन्नता का समय आया है। यह बातें हो रही थीं कि स्कन्द अपने साथी लड़कों के साथ खेलते-खेलते उसी स्थान पर पहुँचे। ऐसा तेजस्वी बालक देख मुनियों और देवताओं ने पूछा कि यह कौन और किसका लड़का है? सब कहने लगे कि इसको बुलाकर पूछना चाहिए, इस सुन्दर स्वरूप को देखकर आँखें नहीं अघातीं। उन्होंने लड़के

को बुलाकर कहा कि तुम कौन हो? स्कन्द बोले कि हम लड़के के स्वरूप से शिवजी हैं। शिवजी वही हैं, जो लोक के हित चाहनेवाले हैं और जिनका तुम ध्यान करते हो। उन्हीं शिवजी का रूप हम हैं, जिनको योगीजन ध्यान करके भी नहीं पाते। हमको लोक में गुह कहते हैं। विष्णुजी ने कुछ विचार कर कहा कि जो तुम शिवजी हो तो अपना स्वरूप दिखाओ, हमको इस बात का निश्चय हो कि तुम वास्तव में शिवजी हो। यह सुन कर स्कन्द ने अपने भयानक शरीर में विराट्‌रूप दिखाया, जिसमें करोड़ों ब्रह्माण्ड, इन्द्र, उपेन्द्र वर्तमान थे। सारी सभा रोम-रोम में ब्रह्माण्ड देखकर काँप उठी। घबरा कर विष्णुजी और मैंने शरण-शरण पुकारी और कहा कि वास्तव में आप शिवजी का रूप हैं। अब आप अपना वही रूप धारण कर लीजिये। स्कन्द ने मान लिया और वही रूप धरा। फिर विष्णुजी ने हाथ जोड़ स्तुति की और कहा कि हे षण्मुख, शिव गिरिजा के पुत्र, तुम शिवजी का ही रूप हो। अब हम पर कृपा करो। आज हमने अपना स्वामी पाया। तुम तो अनादि, निर्गुण और सगुण स्वरूप हो। इस समय तुमने स्कन्द अवतार धारण किया। इस प्रकार विष्णु ने बड़ी स्तुति की। मैं और विष्णु स्कन्द को विमान पर चढ़ा कर देवताओं समेत ले चले और शिवजी के मन्दिर की ओर हुए। हर एक के मुख से जय जय शब्द निकलता था। सब प्रकार के बाजे बजते थे। कोई दान करता, कोई गाना गाता था। इस प्रकार आनन्द मनाते हुए कैलास में पहुँचे। स्कन्द को शिवजी के पास ले जाकर खड़ा किया। तब शिवजी गिरिजा को बड़ा आनन्द मिला। गिरिजा के स्तनों से दूध निकल पड़ा और वही दशा हो गई जैसी कि पुत्र के उपजने में होती है। शिवजी ने पूछा कि

यह किसका पुत्र है ? तब हे नारदजी! तुमने यह समझकर कि शिवजी यह चरित्र लीला के निमित्त करते हैं, उत्तर देकर आरम्भ से अन्त तक सब समाचार कह सुनाया। यह सुन शिवजी ने बहुत प्यार करके लड़के को लिया और पार्वतीजी ने गोद में लेकर दूध पिलाया। शिवजी और पार्वतीजी दोनों बहुतही प्रसन्न हुए। सब शिवजीके गण लड़के को गोद में लिये हुए देखकर प्रसन्न होगये और स्कन्द को प्रणाम किया। वीरभद्र, भैरव और नन्दी ने सेवकों के समान प्रणाम किया। विष्णु और मैं और सब देवताओं ने माथा झुकाकर आदर किया। तब विष्णु और मैं और मुख्य मुख्य देवताओं ने शिवजी गिरिजा की पूजा की। पहले विष्णुजी ने स्कन्द का नीराजन किया। फिर लक्ष्मी ने और फिर मैंने अपनी स्त्री सहित किया। फिर इन्द्र ने शची समेत किया। इस प्रकार सब देवता बराबर स्कन्दजी का नीराजन करते गये। तब बड़ा उत्सव हुआ। मुनीश्वर अपना मनोरथ पाते हुए जय-जय करने लगे, बाजे बजे, और सब प्रकार के आनन्द की सामग्री में कोई बात शेष न रही। स्कन्द शिवजी की गोद में खेलने लगे। वासुकि नाग का गला अपने दोनों हाथों से ज़ोर से पकड़ उसके साथ खेलने लगे। वासुकि नाग स्कन्द के चरणों पर लोटता था। शिवजी ने स्कन्दजी का यह चरित्र देखकर बहुत हँसकर गिरिजा की ओर देख दिया। गिरिजा ने भी हँस दिया। तब विष्णु और सब देवताओं ने बिनती की।

पाँचवाँ अध्याय

देवतालोग बोले कि सबके स्वामी, सबके दुःख दूर करनेवाले आप निर्भय करनेवाली युक्ति धारण करो, जिसमें देवताओं की सब भीति दूर हो जाय। आपका केवल कृपाकटाक्ष ही

देवताओं के लिए बहुत है। हम आपकी शरण में आये हैं। हम पर कृपा कीजिये। हमको अपना सेवक जान हमपर कृपा करते रहिये। संसार में जो आपका यश गाते हैं, वे कुछ भी दुःख नहीं पाते। चाहे कोई मनुष्य करोड़ों युक्ति करे, पर विना आपकी भक्ति के मुक्ति नहीं प्राप्त होती। आपने ब्रह्मरूप होकर हम सेवकों के उपकार के निमित्त अवतार धारण किया है। विष्णु, ब्रह्मा और सनकादिक भी आपका ध्यान करते हैं, पर आपको नहीं पाते। हमारे धन्य भाग्य कि हम आपको कैलास पर्वत पर सशरीर प्रत्यक्ष देख रहे हैं। आपने इस समय जो शिशुसा अपना रूप बनाया है, उसको देखकर हमको बड़ी प्रसन्नता प्राप्त होती है। आपकी गति आप ही जानते हैं। इसी तरह देवताओं ने अति नम्रता से बहुत ही स्तुति की। फिर विष्णु से विनय की कि हे शिवजी! हमें आनन्द देने के लिए स्कन्द को आज्ञा दीजिये कि तारक दैत्य का वध करें; क्योंकि इनका अवतार इसीलिए हुआ है। शिवजी ने हँसकर कहा कि हमने तो इसीलिए विवाह किया था। तुम सब जाकर अपना-अपना काम करो। फिर शिवजी और गिरिजा ने अच्छी तरह से स्कन्द को प्यार किया और अति प्रसन्न हुए। फिर देवताओं ने स्कन्द के लिए शिव की आज्ञा लेकर पर्वत के निकट त्वष्टापुर में एक उत्तमोत्तम मन्दिर बनाया, जिसकी सुन्दरता वर्णन नहीं हो सकती। उस मन्दिर में एक स्थान को अच्छी सामग्री से सजाया। उस मन्दिर के बहुत से खम्भे और झालर आदि रत्न और मोतियों से बनाये गये थे। जब वह मन्दिर तैयार हो गया, तब विष्णु ने मुझ समेत सब मुनियों को बुलाकर उस मन्दिर में स्कन्द का अभिषेक किया और सिंहासन पर बैठाया और विष्णु और हम सबों ने उनको संसारभर का और अपना

स्वामी ठहराकर राजतिलक किया और भेंट दी। अच्छे प्रकार से सेवा कर शस्त्र भी भेंट दिये। तब शिव और गिरिजा भी आ गये, ऐसी देवताओं की सभा देख प्रसन्न हुए और अपनी सब सेना स्कन्द को दे दी। पार्वती ने एक कवच सब वस्त्रों पर पहनने का ऐसा दिया, जो शत्रुओं से युद्ध में सब प्रकार के दुःखों से बचाये रक्खे। विष्णु ने वैजयन्तीमाला देकर एक फूलों की माला अपने हाथ से बना कर स्कन्द के कण्ठ में डाल दी। मैंने भी विष्णु के समान स्तुति कर शरीर की रक्षा के निमित्त कई चीज़ें दीं। वरुण ने सवारी के लिए उनको बकरा दिया और मित्रावरुण ने चढ़ने को गरुड़ दिया। अरुण ने ताम्रचूड़ शस्त्र दिया। उस समय चारों ओर आनन्द दिखाई देता था। मैं, विष्णु और सब देवता स्कन्द की स्तुति करने लगे और सब स्कन्द के चरणों पर गिर पड़े।

छठा अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद ! ऐसे समय में एक ब्राह्मण, जिसका नाम नारद था, यज्ञ करता था। वह अजमेध यज्ञ था। उसको एक बकरे की आवश्यकता थी। वह यज्ञ में बलि देने-वाला था। स्कन्द का बकरा, जो वरुण ने दिया था, वह स्कन्द की इच्छा जानकर नारद ब्राह्मण की ओर भाग गया। नारद ने उस बकरे को हर प्रकार से योग्य समझ पकड़ लिया और यज्ञ की सब सामग्री इकट्ठी। की संयोग से वह ब्राह्मण किसी दूसरे ग्राम में किसी कार्य के निमित्त गया। बकरा ब्राह्मण के जाने के उपरान्त मंच उखाड़कर अपने घर भाग गया, और सातों द्वीप पृथ्वी को जीतकर पृथ्वी के नीचे चला और

शेषलोक पर्यन्त पाताल को भी जीत लिया। फिर ऊपर के लोक को चला। प्रथम गले में रस्सी बाँधे हुए स्वर्ग को गया। आकाश को भी जीत लिया। सारे ब्रह्माण्ड पर विजय पाकर विष्णुपुरी में पहुँचा। वहाँ खलबली पड़ गई। वह बकरा बहुत ही विवश हो गया। जब नारद ब्राह्मण घर आया तो देखा कि रस्सी बँधी हुई है, पर वहाँ बकरा नहीं है। तब आश्चर्य में होकर पूछने लगा। सबने उत्तर दिया कि हमने उसे जाते नहीं देखा। न जानिये वह बकरा था या क्या था; क्योंकि उसके शरीर में बड़ा तेज दिखाई देता था, जैसे वह अग्निरूप था। नारद ब्राह्मण अति चिन्तित हुआ। उसने अच्छे बुद्धिमान् पण्डितों को बुलाकर सब वृत्तान्त कह सुनाया और कहा कि आप लोगों की क्या सम्मति है? मेरा तो सब परिश्रम नष्ट हो गया। मैं अब क्या करूँ? सब ब्राह्मण यह चरित्र स्कन्द का समझ कर कहने लगे कि तारक दैत्य के वध के लिए स्कन्द का अवतार हुआ है और देवताओं ने अपने-अपने शस्त्र दिए हैं। तुमको उचित है कि वहाँ जाकर स्कन्द से अपना वृत्तान्त वर्णन करो। नारद चल कर स्कन्द के द्वारे पहुँचा और द्वारपालों से कहा कि तुम स्कन्द से कहो कि ब्राह्मण नारद द्वार पर खड़ा है। द्वारपाल बोला कि कहो, तुम्हारा क्या मनोरथ है? तब नारद ने सब वृत्तान्त वर्णन किया। द्वारपाल ने समय पाकर स्कन्द से बिनती की कि नारद ब्राह्मण हठ से द्वार पर आपके दर्शन के लिए खड़ा हुआ है। स्कन्द हँस कर बोले कि नारद हमारा भक्त है। उसे भीतर लाओ। नारद ने आकर और प्रणाम कर वेद के अनुसार स्तुति की और विनय की कि जो बकरा मैं यज्ञ के निमित्त लाया था, वह भाग गया है। तुम्हारे राज्य में रहकर हमारा यज्ञ रह जाय तो आश्चर्य की बात है। मेरे इस दुःख को

दूर कीजिये। नारद ब्राह्मण के ये वचन सुनकर स्कन्द ने अपने वीरबाहु गण को बुलाया और कहा कि नारद के बकरे को ढूँढ़ दो। जहाँ कहीं तुमको बकरा मिले, पकड़कर तुरन्त लाओ। वीरबाहु यह आज्ञा पाकर अपनी सेना सहित वेग से चला। उसने उस बकरे को तीनों भुवनों और नीचे के लोकों में ढूँढ़ने के बाद विष्णुलोक में उत्पात मचाते पाया। वीरबाहु ने उसके सींगों को पकड़ कर घसीटते हुए स्कन्द को सौंपा। स्कन्द हँसकर बकरे पर चढ़े और अपने वाहन के बल को दिखाने के लिए उसको इतनी सामर्थ्य दी कि मन के समान गति से वह अनायास तीनों भुवनों में फिरा अर्थात् एक मुहूर्त्त भर में तीनों लोकों में घूमकर लौट आया। जब घर पहुँचे तो स्कन्द प्रसन्न होकर वाहन से उतर भीतर गये। तब नारद ब्राह्मण बोला कि महाराज! हमारे बकरे को दे दीजिये। हमारे यज्ञ का समय आ गया है। स्कन्द बोले कि यह बकरा बलि के योग्य नहीं है; क्योंकि हमारे चढ़ने के लिये यही है। जो फल तुम यज्ञ करने से चाहते हो, वह फल हमने तुमको यज्ञ विना दे दिया। यह सुनकर नारद ब्राह्मण हाथ जोड़ स्तुति करने लगा और स्कन्दजी का यश गाता अपने घर चला गया। देवता और मुनि आदि ने स्कन्द की स्तुति करने के उपरान्त यह विनय की कि हमारे ऊपर जो कष्ट है, उसको दूर करो। स्कन्द ने हँसकर कहा कि हे देवताओ! तुम निश्चिन्त रह कर आनन्द करते रहो। जिसने तुम को इतना दुःख दिया है, उसका हम अपने गणों समेत जाकर बध करेंगे और एक निमेष में ही दैत्यों की सेना मार डालेंगे। हम तुमको हर प्रकार से आनन्द देंगे। तुमने जो शिवजी की सेवा की है, उसका फल हम देंगे। जो कुछ हुआ है, वह सब शिवजी की लीला जानो। वे सत्त्व, रज, तम, तीनों गुण धारण करके असंख्य लीला करते

हैं। जब रजोगुण उपजता है, तब दैत्य अधिक हो जाते हैं और राक्षस तमोगुण से बढ़ते हैं। देवता और मुनि सतोगुण से अधिक हो जाते हैं। वे अपने-अपने समय में अपनी-अपनी शक्ति उपजाते हैं। अब सतोगुण उदय होता है, हर प्रकार से असुरों का नाश होगा। यह जानकर तुम सब प्रसन्न रहो। शिवजी अपने भक्तों को बड़ा आनन्द देनेवाले हैं। पर दुष्टों के लिए वे बड़े भयानक हैं। सुनकर सब देवता बहुत प्रसन्न होकर जय-जय कहने लगे और स्कन्द की स्तुति की।

सातवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! स्कन्द से यह वचन सुनकर विष्णु ने देवताओं सहित कहा कि हे स्कन्द! आप शिवजी के पुत्र, वरन् शिवजी ही हैं। असुरों के वन के लिए बड़वाग्नि के समान हैं। तुममें और तुम्हारे पिता में कुछ अन्तर नहीं है। तुम परब्रह्म हो। इसी प्रकार बहुत सी स्तुति की। उस समय गिरिजा, गङ्गा, वह्नि और मुनिपत्नियाँ आदि स्कन्द की माताएँ आकर और अपने पुत्र का इतना प्रभाव देखकर परस्पर झगड़ने लगीं। सब उनको अपना-अपना पुत्र कहने लगीं। तब हे नारद! तुमने जाकर सबको समझाया। तुमने शिवजी की इच्छा से स्कन्द की उत्पत्ति का ठीक-ठीक वृत्तान्त वर्णन कर दिया और कहा कि यह शिवजी व गिरिजा के पुत्र हैं। इन्होंने देवताओं के मनोरथ पूरे करने को अवतार लिया है। यह सुन गिरिजा के सिवा और सब दुखी हुईं। तब तो प्रसन्न होकर स्कन्द ने गङ्गा से कहा कि तुम तो संसार की माता हो और शिवजी की स्त्री। इसी प्रकार से सबको समझा दिया। फिर विष्णुजी और ब्रह्माजी से कहा कि हम दैत्यों का क्षण भर में नाश कर देंगे। कुछ संशय मत करो। हम इसी कार्य के लिए उपजे हैं। हमने आप दैत्यों

को अपना बल देकर इतनी ऊँची पदवी पर पहुँचाया। पर अब उनको अवश्य ही मार डालेंगे; क्योंकि अब वे वेद के विरुद्ध कर्म करने लगे। अब तुम तत्पर हो जाओ और शिवजी की सेवा करो। जो काम या उत्सव करो, उसमें शिवजी की जय प्रसन्न होकर बोलते रहो। यह आज्ञा पाकर एकबारगी सम्पूर्ण देवता आदि शिवजी की जय बोल उठे। सब देवता आदि सेनासहित सजकर स्कन्द के साथ चले। शिवजी गिरिजा और गणों को साथ लेकर कैलास को गये। उस समय तारक ने यह सुनकर और देवताओं के सब उपाय का परिणाम जानकर बड़े क्रोध से देवताओं पर धावा किया और चतुरङ्गिणी सेना सजाकर करोड़ों सेना साथ लिए हुए चला। युद्ध के बाजे बजने लगे। तब हे नारद! तुमने तारक के पास जाकर कहा कि अब तुम्हारे लिए बड़ी आपदा आ पहुँची है; क्योंकि देवता आदि ने शिवजी की सेवा करके तुम्हारे मार डालने का उपाय किया है। सब वृत्तान्त आरम्भ से अन्त तक कहकर सुनाया कि शिवजी को कल्पवृक्ष समान समझो। वे सबको एक ही दृष्टि से देखते हैं और भक्ति सेवा के अधीन रहते हैं। इसलिए तुमको उचित है कि तुम भी कुछ उपाय करो और उसके पीछे देवताओं से युद्ध करो। हमारा वचन झूठ नहीं होता। जो तुम विजय चाहते हो तो हमारा कहा मानो। जो हमारी बात नहीं मानोगे तो तुम्हारा इसी समय अवश्य नाश हो जायगा। मृत्युवश तारकासुर ने नारद की यह बात न मानी और हँसकर नारद से कहा कि तुम विष्णुजी के पास जाकर कह दो कि अब तुम जहाँ तक वीरता दिखा सकते हो, दिखाओ। किसी प्रकार की कुछ कमी न करना। इस दूध पीते बच्चे को अपना अगुआ करके लड़ाई किया चाहते हो। जान पड़ता है, तुम इस युक्ति से मरा चाहते

हो; क्योंकि ऐसी युक्ति से तुम्हारा कार्य न होगा। तुम्हारी वीरता हमने कई बेर देखी है। तुम पराया भरोसा करते हो। पर और के बल से विजय नहीं मिलती; क्योंकि एक मुचकुन्द के बल से तुमने चाहा था कि हम पर प्रबल हो जावें, सो हमने भी उसकी वीरता देख ली है। सब देवताओं को उसके समेत बन्दी में डाल दिया। अब तुम एक छोटे लड़के को साथ लेकर बड़ा युद्ध किया चाहते हो। ऐसी बुद्धि की हीनता के कारण तुम सब साथियों सहित मारे जाओगे। तुमको दिक्पति समेत मार कर मैं त्रिभुवन का निष्कण्टक राज्य करूँगा। हे नारद! तुमने यह बात सुनकर तारक को क्रोधित होकर उत्तर दिया कि हे तारक! अहंकार बड़ा ही दुःख देनेवाला है। जिस मुचकुन्द का तुमने वर्णन किया, वह शिवजी का भक्त है। शिवजी उसके सहायक हैं। जिसके ऊपर शिवजी कृपा करते हैं, वह देवताओं, मुनीश्वरों और मनुष्यों से अधिक शक्ति रखता है। जिसको तुम दूध पीता बालक कहते हो, वह तो प्रलय करनेवाला शिवरूप है। तारक ने क्रोधित होकर फिर कहा कि तुमको वीरों का बल क्या मालूम। तुम वहाँ जाओ, जहाँ से ये बातें सीखकर आये हो। हे नारद! तुम तुरन्त तारक की सभा से उठकर मेरे यहाँ आये और मुझसे तथा विष्णुजी से यह सब समाचार कहा। यह भी कहा कि यह बालक तारकासुर को जीतेगा। मेरा यह वचन सत्य है कि यह शिवजी का लड़का तीनों लोक में निर्भय है। हे नारद! तुम्हारे इस वचन को हम सब सुनकर अति प्रसन्न हुए और युद्ध की इच्छा से शिवजी का ध्यानकर उठ खड़े हुए। स्कन्द को सेनापति बनाकर इन्द्र के हाथी पर चढ़ाया। सब लोकपाल इकट्ठे हुए। भेरी, दुन्दुभी, मृदङ्ग, वीणा, बीन आदि युद्ध के बाजे बजने लगे और गाना नाच होने लगा। अति प्रसन्नता से बड़ा आनन्द

छा गया। स्कन्द इन्द्र को हाथी देकर आप विमान पर सवार हुए और चारों ओर से शिवजी के सुत का जय यह शब्द ऊँचा हुआ। वरुण, इन्द्र, अनल, यमराज, कुबेर, ईशान आदि आठों दिक्पति अपनी सेनासहित युद्ध के उद्योग में तत्पर होगये। विष्णुजी शिवजी का ध्यान करके महा आनन्द को प्राप्त हुए। उनकी सेना का हम वर्णन नहीं कर सकते। वे तो तीनों भुवन के स्वामी हैं। फिर स्कन्द को सबसे आगे करके यह सेना चली। स्कन्द पर्वत से उतरकर अन्तर्वेद में स्थित हुए और उसका मध्य भाग, जो हरबिनया के नाम से प्रसिद्ध है, उसको युद्धस्थल ठहराकर तारकासुर को सन्देश भेजा।

आठवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! तारकासुर अच्छे विमान में छत्र चमर होते हुए आरूढ़ हुआ। सेनासहित युद्धस्थल में पहुँचा। दोनों सेनाएँ भी अन्तर्वेद में पहुँचीं, जिनको मृत्यु तृणवत् भासती थी। दोनों ओर से गढ़ी बनाई गई। एक हाथियों की पंक्ति, दूसरी घोड़ोंकी, तीसरी रथोंकी, चौथी प्यादोंकी क्रम से सजाई गई। दोनों ओर के वीर साँग, शूल, फरसा, पाश, कृपाण, भिन्दिपाल, तोमर, मुद्गर, चक्र, भुशुण्डी, नाराच आदि अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्धस्थल में अपनी वीरता दिखाना चाहते थे। नाना प्रकार के बाजे बजने लगे। चरण प्रशंसा करने लगे। निदान इसी समय दोनों ओर के भटों ने बड़े वेग से युद्ध रचा। देवता और दैत्यों का घोर युद्ध हुआ। दोनों ओर की चतुरङ्गिणी सेना नष्ट हुई। यहाँ तक कि निमेष में यह युद्धस्थल भटों के सब शरीरों से भरकर भयानक होगया। बहुत से वीर पृथ्वी पर गिरकर मार-मार का शब्द उच्चारण करते थे। कोई तलवार से घायल, कोई मुद्गर और गदा से मूर्च्छित था। कइयों

के हृदय में लगकर पाश ने शरीर भरके खण्ड खण्ड कर डाले। कई कबन्ध बन शीशरहित युद्धस्थान में नाचने और खेलने लगे। रक्त की नदी बह चली। भूत, प्रेत, पिशाच आदि ने तृप्त होकर रक्त पिया। गीध, कौआ, चील आदि ने रुचिपूर्वक मांस खाया, रक्त पिया। वेतालों ने आकर हाथियों के शिर उछाले। इसी प्रकार पहले धीरे धीरे देवता और दैत्य मरे। पर कुछ समय के उपरान्त युद्धस्थल प्रलयरूप ही भासने लगा। तारक आप इन्द्र से भिड़ा। अग्नि संह्राद परस्पर लड़े। यमराज के के साथ जम्भ ने युद्ध रचा। निर्ऋति के साथ सम्बल, पवन के साथ पवन, धनपति के साथ बृहत्सेन, उशना के साथ घननाद, सूर्य के साथ सुना और चन्द्रमा के साथ सुलग द्वन्द्वयुद्ध करने लगे। इन्होंने घोर युद्ध किया। दोनों अपनी अपनी विजय चाहते थे; पर कोई परास्त न हुआ। युद्धस्थल उन वृक्षों के समान, जो अग्नि से जलजाते हैं, देखने में भयानक भासता था। तारकासुर ने इन्द्र के हृदय में साँग मारी, जिससे इन्द्र हाथी पर से धरती पर गिर पड़े। इसी प्रकार और दिक्पाति भी दैत्यों से हारकर भाग चले। कोई भी युद्ध में दैत्यों के सम्मुख खड़ा न रहसका। देवताओं की यह पराजय देख मुचकुन्द ने विचार किया कि मुझे देवताओं की सहायता करना उचित है। मैं शिवोपासक हूँ और मेरे सहायक शिवजी हैं। यह सोच वह तारक दैत्य के सम्मुख आया। दोनों युद्ध करते रहे, कोई न हारा। निदान मुचकुन्द ने असि हाथ में लेकर तारकदैत्य के हृदय में मारी। तारक ने हँसकर कहा कि तुम मनुष्य हो, हमको तुम्हारे साथ युद्ध करने में बहुत लज्जा आती है। बड़ा खेद है कि जो शस्त्र तुमने चलाया, उसने कुछ भी हमारे शरीर पर असर न किया। मुचकुन्द बोले कि मैं शिवजी की कृपा से

अब तुझको जीता नहीं छोड़ता। सम्मुख खड़ा हुआ ऐसा कौन दैत्य है, जो मेरे प्रहार को सहे? यह कह उन्होंने तारक के एक असि मारी। तारक के अभी वह लगी न थी कि उसने तुरन्त साँग मारकर मुचकुन्द को घायल कर पृथ्वी पर लिटा दिया। मुचकुन्द ने पृथ्वी से उठ अति क्रोधित हो तारक के वध का विचार कर अपने धनुष को उठा लिया और ब्रह्मास्त्र चढ़ाया। उस समय हे नारद! तुमने मुचकुन्द को मना किया कि यह तुम्हारे हाथ से नहीं मरेगा। मनुष्य के हाथ से इसकी मृत्यु नहीं है। तुम्हारा क्रोध वृथा है। इसको केवल स्कन्द मारेंगे। तुम सब चुप हो रहो। स्कन्दजी का चरित्र देखो। जिस जगह कुछ अपना वश न चले, वहाँ चुप रहना उत्तम है। यह कह तुम देवताओं समेत स्कन्दजी की सेवा में पहुँचे। उनकी स्तुति और पूजा करने लगे। बाजे बजने लगे। उत्सव की सब सामग्री तैयार हुई। जब देवताओं को ऐसा आनन्द करते हुए दैत्यों ने देखा तो महा कुपित हुए और बड़ा नादकर बाणों की वर्षा करने लगे। फिर वीरभद्र महा क्रोध कर युद्धभूमि में आ गये।

नवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! वीरभद्र अपने गणों को साथ लिये हुए युद्ध करने लगे। दोनों ओर से बड़ी चढ़ाई हुई। दोनों ओर से नाना प्रकार के शस्त्र चलाये गये। वीरभद्र ने क्रोध से त्रिशूल हाथ में लिया और इकबारगी झपट कर त्रिशूल को तारक के शरीर में मारकर उसे धरती पर गिरा दिया। तारक क्षणमात्र के उपरान्त चैतन्य हुआ। उसने वीरभद्र के साँग मारी। वीरभद्र ने फिर तारक पर त्रिशूल चलाया। इसी प्रकार बहुत देर तक दोनों ओर से शस्त्र चलते रहे। दैत्य और देवता आदि सब पीछे खड़े रहे। जब बहुत समय तक दोनों में कोई

परास्त न हुआ, तब हे नारद! तुमने जाकर वीरभद्र से कहा कि हमारी बात मानकर लड़ाई को छोड़ दो। यह तुम्हारे हाथ से नहीं मरेगा। तारक बड़ा पराक्रमी वीर है। जब आप शिव इसके साथ युद्ध करेंगे, तब यह मरेगा। वीरभद्र ने तुमसे क्रोधित होकर कहा कि तुम युद्ध और वीरता की बातें क्या जानते हो? तुम तो केवल तप करना जानो। तुमको वीरों का वृत्तान्त सुनाते हैं। उनके चार धर्म होते हैं। पहले जो स्वामी के विना युद्ध करते हैं और अपने प्राणों का मोह न करके भलीभाँति लड़ते हैं। वे प्रथम प्रकार के वीरभद्र हैं। दूसरे, जो स्वामी के साथ युद्ध-स्थान में संसार की लज्जा से मर जाते हैं, वे दूसरे प्रकार के हैं। उनको शूर कहते हैं। तीसरे जो अपने स्वामी के साथ युद्ध से भागकर चले जाते हैं, वे क्रूर हैं। उनको नरक मिलता है। चौथे वे हैं, जो निकम्मे होकर घर में बैठे रहें और उनका स्वामी युद्ध में मारा जाय। वे कायर हैं, उनको कहीं सुख नहीं मिलता। लोक में तो निन्दा और परलोक में एक कल्प पर्यन्त नरक में पड़े रहते हैं। इस समय मैं सत्य-सत्य कहता हूँ कि जो शिवजी मेरे पास आकर मुझको तारक के वध से रोकें तो लाचारी है; नहीं तो आज मैं पृथ्वी को विना तारक के कर दूँगा। यह कह वीरभद्र ने तारक के साथ युद्ध रच त्रिशूल चलाया। दोनों लड़ने लगे। दोनों ओर की सेना भी परस्पर लड़ने लगी। दैत्यों को देवताओं ने बड़ी वीरता से परास्त किया। दैत्य अपनी बहुत सी सेना मरी हुई देख भाग चले। तब तारक महाक्रोधित हुआ। मानों प्रलय कर देगा। एक करोड़ हाथ निकालकर हाथी पर सवार होकर देवताओं के पकड़ने को उनकी सेना के भीतर चला, और असंख्य देवताओं को मार डाला। उसने अपने हाथी को छोड़ दिया। उसके भय से सब हाथी आदि डर गये। तारक ने देवताओं को

जीत लिया। उस समय तारक का तेज कोई सह न सका। सब लोग बड़े दुखी हुए। उसके हाथी ने सब हाथी आदि को मार डाला। यह दशा देखकर विष्णुजी से न रहा गया। उन्होंने तुरन्त चक्र उठाकर तारक के साथ युद्ध कर देवताओं को आनन्द दिया। देवताओं में दूना बल आ गया। विष्णुजी और तारक से घोर युद्ध हुआ, जिसमें दोनों ओर से असंख्य देवता और दैत्य मारे गये। तारक ने बाणों की वर्षा से देवताओं को फिर भयभीत किया। विष्णुजी ने क्रोधित होकर अपना चक्र तारक के ऊपर चलाया। तब पृथ्वी काँप उठी। पर चक्र को तारक के शरीर में जमने का कोई स्थान न मिला। तारक ने अपने गुरु को प्रणाम कर सैकड़ों प्रकार की माया दिखाई। कभी तो वृक्ष, कभी बाण, फिर हाथी, घोड़े, सर्प और नाना प्रकार के शस्त्र आकाश से गिरने लगे। अनेक राक्षस हाथियों के समान चिंघारते उपजे। यह तारक की माया किसी ने न जानी। देवताओं ने भी जाना कि प्रलय हुआ चाहता है। यह विचार वे युद्ध-स्थान से भागकर स्कन्द के पास पहुँचे और अति भयभीत होकर स्कन्द से विनती की कि हम आपकी शरण में आये हैं। आप कृपा करके जल्दी तारक का वध कीजिये। बिना आपके और कोई तारक को मार नहीं सकता। आपका अवतार इसीलिए हुआ है। स्कन्द ने हँसकर देवताओं से कहा कि हमको अपना पराया कुछ नहीं भासता। मैं तो अभी लड़का हूँ। मैं इस बात की परीक्षा करता रहा कि मैं किसी के साथ लड़ूँ, यद्यपि मैं धनुर्विद्या नहीं जानता। हे नारद! तुमने स्कन्द से यह सुनकर उत्तर दिया कि आप तो शिव से उपजे हैं। सृष्टि के रक्षक देवताओं को आपही से सुख है। आप बालक, युवा और वृद्ध नहीं हो। आपका बल वेदों से प्रकट है। तारक ने देवताओं को जीतकर बड़े-बड़े

दुःख दिये हैं, इसलिए आपको तारक का वध कर डालना चाहिए। यह सुन स्कन्द पहले हँसे और फिर क्रोधित हुए। विमान छोड़ अपनी शक्ति को लिए तारक की ओर पैदल जल्दी जल्दी पग उठाते दौड़े। तब तारक ने हँसकर कहा कि इस बालक की आशा पर देवताओं ने अपने बल को नष्ट कर दिया है। वे बड़े बुद्धिहीन हैं। मुझको निश्चय है कि मैं सब देवताओं को मार डालूँगा। यहाँ तक कि इन्द्र और विष्णु भी मेरे आगे से जीवित नहीं जाने पायेंगे। यह कह शक्ति हाथ में लिये हुए स्कन्द से लड़ने को चला। देवताओं से कहा कि हे देवताओ! तुमने युद्धस्थान में बालक को अगुआ बनाया है। तुम बड़े निर्लज्ज हो। इसका फल मैं अब तुमको देता हूँ। जिसकी आशा पर तुम सब रहते हो, वह मेरे भय से भाग जायगा। ये दोनों भाई विष्णु और इन्द्र बड़े छली हैं। खासकर छोटा भाई तो छल में अद्वितीय और माया करने में विख्यात है। इसने बालि के साथ बड़ा छल किया और मधुकैटभ का शीश छल करके काट डाला। फिर अमृत बाँटने के समय कैसा छल किया है। इसने वेद के विरुद्ध स्त्रियों को मार डाला। बालि के वध में धर्म का कुछ विचार न किया। रावण को, जो ब्राह्मण जाति का था, जिसको मारना वेद में मना है, इसने मार डाला और अपनी स्त्री को बिना पाप छोड़ दिया। इसने (परशुराम ने) अपनी माता का शिर काट डाला और अपने कुलगुरु पर कुछ भी दया न की। इसने परस्त्रियों के साथ भोग करके वेद की रीति को छोड़ दिया और अनुचित रीति से विवाह कर कलियुग की चाल चलकर बड़ा ही अधर्म किया। इसी प्रकार बुद्धरूप से सब वेदों की निन्दा करते हुए विष्णु ने कुछ भी विचार न किया। आश्चर्य है कि ऐसे मनुष्य के बल और आशा पर देवताओं ने युद्ध का उद्योग किया। उसका बड़ा

भाई इन्द्र तो बहुत ही बुरा और अनाचारी है। उसने अपने पिता के लड़के को दिति के गर्भ से गिरा दिया और केवल संसार के आनन्द के लिए ऐसे काम करते उसको धर्म का विचार न हुआ। गौतम की स्त्री से भोग किया। वृत्र ब्राह्मण को मार डाला। विश्वरूप के सब पुत्र मार डाले। उसने संसार के आनन्द के निमित्त कैसे-कैसे अधर्म नहीं किये। वेद के धर्म त्याग दिये। इससे इसका तेज हत हो गया। इस समय भी लड़के को अगुआ बनाया है, जो अभी मारा जायगा। यह पाप भी इन्हीं पर पड़ेगा; नहीं तो लड़का भाग जायगा। तारक यह बात देवताओं से कहकर फिर स्कन्द से बोला कि तुम कुछ अहंकार मत करो। यहाँ तुम्हारी कुछ न चलेगी। जो मनुष्य ब्राह्मण का अपमान करता है, उसके धन, प्राण, घर, बल आदि कुछ नहीं रह सकता। अब वेद का वचन सत्य करके सबका विनाश कर डालूँगा। यह कह उसने अपनी साँग को उठाया। हे नारद! यह कहते हुए तारक की शक्ति नष्ट हो गई, क्योंकि बड़ों की निन्दा और उनके कर्म कहने में तुरन्त ही शक्ति क्षीण पड़ जाती है। पर जो सदाशिवजी की इच्छा होती है, वही होता है। शिवजी की माया में फँसकर तारक ने भी ये वचन कहे। संसार में कौन ऐसा है, जिसकी बुद्धि शिवमाया से ठीक रह सकती है? निदान तारक ने अच्छे-अच्छे चुने हुए वीरों को सेनापति बनाकर बाकी सेना को पीछे रक्खा और आप ही स्कन्द और इन्द्र के सामने गया।

दसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! ऐसी शक्ति दिखाते हुए तारक को इन्द्र ने देखा और अपना वज्र मारकर उसको पृथ्वी पर गिरा दिया। पर तारक ने तुरन्त धरती से उठकर इन्द्र को साँग मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया। तब देवताओं की सेना में बड़ा

हाहाकार मचा, क्योंकि उनके राजा की यह दशा हुई। तारक ने इन्द्र को पृथ्वी पर पड़ा हुआ देख अपनी लात से उनके पेट को दबाया और हाथ से वज्र छीन लिया। उसी से इन्द्र को मारा। यह दशा देख स्कन्द ने बड़ा क्रोध किया और अपना त्रिशूल तारक के मारा। तारक त्रिशूल की ताड़ना न सहकर धरती से उठ खड़ा हुआ। फिर उसके प्रहार से स्कन्द घायल होकर धरती पर गिर पड़े। सब देवता हाहाकार करने लगे। पर क्षणमात्र के पीछे स्कन्द उठकर पूर्ववत् सिंहनाद करने लगे। उन्होंने त्रिशूल उठा लिया। तब त्रिशूल बिजली के समान चमक उठा और सब दिशाएँ प्रकाश से पूर्ण हो गईं। सूर्य, चन्द्र और अग्नि के समान प्रकाश को देखकर स्कन्द ने त्रिशूल को रोक लिया और ऊँचे स्वर से शत्रु को ललकारा। तब तारक फिर साँग लेकर सामने आ खड़ा हुआ। देवताओं ने उत्सव के बाजे बजाये। तारक और स्कन्द लड़ने लगे। उस समय अति घोर युद्ध हुआ। दोनों शिर, गला, कटि, जाँघ, पीठ और हृदय में शस्त्र मारते थे। दोनों ओर की सेना ऐसा युद्ध देखकर अति आश्चर्य में हुई। देवताओं की आशा टूट गई। वे सोचने लगे कि तारक को स्कन्द नहीं मार सकेंगे। उसी समय आकाशवाणी हुई कि अभी स्कन्द तारक का वध किये डालते हैं, तुम कुछ सन्देह मत करो। फिर स्कन्द ने अपनी साँग तारक की भुजाओं में मारी। पर तारक ने भी उसका कुछ विचार न किया और अपनी साँग से स्कन्द को घायल करके पृथ्वी पर लिटा दिया। स्कन्द ने सचेत होकर फिर तारक के साँग मारी। इसी प्रकार दोनों युद्ध करने लगे। देव-ताओं को अति चिन्ता हुई। सूर्य का प्रकाश हत हुआ। पवन थम गई। नदी, पर्वत और वनों से भय देनेवाला शब्द होने लगा। धरती काँपने लगी। मानो भूकम्प हुआ है। अग्निदेवता

शान्त पड़ गये। ऐसा संसार में कौन था, जिसको दुःख न हुआ? हिमगिरि, मेरु, श्वेतकोट, उदयाचल, अस्ताचल, मलयगिरि, कैलास, गन्धमादन, मैनाक, विन्ध्याचल, महेन्द्र, मन्दर और हिमालय आदि पर्वत चिन्ता से दुखी थे। ऐसे दुःख की दशा देख स्कन्द बोले—हे पर्वतो! कुछ सन्देह मत करो। तुम्हारे देखते-देखते केवल साँग से मैं तारकासुर दैत्य का वध किये डालता हूँ। इसी प्रकार सब देवताओं आदि से कह शिव गिरिजा का ध्यान किया और तारक का वध करने को साँग अपने हाथ में उठाई, जिसमें श्रीगौरीशङ्कर ने असंख्य तेज और बल डाल दिया। क्रोधित होकर स्कन्द ने तारक के हृदय में साँग मारी। तारक निर्जीव होकर धरती पर गिर पड़ा। फिर स्कन्द ने अपना हाथ उस पर नहीं डाला। जो शिव का तेज तारक के शरीर में था, वह स्कन्द के शरीर में प्रवेश कर गया। तारक की सब सेना भागकर पाताल को गई। इसी प्रकार दैत्यों का पूर्णरूप से वध हुआ, जिससे देवताओं को अति प्रसन्नता प्राप्त हुई। सब देवता, मुनि और गण अति प्रसन्न होकर स्कन्द की स्तुति करने लगे। गन्धर्व, किन्नर, अप्सरा आदि गाने-बजाने लगे। नाना प्रकार के बाजे बजे और सबने बहुत स्तुति करने के उपरान्त विनती की कि हम सबको आपके चरणों की प्रीति दिन-दिन बढ़े। यही वरदान हम आपसे माँगते हैं। देवता और पर्वतों से ऐसी स्तुति सुनकर स्कन्द बोले कि हमने तुम्हारी स्तुति से प्रसन्न होकर तारक का वध किया। आगे के लिये भी तुमसे कहते हैं कि जब कोई तुम पर दुःख पड़ेगा, तब हम तुम्हारे सहायक होंगे। यह बात देवताओं से कहकर पर्वतों से बोले कि तुम सब प्रतिष्ठा के योग्य हो। तपस्वी और मुनि तुम्हारी सेवा करेंगे। तुम्हारे देखने से मनुष्यों

के दुःख दूर होंगे। जो तीर्थ, शिवालय या तपोभूमि तुम पर होगी, वह सब आनन्द और सुख देगी। जो पर्वत हमारी माता के समान उत्पत्ति-स्थान है, वह तपस्वियों को उत्तम फल देकर सब पर्वतों का राजा हो। दूसरे पर्वत भी शिवलिङ्ग के समान पापों को नष्ट किया करें। यह वरदान सुनकर चारों ओर से धन्य-धन्य और जय-जय का शब्द हुआ। देवताओं ने बड़ी स्तुति करके हर प्रकार से स्कन्द की पूजा की।

ग्यारहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! अब उन देवताओं का वृत्तान्त सुनो, जो भागकर पाताल में छिप गये थे। उन दैत्यों में से एक बाण नाम दैत्यों का स्वामी लड़ाई से मुँह मोड़ भाग गया था। वह क्रौञ्चद्वीप में जाकर नाना प्रकार के उपद्रव करने लगा। उसने कई पर्वत फोड़ डाले और कई सघन वन उजाड़ दिये। क्रौञ्च के शिर में एक अपना चरण इस वेग से मारा कि क्रौञ्च पर्वत घबराकर स्कन्द के पास आकर कहने लगा कि इस समय आपने तारक के वध से संसार भर के दुःख छुड़ा दिये हैं, मैं ही अकेला सृष्टि भर में दुखी हूँ। फिर उसने अपना सब वृत्तान्त आदि से अन्त तक कह सुनाया और कहा कि जिसने मुझको दुःख दिया है, उसके साथ आठ कोटि दैत्य हैं। मैं मनुष्य का स्वरूप धारणकर आपकी शरण में न आता तो न जानिये, वह क्या करता। अब आपकी शरण आया हूँ, क्योंकि आपको छोड़ किसके पास जाऊँ? स्कन्द ने यह दैत्यराज की कथा और उसका उत्पात सुन उसके मार डालने की चिन्तना की। साँग हाथ में लेकर शिव-गिरिजा का ध्यान धर उस दैत्य की ओर क्रोध से चलाई। उसके चलने से दशों दिशाओं में असंख्य प्रकाश फैल गया। साँगने क्षण भर में उन दैत्यों को उनके अधि-

पति समेत जला दिया। फिर वह साँग स्कन्द के पास यह कार्य करके लौट आई। स्कन्द ने पर्वत से कहा कि अब तुम अपने घर को लौट जाओ। हमने उस दैत्य को सेनासहित मार डाला। यह सुनकर क्रौञ्च ने स्कन्द की बड़ी स्तुति की और अपने घर को गया। देवताओं ने हर प्रकार से उत्सव किये। फिर स्कन्द ने उसी स्थानपर तीन शिवलिङ्ग स्थापित किये। उनके नाम ये रक्खे–पहला प्रतिज्ञेश्वर कहा, जो कोई इनकी पूजा करेगा, वह तुरन्त अपना मनोरथ पावेगा। दूसरे का नाम कपालेश्वर और तीसरे का कुमारेश्वर रक्खा। इनके लिए यह वरदान दिया कि इनकी पूजासे दोनों लोकों में सुख प्राप्त होगा। इन तीनों के नाम लेने से करोड़ों दुःख मिट जायँगे। और उसी स्थान के निकट एक जयस्तम्भ स्थापित कर एक और शिवलिङ्ग स्तम्भेश्वर भी स्थापित किया, जिनकी पूजासे सब मनोरथ पूरे होते हैं। इन चारों लिङ्गों में शिवजी और देवताओं का तेज स्थित हुआ। एक और शिवलिङ्ग सब देवताओं और मुनीश्वरोंने स्थापितकर उनका नाम रामेश्वर रक्खा, जिनसे प्रजाकी सब कामना सिद्ध होती हैं। इन लिङ्गों के स्थापित होने के उपरान्त बड़ा उत्सव हुआ। चारों ओर जय जय और बम् बम् का शब्द छा गया और देवताओं का सब दुःख मिटगया।

बारहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! इसी समय, जब देवता और दैत्य लड़ाई में लगे और दैत्य स्कन्दजी का तेज न सहकर चारों ओर भागे, उनमें से हम बाण दैत्य का वृत्तान्त तो कह चुके हैं। दूसरा प्रलम्बनाम दैत्य शेष के घर में जाकर दशकोटि सेनासहित बड़ा उपद्रव मचाने लगा। बहुत से मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। शेष के पुत्र ने बाहर निकल प्रलम्ब का

सामना किया। अंत को शेष का पुत्र हार मान गया। उसका नाम कुमुद था। उसने स्कन्द की शरण में आकर स्तुति की और प्रलम्ब के उपद्रव की सब कथा कह सुनाई। कहा कि इसको मार डालो। मैंने और इन्द्र ने भी इस बात को कहा। फिर शेष ने बिनती की कि आप जल्दी इस दैत्य को नष्ट करें। मैं आपकी शरण में आया हूँ। स्कन्द ने यह सुन अपनी शक्ति को उठालिया और शिवजी व गिरिजा का ध्यान करके दैत्य की ओर फेंक दी, जिसके प्रकाश से संसार भर प्रकाशित हो गया। उसने सातों पाताल नाँघ कर वेग ही दसकरोड़ दैत्यों को प्रलम्ब समेत मारकर भस्म कर दिया और फिर उसी प्रकार से स्कन्द के हाथ में आगई। तब स्कन्द ने कुमुद से कहा कि हमारी शक्ति ने प्रलम्ब का नाश कर दिया। अब निर्भय होकर अपने घरको जाओ। शेष आप तो स्कन्द की सेवा में तत्पर रहे और कुमुद लौट गये। हर प्रकार के उत्सव देवताओं ने किये। मैंने और सब देवताओं ने स्कन्द की स्तुति की और कहा कि अभी तो तुम केवल सात दिन के लड़के हो और इस प्रकार से दैत्यों का नाश करते हो। जिस स्थान पर स्कन्द ने देवताओं सहित यह विचार किया वह सप्तीर्थ के नाम से बड़ा तीर्थ प्रसिद्ध हुआ। जिस मार्ग से कि कुमुदनाग धरती को फोड़ कर पाताल में गया था, वह सिद्धकूल के नाम से विख्यात हुआ। उसकी बड़ी महिमा है। जो वहाँ स्नान करते हैं, उनके सब दुःख मिट जाते हैं और अन्त को कैलास पर्वत में स्थान मिलता है। इस प्रकार की और बहुत सी लीला स्कन्दजी ने कीं, जिससे सब दुःख मिट गये और बहुत आनन्द प्राप्त हुआ। स्कन्दजी के चरित्र अति पवित्र हैं। उनके सुनने-सुनाने से मोक्ष प्राप्त होता है।

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारदजी! स्कन्द ने इसी प्रकार के बहुत से चरित्रों से संसार को सुख दिया। देवता स्कन्द से अति प्रसन्न रहकर अति आनन्द से रहने लगे। फिर उन्होंने कहा कि आप कैलास पर्वत पर चलकर रहिये; क्योंकि सबने अपना मनोरथ पा लिया है। स्कन्दजी ने इस बात को मान लिया और विष्णु को तथा मुझको शुभ मुहूर्त देखने की आज्ञा दी। मैंने मुहूर्त देखकर देवताओं सहित स्कन्द से विनय की कि शुभ मुहूर्त आ गया है। स्कन्द प्रसन्न होकर अपने माता-पिता का ध्यान कर चले। उस समय चारों ओर से "जय शिव-गिरिजा" का शब्द सुनाई देने लगा। स्कन्द उत्तम विमान पर सवार होकर स्तुति सुनते हुए चले। पीछे इन्द्र ऐरावत हाथी पर सवार छत्र लेकर तैयार हुए। सब दिग्पाल, सूर्य, चन्द्रमा समेत आगे आगे "जय-जय" शब्द करते हुए चले। शेष सब देवता आदि चारों ओर से स्कन्द के साथ हुए। शिव के पास पहुँच कर सबने दूर से नम्रतापूर्वक खड़े होकर प्रणाम किया। स्कन्द ने शिव के निकट जाकर दण्डवत् की। शिव ने गोद में लेकर उनको छाती से लगाया, मस्तक सूँघा, बार-बार मुख की ओर देखा और शरीर भर में हाथ फेरा। गिरिजा अपने पुत्र के आने का समाचार सुनकर सखियों समेत अपने मन्दिर से उतर आईं और तुरन्त लड़के को गोद में उठा लिया। फिर शिव के बाईं ओर बैठकर बड़े लाड़-प्यार से स्कन्द को हृदय से लगाया। यह शिव-पार्वती की लीला देखकर सब देवता आदि ने अपने-अपने हाथ जोड़कर शिर झुकाकर शिव की बड़ी स्तुति की। कहा कि हे शिव! आपने शिशुरूप से प्रकट होकर तारक का वध किया। तारक अपने परिवार समेत मारा गया। बाण और प्रलम्ब भी

अपनी सब सेना सहित मारे गये। हमें सुख देनेवाले तुम तीनों हो। इसी प्रकार गिरिजा और स्कन्द की भी स्तुति की। फिर प्रणाम कर चुप हो गये। शिव, गिरिजा और स्कन्द यह स्तुति सुन अति प्रसन्न हुए। शिव ने दयादृष्टि से सबको अवलोकन कर कहा कि मैंने केवल तुम्हारे लिए सगुण अवतार लेकर विवाह किया है। यह लड़का मुझे बहुत प्यारा है, जिसने तारक का वध किया। अब तुम अपने-अपने घरों में जाकर प्रसन्न रहो। इसी प्रकार हम तुम्हारे आनन्द के चाहनेवाले हैं; क्योंकि हम भक्त के अधीन रहते हैं। हमारे स्मरण को मत भूलना। हम गिरिजा, पुत्र और गणों सहित तुम्हारे सहायक हैं। यह कह सबको बिदा किया। स्कन्द के कुशलपूर्वक पलट आने के कारण ब्राह्मणों को बहुत दान दिया और बड़ा उत्सव किया। भैरव आदि गण बहुत प्रसन्न हुए। इसी प्रकार योगिनी और गणों ने बड़े-बड़े उत्सव किये। हिमाचल ने स्कन्द को अपनी गोद में बैठाकर बहुत सा दान दिया। वह शिव से बिदा होकर अपने देश को गये। देवता आदि सब अपने-अपने घरों को पहुँचकर आनन्द के बाजे बजाने और पूर्ववत् अपना-अपना कार्य करने लगे। हे नारद! जहाँ तक हमको स्कन्द का वृत्तान्त मालूम है, हमने तुमको सब कह सुनाया। यह चरित्र सब दुःख दूर करनेवाला और आनन्द देनेवाला है। इसके सुनने से सब दुःख और आपदा नष्ट हो जाती हैं, मुक्ति मिलती है, यश बढ़ता है। इस चरित्र के सुनने और सुनानेवाले दोनों परलोक में परमगति पाते हैं। इस चरित्र के सुनने से सौभाग्य बढ़ता है और शिव मिलते हैं। गिरिजा अपने भक्तों की सदा सहायक हैं। हे नारद! और क्या सुना चाहते हो? नारद बोले कि तारक का वध करने के उपरान्त स्कन्द ने जो चरित्र किये, वे वर्णन कीजिये।

चौदहवाँ अध्याय

नारद बोले कि हे ब्रह्माजी ! स्कन्द का चरित्र सुनकर बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई। अब शिव-गिरिजा के और चरित्र वर्णन करिए। मैं आपसे एक प्रश्न करता हूँ। आशा है, आप प्रसन्नता से उत्तर देंगे, अर्थात् आप गणपति का चरित्र सुनाइये कि वह किसके पुत्र हैं ? क्योंकि पञ्चदेव के पूजने की जो आज्ञा है, उसमें एक गणपति भी हैं। वे किस समय से पूजे गये और तीनों लोकों को फिर क्योंकर जीता और क्योंकर प्रसिद्ध हुए ? हाँ, हमने कई बार सुना है कि गणपतिजी गिरिजा के पुत्र हैं। पर मुख्य वृत्तान्त नहीं जानता। शिव के विवाह में आपने कहा था कि गणपति की पूजा की गई और शिव ने नमस्कार किया। मुझे इसमें बड़ा संशय है। ब्रह्माजी बोले कि शिव की माया को कोटि धन्य है। तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया। इससे सारी सृष्टि का उपकार होगा। हम तुमसे गणपति की उत्पत्ति और उनका पद आदि से अन्त तक सुनाते हैं। गणपति विष्णु आदि के समान प्राचीन देवता हैं। शिव परब्रह्म और स्वामी हैं। वह अलग-अलग पाँचों देवताओं में बँटे हुए हैं। उन्होंने बड़ी लीला और चरित्र किये, जिनको हम थोड़ा सा कहते हैं। शिव गिरिजा के साथ विवाह करके अन्तःपुर में विहार करने लगे। शिव और गिरिजा में ऐसा प्रेम बढ़ा कि रात-दिन बीतते कुछ भी जान न पड़े। यह दशा देख सब देवता मेरे पास आये और मैं भी चिन्तित होकर उन सबको साथ लिये हुए विष्णु के पास पहुँचा और स्तुति करने के उपरान्त सब वृत्तान्त कह सुनाया कि शिव दिव्य एक सहस्र वर्ष से विहार कर रहे हैं। नहीं जानते, ऐसे विहार से कैसा पुत्र उपजेगा। आप कहें। यह सुनकर विष्णु बोले कि सब अच्छा और शुभ होगा। कुछ भय मत करो। हे ब्रह्मन् ! हमको यह

युक्ति करनी चाहिए कि किसी उपाय से शिवजी का वीर्य पृथ्वी पर गिर पड़े, जिससे गिरिजा के पुत्र उपजने न पावे। नहीं तो वह ब्रह्माण्ड भर को जला देगा। यह सुनने के उपरान्त मैं तो अपने घर चला गया और देवता कैलास पर्वत को गये। देवताओं ने शिवजी के द्वार पर जाकर बड़ी गोहार की। तब शिवजी बाहर निकल आये। देवताओं ने प्रणाम करके स्तुति की और कहा कि संसार को पवित्र करो। शिवजी देवताओं का मुख्य वृत्तान्त समझ कहने लगे कि मैंने तुम्हारे मनोरथ को समझा है। तुमने वृथा ही मेरे आनन्द में विघ्न डाला। यह बहुत बुरा हुआ। मेरा वीर्य शिर से नीचे को आता है। उसको तुममें से कौन लेता है? यह कह अपना वीर्य पृथ्वी पर फेंक दिया, जिसके तेज से उजियाला हो गया। अग्नि कपोत का रूप धारणकर वीर्य को खा गये और जब उड़कर आकाश को चले तब अपने में उस वीर्य के धारण की शक्ति न पाकर उसे पृथ्वी पर फेंक दिया। पहाड़ भी काँप उठा। इस तरह स्कन्द उपजे, जिनका वृत्तान्त हम पहले वर्णन कर चुके हैं। अब हम गणपति का वृत्तान्त वर्णन करते हैं। अर्थात् उस समय शिवजी ने सब देवताओं से कहा कि तुम वेग ही हमारे पास से भाग जाओ। ऐसा न हो कि गिरिजा इस बात को जानकर तुम पर क्रोध करें। देवता भाग चले और शिवजी उनके भागने का चरित्र देखते रहे। गिरिजा ने आकर महाक्रोध किया, जिससे जान पड़ने लगा कि प्रलय हो जायगा। गिरिजा ने देवताओं को शाप दिया। यद्यपि गिरिजा ने देवताओं को शाप दे दिया, तो भी क्रोध उनका न गया। नेत्र लाल और उनमें आँसू भरे हुए। शरीर बहुत शिथिल, दुःख की अधिकता के कारण वह नखों से भूमि खोदती थीं। शिवजी ने गिरिजा को इतना दुखी पाकर गोद में उठा लिया और बड़ी

विनय की बातें कीं। कहा कि इतनी तुम मुझसे क्यों अप्रसन्न हुई हो ? मेरा कोई अपराध नहीं। यदि अनजान में कोई अपराध हो गया हो तो क्षमा करो। जो कोई तुम्हारा नाम लेता है, उसके सब काम हम पूर्ण कर देते हैं। तुम्हारे बिना मानो हम अङ्गहीन हैं। तुम तो सबकी माता हो। अब तुम्हारे मधुर वचन सुने बिना मुझे आनन्द नहीं। तीनों लोकों के कार्य तो तुम्हारे अधीन हैं। तुम्हारे बिना सब निर्बल हैं। अब प्रसन्न होकर दुःख को दूर करो।

पन्द्रहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! ये शिव के वचन सुन गिरिजा बोलीं कि क्या तुम नहीं जानते, जो दुःख मुझको है। संसार में सन्तान बिना किसी स्त्री को सुख नहीं और न सन्तानहीन होने के बराबर कोई दुःख है। आप सरीखे पति को पाकर भी पुत्रहीन रही, इसी से मुझको किसी समय आनन्द नहीं होता। मेरा पहला जन्म सन्तानरहित बीत गया। अब यह जन्म भी वैसा ही बीता चाहता है। मेरे साथ देवताओं ने यह छल करके इतना दुःख दिया है कि बाँझ होने को पहुँच गई। जो स्त्री संसार में सन्तानहीन है, उसको ब्रह्मा ने वृथा ही उपजाया। संसार के हज़ारों ऐश्वर्यों पर धिक्कार है, जो पुत्र न हो। लोक में उसी समय शुभकर्मों का फल प्राप्त हुआ मालूम होता है, जब शुभगुणयुक्त पुत्र उत्पन्न होता है। यह कह गिरिजा बहुत रोईं। शिव ने गिरिजा को उठाकर हृदय से लगाया और कहा कि हम ऐसी युक्ति बताते हैं जिससे तीनों लोकों में सब कार्य पूर्ण होंगे। मैं, विष्णु और ब्रह्मा सब उसके वश में हैं। हम उसको गुरु अर्थात् गणपति कहते हैं। वह हमारा मुख्य रूप है, जिसकी सेवा से दुःख दूर होकर सुख मिलता है। तुम एक वर्ष पर्यन्त

उनका व्रत करो। तुम्हारा मनोरथ पूरा हो जायगा। उनका नाम आपदा को दूर करनेवाला और आनन्द देनेवाला है। कृष्ण-पक्ष की चौथ को यह व्रत किया जाता है। यह गणेशचौथ व्रत रखने की युक्ति यह है कि व्रत रख पवित्रतापूर्वक चन्द्रमा के उदय होते ही पूजा करे। यह व्रत सब व्रतों का राजा और हर कामना को देनेवाला है। जिस तरह कि सब मन्त्रों में प्रणव, हमारे भक्तों में विष्णु, नदियों में गङ्गा, देवियों में तुम, वर्णों में ब्राह्मण, इन्द्रियों में मन, बड़ों में माता, ऋतुओं में वसन्त, पुरियों में काशी, सहायकों में भाई और पुत्र, नक्षत्रों में चन्द्रमा, दैत्यों में प्रह्लाद, कवियों में शुक्र, अक्षरों में मकार, शस्त्रों में त्रिशूल, मन्त्रगणों में पञ्चाक्षरी, बीजमन्त्रों में प्रणव, पुराणों में भारत, आश्रमों में संन्यास उत्तम है, वैसे ही सब सेवाओं में शिव की भक्ति बड़ी है। इसी प्रकार यह गणेशचौथ का व्रत व्रतों में बहुत बड़ा है। कलियुग में राजा शेषसेन ने इस व्रत को करके बड़ा आनन्द पाया। मनु की पत्नी शतरूपा ने यही व्रत करके दो पुत्र उपजाये। कर्दम की स्त्री ने भी यही व्रत करके कपिलनाम विष्णु अवतार को पाया। वशिष्ठ की स्त्री ने इसी व्रत से शक्ति नामक पुत्र को उपजाया। अदिति ने इसी व्रत के प्रताप से वामन अवतार को पुत्ररूप में पाया। इन्द्राणी ने इसी व्रत के प्रभाव से जयन्त को पाया। अनसूया ने चन्द्रमा को प्राप्त किया। इसी प्रकार और बहुत मनुष्यों ने इसी व्रत से पुत्र प्राप्त किये हैं। हम कहाँ तक वर्णन करें? हे गिरिजे! तुम भी इसी व्रत के प्रभाव से अवश्य पुत्र पाओगी। गिरिजा ने अति प्रसन्न होकर कहा कि बहुत अच्छा, मैं अवश्य ही यह व्रत करूँगी। पर आप इस व्रत के सब नियम कहें। शिवजी बोले कि हे देवि! कृष्णपक्ष की चतुर्थी को शुद्ध

मन से बहुत सबेरे शयन से उठकर स्नान करे और जो कुछ करना उचित है, वह सब करे। फिर व्रत की दृढ़ इच्छा कर यह संकल्प करे कि हे गणेश! हम तुम्हारा व्रत आज करते हैं। हमारा मनोरथ पूरा करना। हम तुम्हारे चरणों की शरण में आये हैं। हे गणपति! व्रत हमारा पूर्ण हो जाय। हमारे दुःख दूर हों। तुम सब कुछ जानते हो। सब फलों के दाता हो। तुमको वेदों ने विघ्नहर्ता कहा है। इस प्रकार संकल्प करके दिन गणपति की वार्ता में व्यतीत करे। जब दिनान्त हो, स्नान कर अपने स्थान पर बैठे और सब पूजा की सामग्री इकट्ठी करे। गणपति की पूजा के निमित्त अच्छा स्थान तैयार करे जिसके चारों ओर केले के खम्भ लगाये गये हों। बड़ी प्रसन्नता से नाना प्रकार के बाजे बजवावे। जब आकाश में चन्द्रमा उदय हो, तुरन्त अर्घ्य दे। गणेश की मूर्ति सोने, चाँदी, ताँबे या गोबर की, जैसी सामर्थ्य हो, बनवावे। उसको रखकर कलश स्थापित करे, जिसके ऊपर दीपक रक्खा हो। ध्यान लगाकर षोडशोपचार से पूजन करे और लाल फूल, कपड़े, चन्दन, कुशं, पुए दूध आदि आगे रखकर फिर आचमन करा दे। अच्छी स्तुति करके प्रेम में मग्न हो प्रणाम करे। इसी प्रकार अपनी भक्ति से गणपति को प्रसन्न कर ले। फिर प्रणाम करके विसर्जन करे और निश्चय करे कि मेरा मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा। वही पुआ पूजा करानेवाले ब्राह्मण को खिलाकर दक्षिणा में चाँदी दे। नहीं तो जैसी अपनी सामर्थ्य हो, ब्राह्मणों को दक्षिणा दे। आप भी मीठा भोजन करे। जो इस प्रकार से गणेश का व्रत करते हैं, उनका मनोरथ पूरा हो जाता है। तुम भी इसी व्रत को करो।

सोलहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! यह वचन सुनकर गिरिजा ने

पूछा कि हे शिवजी! जो आपने गणपति के व्रत में चन्द्रमा को अर्घ्य देना कहा, उसका मुख्य कारण नहीं जाना जाता। शिवजी बोले कि गणेश ने पहले चन्द्रमा को शाप देकर फिर आप कहा कि तुमको प्रथम अर्घ्य दिया जायगा। गिरिजा बोलीं कि इस कथा को विस्तार से कहिये। शिवजी बोले कि हमारी आज्ञा को, जिससे ब्रह्मा सृष्टि रचते हैं, मानकर ब्रह्माने स्वर्ग जाने की इच्छा की और गणपति का एकाग्रचित्त हो पूजन किया। गणपति ने प्रसन्न होकर कहा कि वरदान माँगो। ब्रह्माजी बोले कि हम सृष्टि उपजाना चाहते हैं और उसकी वृद्धि निर्विघ्न चाहते हैं। गणपति ने कहा कि यही होगा। फिर गणपति धीरे धीरे आकाश की ओर चले। जब गणपति चन्द्रमा के मन्दिर में पहुँचे तो पाँव के फिसलने से गिर पड़े। उनका उदर बहुत बड़ा और शरीर स्थूल था। चन्द्रमा देखकर हँस पड़े। गणपतिजी चन्द्रमा को हँसते हुए देख क्रोध से आगबबूला हो गये। उनके नेत्र लाल पड़ गये। उन्होंने चन्द्रमा को यह शाप दिया कि चन्द्रमा तू कलङ्की अपनी सुन्दरता पर गर्व करता है। तू महा मतिहीन है। यही मन में विचारता है कि मैं अति सुन्दर देखने के योग्य हूँ। इसी अहंकार से तू मुझे हँसा। इसका फल तुरन्त मिलेगा। संसार में तू बड़ा दुर्भागी होकर रहेगा। आज से जो कोई तुझको देखेगा, उसको अवश्य ही कुछ कलङ्क लग जायगा। यह शाप देकर गणपति अंतर्द्धान हो गये। चन्द्रमा क्षीणाङ्ग होकर हततेज हो गया। सब देवता और इन्द्र दुखी होकर ब्रह्माजी के पास गये और सब वृत्तान्त वर्णन किया। ब्रह्माजी बोले कि इसमें कुछ बुराई नहीं। चन्द्रमा ने अपने किये का फल पाया है। गणपति का शाप झूठ नहीं हो सकता। इस-लिए तुम सब गणपति की शरण में जाओ। निश्चय ही वह अपने

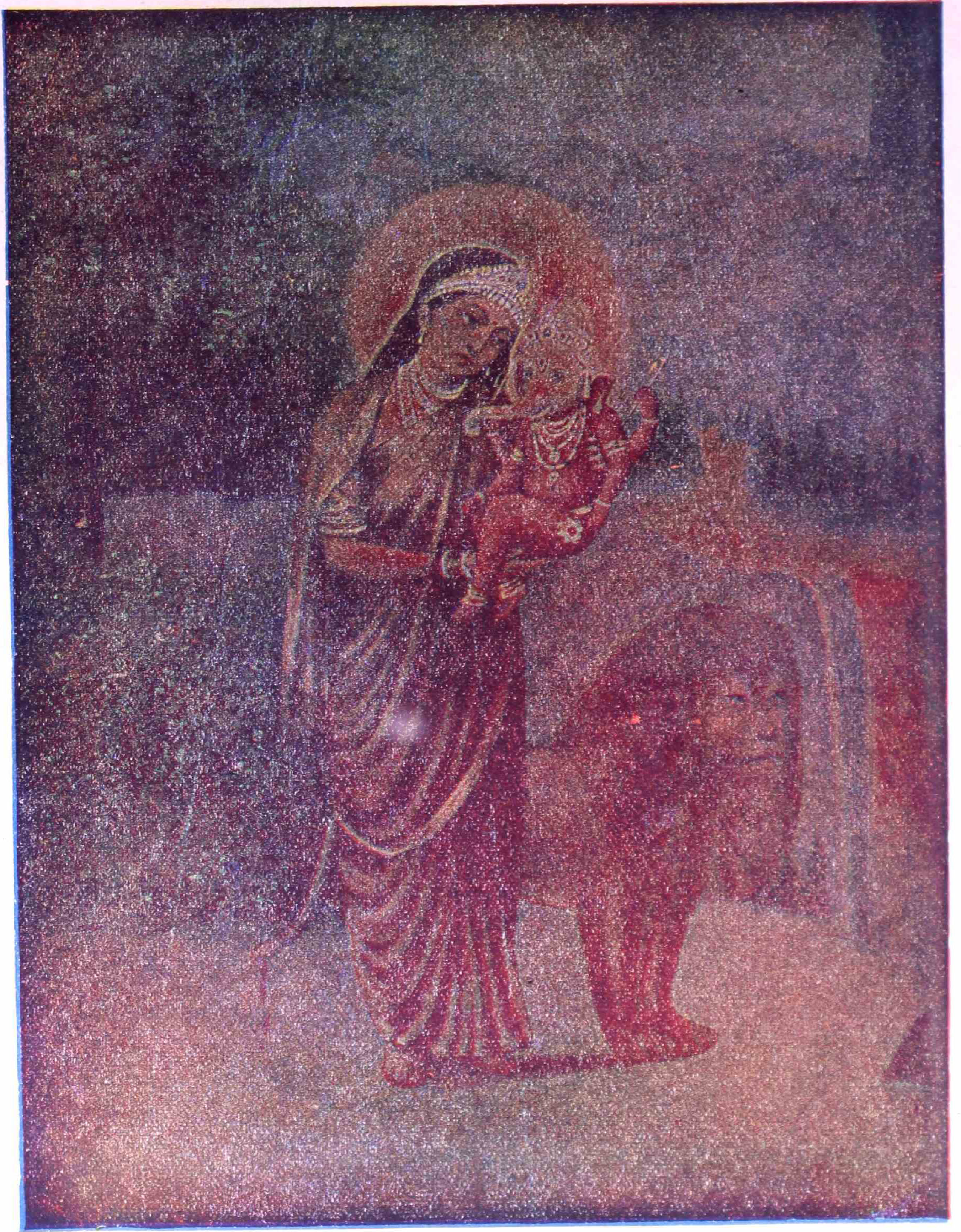
शाप को शान्त करेंगे। तब देवताओं ने विनय की कि आप वह उपाय बतावें, जिससे गणपति प्रसन्न होकर शाप को शान्त करें। ब्रह्माजी ने कहा कि गणपति का व्रत कृष्णपक्ष की चतुर्थी को है। उसको जब करे, तब गणपति प्रसन्न होते हैं। ब्रह्माजी का यह वचन सुनकर बृहस्पति को चन्द्रमा के पास देवतों ने भेजा। बृहस्पति ने जिस रीति से बताया, उस तरह से चन्द्रमा ने गणपति के व्रत का आरम्भ किया। गणपति खेलते हुए शिशुरूप से चन्द्रमा को दिखाई दिये। चन्द्रमा ने प्रणाम करके बहुत बड़ी स्तुति की। गणपति ने कहा कि हम प्रसन्न हैं, जो वरदान तुमको चाहिये वह माँगो। चन्द्रमा ने विनय की कि आपके शाप से छूटकर सबके दर्शन के योग्य हो जाऊँ। गणपति बोले कि उपाय से तुम्हारा शापोद्धार होगा। वह हम तुमको बताते हैं। हर मास के शुक्लपक्ष की चौथ को हमारा शाप तुमको लगा रहेगा और तिथियों में किसी को तुम्हें देखने से कलङ्क नहीं लगेगा। पर जो मनुष्य पहले दूज और तीज में तुमको देखेगा, उस पर कुछ चतुर्थी को देखने का प्रभाव न होगा। पर जिसमें हमारा पहला वचन झूठ न हो, इसलिए हम तुमसे कहते हैं कि जो मनुष्य भादों की शुक्लपक्ष की चौथ को तुम्हारे दर्शन करेगा, उसको बराबर वर्ष भर कलङ्क लगा करेंगे, वह वर्ष भर दुखी रहेगा। चन्द्रमा बोले कि इसके दूर होने की युक्ति कहिये। गणपति बोले कि प्रतिमास की कृष्णपक्ष की चौथ को जो कोई मनुष्य तुम्हारे उदय होने के समय मेरी और रोहिणी समेत तुम्हारी पूजा करेगा, तुमको अर्घ्य देगा, हमारी कथा सुनकर ब्रह्मभोज करेगा और आप सिवा मीठे भोजन के नोन आदि न खायगा, उसको चौथ का फल जो वर्णन किया गया, वह न मिलेगा। जब भादों मास का आरम्भ हो तो शुक्लपक्ष की चौथ में स्त्री सहित हमारी पूजा

करे। इस व्रत से सब प्रकार के क्लेश और कष्ट दूर हो जाते हैं। उस मनुष्य को कलंक चौथ का कुछ दुःख नहीं लग सकता। यह कह गणपति अन्तर्धान हो गये। चन्द्रमा फिर तेज प्राप्तकर प्रसन्न हुए। इस कथा के सुनने से पाप नष्ट हो जाते हैं। हे गिरिजे! जो तुमने हमसे पूछा था, वह हमने तुमको सुनाया। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि इस व्रत के करने से पुत्र ही नहीं मिलता, वरन् जो मनोरथ हो वही प्राप्त होता है। शिवजी यह कहकर चुप हो गये और गिरिजा के मन का दुःख नष्ट हो गया।

सत्रहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! यह सुन गिरिजा ने ब्राह्मणों को बुलाकर शौचपूर्वक व्रत का आरम्भ किया और नाना प्रकार की वस्तु चढ़ाकर पुए भी गणपति को भेंट किये। उत्तम रीति से ब्रह्मभोज कर आप भी भोजन किया। इसी प्रकार प्रति-मास व्रत कर अच्छी तरह दान-दक्षिणा देती रहीं। जब एक वर्ष पूरा हो गया तो दक्षिणा आदि देकर बड़ा उत्सव किया। बहुत गाना-बजाना हुआ। गिरिजा ने अपने पति अर्थात् शिवजी की भी पूजा की। व्रत पूर्ण होने के अनन्तर गिरिजा अति प्रसन्न हुईं और शिव की ओर बार-बार देखा। शिव ने अपनी माया जानकर उन्हें अपने हृदय से लगा लिया। गिरिजा का मनोरथ पाकर एक चन्दन के वन में, जो पर्वत पर था और जहाँ सब सुख के पदार्थ थे, जाकर गिरिजा के साथ विहार किया। गण-पति उस स्थान पर ऐसे स्वरूप से आये—बहुत भूखे-प्यासे, नङ्गे, दरिद्री, सफ़ेद केश, भाल पर श्वेत तिलक लगाये, महा दीन, कौए का शब्द बोलते, दाँत मैले-कुचैले, डण्डा लिये, कपड़े पहने हुए, बहुत ही दुर्बल दुखियारों के समान शिव के द्वार पर आकर कहने लगे कि हे शिव! क्या करते हो? हम तुम्हारी शरण आये

हैं। हम सात दिन के भूखे हैं। भोजन चाहते हैं। हमको भोजन कराकर जल पिलाओ। यह सुनकर शिव तुरन्त उठ खड़े हुए और शिव का वीर्य उस स्थान में गिर गया। गिरिजा भी उठकर अपने वस्त्र पहिन तुरन्त शिव के साथ द्वार पर आईं। उस दुर्बल ब्राह्मण ने प्रणाम किया और बड़ी स्तुति की। शिव बोले कि हे ब्राह्मण! तुम कहाँ से आये हो। और हमारे मन्दिर में क्यों पधारे? तुम्हारा क्या नाम है? हमारे बड़े भाग्य, जो तुम आये। तुम हमारे यहाँ अतिथि के समान आये हो। प्रकट है कि अतिथि की सेवा के बराबर कोई धर्म नहीं। गिरिजा ने भी कहा कि हे ब्राह्मण! ऐसी धूप में कहाँ से आये हो? जो गृहस्थ अतिथि के चरणों को जल से धोकर उस चरणामृत को पी जाय तो सर्व-तीर्थों का फल उसे प्राप्त होता है। कदाचित् वह अतिथि निराश हो लौट जाय तो गृहस्थ के सब शुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं। ब्राह्मण बोले कि हे गिरिजे! तुम संसार में धन्य हो! मैं बहुत ही भूखा-प्यासा हूँ। कृपा करके मुझको भोजन दो। गिरिजा ने उत्तमोत्तम भोजन ब्राह्मण को कराये। ब्राह्मण ने तृप्त होकर प्रसन्नतापूर्वक कहा कि हे गिरिजे! तुम्हारी कामना पूरी हो। तुमको संसारी रीति के विरुद्ध ऐसा पुत्र मिले, जो गर्भ से उपजा न हो। यह कह वह ब्राह्मण अन्तर्धान हो गया। शिव गिरिजा की शय्या में जहाँ वीर्य पड़ा हुआ था, मुख्यरूप से वह प्रकट हुए। वह बालकों के समान, करोड़ों सूर्यों की ज्योति धारण किये, कोटि कामदेव के समान सुन्दर शरीर धारण किये, अच्छे चम्पा के समान हाथ-पाँव, कमलवत् कोमल अङ्ग। वह इधर-उधर शय्यास्थान में फिर रहे थे। जब शिव और गिरिजा ने देखा कि एकदम वह ब्राह्मण अन्तर्धान हो गया तो चारों ओर ढूँढ़ने लगे। मन में उन्होंने बहुत दुःख और कष्ट पाया। इतने में



R. K. P.

गौरी की गोद में गणेश

आकाशवाणी हुई कि तुम प्रसन्न रहो। हे गिरिजे ! तुम संसार की माता हो। वह ब्राह्मण आप गणपति थे। तुम्हारे व्रत से प्रसन्न हुए और शिशु के समान होकर तुम्हारे बिछौने पर पड़े हैं। जाकर देखो। जिसका योगी ध्यान करते हैं, वह तुम्हारा पुत्र हुआ है। तुम अतिथि के चले जाने का पश्चात्ताप मत करो। घर में जाकर आनन्द करो। गिरिजा प्रसन्न होकर मन्दिर में गईं। देखा, एक अति सुन्दर बालक हँस-हँसकर शय्या पर पड़ा खेल रहा है। घर की उँचाई देखकर प्रसन्न होता है और दूध के लिए रोता है। गिरिजा ने तुरन्त जाकर यह सब वृत्तान्त शिव को सुनाया और कहा कि जल्दी आओ। व्रत का फल मिल गया। शिव ने आकर बालक को देखा।

अठारहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद ! गिरिजा ने तुरन्त बालक को उठा लिया और चूम चाटकर अपने स्तनों से दूध पिलाया। शिव को जो आनन्द प्राप्त हुआ, उसका वर्णन मुझसे नहीं हो सकता। केवल इतना वर्णन करता हूँ कि जिस तरह दरिद्री धन पाकर प्रसन्न होता है, उससे लाख गुना अधिक आनन्द गिरिजा को हुआ। वह स्त्री, जो अपने पति के वियोग में बहुत समय तक दुखी रहे और फिर अपने भर्त्ता को पाकर प्रसन्न हो जाय, वरन् उससे भी अधिक गिरिजा को आनन्द मिला। या कोई स्त्री, जिसके अकेला लड़का हो, अपने ऐसे दूर हुए बालक को पाकर प्रसन्न हो, उससे भी करोड़ों गुना अधिक आनन्द गिरिजा को मिला। या उस खेती करनेवाले के समान, जो काल पर वर्षा न होने के कारण चिन्तित हो और जल की वर्षा देखे, उससे भी करोड़ों गुना अधिक गिरिजा को हर्ष हुआ। या बहुत

दिनों के अन्धे ने आँखें पाई हों, या किसी ने डूबने के समय नाव पाई हो, या किसी ने अग्नि लगने के समय भयभीत होकर फिर अपने बचाव का स्थान पाया हो, या बहुत दिनों के भूखे ने छत्तीस व्यञ्जन पाये या, प्यासे ने ठंढा पानी पाया हो, या किसी कृपण मनुष्य ने व्यापार में बड़ा धन पाया हो, या किसी योगी ने बहुत परिश्रम करने के उपरान्त अपने इष्टदेव को देखा हो, या किसी भक्त ने बहुत समय के अनन्तर भजनकर भक्ति पाई हो, इन सबसे करोड़ों गुना अधिक गिरिजा को आनन्द प्राप्त हुआ। जब गणपति दूध पी चुके तो शिव ने फिर अपनी गोद में उठाकर शिर और हाथ चूमे और नाना प्रकार के आशीर्वाद दिये। सब ब्राह्मण आदि को बुलाकर रत्न-मोती पारितोषिक दिये। बहुत सी सवत्सा गौएँ दीं। और अन्न आदि का बहुत दान किया। विष्णु, मैं और देवता, मुनि आदि सब शिव के उस पुत्र को देखने गये। हिमाचल अति प्रसन्नतापूर्वक रत्न साथ लिये हुए वहाँ पहुँचे और सब ब्राह्मण और मङ्गनों को दान-मान से परिपूर्ण कर दिया। एक लाख बहुमूल्य रत्न, पाँच लाख भार सोना, तीन लाख घोड़े, एक हज़ार हाथी, जिन पर सोने की अम्बारियाँ थीं और दस लाख गायें, असंख्य भूषण और वस्त्र ब्राह्मणों को दान दिये। इसी प्रकार मैंने और विष्णु ने भी ब्राह्मणों को बड़ा दान दिया। देवता, शेषनाग, गन्धर्वादि ने एक हज़ार अच्छे बरतन, एक सहस्र मणि, एक सहस्र माणिक्य और रत्न और असंख्य चन्द्रकान्तमणि, एक सौ वैडूर्यमणि और इन्द्रनीलमणि और पाँच लाख नागमणि और असंख्य अग्नि में न जलनेवाले शुद्ध वस्त्र दिये। इसी प्रकार बहुत कुछ दान किया। लक्ष्मी ने कौस्तुभमणि और सरस्वती ने हार ब्राह्मणों को दान दिया। वरुण और कुबेर ने भी हीरे, पन्ने,

कपड़े बहुत से मँगनों को दिये । यहाँ तक कि कोई मंगन भिक्षुक और बन्दीजन याचक न रहा। विष्णु और मैं, सबने आकर लड़के को देख बहुत आशीर्वाद दिये। विष्णु ने कहा कि हे बालक ! तुमने शिव को बहुत प्रसन्न किया । तुम्हारा बल पवन के समान होगा। सब सिद्ध तुम्हारे आश्रय में रहेंगे। मैंने यह आशिष दी कि तुमको सब पूजेंगे। तुम्हारा तेज और कीर्ति किसी समय में कम न हो । तुम्हारी बुद्धि तीव्र हो । तुम बड़े विद्वान् होगे। तुम हमारे समान सबका उपकार करोगे । तुम्हें स्मरण करने से तीनों भुवन के विघ्न दूर हो जायँगे। लक्ष्मी ने कहा कि जहाँ तुम होगे, हम अवश्य होंगी । वहाँ ऋद्धि-सिद्धि प्रीतिपूर्वक स्थित रहेंगी। सरस्वती बोलीं कि तुमको कविता में बड़ी शक्ति होगी । तुम्हारे स्मरण से कविताशक्ति शीघ्र प्राप्त होगी। तुम्हारा काव्य हमारे समान होगा। तुम सदा रहोगे। सावित्री ने कहा कि हम सब वेदों की माता हैं। हमारी कृपा से तुम वेदों के ज्ञाता होगे। हिमाचल ने कहा कि तुमको शिव के चरणों में बड़ी भक्ति प्राप्त हो। तुममें विष्णु के समान बल हो। मैनाक बोले—तुम कामदेव के समान सुन्दर, समुद्र के समान गम्भीर, विष्णु और शिव के समान धर्मनिष्ठ होगे । वसुन्धरा ने कहा कि तुम्हारे अधीन पृथ्वी भर के सब रत्न और मणि रहेंगे। तुम्हारी कृपा से सर्वप्रकार के विघ्न विनाश को प्राप्त होंगे। तुम हरप्रकार का आनन्द देनेवाले होगे। तुममें मेरे ही समान दया, धर्म, शील होगा। पार्वती ने कहा कि तुम सिद्धि के देनेवाले, सिद्धयोगी के समान, मृत्यु को जीतनेवाले, सबसे निराले अपने पिता के समान होगे। शिव ने कहा कि तुम सब आनन्द देनेवाले, सबके सेवने और पूजने योग्य तथा मुझे बहुत प्यारे होगे। इस तरह सबने मिलकर गणपति को आशिष दिये।

यह गणपति की उत्पत्ति जो मनुष्य सुने-सुनावेगा, वह अपने सब मनोरथ पावेगा।

उन्नीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा कि हे नारद! फिर शिव ने बड़ा भारी उत्सव किया। आप उत्तमोत्तम स्थान पर, जो रत्नों आदि से जटित था, बैठे। दाहिनी ओर विष्णु और बाईं ओर मैं बैठा। विष्णु के पार्षद चन्द्रमा; दिक्पति और धर्मराज आदि अपने अपने स्थान पर बैठ गये। नाच-गाने का समाज जुड़ा। तब वेद-पुराण-आगम निगम ने शिव की स्तुति की। बाजे बजने लगे। इसी समय सूर्य के पुत्र शनैश्चर गणपति के देखने को आये। शिव, विष्णु, ब्रह्मा धर्मराज और चन्द्रमा की स्तुतिकर आज्ञा ले, शनिदेव मन्दिर के भीतर गये और पहिले द्वार पर पहुँचे, जहाँ द्वारपालों ने जाने से रोक लिया। शनैश्चर ने कहा कि हम लड़के को देखने के लिए जाते हैं, हमको मत रोको। द्वारपालों ने कहा कि गिरिजा की आज्ञा बिना हम नहीं जाने देंगे। हमको शिव की शपथ है। तुम यहीं खड़े रहो, हम गिरिजा से आज्ञा लिये आते हैं। यह कह एक द्वारपाल भीतर गया और गिरिजा से शनैश्चर के आने का हाल कह सुनाया। गिरिजा की आज्ञा से शनैश्चर भीतर गये। देखा कि गिरिजा स्वर्ण की चौकी पर बैठी हुई अति प्रसन्न हैं और पाँच बाँदियाँ सेवा कर रही हैं। शनैश्चर ने स्तुति की। गिरिजा ने आशिष दी और कहा कि क्या कारण है कि तुम आधा शिर झुकाकर देखते हो? तुम क्यों अच्छी तरह लड़के को नहीं देखते? क्या तुमको हमारा यह आनन्द भला मालूम नहीं हुआ? शनैश्चर बोले कि तुमसे कुछ छिपा नहीं है। मैं तुम्हारी आज्ञा से कहता हूँ कि भाग्य बलवान् है। सब मनुष्य संस्कार के अधीन हैं और शुभाशुभ कर्म दोनों लोक में दूर नहीं किये जा

सकते। स्वर्ग, नरक, जन्म, मरण, आकाश, पाताल, देवता, मनुष्य, आवागमन, धन की पूर्णता, दरिद्रता, कुल, अकुल, पुत्रहीन, सपुत्र आदि सब भाग्य के व्यवहार हैं। इसी प्रकार हम भी अपने भाग्यों से आधे देखनेवाले हो गये हैं। जिस कारण हम ऊपर को दृष्टि नहीं कर सकते उसकी कथा वर्णन करते हैं। यद्यपि यह कथा इस योग्य नहीं कि ढिठाई से सुनाई जाय, तथापि तुम मेरी माता और मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। इस समय में लज्जा क्या है। मैं बाल्यावस्था से शिव का भक्त होकर और उन्हींके ध्यान और तप में प्रवृत्त रहकर उन्हीं का नाम जपता था। जब युवा हुआ तो मेरे पिता ने मेरा विवाह कर दिया। चित्ररथ की कन्या जो ब्याही गई, उसने मेरी बड़ी सेवा की। संयोग से एक दिन ऋतु के दिनों से निश्चिंत होकर उसने स्नान और शृङ्गार किया और ऐसी सुन्दर बनी कि जो उसको मुनि लोग भी देख लें तो मोहित हो जावें। वह काम की भरी तिरछी चितवन किये हुए हँसती मेरे पास आई और कहा कि मुझको देखो और हमारी इच्छा पूरी करो। मैंने कुछ भी उसकी ओर ध्यान न दिया और उसी तरह शिव के ध्यान में लगा रहा। उस समय मैं बहुत ही बुद्धिहीन था। उसके गूढ़ शब्द को न सुना। जब उसने अपने मनोरथ का पूर्ण होना कठिन जाना तो कुपित होकर मेरी ओर क्रूर-दृष्टि से देख यह शाप दिया कि तुमने बुद्धिमान् होने पर भी यह कैसा भारी पाप किया कि अपना धर्म न जाना। मेरा समय जाता रहा। जो अपराध तुमसे हुआ है, उसका तुमने विचार न किया। इसीसे तुमको शाप देती हूँ कि तुम शुभ न होगे और नरक में पड़ोगे। जिसको तुम आँखों से भलीभाँति देखोगे, वह जड़मूल से जल जायगा। यह कहकर वह बराबर मेरे पास खड़ी रही। तब मैंने ध्यान करना छोड़ उत्तर दिया और प्रसन्न

होकर कहा कि मैं ऐसे शाप को नहीं सह सकता । यह वचन सुन मेरी स्त्री खेद कर नम्रता से अति लज्जित हुई । और मेरा मन कुछ भी खेद को प्राप्त न हुआ । मैंने वह शाप धारण कर लिया। हे गिरिजे ! उस दिन से मैं किसी वस्तु को आँख भरके नहीं देखता; क्योंकि मुझको जीव के निर्जीव होने का भय हर समय बना रहता है । यह वचन सुन गिरिजा अपनी सखियों समेत बहुत ही हँसीं और कहा कि हे शनैश्चर ! तुम हमारे पुत्र को देखो । शनैश्चर असमंजस में पड़े कि गिरिजा के पुत्र को देखूँ या न देखूँ; क्योंकि जिसको मैं देखता हूँ उसको दुःख अवश्य होता है। यह विचार वृष को साक्षी कर चाहा कि लड़के को देखें। बहुत धीरे, चुप रहकर, एक दाहने नेत्र के कोने से उन्होंने बालक की ओर देखा । तुरन्त गिरिजानन्दन का शिर उड़ गया। शनैश्चर तुरन्त नेत्र हटाकर चिन्तित हुए। पार्वती यह दशा देख रोने-पीटने लगीं और शनैश्चर को बुरा भला कहा। लड़के का सब शरीर हृदय से लगाकर महादुःख किया। यहाँ तक कि पृथ्वी में गिरकर मूर्च्छित हो गईं । जिस तरह वायु के कारण केले के वृक्ष जड़ से उखड़ पड़ते हैं । यह दशा देखकर सब स्त्रियाँ रोने लगीं। ऐसे रोने-पीटने का शब्द मन्दिर के भीतर सुनकर विष्णु आदि आश्चर्य कर अन्दर गये और सब कुछ देखा । शिव भी संसारी मनुष्यों के समान रोने लगे । देवता आदि सबके सब रोये । विष्णु और मैं, दोनों देवताओं समेत आकर उपाय से गिरिजा को चेत में लाये।

बीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद ! गिरिजा चैतन्य होकर फिर खेद और दुःख से मूर्च्छित हो गईं। फिर हम सबने किसी उपाय से जगाया । तब विष्णु और मैंने गिरिजा को हर भाँति से

समझाया कि संसार का सम्बन्ध क्या है ? ये सब सम्बन्ध आदि केवल मोह के कारण हैं। गिरिजा ने उत्तर दिया कि मेरा जीना अब कठिन है। देवताओं की युक्ति को मैंने कुछ भी न जाना। मेरा बालक निर्जीव हो गया। मैं अभी तीनों लोकों को जला दूँगी; क्योंकि मेरे दुखी रहते और सब सुखी नहीं रह सकते। कदाचित् मेरा पुत्र जो शीश समेत न जी उठेगा तो संसार भर को सुख न मिलेगा। यह कहकर मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ीं और फिर सचेत न हुईं। उस समय सब चित्रवत् चुप हो गये और शिव के पास आकर बहुत ही लज्जा से कहने लगे कि हे शिव ! यह क्या चरित्र हुआ, जिससे सबको दुःख मिलता है ? हम सबको इस बात का निश्चय है कि आपकी माया सब पर प्रबल है। अब वह उपाय बतलाइये, जिससे बालक फिर जी उठे और तीनों लोकों को आनन्द मिले। शिवजी बोले कि जो बात होनेवाली है, वह रुक नहीं सकती, चाहे कोई कोटि उपाय करो। जो बिधना ने भाल पर अक्षर लिख दिये, वे अवश्य होते हैं। फिर विष्णु से कहा कि तुम हमारा मुख्य रूप हो। हममें और तुममें कुछ अन्तर नहीं है। वेदों ने हमारी तुम्हारी बराबरी कही है। अब तुम और किसी का शीश काटकर बालक के लगा दो। तुम्हारी कृपा से बालक जी उठेगा। विष्णुजी तुरन्त गरुड़ पर चढ़कर चले और शिव की आज्ञा के अनुसार उत्तर की ओर चक्र लिये हुए पहुँचे। पुष्पभद्रा नदी के तट पर जाकर वन में एक हाथी को हथनी और बच्चों समेत देखा। हाथी अपने परिवार समेत उत्तर की ओर शिर किये सो रहा था। विष्णु ने तुरन्त ही उस हाथी का शीश चक्र से काटकर गरुड़ पर रख लिया। शीश से रक्त टपक रहा था। विष्णु ने चलना चाहा, इतने में हथनी जग पड़ी। उसने चिल्लाकर अपने बच्चे को जगाया और बहुत रोई। फिर

विष्णु को चारों ओर से सबने घेर लिया और उत्तम रीति से स्तुति की। कहा—हे विष्णो! यह आपने कैसा कर्म किया? आप तो धर्मरूप हैं। जो हमारे स्वामी गजराज को आप नहीं जिलाते, तो हम सबके मारने का पाप आपको होगा। विष्णुजी ने प्रसन्न होकर हाथी के धड़ से एक और शिर लगाकर उसे जीवित कर दिया और कहा कि एक कल्प तक तुम जीते रहोगे। विष्णु ने हम सबके और गिरिजा के पास जाकर कटा हुआ वह शिर दे दिया। गिरिजा ने उस शीश को युक्ति से जोड़ दिया और शिवजी ने अपनी दयादृष्टि से जिला दिया। यह देखकर गिरिजा इतनी प्रसन्न हुईं कि उसका हमसे वर्णन नहीं हो सकता। उन्होंने तुरन्त उस बालक को दूध पिलाकर लाड़-प्यार किया और विष्णु की बड़ी प्रशंसा की। कहा कि तुम शिवरूप और तीनों लोकों को आनन्द देनेवाले हो। मैंने यह शिव का चरित्र जान लिया है। विष्णुजी ने प्रसन्न होकर अपने गले की कौस्तुभमणि निकालकर लड़के को पहना दी। विष्णु ने और मैंने बालक को आशीर्वाद दिये। मैंने अपना भूषण भी लड़के को पहना दिया। इसी प्रकार हिमाचल, देवता, मुनि आदि सबों ने बहुत से आशीर्वाद दिये। दानमान से सब ब्राह्मण, मङ्गन अयाचक हो गये। ऐसा बड़ा उत्सव हुआ कि सारी सृष्टि प्रसन्न हो गई। देवताओं ने दुन्दुभी बजाई। गिरिजा लड़के को खिलाने और प्यार करने में प्रवृत्त रहकर आनन्दसागर में डूब गईं।

इक्कीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! शनैश्चर लज्जा के कारण एक कोने में चिन्तायुक्त बैठा था। संयोग से गिरिजा ने देख लिया। उन्होंने शनैश्चर से कहा कि तुमने अपनी दृष्टि से हमारे पुत्र का शिर उड़ा दिया, इससे मैं भी तुमको शाप देती हूँ कि तुम भी

अङ्गहीन हो जाओगे। यह सुन सूर्य, कश्यप और यमराज को क्रोध आ गया। उन्होंने तुरन्त उठकर विष्णु को शाप देना चाहा। विष्णु ने मुझसे और देवताओं से कहा कि इनकी सेवा करके इन्हें शान्त करो। मैं और देवताओं समेत उनको समझाने लगा। कश्यप ने कहा कि मेरा पोता यह शनैश्चर निर्दोष है। गिरिजा ने मना करने पर भी आप अपने लड़के को दिखलाया था। शनैश्चर का क्या अपराध है? हम भी अपना ब्रह्मतेज गिरिजा को दिखाते हैं, जिससे गिरिजा के पुत्र का अङ्गभङ्ग होगा। यमराज बोले कि गिरिजा ने किस अपराध पर शनैश्चर को शाप दिया है। हम भी गिरिजा को शाप देते हैं, क्योंकि शत्रु के मारने में कुछ दोष नहीं। मैंने यमराज को मना किया कि आप क्या स्त्रियों की बानि को नहीं जानते? यह वचन सुनकर उनका क्रोध दूर हो गया। गिरिजा ने भी शान्त हो शनैश्चर से कहा कि तुम सब ग्रहों के राजा होकर शिव के प्यारे और अमर हो जाओगे। हमारे वर से तुम शिव के बड़े भक्त होगे। हमारे शाप से कुछ खण्डित हो जाओगे, पर तुमको कुछ दुःख कष्ट न होगा। यह कह गिरिजा भीतर चली गईं। शनैश्चर ने सभा में विष्णु को और मुझे सबको प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम किया। गणेश के नया शिर लगने से आनन्द मङ्गल, गाना, नाच, होने लगा। शिवजी ने पहले सब सामग्री इकट्ठी कर गणपति की पूजा की। फिर विष्णु, मैं, देवता, मुनि आदि सबने गणेशजी को पूजा। सबने गणपति को अपने भूषण दिये। तीनों देवता एक ही साथ कहने लगे कि हे पुत्र, तुम्हारी सबसे पहले पूजा हुआ करेगी, जिसमें वह कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो। तुमको ब्रह्मज्ञान प्राप्त होगा। तुम परम सिद्धि देनेवाले होगे। हमने अति कृपा से गणेश को अपने समान कर लिया। फिर सब देवताओं की सम्मति से गणपति के ये नाम

रक्खे गये—लम्बोदर, एकदन्त, विघ्नेश, शूर्पकर्ण, हेरम्ब, गणेश, गजवदन, विनायक। ऐसे ही उनके अनेक नाम हैं, जो विस्तार भय से नहीं लिखे। फिर सबने बहुत सी चीज़ें गणेश को दीं। शिव ने योग और ब्रह्मज्ञान दिया। विष्णु ने अपनी माला और विद्या दी, जो हर समय प्रसन्नता देती है। मैंने कमण्डलु और धर्मराज ने सिंहासन दिया। इन्द्र ने रत्नजटित दूसरा सिंहासन दिया। सूर्य ने वस्त्र, दो मणियाँ, चन्द्रमा ने कुण्डल और छत्र दिए, कुबेर ने मणि की माला, मुकुट और असंख्य धन, अग्नि ने आग में न जलनेवाले वस्त्र, पवन ने जड़ी हुई अँगूठी, पार्वतीजी ने हार, सावित्री ने कण्ठ का भूषण, पृथ्वी ने सवारी के लिए मूषक और देवताओं ने निवास के लिए शीतगिरि देकर पूजन किया। इस प्रकार हरएक ने अपनी-अपनी वस्तु भेंट देकर जय-जय शब्द किया। देवताओं समेत विष्णु ने गणपति की बड़ी स्तुति की। जिसको जो मनुष्य त्रिकाल पढ़े तो कभी उस पर किसी प्रकार की आपत्ति न पड़े, न उसे किसी समय भय प्राप्त हो। यदि विदेश जाने के समय पढ़े तो उसका उद्योग सफल हो, उसके सब कष्ट नष्ट हो जावें। वह स्तोत्र बड़ा फल देनेवाला है। फिर शनैश्चर ने विष्णुजी से विनती की कि आप गणपति के तेज का बखान करें। विष्णु ने शनैश्चर की यह विनती मानकर गणपति का कवच कह सुनाया। हे नारद! वह कवच अति गुप्त और सिद्ध है। फिर विष्णुजी और मैं दोनों बिदा होकर अपने घर को गये। इतना कह सूतजी बोले कि हे शौनक, यह कथा सुन नारद ने संदेह करके कहा कि मैंने गणपति की कथा और प्रकार से सुनी है और आपने और ही रीति से वर्णन की है अर्थात् मैंने सुना था कि गणेश को गिरिजा ने अपने शरीर के मैल से उपजाया और शिव ने ही उनका शीश काट डाला। आप विस्तार से वर्णन करें।

बाईसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! हाँ, कल्पभेद से दूसरी रीति से गणपति के उत्पन्न होने की जो कथा है, उसको हम वर्णन करते हैं। जब शिव ने गिरिजा से विवाह किया और उनको घर लाये और दैत्यों का वध करके विहार में प्रवृत्त हुए तो संयोग से एक दिन गिरिजा की सहेलियों ने कहा कि देखो, शिव के असंख्य गण हैं और तुम्हारे एक भी नहीं है। यद्यपि शिव के गण तुम्हारे अधीन हैं, पर तुम भी कोई गण उपजाकर उसको अपने द्वार का द्वारपाल बनाओ, जिसमें उस गण की रक्षा से किसी गण के आने-जाने का कुछ भय न रहे। गिरिजा ने प्रसन्न होकर कहा कि अच्छा, समय पर ऐसा ही हो जायगा। एक समय गिरिजा नन्दी को द्वार पर रक्षा के निमित्त बिठा आप स्नान करने लगीं। शिव लीला करके द्वार पर आये और चाहा कि भीतर जावें; पर नन्दी ने मना किया। शिव नन्दी को धमका कर भीतर चले गये। गिरिजा ऐसी दशा में शिव को देख अन्य स्त्रियों के समान अति लज्जित हुईं और लज्जा से अपने शरीर को छिपाते हुए भाग चलीं। उस समय उन्होंने अपनी सहेलियों के वचन को स्मरण किया। फिर कई दिनों के अनन्तर गिरिजा ने इच्छा की कि ऐसा गण उपजाना चाहिए, जो मेरे अधीन, अति बलवान्, पराक्रमी, शिव के गणों से अधिक तेजस्वी हो। यह विचार, अपने शरीर से मैल निकाल, एक मूर्ति बनाई और गणपति नाम लेकर उसको जीवदान दिया। वह अति सुन्दर मानो रूप का सागर, उपजा। गिरिजा अति प्रसन्न हुईं और कहा कि तुम हमारे पुत्र और श्रेष्ठ गण हो। फिर लाड़-प्यार किया और अति प्रसन्न होकर भूषण और पट्टवस्त्र दिये। गणपति ने प्रणाम किया और कहा—जो काम मुझे सौंपो, वह पूरा करूँ। गिरिजा बोलीं कि

तुम हमारे द्वारपाल हो जाओ, किसी के हटाने से कभी द्वार से न हटना। कोई हमारी आज्ञा बिना भीतर न आने पावे। तुमको किसी से कुछ भय न होगा। फिर गणपति को हृदय से लगाकर द्वार पर बैठाया। गणेशजी हाथ में डंडा लेकर द्वार पर बैठे। गिरिजा ने स्नान की इच्छा कर सब सेवकों से सामग्री एकत्र करने को कहा और स्नान के निमित्त बैठीं। इतने में शिव गणों समेत आ पहुँचे और गणों को बाहर छोड़ चाहा कि आप भीतर जावें, पर गणपति ने रोका और कहा कि अभी भीतर जाने का समय नहीं है, क्योंकि मेरी माता स्नान कर रही हैं। यह कह अपने डंडे को आगे कर शिव को वहीं पर रोक दिया। शिव ने कहा कि तुम कौन हो, जो मुझे नहीं जानते, न भीतर जाने देते हो ? हम शिव गिरिजापति इस मन्दिर के स्वामी हैं। तुम बड़े बुद्धिहीन मालूम होते हो, तुम किसके पुत्र हो, किसने तुमको उपजाया ? क्या बकते हो ? यह कह जब शिव भीतर चले तो गणपति ने तुरन्त ही अपना डंडा शिव के मारा और कहा कि कौन शिव और कहाँ रहते हो ? किस कार्य के निमित्त हमारी माता के पास जाते हो ? हम गिरिजा की आज्ञा बिना किसी को, चाहे कैसा ही बड़ा हो, भीतर नहीं जाने देंगे। जब शिव प्रश्नोत्तर के उपरान्त भीतर जाने-लगे तो फिर गणपति ने डंडा मारा। तब तो शिव ने क्रोधित होकर अपने गणों को बुलाया और कहा कि तुम सब जाकर इससे पूछो कि कौन है ? गणों ने आकर पूछा। गणपति ने कहा कि हम गिरिजासुत हैं। तुम कौन हो, जो हमसे पूछने आये हो ? फिर बड़ी वार्ता हुई। गणों ने जाकर शिव से कहा कि वह नहीं उठता। शिव ने कहा कि उसको द्वार से उठा दो। गणों ने बहुतेरा चाहा कि गणाधिप को उठा लें, पर वह न उठे। परस्पर बड़ा झगड़ा होने लगा। इसी समय शिव भी आ गये। भीतर से

गिरिजा ने यह कोलाहल सुनकर अपनी सहेलियों से कहा कि बाहर जाकर देखो, क्या हो रहा है।

तेईसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! गिरिजा की सहेलियों ने सब हाल आँखों से देखकर गिरिजा से कह दिया और कहा कि न जानिये शिव की क्या बानि है कि वे कुसमय आया करते हैं। अभी केवल मुँह ही से तकरार हो रही है, पर जान पड़ता है कि आपका पुत्र विजय पाकर आवेगा। इस समय आपको उसकी सहायता करना उचित है। गिरिजा ने कहा कि तुम गणपति से कह दो कि शिव किसी प्रकार भीतर न आने पावें। सहेली ने यही आज्ञा गणपति को सुना दी। तब गणपति ने शिव के गणों से कहा कि तुम्हारे मन में जो हो वह करो, मैं सब तरह से तैयार हूँ। मेरी आज्ञा के बिना बलपूर्वक तुम्हारा भीतर जाना कठिन है। शिव के गण फिर दुखी होकर शिव के पास गये और सब वृत्तान्त वर्णन किया। शिव ने कहा—वह तो अकेला है और तुम इतने। इकट्ठे होकर क्यों युद्ध नहीं करते? यह कहकर चुप हो रहे। इतना कह ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! देखो, शिव की लीला कैसी अचरज बढ़ानेवाली है। जो शिव एक बाण से सृष्टि भर को नष्ट कर सकते हैं, वह अपने पुत्र के साथ लीला करके युद्ध की इच्छा रखते हैं। निदान शिव की आज्ञा पाकर सब गण शस्त्र लेकर गणपति के समीप पहुँचे और कहा कि हे बालक! क्या तू चाहता है कि तू जलकर भस्म हो जाय? तू यहाँ से तुरन्त भाग जा, नहीं तो इस बार तुझको हम मार ही डालेंगे। तेरी ढिठाई हमने अब तक सही है, अब नहीं सहेंगे। तब गणपति ने सहनशीलतापूर्वक उत्तर दिया कि ऐसी बढ़ बढ़कर बातें क्यों करते हो? सामने आओ। तुम तो बड़े वीर हो, युद्ध किये हुए हो, हम तो केवल

अज्ञान बालक हैं और कभी युद्ध को आँख से देखा भी नहीं, तो भी हम युद्ध से मुख न मोड़ेंगे। शिवजी गिरिजा के पुत्र के बल को देखकर धन्य-धन्य कहेंगे। यह सुनकर शिव के गणों ने गणपति के ऊपर धावा किया। दोनों ओर से युद्ध होने लगा। शिव के गणों ने शूल, बाण आदि सब शस्त्र गणपति के ऊपर चलाये; पर गणपति ने उनके सब शस्त्र दण्ड से काट डाले और सबको युद्धस्थल से भगा दिया। कुछ दूर भागकर फिर वे अपने को धिक्कार देते हुए लौट आये। उन्होंने सोचा कि शिव को क्या मुँह दिखावेंगे कि एक लड़के से परास्त होकर भाग आये। न जाने इस छोटे से बालक ने यह बल और वीरता कहाँ से पाई। फिर गणपति को पुकारकर कहा कि अब तक तो शिशु जानकर हमने तुमको छोड़ दिया है, पर अब नहीं छोड़ेंगे। यह कहकर बहुत से शस्त्र उन्होंने गणपति पर चलाये। गणपति ने भी सबको मारा। तब बड़ा भारी युद्ध हुआ। निदान फिर भी शिव के गण परास्त होकर भागे और गणपति उसी तरह द्वार पर स्थित हुए।

चौबीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! शिव ने ऐसा विचित्र चरित्र करके केवल अपने गणों का गर्व दूर कर दिया और अपनी शक्ति प्रकट करके दिखाई कि तीनों भुवन शक्ति के अधीन हैं। वही शक्ति शिव की स्त्री हैं। हे नारद! ऐसे समय में तुमने आकर मुझ-से यह सब हाल कह सुनाया। जब तुमने विष्णुलोक में जाकर विष्णु से यह सब समाचार कहा तो विष्णुजी बड़ा आश्चर्य करने लगे। मैं, विष्णुजी, देवता आदि ने शिवजी के समीप जाकर प्रणाम किया। सब स्तुति और विनय करने लगे कि इस समय कौन लीला आपने कर रक्खी है, कहिये। शिव ने

कहा कि हमारे द्वार पर एक विकट बालक खड़ा है। वह प्रलय कर देगा। इससे तुम सब जाकर युक्ति से उसको प्रसन्न करो और ऐसा उपाय करो, जिसमें प्रलय न हो। सबों ने कहा कि हे शिव ! यह सब तुम्हारी लीला है कि एक बालक ऐसा युद्ध कर रहा है। यह कह सब गणपति के पास गये। हमको आते हुए देख गणपति ने एक बाल उखाड़ लिया। हम सबने कहा कि क्षमा करो। आपसे कोई युद्ध की कांक्षा नहीं रखता। यह मैंने कहा ही था कि गणपतिने तुरन्त अपने परिघ (बेलन) को सँभाला। हम सब लौटकर शिव के पास गये। तब शिव ने क्रोध करके इन्द्र आदि से कहा कि तुम जाकर उस बालक का वध करो। तुम्हारा बड़ा यश होगा। इन्द्र आदि देवता युद्ध के लिए तत्पर होकर गणपति के ऊपर बाण और अन्य शस्त्र बरसाने लगे। उसी समय में शिव और गिरिजा ने दो शक्तियाँ उपजाईं, जो तुरन्त युद्धस्थल में पहुँचकर दोनों ओर के शस्त्र अपना मुँह खोलकर निगल जाती थीं। जिस प्रकार पर्वत समुद्र के बीच में स्थिर है, उसी प्रकार गणपति ने अकेले सेना को दुखी कर दिया। वे सब निःशस्त्र खाली हाथ युद्धस्थल में खड़े रहे और कहा कि अब हम क्या करें ? कोई शस्त्र बाकी नहीं रहा, जिससे युद्ध करें। केवल वीरभद्र देखते थे कि दोनों शक्तियों ने प्रकट होकर सभी को दुखी कर दिया है। निदान हे नारद ! तुमने देवताओं समेत शिव के निकट जाकर कहा कि हमको जान पड़ता है, यह सब आपकी लीला है। अब जो आप शीघ्र ही सुध नहीं लेते तो प्रलय हो जायगा। फिर शिव की आज्ञा के अनुसार इन्द्र, विश्वामित्र, यमराज आदि ने पहुँचकर गणपति के ऊपर अपने अपने शस्त्र चलाये। पर सब वृथा ही गये। गण-पति ने अपने दण्ड से सबको मारा, जिससे हाहाकार मच गया।

सब देवताओं ने शिव की शरण में रक्षा पाई। हे नारद! उस समय तुमने शिव से कहा कि हे शिवशङ्कर, संसार के उपजानेवाले! अपनी लीला जो फैला दी है, उसे समेट लीजिये और संसार की रक्षा कीजिये। कदाचित् यह गिरिजा का गण जीता रहा तो प्रलय ही कर देगा, इसलिए इस गण का शिर काट लीजिये। आपके सिवा और कोई इसे मारनेवाला नहीं जान पड़ता। यह कह तुम चुप हुए और शिव हँसे।

पच्चीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! तुम्हारे ये वचन सुनकर शिवजी लड़ाई के लिए अपने उत्तम उत्तम शस्त्र लेकर उद्यत हुए। अतिक्रोधित होकर विष्णु और प्रसिद्ध गणों को साथ लिया और डमरू बजा दिया। तब सब देवता, जो कई बार युद्धस्थल से भाग चुके थे, वीरता से गरजने लगे। विष्णु ने भी आप गणेश से युद्ध किया। जो शस्त्र विष्णु ने गणपति के ऊपर प्रलय की अग्नि के समान चलाया, वह गणेशजी ने अपने दण्ड से दो खण्ड कर डाला। देर तक युद्ध करने के उपरान्त विष्णु ने शिव से कहा कि हम इस गण का वध किये डालते हैं। शिव बोले कि बहुत अच्छा। गणपति ने इतनी बीरता प्रकट की कि सब देवता पीठ दिखाकर युद्धभूमि से भाग गये। तब विष्णु ने अपने मुख से गणेशजी की प्रशंसा की और कहा कि आज तक कोई इतना नहीं लड़ा। विष्णु यह कह रहे थे कि गणपति ने अपना परिघ उठाकर मारा। पर विष्णु ने अपने परिघ से उसको काट डाला। गणपति ने एक शस्त्र विष्णु की छाती में मारा, जिसको विष्णु न सह सके और अचेत हो धरती पर गिर पड़े। तब हाहाकार मच गया। फिर विष्णुजी शिव की कृपा से उठ खड़े हुए। इसी प्रकार बड़ी देर तक दोनों में युद्ध होता रहा। कोई किसी से

परास्त न हुआ। निदान विष्णु ने एक साथ असंख्य बाण गणपति पर चलाये। इस विचार से कि विजय होगी, विष्णु ने अपना शङ्ख बजाया। यह शङ्ख का शब्द सुनकर सब देवता लौट आये और फिर युद्ध करने लगे। एक साथ सब देवता गणपति पर चढ़ धाये। गणपति ने गिरिजा को स्मरण कर अपनी मुष्टिका चलाकर सब देवताओं के शस्त्र निष्फल कर डाले और इतने वेग से शस्त्र चलाये कि कोई नहीं देखता था कि कब बाण लिया, खींचा, और कब मारा। उस समय सब देवता अति आश्चर्यमें हुए। पृथ्वी काँप गई। पर्वत हिलगये। यह जान पड़ा कि प्रलय होनेवाला है। विष्णु सबको दुखी जान और प्रलय के चिह्न देख दया करके तुरन्त गणपति पर कूद पड़े और तुरंत वेग से दौड़कर चक्र से गणपति का शिर काट डाला। तब मैं और देवता आदि निर्भय होकर अति प्रसन्न हुए और शिवजी की स्तुति करने लगे।

छब्बीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! तब तुमने शिव की आज्ञा के अनुसार गिरिजा के पास जाकर युद्ध का विस्तारपूर्वक वृत्तान्त कह सुनाया। तुमने अपनी वाचालता को इस प्रकार से प्रकट कर बताया कि हे गिरिजा! देवताओं की दुष्टता को देखो कि आपके पुत्र का वध कर डाला। उन्होंने क्या यह अच्छा किया है? तुम्हारे प्रताप और तेज का कुछ विचार न किया। उचित है कि तुम अपना तेज देवताओं को दिखा दो। वे अपने कर्मों का दण्ड पावें और तुम्हारी बड़ाई बनी रहे। यह कहकर तुम चले गये। तुम्हारी इच्छा फिर युद्ध देखने की थी। गिरिजा अपने गण की दुर्दशा सुन एकबारगी रो उठीं और बहुत ही शोक कर मूर्च्छित हो गईं। फिर उन्होंने अपने शरीर से सौ शक्तियाँ

उपजाईं और चाहा कि उनके द्वारा सारी सेना को नष्ट कर डालें। उन शक्तियों का स्वरूप बड़ा उग्र था। शरीर महाविकराल, और अंग बदन बहुत ही भयानक। हाथ-पाँव ताड़ के वृक्ष के समान, उदर बहुत बड़ा, उँगलियाँ नाना प्रकार की छोटी-बड़ी काली-काली। उन्होंने हाथ जोड़कर गिरिजा से विनती की कि जो आज्ञा हमको मिले वह हम पूरी करें। गिरिजा ने अति क्रोध से कहा कि जितने देवता सेना में हैं, सबको खा जाओ। कोई बचने न पावे; क्योंकि उन्होंने हमारे पुत्र को मारा है। वे सब शक्तियाँ रणभूमि में पहुँचकर देवताओं को भक्षण करने लगीं। विष्णु, मैं और सब देवता दुखी होकर कहने लगे कि क्या प्रलय आ गया है या शिव ने अपनी शक्ति का बल दिखाया है? यह कह-कर हम सबने शिव की ओर देखा। हे नारद! तुमने शिव की आज्ञा से कहा कि जब तक गिरिजा प्रसन्न न होंगी, यह प्रलयरूप कष्ट न दूर होगा। यह सुन तुम और सब देवता गिरिजा के समीप जाकर हाथ जोड़ शिर झुका स्तुति करने लगे और विनय की कि वास्तव में हम अपराधी हैं। तुम क्षमा करो, क्षमा करो। प्रलय होता है, हम आपके सामने लज्जित खड़े हैं। गिरिजा ने कहा कि जो हमारा पुत्र जी उठे और सब देवता पहले उसकी पूजा करें तो हम प्रलय न होने दें। देवताओं ने यह हाल शिव से जाकर कहा। तब शिव ने गणपति के शरीर को अच्छी तरह से धोया और कहा कि उत्तर की ओर जाकर ढूँढ़ो; जो जीव पहले मिले, उसी का शिर काटकर इसके शरीर में जोड़ दो। यह जी उठेगा। विष्णु ने जाकर प्रसून-भद्रानदी के वन में एक हाथी को अपनी हथनी और एक अपने बच्चे समेत सोते हुए देखा। उन्होंने तुरन्त हाथी का शिर काट अपने गरुड़ पर रख चाहा कि चलूँ, पर हथनी जाग उठी। उसने विष्णु की ऐसी

स्तुति की कि उन्होंने प्रसन्न हो दूसरा शिर उपजाकर धड़ से जोड़ दिया और वह हाथी फिर जी उठा। विष्णु ने उसको आशिष दी कि तुम एक कल्प तक जीते रहोगे। फिर विष्णु ने शिव के पास पहुँचकर वही हाथी का शिर गणपति के धड़ से जोड़ दिया। शिव ने प्रसन्न होकर जीवदान दिया। सबके दुःख दूर हो गये और सबको आनन्द हुआ।

सत्ताईसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! गिरिजा ने अपने पुत्र को जीवित देख आनन्द मनाया। बहुत प्रकार के वस्त्र देकर कहा कि इस समय हम तुम्हारे भाल में सिन्दूर देखती हैं, सो तुम्हारी पूजा सिन्दूर से हुआ करेगी। जो कोई तुम्हारी पूजा करेगा, उसके पास सिद्धियाँ बनी रहेंगी। यह हमारी आज्ञा है। शिव ने भी अति प्रसन्नता से कहा कि हे देवताओ! यह हमारा पुत्र है और गणपति इसका नाम है। गणपति ने भी उठकर सबको प्रणाम किया और कहा कि हमारा अपराध क्षमा करो। तीनों देवताओं ने कहा कि तुम्हारी पूजा हम तीनों देवताओं के समान होगी। पहले तुम्हारी पूजा जो न करेगा, उसको पूजा का कुछ भी फल न मिलेगा। यह कह सबने पहले गणपति की पूजा की और प्रणाम कर यह वरदान दिया कि तुम भाद्रकृष्ण चतुर्थी को उपजे हो, इससे तुम्हारा व्रत चौथ को होगा। यह व्रत करनेवाले तुम्हारे भक्त सदा सुखी रहेंगे। सबको तुम्हारी सेवा से आनंद मिलेगा। सबको तुम्हारी पूजा आदि करनी चाहिए। फिर विष्णु और सब देवताओं ने गणपति की एक अति उत्तम और पवित्र स्तुति की। इतना कह सूतजी बोले कि हे मुनियो! जब ब्रह्माजी इतना कह चुके तो आनन्द में मग्न हो गये। उसी आनन्द में गणेश की एक स्तुति बनाकर नारद को सुनाई। फिर कहा कि इसके बाद सब देवता शिव से बिदा होकर चले गये।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! गिरिजा के दोनों पुत्र, अर्थात् स्कन्द और गणपति, प्रातःकाल उठकर नित्य शिव और गिरिजा को प्रणाम करते थे। दिन दिन दोनों भाइयों का प्रेम बढ़ने लगा। एकदिन शिव ने गिरिजा से कहा कि अब हमारी इच्छा है कि हमारे पुत्रों के विवाह हो जायँ। हमको स्कन्द और गणपति एक समान प्यारे हैं। पहले हम किसका विवाह करें? यह बात माता-पिता से सुनकर दोनों परस्पर झगड़ने लगे। स्कन्द कहते थे कि पहले हमारा विवाह होना चाहिए। गणपति भी यही कहते थे। तब शिव और गिरिजा ने दोनों को बुलाकर कहा कि तुम दोनों बराबर हो। हम इस बातकी प्रतिज्ञा करते हैं कि तुममें जो पृथ्वी भर की परिक्रमा करके पहले लौट आवेगा उसका पहले विवाह कर देंगे। दोनों भाई पृथ्वी की परिक्रमा को चले। गणपति ने सोचा कि मुझमें संसार भर की शीघ्र परिक्रमा करने की शक्ति नहीं है। मैं क्या करूँ? उन्हें एक उपाय सूझ गया। वह स्नान कर माता-पिता के सामने खड़े हुए और बिनती की कि हम आपकी पूजा करेंगे, पूजन के स्थान पर बैठिये। यह सुन शिव और गिरिजा आसन पर बैठे। गणपति ने उनकी परिक्रमा कर दोनों की पूजा की। फिर माता-पिता ने कहा कि स्कन्द तो जा चुके, तुम भी पृथ्वी की परिक्रमा को जाओ। गणपति ने विनय की कि क्या मैंने पृथ्वी की परिक्रमा नहीं की? आप धर्म की मूर्ति होकर ऐसा कहते हैं! तब शिव-गिरिजा ने कहा कि कब तुम संसार की परिक्रमा कर आये? गणपति बोले कि आपको वेद त्रिभुवन का रूप कहते हैं, सो मैंने तुम्हारी परिक्रमा कर तीनों लोकों की परिक्रमा क्या नहीं की? इसके सिवा वेद लिखता है कि जो मनुष्य माता या पिता की परिक्रमा करता है, उसको संसार भर की परिक्रमा का फल

मिल जाता है। जो मनुष्य माता-पिता को घर में छोड़कर आप तीर्थ को जाता है, उसको पितरों के मारने का पाप लगता है। पुत्र के लिए माता-पिता के चरण ही सबसे बड़े तीर्थ हैं। माता और पिता ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं। इनसे बढ़कर और कोई नहीं। इसी प्रकार स्त्रियों के लिए अपने पति की सेवा से अधिक और कोई धर्म नहीं कहा गया है। अब आप या तो वेद के मार्ग को छोड़ दें, नहीं तो मेरा विवाह कर दें। शिव और गिरिजा गणेश के ये वचन सुनकर चिन्तित हुए किन्तु गणपति की यह चतुराई देखकर प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा तुमको शुभ मति उपजी है, इसीसे तुमने ऐसे धर्म के वाक्य कहे। हम तुमसे कहते हैं कि तुम्हारा यह कथन वेद, पुराण और शास्त्र के समान विश्वास योग्य प्रमाण माना जायगा। हम पहले तुम्हारा ही विवाह कर देंगे। शिवजी की इच्छा जान विश्वरूप ने अपनी दो कन्याओं का, जिनका सिद्धि और ऋद्धि नाम था, गणपति के साथ विवाह कर दिया। विवाह में बड़ी धूम-धाम हुई, जैसे कि शिवजी के विवाह में हिमाचल की ओर से सब बातें हुई थीं। ऐसी स्त्रियाँ पाकर गणपति अति प्रसन्न हुए। कुछ समय के उपरान्त गणपति के दो पुत्र उपजे। सिद्धि से क्षेम और ऋद्धि से लाभ। उनके समान संसार भर में कोई पण्डित और कलाकार न हुआ। इतने में स्कन्द संसार भर की परिक्रमा करके लौट आये। हे नारद ! तुमने पहले स्कन्द को बहुत भड़काया। कहा कि देखो, माता-पिता ने तुमको बहकाकर गणपति का पहले विवाह कर दिया। गणपति ने दो स्त्रियों से दो पुत्र भी उपजाये हैं। जब माता-पिता ऐसा छल करते हैं तो और क्यों न करें ? हमारी समझ में यह काम उन्होंने अच्छा नहीं किया। अब तुम्हारे मन में जो आवे वह करो। जो आपही माता-पिता अपनी सन्तान को बेचे, या विष दे दे, या उसका

राज्य, धन, द्रव्य आदि लूट ले तो मनुष्य किसके पास जाकर अपना दुःख कहे ? इसमें यही उत्तम है कि फिर उनका मुख न देखे। हे नारद ! ऐसी बातें करने से तुम्हारा तेज घट गया। स्कन्द अपने माता-पिता के पास गये । अपने माता-पिता की स्तुति करने के अनन्तर अति दुखी होकर स्कन्दजी क्रौञ्चपर्वत पर चले गये। यद्यपि माता-पिता ने जाने से रोका, पर स्कन्दजी न लौटे। हे नारद ! शिवजी के चरित्र ऐसे आश्चर्य-जनक हैं कि कोई उनको नहीं जानता। जो चाहते हैं, वही करते हैं। जैसा कि वेद कहते हैं, वह नाना प्रकार के अवतार धारण कर और अद्भुत चरित्र रच अपने भक्तों को प्रसन्न करते हैं । हे नारद ! जब से स्कन्दजी क्रौञ्चपर्वत में स्थित हुए, तब से क्रौञ्चपर्वत की और ही दशा हो गई । वह पर्वत यश बढ़ानेवाला, पाप घटाने-वाला और अति आनन्द देनेवाला हो गया । तब से स्कन्दजी उसी पर्वत पर रहते हैं। उनके दर्शन से सब पाप मिट जाते हैं। हर मास की पूर्णमासी को सब देवता और मुनि एक साथ जाकर स्कन्द के दर्शन करके कृतार्थ होते हैं। जो कोई उस दिन मल्लि-कार्जुन के दर्शन करता है, उसका सब पाप भस्म हो जाते हैं। यद्यपि शिव और गिरिजा ने क्रौञ्चपर्वत पर जाकर स्कन्द को मनाया, तथापि फिर स्कन्दजी लौटकर न आये । वरन् शिवजी के आने का हाल जानकर इच्छा की कि कहीं और जगह जाकर स्थित हों । सो वहाँ से तीन योजन दूर जाकर स्थित हुए। शिवजी हर पूर्णमासी को वहाँ जाया करते हैं। हे नारद ! यह चरित्र हमने तुमको सुनाया, जिसके सुनने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। मल्लिकार्जुन स्थान की बड़ाई वेद गाते हैं। उनके दर्शन से अन्त में कैलास मिलता है। इस गणपति के चरित्र को, जैसा कि हमने वर्णन किया, जो सुनेगा, वह संसार में आनन्द और अन्त में शिव का धाम पावेगा।

इति श्रीशिवपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चतुर्थः खण्डः समाप्तः ॥ ४ ॥

ॐ नमः शिवाय

शिवपुराण भाषा



पञ्चम खण्ड (युद्धखण्ड)

पहला अध्याय

सूत पौराणिक बोले कि हे शौनको ! नारद ने फिर ब्रह्माजी से कहा कि आप वर्णन करें कि सदाशिवजी ने क्योंकर दैत्यों का वध किया ? ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! जब स्कन्द ने तारक असुर का नाश कर देवताओं को आनन्द दिया, तब तडिन्माली, तारकाक्ष और कमलाक्ष, ये तारक के तीनों पुत्र तप का उद्योग कर महाकठिन तप में प्रवृत्त हुए। पहले मेरे ध्यान में केवल एक पाँव से खड़े रहे। सौ वर्ष पर्यन्त केवल जल पीकर और सहस्र वर्ष तक केवल पवन भक्षण कर तप किया। एक हज़ार वर्ष तक अँगूठे के बल खड़े रहे। फिर दोनों हाथ ऊपर को उठाये हुए हज़ार वर्ष तक स्थित रहे। तब उनके पास जाकर मैंने कहा कि तुम्हारे तप से मैं अति प्रसन्न हुआ। जो वर तुमको चाहिए, वह माँगो। तीनों दैत्यों ने कहा कि जो आप प्रसन्न हैं तो हमको यह वर दीजिये कि हम किसी के हाथ से मारे न जावें। मैंने कहा कि तुम तीनों यह वरदान मत माँगो, बरन् इच्छानुसार और कोई वस्तु माँगो। यह सुन तीनों दैत्यों ने विचारकर कहा कि इसी स्थान पर एक पुर बस जाय, जहाँ आपकी मूर्ति स्थित हो। और हम तीनों के लिए एक एक नगर अलग अलग तैयार हो जायँ, जो हज़ार हज़ार कोस के अंतर पर हों। ये तीनों पुर एक ही तरह के हों। जो कोई केवल एक ही बाण से तीनों पुरों को नष्ट

करे, वही हमारा भी वध करने में समर्थ हो। यह सुनकर मैंने कह दिया कि यही होगा। मैंने तुरन्त मय दानव को बुलाकर आज्ञा दी कि तीन नगर बनाओ। मैं यह आज्ञा देकर चला गया। मय ने मेरी आज्ञा से तीनों नगर तैयार कर दिये। हर एक नगर सौ सौ योजन बड़ा था। उनमें स्वर्ग से भी अधिक आनन्द था। मैंने क्रम से तीनों को तीनों पुर बाँट दिये। वे उन नगरों में आनन्दपूर्वक रहने लगे। तीनों लोकों में कोई ऐसी वस्तु न थी, जो उनके यहाँ न हो। असंख्य सेना भी थी। हर एक के घर में शिवालय बने थे, जिनमें सब लोग शिवजी की पूजा करते थे। प्रतिदिन हवन और यज्ञ हुआ करते थे। जो सामग्री तीनों लोकों में किसी के घर में न निकले, वह वहाँ की छोटी छोटी जातियों के यहाँ भी वर्तमान थी। स्त्रियाँ पतिव्रतधर्म में स्थित थीं। तीनों दैत्य शिव के भक्त थे। शिवजी की पूजा के निमित्त उन्होंने नाना प्रकार के मन्दिर बनवाये। वहाँ यह रीति थी कि शिवजी की पूजा किये बिना कोई भोजन न करता था, क्योंकि तीनों दैत्यों ने इस बात की डौंड़ी पिटवा दी थी कि सब लोग शिवजी का पूजन करें, अर्थात् शिवजी को पार्थिव रूप मन में समझकर पूजा किया करें। जो कोई यह आज्ञा न मानेगा वह कड़ा दण्ड पावेगा, अर्थात् प्राण से मारा जायगा। वेद-पुराण के मत के सिवा कोई बात धर्म के विरुद्ध उन नगरों में नहीं होने पाती थी। ब्राह्मण रातदिन शिव शिव जपा करते थे। यहाँ तक कि जितने पृथ्वी पर धर्म हैं, वे सब उन नगरों में होते थे। जब इन दैत्यों का तेज बढ़ा तो देवता घबरा उठे, बहुत दुःखित हुए। उनके शरीर में जैसे आग लग गई। सब मिलकर मेरी शरण में आये और मेरी स्तुति करके कहा कि अब सब देवता त्रिपुर के तेज से जले जाते हैं और अपने

पदा से हटाये जा रहे हैं। आपके सिवा और कौन हमारा रक्षक है? यह सुनकर मैंने कहा कि उन्होंने मेरी बहुत आराधना और तप करके इस प्रकार का वरदान प्राप्त किया है। मैं जाकर उनको वेद के विरुद्ध क्योंकर मार सकता हूँ। फिर वे शिवजी के सेवक हैं, और उन्हीं की कृपा से नाना प्रकार के आनन्द उठाते हैं। देखो, शिवजी के भक्त पर कोई शस्त्र नहीं चल सकता। उनकी भक्ति से लाखों करोड़ों आपदाएँ नष्ट हो जाती हैं। हर एक मनुष्य उनकी आराधना को छोड़ने से तुरन्त नष्ट हो जाते हैं। इस वर्णन के अनुसार मैं यहाँ एक इतिहास कहता हूँ। रावण जो शिवजी का भक्त हुआ है, उसका कोई वध न कर सका। विष्णु का चक्र भी कुण्ठित होकर रावण का शिर काट न सका। तब आकाशवाणी हुई कि हे विष्णु! जो किसी कारण से रावण शिवजी की सेवा छोड़ दे और शिवजी के विरुद्ध हो जाय तो निस्सन्देह शिवजी उसकी सहायता न करेंगे। इसलिए तुमको उचित है कि अवतार लेकर शिवजी का नाम जपो। जब शिवजी प्रसन्न होकर तुमको अपना बाण कृपा करके देंगे, तब रावण तुम्हारे हाथ से मारा जायगा। यह सुनकर विष्णुजी ने शिवजी की बड़ी पूजा की। शिवजी ने रावण की उत्तम बुद्धि को नष्ट कर दिया, जिससे वह ब्राह्मणों को दुःख देने लगा। विष्णुजी ने भी रामचन्द्र का अवतार लेकर शिवजी की तपस्या की और शिवजी से वह बाण प्राप्त किया, जो प्रलय करनेवाला है। उसी बाण से रावण का वध करके सीता को प्राप्त किया। इसका तात्पर्य यह है कि अब हम तुम सब शिवजी की शरण में चलें। उनके चरण पकड़कर उनको प्रसन्न करें। शिवजी की महिमा का बखान करें। मैं सब देवताओं समेत शिवजी के पास पहुँचा। पग पग पर जय जयकार और एक बड़ी भारी स्तुति की। कहा

कि जब जब देवताओं पर कोई संकट पड़ा है, तब तब तुम्हींने उनका दुःख दूर किया है। अब एक दया की दृष्टि हम पर भी कीजिये।

दूसरा अध्याय

देवता लोग बोले कि हे शिवजी! हमारे दुःख को दूर कीजिये; क्योंकि तुम भक्तों को बचानेवाले और उनके दुःख दूर करनेवाले हो। दैत्यों ने अति बल और तेज प्राप्त करके हम सबको दुखी कर रक्खा है। अब हमसे यह कष्ट सहा नहीं जाता। आपकी शरण में आये हैं। हम सब आपको छोड़कर कहाँ जायँ? क्योंकि तुम्हारे सिवा और कोई देवता हमारी रक्षा नहीं कर सकता। शिवजी बोले कि हमको तुम्हारा सब दुःख-कष्ट मालूम हो गया। पर त्रिपुर के असुर बड़े धर्मात्मा और दाता हैं। इन्हीं गुणों के बल से वे इतने आनन्द से रहते हैं। संसार में पुण्य के बराबर दूसरी वस्तु आनन्द देनेवाली नहीं। जब तक उनका पुण्य बढ़ती पर है, तब तक वे मारे नहीं जा सकते। इस के लिए तुमको अवश्य यत्न करना चाहिए। सब अपने सेवकों समेत वे हमारे भक्त हैं। हमको उचित नहीं है कि हम अपने भक्तों को नष्ट कर दें। साथ ही हमसे तुम्हारे कष्ट भी नहीं देखे जा सकते हैं; क्योंकि जो हमारी शरण में आता है, उसकी हम अवश्य ही रक्षा करते हैं। इससे तुमको उचित है कि विष्णु के पास जाकर अपना सब दुःख कष्ट कहो। वे हमारा मुख्य स्वरूप और सृष्टि के पालनेवाले हैं। यह सुन सब देवता विष्णुजी के समीप गये, स्तुति करने के उपरान्त अपना सब दुःख कष्ट कहा और हर प्रकार विष्णुजी की पूजा में प्रवृत्त हुए। विष्णु ने देवताओं की विनती सुनकर वेद और शास्त्र के अनुकूल यह उत्तर दिया। वह बोले कि सनातन से शिवजी की पूजा और भक्ति पुण्यदायक है। उस स्थान पर, जहाँ शिवजी की

पूजा हो, कोई दुःख या कष्ट नहीं रह सकता। सूर्य का उदय होने से अँधेरा दूर हो जाता है, उसी तरह शिवजी के तेज को भी समझना चाहिए। यह सुन देवताओं ने दुखी हो विनय की कि हे देवताओं के स्वामी ! हम सब दुखी और अधीर हैं। हम क्या करें ? क्योंकि यह बात स्पष्ट है कि जब तक त्रिपुर के असुर जीते रहेंगे, हमको कुछ भी शांति न मिलेगी। अब आप ही कहिये, हम कहाँ जायँ या तो आप हम सबको विना मौत के मार डालिये या त्रिपुर का नाश कीजिये। दो कामों में से एक काम करके आप प्रसन्न हों और हम भी कष्ट से छूट जायँ। शिवजी की आज्ञा पाकर हम प्रसन्न वदन आपके पास आये थे। अब हम क्या करें ? यह कह सब देवता चुप हो गये। विष्णु ने शिवजी की आज्ञा का विचारकर सोचा कि किसी उपाय से देवताओं का दुःख अवश्य दूर करना चाहिए, फिर शिव का ध्यान कर उन्होंने यज्ञगण को स्मरण किया। यज्ञ के भीतर से मखपति उपजे और विष्णु की स्तुति करने लगे। विष्णु ने देवताओं से कहा कि इनकी पूजा करो। देवताओं ने तुरन्त प्रसन्न होकर शङ्खनाद किया और मख अर्थात् यज्ञ करके मखपति का ध्यान करते हुए उनकी अति पवित्र स्तुति की। तब मखपति प्रकट होकर विष्णु की स्तुति करने लगे। विष्णु ने देवताओं से कहा कि त्रिपुरासुर तुम्हारे ऐसे उपायों से मारे नहीं जा सकते। जिनके दर्शन ही से पाप नष्ट हो जाते हैं, उनका मखपति क्या कर सकता है ? वे शिवजी के वरदान से इतना आनन्द भोग कर रहे हैं कि संसार में कोई उनके बराबर नहीं। हे देवताओ ! संसार में कौन है, जो शिव के भक्त का विनाश करे ? वे शिव की आज्ञा विना नहीं मारे जायँगे। शिवजी की आज्ञा विना ब्रह्मा, मैं, देवता, यज्ञ, मुनीश्वर आदि कोई भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। शिवजी ने

केवल संसार की भलाई के लिए अवतार लिया है। उनके एक ही अंश की पूजा करके देवताओं ने कैसा पद पाया है। ब्रह्मा ने भी उनकी सेवा करके यह पद पाया है। और मुझको भी यह पालन करने की शक्ति तथा बड़ाई उन्होंने सेवा से प्रसन्न होकर कृपा करके दी है। शिव पूजा के विना किसी को कुछ सिद्धि नहीं मिली। इससे हम कहते हैं कि त्रिपुरासुर केवल शिवकी सेवा करने से मर सकते हैं। मुझको निश्चय है कि हम सब शिवजी की पूजा करके त्रिपुर पर विजय पावेंगे। यह कह विष्णु ने सब देवताओं समेत शिव पूजन का आरम्भ किया। एक करोड़ पार्थिवलिङ्ग मिट्टी से बनाकर पहले प्राणप्रतिष्ठा और आवाहन करके अक्षत, चंदन, सुगन्ध पुष्प और बिल्वपत्र से पूजा की। विष्णुजी शिवजी के ध्यान में मग्न हुए। शिवजी के प्रसन्न होने से त्रिशूल, शक्ति, गदा आदि लिये हुए असंख्य भूतों की सेना प्रकट हुई। विष्णु ने उनको देखकर कहा कि तुम तुरन्त त्रिपुर का नाश कर दो, अर्थात् तीनों पुरों को जला डालो। संसार में तुम्हारा यश फैलेगा। यह सुन वह भूतों की सेना पवन के समान चली और त्रिपुर में पहुँच कर फैल गई। पर जब वह नगर के भीतर पहुँची, शिवकी लीला से तुरन्त जलकर भस्म हो गई। जिनके मन में शिव की दृढ़ भक्ति है, उनके समीप संकट आकर आप ही नष्ट हो जाता है। देवताओं ने फिर विष्णु के समीप जाकर यह हाल सुनाया और विचार करेन लगे कि किस उपाय से त्रिपुर विनाश को प्राप्त होंगे ? अभिचार अर्थात् हठधर्मी से भी शिव के भक्तों को कुछ कष्ट नहीं दिया जा सकता। वास्तव में शिव की भक्ति के कारण ही ये दैत्य बच गये हैं। शिवजी की कृपा के कारण ये असुर नर-नारी अनेकानेक पाप और कुकर्म करके भी बचे हुए हैं। यदि शिव ही हमारी सहायता करें तो हम इन

शत्रुओं के अत्याचारों से छुटकारा पा सकते हैं, हमें आनन्द मिल सकता है। अतएव हमें ऐसी कोई युक्ति करनी चाहिए, जिससे ये असुर धर्म से भ्रष्ट हो जायँ। तब निस्सन्देह आप शिव उनका नाश कर देंगे। यह विचारकर विष्णु ने देवताओं से कहा कि तुम सब अपने घरों में जाकर शिवजी का नाम जपो, ध्यान करो, दिन-रात पार्थिवपूजन किया करो और उनकी स्तुति करो। यह सुनकर देवता अति प्रसन्नता से अपने अपने घरों को चले।

तीसरा अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! देवताओं के बिदा होने के उपरान्त विष्णु ने माया करके शिवपूजन के उपरान्त अपने शरीर से एक मनुष्य उपजाया, जो सारा शिर मुड़ाये हुए, मैले और अशुद्ध वस्त्र पहने, पंगुल, वस्त्र से मुख को ढाँपे "धर्म-धर्म" कहता हुआ विष्णु के सामने आ खड़ा हुआ। वह हाथ जोड़ 'अर्हण' वचन बोला। उसने कहा—मुझको क्या आज्ञा है? विष्णुजी बोले कि तुम हमारे शरीर से उपजे हो, इससे हमारा काम अच्छीतरह से पूर्ण करो। तुम हमारे ही रूप हो। यह कहकर विष्णु ने एक बहुत बड़ा ग्रन्थ, जिसमें सोलह सहस्र श्लोक थे, रच दिया। उसमें नीचे लिखी बातें थीं। वह पुस्तक छल और झूठ से भरी हुई थी। उसमें कोई ठीक धर्म नहीं लिखा हुआ था। वह वेदशास्त्र और पुराण के विपरीत था, जिसको पढ़कर कुछ भी आनन्द न मिलता था। उसमें वेद, पुराण और शास्त्रों की बहुत ही निन्दा लिखी थी। वर्णाश्रमधर्म का भी खूब खण्डन था, जिसमें उसके अनुसार चलने से नरक मिलने में कुछ भी देर न लगे। उसमें केवल नरक ही को नरक और स्वर्ग ठहराया था। प्रत्यक्ष, आँखों से, देखी हुई चीज़ के सिवा परोक्ष अर्थात् अनुमान का विश्वास नहीं करने का उपदेश था। उसमें

सब बातें कुमति और संशय की थीं। नाना प्रकार के वितण्डा-वाद भरे हुए थे। उसमें पतिव्रत धर्म और देवताओं की, यहाँ तक कि शिवजी की पूजा भी वर्जित थी। धर्म के दश कर्मों का कुछ भी विचार न था। चेटक नाटक के सिवा कुछ भी बात सच न थी। उसके मानने से शौच तप सब नष्ट हो जाते। वह पुस्तक इन्द्रफल (कुँदरू) के समान सूरतहराम थी। उस पुस्तक को देकर विष्णु ने कहा कि तुम त्रिपुर में जाकर सबको यह पुस्तक पढ़ा दो। वहाँ के निवासी वेद और पुराण के अनुकूल सब कार्य करते हैं। तुम वहाँ जाकर इस मत का उपदेश करो, जिसमें वे धर्म से भ्रष्ट हो जायँ और शिवजी की पूजा छोड़ दें। जब तुम अपना कार्य पूर्ण कर लो, तब अपने नौकरों और चेलों समेत तब तक मरुस्थल में स्थित हो जाओ जब तक कलियुग न आवे। वहाँ गुप्त रहा करना। जब कलियुग का आरम्भ हो जाय, तब तुम मेरे इस उपदेश को भली भाँति प्रसिद्ध करना, तुम कुछ सन्देह मत करो। तुम्हारी बड़ी पदवी हो जायगी। मुण्डी ने यह आज्ञा सुनकर और बहुत चेले किये। विष्णु ने कहा कि तुम बिदा हो जाओ। हमारा एक नाम अर्हण है। उसका स्मरण करते रहना। तुमको कभी कुछ भय न होगा। वह मुण्डी चेलों समेत चलकर त्रिपुर में पहुँचा और बहुत से चेटक दिखा उसने बहुत लोगों को अपना चेला किया। ऐसा कोई न था, जो मुण्डी के पास जाकर चेला हुए विना अपना पुराना धर्म विश्वास लेकर घर चला आवे। हे नारदजी ! शिवजी की लीला से तुम भी मुण्डी के शिष्य हुए; क्योंकि उसमें देवताओं का कार्य बनता था। फिर तुमने त्रिपुरासुरों के पास जाकर इस प्रकार मुण्डी की प्रशंसा की कि त्रिपुर भी मुण्डी के शिष्य हो गये। मुण्डी ने त्रिपुरासुरों से यह प्रण करा लिया कि हमारी

आज्ञा किसी दशा में अमान्य न की जाय, यह बात मान लेने के बाद मुण्डी ने मुख पर से वस्त्र उठाकर त्रिपुर को चेला बनाया और मन्त्र दिया। फिर नाना प्रकार के कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य काम बता दिये। जब त्रिपुर चेले हो गये तो फिर ऐसा कोई व्यक्ति न रह गया, जो मुण्डी का चेला न हुआ हो।

चौथा अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! त्रिपुर को चेला बनाने के उपरान्त मुण्डी ने कई आज्ञाएँ त्रिपुर को दीं और कहा कि हमारा मत सब मतों से बड़ा है, जिसको नारद ने भी माना है। इस मत के मार्ग ये हैं—यह संसार अनादि है। इसका आदि-अन्त कुछ नहीं। न इसका कोई कर्ता या बनानेवाला है। यह सनातन से इसी प्रकार चला आया है। समय पर आप ही प्रकट होता है और इसी तरह समय पाकर अन्तर्द्धान हो जाता है। समय पाकर अच्छा बुरा हो जाता है। ब्रह्मा से लेकर घास-मिट्टी तक जितने प्राणी हैं, सब मरने के समय बराबर हैं। जीव ही ईश्वर है, जो इस अपने शरीर में वर्तमान है। इसके सिवा और कोई संसार का स्वामी नहीं है। ब्रह्मा आदि जो देवता बहुत प्राचीन हैं, वे भी अमर नहीं हैं। वरन् ये सब मृत्यु के वश में हैं। हाँ, यह बात है कि कोई तो विलम्ब में और कोई शीघ्र मरता है। पर मृत्यु से कोई नहीं बचता। निश्चय करके सब शरीरधारी नष्ट हो जायँगे। दुःख-सुख भोगकर वे फिर शरीर धारण करेंगे। सब जीव एक ही सा बराबरी का पद रखते हैं। इनमें कोई बड़ा या छोटा नहीं है। भोग और भोजन आदि कामों में, सब बातों में बराबर हैं। कुछ बड़ाई-छुटाई की बात नहीं है। क्योंकि जैसे एक स्त्री सुन्दर और दूसरी कुरूप मालूम होती है, पर वे दोनों मैथुन में एक ही सी हैं। सवारी चाहे किसी तरह की

हो, बराबर है। बिछौना चाहे सजा हो चाहे न हो, सोने में बराबर है। जैसे हमको मृत्यु का भय है, उसी तरह ब्रह्मा, विष्णु और महेश को भी मौत का डर है। कोई काल से न बचेगा। इसलिए जानो कि हममें और उनमें कुछ बड़ाई-छुटाई नहीं है। जैसे वे वैसे हम। इसी प्रकार जाति की बड़ाई-छुटाई का झगड़ा है। वेद और शास्त्र आदि सब झूठे और फल रहित हैं। केवल सब धर्मों से उत्तम धर्म हिंसा का त्याग करना है। उससे बढ़कर और कोई धर्म नहीं है। औरों को दुःख देने से बड़ा कोई पाप नहीं है। चार प्रकार के दान सब दानों से बड़े हैं। एक रोगी को औषध देना, दूसरा भयभीत को शरण में लेकर निर्भय करना। तीसरा भूखों को खिलाना। चौथा विद्यार्थी को विद्या पढ़ाना। अच्छी चिकित्सा और औषधों से शरीर को आरोग्य रखना चाहिए। धन इकट्ठा कर अपने शरीर को पालना उत्तम है। नरक और स्वर्ग इसी संसार में हैं। जो आनन्द है, वह स्वर्ग है और जो दुःख है वही नरक। दूसरे के वश में रहना बन्धन है। इससे छूट जाना ही मुक्ति या मोक्ष है। दुःख से वासना समेत छूट जाना ही परममोक्ष है। वेदों ने जो दो मार्ग प्रवृत्ति और निवृत्ति कहे हैं, उनका तात्पर्य यह है कि जीवों को दुःख देना ही प्रवृत्तिधर्म है और दया और कृपा रखना जीवों का निवृत्तिधर्म है। देखो, जीवों का वध करके और तिल और यव और घृत अग्नि में डालकर स्वर्ग की जो इच्छा करते हैं, इससे बढ़कर और कोई मूर्खता नहीं है। मुंडी ने इसी प्रकार अपने धर्म का वर्णन किया, जिसको त्रिपुरासुरों ने ठीक समझा। अपने नवीन गुरु की आज्ञा से पुराने मत को छोड़कर वे नये मत में स्थित हुए फिर मुंडी ने अपने मत की आज्ञा सुनाई। कहा-जबतक मृत्यु न आवे, तबतक आनन्द मनाओ और मौज से विहार करो। और जो कोई दानमें माँगे तो अपना शरीर

भी दे देना उचित है। ऐसे मनुष्य के बराबर प्रशंसनीय इस संसार में दूसरा नहीं। यदि कोई भिक्षुक या याचक कोई वस्तु माँगे और उसको वह वस्तु न दी जाय, यदि कोई मंगन अपना मनोरथ पाये विना विमुख चला जाय तो उस न देनेवाले का सब धन-द्रव्य नष्ट हो जाता है। अपने शरीर का, जो गीदड़, सियार और कुत्ते आदि के ग्रास से अधिक नहीं, कुछ लोभ या मोह न करना चाहिए। मरने पर अन्त को जिसे कीड़े आदि खा डालेंगे, उस शरीर के भोग के लिए इतनी सामग्री इकट्ठा करने की क्या आवश्यकता है। देखो, जब ब्रह्मा आदि ने परस्पर एक दूसरे की सन्तति से विवाह कर लिया, तब तो उनका धर्म बना रहा, पर औरों के लिए गोत्र में ब्याह करना बड़ा पाप ठहराया गया। चार वर्ण बनाकर चार भाइयों के जुदे-जुदे वर्ण कहते हैं, यह बहुत ही बुद्धि-विरुद्ध है। तुमको उचित है कि सबका नाता बराबर समझो। मनुष्यों में बड़ाई और छुटाई का किसी तरह का अन्तर और भेद न मानना चाहिए; क्योंकि ये बातें केवल वाचालता और चतुरता की हैं।

इतना कह ब्रह्माजी बोले—हे नारद! इसी प्रकार की बहुत बातें सुनकर सब असुर वेद के विपरीत हुए। सब स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म छोड़ स्वतन्त्र और कुमार्गी हुईं। जिसने जिसके साथ चाहा, भोगविलास किया। सब कर्मों से अधिक चेटक ने प्रचार पाया। किसी स्त्री को बाँझ से सन्तानवती कर दिया, किसी स्त्री के पुरुष को जिला दिया, सिद्ध-अञ्जन आँखों में लगाकर पृथ्वी के नीचे की सब चीज़ें दिखाईं, सिद्धों के देश को प्रकट कर दिखाया। इसी प्रकार हर प्रकार की माया और छल फैलाकर सब स्त्री-पुरुषों को अपने वश में कर लिया। यहाँ तक कि त्रिपुर से लेकर छोटे-छोटे असुर तक प्राचीन धर्म छोड़ अर्हण के धर्म को मानने लगे।

देवयजन, पितृकर्म सब भूल ही गये। सब धर्म, तीर्थ, व्रत, यज्ञ और इसी प्रकार के वेद विहित कर्म सब छूट गये। केवल यह धर्म रह गया कि सबने रात को भोजन करना बन्द कर दिया।

पाँचवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले--हे नारद! वेद, पुराण, धर्मशास्त्र, स्त्रियों का धर्म, शिव और विष्णु की पूजा, यज्ञ और हवन, स्नान और दान, व्रत और शुभ कार्य सब बंद हो गये और वेद के विरुद्ध नास्तिक मत त्रिपुर भर में छा गया। लक्ष्मी वहाँ के निवासियों से रूठ गईं और चारों ओर दरिद्र ही दरिद्र दिखाई दिया। हे नारद! ये सब बातें तुम्हारे कारण हुईं। तीनों भाइयों ने शिवजी की पूजा को छोड़ दिया और देश में उपद्रव होने लगा। देवताओं ने यह दशा देख आनन्द में मग्न हो, इन्द्र को साथ ले मेरे पास जाकर सब हाल कहा। मैं सबको साथ लिये हुए विष्णु के निकट गया। उनकी स्तुति करके कहा कि आपके उपाय से बड़ा काम हुआ, अर्थात् आपके रूप अर्हण, शिष्यों समेत, त्रिपुर में जाकर नारद के शिष्य बनाने के उपरान्त सबको अपने मत में ले आये। अब निश्चय है कि आप त्रिपुर को जला देंगे। विष्णु बोले कि शिव देवताओं के कार्य को पूर्ण करेंगे। यह कह और हम सबको साथ लिए हुए शिव के समीप गये और देवताओं समेत स्तुति करने लगे। विनय की कि देवताओं को आनन्द देकर दैत्यों का विनाश करो। शिवजी ने कहा कि हम देवताओं के कार्य को जान गये। अब तुरन्त त्रिपुर नष्ट हो जायँगे। यह शिवजी के वचन सुन देवता अति प्रसन्न हुए और शिवजी की बहुत स्तुति की। जो इस चरित्र को सुने-सुनावेगा, वह अपने सब मनोरथ पावेगा।

छठा अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! तब गिरिजा अपने लड़के को

दिखलाती हुई और जय शम्भु जय शिवनाथ स्तुति गाती हुई शिव के पास आई और कहा कि अपने पुत्र षडानन का खेल देखो। शिव ने लड़के को गोद में बिठाया और प्रसन्नता के कारण नाचने लगे। यहाँ तक कि सब विद्यमान देवता शिवजी के साथ नाचने लगे। तब बड़ा उत्सव हुआ। निदान गिरिजा षडानन को साथ लिये भीतर घर में चली गई और यह न जाना कि दैत्यों के हाथ से देवताओं को कितना दुःख मिला है। यद्यपि देवताओं ने बहुत स्तुति की और अपना कष्ट सुनाया, पर शिव ने कुछ न सुना। तब विष्णु और मैं सब शिव के द्वार पर बैठकर परस्पर कहने लगे कि अब कहाँ जावें, किससे कहें, क्या करें? हमारी नाव को कौन पार लगावेगा? कुछ थोड़े-थोड़े शिव प्रसन्न हुए थे सो वह भी घर में चले गये। शायद हमसे कुछ सेवा में अपराध हुआ। देवताओं के बड़े भाग्य हैं कि इन अपकर्मों के करने पर भी शिव अब भी उन पर कृपा करते हैं। फिर देवताओं ने सम्मति की कि चलो, स्त्रियों समेत शिवजी के भीतर जावें। यह देवताओं का विचार शिवजी जान गये। उन्होंने गणपति को भेजा, जिन्होंने डंडों से मारकर सबको निकाल दिया। यहाँ तक कि इन्द्र भी दुखी होकर गिर पड़े। तब कश्यप मुनि ने धैर्य धर कर कहा कि शिव ने यह क्या चरित्र किया कि दया छोड़ ऐसा दण्ड देते हैं। फिर जाकर विष्णु से यह सब हाल कहा कि हमारा मनोरथ पूरा नहीं हुआ, सब परिश्रम वृथा गया। विष्णुजी ने कहा कि धैर्य रक्खो, शिवजी अवश्य ही सब दुःख दूर कर देंगे। फिर सबको शिवजी का एक मन्त्र, जिसमें दस हज़ार अक्षर हैं, बताकर कहा कि इसका चौदह करोड़ जप करो। शिवजी प्रसन्न होकर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे। सब देवता जपकर सिद्धि की बाट देखते थे कि शिव प्रकट हुए और कहा कि हे विष्णु और

ब्रह्मा ! तुम्हारी दृढ़ता धन्य है। हम प्रसन्न हैं। अपनी इच्छा के अनुसार वर माँगो। शिव को प्रसन्न पाकर सबने स्तुति की और कहा कि त्रिपुरासुर के तीनों पुरों का नाश करो। यह कह फिर देवता स्तुति करने लगे। शिव ने प्रसन्न होकर "ऐसा ही होगा" ऐसा कहा और दैत्यों पर कुपित होकर अपने बाण को छोड़ दिया, जिसने सूर्य के समान प्रकाशमान होकर सब दैत्यों को नष्ट कर डाला। पर जो शेष बचे, उन्होंने उन सबको अमृत के कुण्ड में, जो वहाँ था, छोड़ दिया, जिससे वे फिर जी उठे और लौहतनु होकर बादल के समान गर्जे और बिजली के समान चमके और अग्नि के समान भड़ककर देवताओं को धमकाने लगे। शिवजी ने विष्णु से और मुझ से कहा कि तुम दोनों बछड़े बनकर वहाँ जाकर अमृत को पी लो। दैत्य तुमको नहीं जानेंगे। मैं और विष्णु बछड़े बन दो-पहर दिन चढ़े वहाँ पहुँचे। हमको किसी ने न देखा। विष्णु और मैं, दोनों लौटकर शिवजी की स्तुति करने लगे। शिवजी की लीला से असुर अन्धे हो गये। शिवजी की स्तुति में हमने शिवका विराट्‌रूप वर्णन किया। यह सुन शिवजी ने कहा कि हे देवताओ ! तुम चिन्ता मत करो। अब तुम शीघ्र ही सिद्धि पाओगे, त्रिपुर नष्ट होंगे। इस बात को निश्चय मानना। यह कह कर शिवजी तो चुप हो गये और हम सब वहाँ स्थित रहे। इतने में गणों के राजा नंदी बहुत गणों समेत आये। उनको देखकर देवताओं ने अतिआनन्द माना और विनय की कि हे शिलादि मुनि के पुत्र नन्दी! कोई ऐसा उपाय करो, जिससे तीनों पुर एक में मिल जावें। नन्दी बोले कि शिवजी ने तुमको आज्ञा दी है कि तुरन्त एक रथ बनाओ और सारथि, बाण, धनुष आदि सब नवीन ठीक करके रक्खो। मुझको निश्चय है कि शिवजी अवश्य ही त्रिपुर का नाश करेंगे। यह कहकर नन्दी अपने घर

चले गये। देवताओं ने अति प्रसन्नता से "जय-जय शिव" कहा। इन्द्र ने विश्वकर्मा को बुलाकर शिवजी की आज्ञा सुनाई। विष्णु और मैंने विश्वकर्मा का आदर करके कहा कि तुम शिव के सारथि होना। तुम बाण और धनुष भी तैयार कर दो। तुमको इन्द्र की अवश्य ही सहायता करनी चाहिए, क्योंकि तुम्हारे समान देवताओं का और कोई सहायक नहीं है। तुम सब कारीगरों के राजा हो। विश्वकर्मा ने सदाशिव का ध्यान किया तो उनके मन में रथ के बनाने की युक्ति बैठ गई और उन्होंने सब कुछ तैयार कर दिया।

सातवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! विश्वकर्मा ने रथ तैयार किया। वह रथ मानो सृष्टि भर के विस्तार का था। उसमें सूर्य दाहिना चक्र अर्थात् पहिया, चन्द्रमा बायाँ पहिया, इसी प्रकार बारहों सूर्य सोलहों कला वर्तमान थीं। उस रथ को नाना भाँति के वस्त्रों से भूषित किया। मन्दरागिरि, उदयाचल, अस्ताचल, मेरु आदि पर्वत और वर्ष, मास, तिथि, मुहूर्त, कला, पल, विपल, मेघ, आकाश, दशों इन्द्रियाँ, इसी प्रकार और भी सब रथ के खण्ड हुए। चारों वेद उस रथ के घोड़े और व्यास आदि घोड़ों के चरानेवाले हुए। कर्म-धर्म के शास्त्र, पुराण और न्यायशास्त्र, ये सब मुख हुए। आश्रम, वर्ण आदि भी उसके अङ्ग हुए। गङ्गा आदि नदियाँ और चार सागर चमर लेकर रथ के चारों ओर खड़े हुए। लोकालोक पर्वत आदि उसकी सीढ़ियाँ हुईं। प्रणव चाबुक, विष्णुजी बाण और हिमाचल धनुष हुआ। निदान ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सब इस रथ में थे। जब यह सामग्री तैयार हो गई और वह रथ शिवजी के द्वार पर खड़ा किया गया तो शिवजी आये। तब सब ने विनती की कि महाराज! आप रथ पर सवार हों और त्रिपुर

का नाश करके तीनों लोकों को आनन्द दें। शिवजी ने गणपति को बुलाकर उनकी पूजा की। फिर रथ पर चढ़कर आकाश और पृथ्वी को कँपाते हुए चले। सबने जय-जयकार किया। पृथ्वी इस रथ का भार न सहकर काँप उठी। जैसे-जैसे रथ चलता था, वैसे-जैसे वह टेढ़ी होती जाती थी। निदान शिवजी अपनी सेना समेत देवताओं को प्रसन्न करते हुए चले। उस समय शिवजी के आश्चर्यदायक चरित्र से तीनों पुर इकट्ठे हुए और शिवजी ने उत्तम समय पाकर अपने धनुष में विष्णुपति अस्त्र को लगाकर अपने तेज को उसी अस्त्र में स्थापित कर दिया। तब उससे धनुष और बाण दोनों प्रकाशमान हुए। हरे-भरे घास-फूस भी जलने लगे। सृष्टि भर में ऐसा प्रकाश उदय हुआ। शिवजी ने उस समय मन में यह विचार किया कि अब तीनों पुरों को जला दूँ। जब विलम्ब हुआ, तब विष्णु, इन्द्र और मैंने विनती की।

आठवाँ अध्याय

देवताओं ने कहा कि हे शिव ! तुम्हीं देवताओं के रक्षक हो। इसी प्रकार बहुत स्तुति और विनती की कि अब विलम्ब मत कीजिए। तीनों लोक जले जाते हैं। त्रिपुर को नष्ट कीजिये; क्योंकि देवताओं का मन दुखी है। शिवजी ने वही अस्त्र त्रिपुर को लक्ष्य करके छोड़ दिया। उसके छोड़ने से बड़ा शब्द हुआ, जैसे प्रलयकाल के बादल गरजते हैं। इतनी अग्नि उठी कि तीनों लोक जलने लगे। धरती काँप गई, पर्वत जल उठे। शेषनाग पृथ्वी को सिर पर न रख सके। नदियाँ सूख गईं। दिग्गज और कूर्म, जो पृथ्वी को सँभाले हुए हैं, सब बलहीन हो गये। सब मुनि और सिद्ध ध्यान छोड़ अचम्भे में हुए। तुरन्त बाण के पहुँचते ही तीनों पुर जलकर भस्म हो गये।

बाण उन सबको जलाकर शिवजी के पास लौट आया। त्रिपुर में कोई मनुष्य जीता न बचा। सब दैत्य शिवजी के हाथ से मर कर मुक्ति पा गये। वे सब शिवजी के गण हुए; क्योंकि भक्ति का बीज नष्ट नहीं होता। उस समय शिवजी का स्वरूप ऐसा भयानक था कि जाना जाता था, अब प्रलय में कुछ विलम्ब नहीं है। महातेज के कारण मैं और विष्णु आदि कोई उनको आँख भर नहीं देख सकता था। सब अपने आप काँपते थे। कोई व्यक्ति शिवजी के समीप तक न जा सका। विष्णु और मैंने दूर से स्तुति की। इसी प्रकार सब देवताओं ने दूर ही से एक शिवजी की स्तुति धीरे-धीरे मधुरस्वर से गाई। सबसे पहले विष्णु ने स्तुति की और कहा कि क्रोध को दूर करो। फिर मैंने स्तुति की। फिर लोकपाल, देवता, सिद्ध, नाग, मुनि और वेदों ने अपनी-अपनी स्तुति को युक्तिपूर्वक काव्य में गाया। ऐसी बहुत सी स्तुति सुनकर शिवजी प्रसन्न हुए और सबको दया और कृपा की दृष्टि से देखा। सो हम सब शिवजी को प्रसन्न पाकर उनकी सेवा करने लगे और चारों ओर से जय का शब्द हुआ।

नवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! शिवजी अति प्रसन्न होकर कहने लगे कि तुम सब हमसे अपनी इच्छा का वरदान माँग लो। देवताओं ने कहा कि आपने त्रिपुर को नष्ट करके हमको बड़ा आनन्द दिया। आपकी कृपा से हम सब कृतार्थ हो गये। जब-जब हम पर कोई कष्ट पड़े, तब-तब उसको दूर किया कीजिये और अपनी भक्ति हमको दीजिये। हमको अपना सेवक समझिये। जो कोई अपराध हमसे हो, उसे क्षमा करते रहिये। आप हम सबके पिता और राजा हैं। शिवजी ने ॐ कहकर हम सबको प्रसन्न किया। तब नृत्य और गान का बड़ा उत्सव हुआ।

ऐसे आनन्द के समय में अर्हण ने अपने चारों शिष्यों समेत आकर शिवजी को प्रणाम किया और सब देवताओं को भी दण्डवत् की। फिर नम्र होकर शिवजी से कहा कि आपकी आज्ञा से मैंने इस मत का सोचे-विचारे विना प्रचार किया। मुझ पर ऐसी कृपा हो कि मुझे ऐसे नष्ट कर्म का कोई पाप न लगे। और मुझे आज्ञा दीजिये कि अब मैं क्या करूँ? कहाँ और किस स्थान पर स्थित रहूँ? और अपनी पुस्तक को, जो सोलह सहस्र श्लोक है, क्या करूँ? मेरे शिष्यों के लिए क्या आज्ञा है? विष्णु ने शिवजी की आज्ञा के अनुसार कहा कि हे अर्हण! तुम शिष्यों समेत जाकर मरुस्थल में रहो। शिवजी के स्मरण को मत भूलना। कलियुग के आने तक अपना मत प्रकट न करना। यह जो हुआ है, वह सब शिवजी की आज्ञा के अनुसार हुआ है। तुमको कुछ पाप नहीं है। जब कलियुग का आरम्भ हो तो इधर-उधर अपने मत को फैलाना और सब स्त्री-पुरुषों का मन अपने अधीन करना, जिससे सब लोग महापापी हो जायँगे। कलियुग पापों का बीज है। तुम्हारा मत कलियुग में भली भाँति चलेगा। सब लोग सन्मार्ग से हट जावेंगे। यह कहकर विष्णु ने शिष्यों समेत अर्हण को विदा किया। हे नारद! जब कलियुग आवेगा, तब अर्हण मरुस्थल से निकलकर अपने मत को प्रकट करेगा। हे नारद! यद्यपि मयदानव त्रिपुर में था, पर शिवजी की कृपा से बचा रहा। उसने शिवजी की स्तुति कर हम सबको भी प्रणाम किया। शिवजी ने मयदानव की स्तुति सुनकर प्रसन्नता से कहा कि हे मयदानव! तुम निर्भय रहकर रसातल में रहो। मयदानव वहाँ जाकर रहने लगा। मयदानव पर यह शिवजी की कृपा देखकर सब प्रसन्न हुए और शिवजी की बड़ी स्तुति करके हम सब अपने-अपने स्थानों को चले गये। शिव और गिरिजा पुत्र सहित

कैलास पर्वत पर स्थित हुए। सब योगिनियों ने मङ्गलगीत गाये। जो मनुष्य इस चरित्र को सुनेगा या सुनावेगा, उसका मनोरथ पूर्ण होगा।

दसवाँ अध्याय

इतना सुन नारद ने कहा कि हे ब्रह्माजी! मुझे त्रिपुर के कथा सुनने से अति प्रसन्नता प्राप्त हुई है। अब आप वर्णन करें कि मयदानव क्योंकर त्रिपुर के साथ न जला? ब्रह्माजी बोले कि मयदानव शिवजी का भक्त था, इस कारण वह इस अग्नि से बचा रहा। प्रकट हो कि कश्यप की स्त्रियों में एक स्त्री का नाम दनु था। उसके साठ लड़के बड़े वीर धीर उपजे। वे तीनों लोकों में प्रसिद्ध बुद्धिमान् थे। उनमें से एक मय भी था। उसने भक्तिपूर्वक शिवजी का बड़ा तप किया और काशी में भी बड़ा तप किया। अपनी इन्द्रियों को जीतकर ध्यानपूर्वक पञ्चाक्षरमन्त्र भली भाँति जपा। गर्मियों में अग्नि तापकर, वर्षा में खुले वन में रहकर और शीतकाल में जल के भीतर बैठकर कठिन तप करता रहा। शिवजी की मृत्तिका की मूर्ति बनाकर शिव को पूजा और उसी के प्रमाण चावल, बिल्वपत्र और हर रङ्ग के सुगन्धित पुष्प चढ़ाये। स्थिर होकर दृढ़ आसन और ध्यान से श्वास रोके बैठ रहा। शिवजी ने बहुत प्रसन्न हो "वर माँग, वर माँग" कहा। पर मय ने इस वचन को न सुना। तब शिवजी ने अपनी मूर्ति को मय के ध्यान से खींच लिया। मय ने आश्चर्यचकित होकर नेत्र खोल दिये तो देखा कि शिवजी खड़े हुए हैं। उनका महा-गौर शरीर, भस्म लगाये हुए, भाल पर चन्द्रमा विराजमान और अपने मुख्य स्वरूप और मुख्य लक्षणों से सुशोभित हैं। ऐसा सुन्दर स्वरूप देख मय उठ खड़ा हुआ और शिर झुका प्रणाम-कर स्तुति की। कहा—क्या वरदान माँगूँ? आप तो सब कुछ

जानते हैं। और चुप हो गया। शिवजी ने कहा—बहुत अच्छा। हम तुमको तुम्हारे हृदय की मनसा के अनुसार यह वरदान देते हैं कि तुम सब दैत्यों के आचार्य होकर सदा निर्दोष रहोगे। जिस तरह देवताओं में विश्वकर्मा हैं, उसी तरह तुम दैत्यों में हो। तुमको जरा-मृत्यु प्राप्त न होगी। हमारे ध्यान में लगे रहकर नाना प्रकार की कारीगरी कर सकोगे। हम तुमको कभी नष्ट नहीं करेंगे। तुम्हारे मन में कभी पाप न आवेगा। यह कह शिवजी ने मय के शरीर को स्पर्श कर दिया, जिससे मय को अति आनन्द प्राप्त हुआ। शिव अन्तर्धान हो गये। मय उस ओर को प्रणाम कर अपने घर गया। दैत्यों ने शिवजी के वरदान के कारण उसको अपना आचार्य बनाया। यह मयदानव का चरित्र अति पवित्र सुनने और सुनानेवाले को मय के समान कर देता है। उसकी बुद्धि कभी भ्रष्ट नहीं होती। उससे कोई पाप नहीं होता। अन्त में मुक्ति प्राप्त होती है।

ग्यारहवाँ अध्याय

इतना कहकर सूत पौराणिक बोले कि हे शौनक! इस चरित्र के सुनने के उपरान्त नारद ने ब्रह्माजी से कहा कि हे पिता! अब शिवजी का और चरित्र वर्णन कीजिये। ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! तुमको और तुम्हारी बुद्धि को धन्य है कि शिवजी की ऐसी भक्ति तुमको है और तुमने विष्णु की सेवा करके शिवजी की इतनी भक्ति पाई है। मैंने वेदों को बहुत ही छाना है और जो कुछ कि वेदों से मुझको निश्चय प्राप्त हुआ है, उसका मूल मैं वर्णन करता हूँ। पहले हर मनुष्य असंख्य जन्म पर्यन्त हमारी पूजा करके विष्णु की भक्ति पाता है। फिर बहुत जन्म तक विष्णुजी की उपासना से शिवजी की प्रीति उपजती है। तुम निस्सन्देह शिवजी के बड़े भक्त हो। अब शिवजी का चरित्र

वर्णन करते हैं, जिस तरह शिवजी ने जलन्धर दानव को मारा। यह बहुत ही पवित्र इतिहास है, जिसे सुनकर सब मनोरथ प्राप्त होते हैं। किसी समय एक बार इन्द्र और सब देवताओं ने शिवजी के दर्शन के लिए एक सभा की, जिसमें ग्यारह रुद्र, बारह सूर्य, आठ वसु, तेरह विश्वेदेव, उञ्चास पवन, सब दिक्पाल और उपदेव आदि वर्तमान थे। ऐसी समाज को अपने साथ ले बड़े उत्सव के साथ रजोगुण धारण किये हुए इन्द्र शिवजी के दर्शन को चले। केवल शिवजी के दर्शन से उनको संसार में यश पाना स्वीकार था। शिवजी ने लीला करके अपना स्वरूप भयानक बनाया और अवधूतों के समान हो इन्द्र के नगर में प्रकट हुए। इन्द्र ने पूछा कि तुम कौन हो? जान पड़ता है, तुम शिवजी के सेवकों में से कोई हो। हमको बताओ कि शिवजी किस स्थान पर रहते हैं। इस तरह से कई बार इन्द्र ने पूछा, पर कुछ उत्तर न पाया। तब इन्द्र ने बहुत क्रोध किया और धमकाते हुए कहने लगे---तू भूत तो नहीं है, जो उत्तर नहीं देता? अब वज्र से तुझको मार डालता हूँ। यह कह अपना वज्र शिवजी पर चलाया। वह शिवजी की गर्दन में लगा। शिवजी वज्र की शक्ति और प्रभाव के स्थिर रखने के लिए नीलकण्ठ हो गये, अर्थात् श्याम-चिह्न कण्ठ में धारण किया और वज्र भी जलकर भस्म हो गया। शिवजी का तेज इतना भभक उठा कि चारों ओर दाह फैल गया। सब देवता स्त्रियों समेत जलने लगे। यह दशा देखकर सब कम्पित हुए। बृहस्पति ने सदाशिव का ध्यान किया और पहचाना कि ये ही शिवजी हैं। तब स्तुति करके इन्द्र से कहा कि यह जो खड़े हैं, सदाशिव ही हैं। तुरन्त दण्डवत् करके स्तुति करो। इन्द्र, बृहस्पति और सब देवता स्तुति करने लगे। कहा कि यह अपराध हमारा क्षमा करो। हम

आपके दर्शनों के लिए जा रहे थे, पर आपने आप ही कृपा करके गुप्तरीति से बिना परिश्रम हम सबको दर्शन दिये। ऐसी उत्तम और बृहत् स्तुति सुनकर शिवजी प्रसन्न हुए और कहा कि वरदान माँगो। यह तुम्हारी स्तुति सुनकर हम बहुत प्रसन्न हैं। देवगुरु ने कहा कि क्रोध दूर करके इन्द्र की रक्षा कीजिये। आपका जो नेत्र भाल पर तेजरूप है, उसकी तीक्ष्णता दूर हो जाय ؛ यह वचन सुन शिवजी बोले कि वह अग्नि, जो हमारे नेत्र से निकल गई है, उसे हम किसी प्रकार अपने भाल में स्थान नहीं दे सकते, जैसे कि सर्प अपनी केंचुल को छोड़कर फिर उसको आप नहीं पहनता। पर तो भी हम कृपा करेंगे। इस तेज को बहुत दूर फेंक देंगे। जिससे इन्द्र को कष्ट न हो। जो कि तुमने इन्द्र को जीवदान दिया, इसलिए तुम्हारा नाम जीव प्रसिद्ध होगा। यह सुनकर बृहस्पति और इन्द्र आदि अति प्रसन्न हुए। शिवजी ने उस तेज को हाथ से समुद्र में फेंक दिया और आप अन्तर्धान हो गये। सब देवता जय-जय कहते हुए अपने-अपने घर को चले गये।

बारहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! जब शिवजी ने अपने नेत्र के तेज को दूर फेंक दिया तो वह सुरनदी सागर में गिर पड़ा और तुरन्त ही बालक के स्वरूप से प्रकट होकर अतिभयानक रुदन करने लगा। पृथ्वी उसके शब्द से काँप उठी। वह शब्द चारों ओर छा गया। सब आश्चर्य करने लगे। पर्वत चलायमान हुए और समुद्र सूख गये। सब देवता और मुनि आश्चर्य में होकर हमारे पास जाकर कहने लगे कि हे ब्रह्मन्! यह कैसा शब्द है, कहाँ से आता है? इसको दूर करो, जिससे देवताओं को आनन्द प्राप्त हो। मैंने कहा कि यह शब्द सुनकर हम भी आश्चर्य में हैं।

तुम सब अपने घरों को चले जाओ। हम जहाँ से यह शब्द आता है, वहाँ जावेंगे। फिर मैंने सबको बिदा कर दिया और आप ढूँढ़ते हुए पहिले समुद्र के तट पर आया। वहाँ देखा कि एक अति सुन्दर बालक पड़ा हुआ है। मुझको निश्चय हुआ कि वह शब्द इसी का था। मुझको आते देखकर समुद्र अपने पुत्र समेत मेरी ओर आया और प्रणाम के उपरान्त उस लड़के को मेरी गोद में डालकर आप खड़ा रहा। मैंने पूछा कि यह किसका पुत्र है? समुद्र ने कहा कि यह बालक मुझ समुद्र में उत्पन्न होने से मेरा ही है। आप इसका नाम रख दीजिये और आपही संस्कार भी कीजिये। यह वार्त्ता हो ही रही थी कि लड़के ने मेरी दाढ़ी पकड़ ली और इतनी खींची कि मेरी आँख से आँसू निकल पड़े। मैंने बहुत दुखी होकर बड़ी युक्ति से अपनी दाढ़ी छुड़ायी और समुद्र से कहा कि तेरा पुत्र अतिबलिष्ठ होकर तेरी कीर्ति को सब देशों में बढ़ावेगा। जो कि मेरी दाढ़ी को इसने इतना पकड़ा कि आँसू बहे, इससे इसका नाम जलन्धर होगा। यह तुरन्त ही युवा होकर वेदों को जानेगा। अब जहाँ से उपजा है वहाँ जावे। यह कहकर मैंने शुक्र को बुलाया और बड़ा उत्सव किया। राज्याभिषेक उसका करके ब्राह्मणों को बहुत दान दिया। जालन्धरी नगरी उसकी राजधानी हुई, जिससे देवताओं की सब बात बनी हुई बिगड़ गई। समुद्र ने बड़ी धूमधाम से उत्सव की रीतें पूरी कीं। मैंने जलन्धर से कहा कि तुम्हारे कुल के गुरु शुक्र होंगे। यह कहकर मैं तो अन्तर्धान हो गया और जलन्धर जालन्धरी को बसाकर रहने लगा। समुद्र प्रसन्नता से अपने में फूला न समाता था। उसने दैत्यों के राजा कालनेमि को बुला-कर अपने पुत्र की शक्ति का वर्णन किया। कालनेमि कुल-समेत अति प्रसन्न हुआ। उसने इच्छा की कि अपनी पुत्री जलन्धर

को विवाह दूँ। फिर शुक्रजी की सम्मति लेकर बड़ी धूमधाम से विवाह हो गया। इन दोनों कुलों में सम्बन्ध के कारण अति प्रीति और मित्रता उपजी। जलन्धर पहले आप ही बड़ा बलवान् था। उस पर जब शुक्र से सहायता मिली तो उसने तीनों लोकों को अपने अधीन कर लिया। उसने पुत्र समान प्रजा का पालन किया। जो दैत्य कि पाताल में भाग गये थे, वे भी जलन्धर की आज्ञा से निर्भय होकर जलन्धर के समीप आ पहुँचे। सब परस्पर मिल प्रसन्न हो रहने लगे। जलन्धर ऐसा राजा हुआ कि उसके राज्य में कोई पाप नहीं होता था। उसकी आज्ञा से तीनों लोकों में किसी ने उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया। वह ऐसा प्रतापी था कि भलों को सुख और बुरों को दुःख देता था। उसने सबों से अपने-अपने वर्ण के अनुकूल धर्म कराया। कोई कुमार्गी न होने पाया। उसका प्रताप और तेज तीनों भुवनों में फैल गया।

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! एक समय जलन्धर अपनी सभा में बैठा था। सब वीर दैत्यों के अधिप और सब दैत्य और शुक्र आदि चारों ओर से अपने-अपने स्थान पर घेरा उसके चारों ओर बैठे हुए थे। इतने में शीश-रहित राहु सभा में आया, जिसको देख अति आश्चर्य कर जलन्धर ने शुक्र से पूछा कि हे शुक्र! इनका शिर किसने काट डाला है? शुक्र बोले—मैं तुमसे पुरातन कथा कहता हूँ। जब देवता और दैत्य परस्पर लड़े और देवता परास्त हुए, तब दैत्यों के राजा बलि थे। वह शिवजी के दृढ़भक्त थे। सब देवता दैत्यों से हारकर विष्णु की शरण में गये। विष्णु ने देवताओं पर दयाकर कहा कि तुम सब जाकर दैत्यों से मेल कर लो और समुद्र को दोनों समूह भली

भाँति मथो। तब समुद्र से अमृत निकलेगा। उसे तुम सबको पिलाकर हम दैत्यों के साथ छल करेंगे। जब तुम अमृत पी लोगे, तब दैत्यों पर प्रबल हो जाओगे। दैत्यों के राजा बलि के पास आकर देवतों ने ऐसी मित्रता उपजाई कि दैत्य और देवता दोनों मन्दरगिरि को उखाड़कर समुद्र के तट पर ले गये। वासुकिनाग को मन्दरगिरि में डालकर मन्दरगिरि को मथानी बनाया। वे समुद्र को मथने लगे। वे सब बल में समान थे। तब इन्द्र के हितैषी विष्णुजी ने एक उपाय किया। पहले देवताओं को वासुकिनाग के सिर की ओर खींचने को कहा। दैत्यों ने विष्णुजी के मतलब को न जानकर कहा कि नहीं, हम सिर की ओर खींचेंगे। हम क्यों पूँछ की ओर लगें? अब सब दैत्य सिर की ओर और देवता पूँछ की ओर वासुकिनाग को मन्दरगिरि में लपेटकर समुद्र मथने लगे। विष्णुजी आप भी देवताओं के साथ मथने लगे। दोनों पक्ष गणपति की पूजा करना पहले भूल गये थे, इसी से पहले हलाहल विष निकला, जिसके निकलने से सब जलने लगे। देवता और दैत्य दुःखी होकर भाग चले। इन्द्र और विष्णुजी ने देवताओं समेत शिवजी की शरण में जाकर स्तुति की, शिवजी को प्रसन्न किया। तब शिवजी उस हलाहल विष को आप पी गये, जिससे चारों ओर आनन्द फैला। फिर समुद्र मथा जाने लगा। धीरे-धीरे सब रत्न निकाल लिये। पर विष्णुजी ने कौशल करके उत्तम-उत्तम रत्न देवताओं को दिये। वारुणी मद्य दैत्यों को देकर अमृत देवताओं को पिलाया। उस समय राहु देवताओं के साथ बैठा था। वह धोखा देकर अमृत पी गया। तब विष्णु ने उसका सिर काट डाला। फिर उस जगह देवताओं और दैत्यों से बड़ा युद्ध हुआ, जिसमें करोड़ों दैत्यों के स्वामी मारे गये। जो शेष रहे, वे पाताल में

भाग गये। उस समय वे भयभीत थे। पर जब से आपका अवतार हुआ है और आप राजा हुए हैं, तब से दैत्यों को पाताल से प्रकट होने का अवसर मिला है। यह सुनकर जलन्धर इसलिए कि उसके पिता समुद्र को देवताओं और दैत्यों ने मथा था, अति कुपित हुआ। अग्नि के समान प्रज्वलित होकर नेत्र लाल कर दाँतों से अपने ओठ चबाने लगा। घस्मर दूत को बुलाकर कहा कि तुम इन्द्र के पास निर्भय जाकर कहो कि तुमने हमारे पिता समुद्र को क्यों मथा था ? सब रत्न उसके क्यों निकाल लिये ? आप देवताओं समेत अमृत पीकर दैत्यों को मद्य क्यों पिलाई ? तुमने ऐसे छल से दैत्यों को परास्त किया। क्या तुमने यह बात अच्छी की है ? इसका फल तुमको मिल जायगा। वह दूत चलकर इन्द्र की सभा में गया। अहंकार से अपना मस्तक इन्द्र के सामने न झुकाया और कहा कि जलन्धर ने, जो समुद्र का पुत्र है, तुमको यह संदेश भेजा है कि जो रत्न तुमने समुद्र से निकाल लिये हैं, वे सब हमको सौंप दो तो अभी सब बात बन जायगी; क्योंकि जो दिन का भूला हुआ रात को आ जाय तो वह भूला नहीं कहा जाता। तुम हमारी शरण में आओ, नहीं तो तुमको इसका फल दिया जायगा। इन्द्र यह सब सुनकर जलन्धर को बड़ा बलवान् और पराक्रमी समझ मन में तो भयभीत हुए, पर बाहर कुछ क्रोधित होकर कहने लगे कि तुम हमारी ओर से जलन्धर को यह उत्तर देना कि पहले किसी समय पहाड़ों ने हमारे लोक में उड़कर उसको नष्ट कर दिया था और बहुत से यहाँ के वासियों को मार डाला था। हमने पर्वतों के पंख काट डाले। जो शेष रह गए, वे डूब कर समुद्र में छिप गए। समुद्र ने शरण देकर उनकी रक्षा की। इसके सिवा और भी बहुत बार हमारे शत्रुओं को समुद्र ने स्थान

दिया है। दैत्यों को भी समुद्र ने छिपाया था। इसी अपराध के कारण हमने समुद्र को मथा और उसके रत्न निकाल लिये। हमारा प्रताप और भाग्य इसी प्रकार का है। पहले देवताओं का एक और शत्रु उपजा था, जिसका नाम शंखासुर था। हमने उसे भी तुम्हारे समान अपना प्रताप दिखाया था और हमारे भाई ने उसका वध कर डाला। उसको समुद्र भी न बचा सका। इसलिए हे दूत! जलन्धर से कह देना कि क्यों बुद्धिहीन होकर ऐसे दुर्विचारों में पड़ता है। ऐसा संसार में कौन देवता या दैत्य है जो हमसे शत्रुता करके पार पावे? क्या उसने हमारे बल और प्रताप को किसी से नहीं सुना? हमने बड़े-बड़े दैत्यों को अपने छोटे भाई की सहायता से मार डाला है। जलन्धर जो अपनी भलाई चाहता हो तो इतने हाथ-पाँव न फैलावे। जो इस बात को वह न मानेगा तो दुःख और लज्जा के सिवा और कुछ हाथ न लगेगा। यह सुनकर दूत ने कहा कि हे इन्द्र! तुम अहंकार मत करो, क्योंकि जलन्धर ने संसार भर का राज्य पाया है। उसी के अधीन संसार भर है। तुमको उचित है कि गर्व छोड़कर सब रत्न जलन्धर को सौंपो और आप चलकर जलन्धर की छाया में रहकर सदा आनन्द में रहो। नहीं तो तुमको बहुत ही कष्ट होगा। इन्द्र ने क्रोध करके कहा कि जो हमने पहले कहा है, वही तुम जाकर जलन्धर से कह दो। जो ईश्वर की इच्छा होगी, वह होगा। तुम इतनी बातें और तकरार क्यों करते हो? यह कह इन्द्र ने दूत को बिदा किया और आप क्रोध और भय की दशा में चिन्तारूपी सागर में डूब गये। दूत ने जलन्धर के पास पहुँच इन्द्र के प्रश्न-उत्तर की बात सब विस्तार से कह सुनाई। यह सुन जलन्धर क्रोधरूपी अग्नि से जल उठा और उसके ओठ फड़कने लगे।

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि जलन्धर ने अति क्रोधित होकर सब देवताओं को परास्त करने का उद्योग किया। उसने दैत्यों की एक बड़ी भारी सेना इकट्ठी की। राक्षस, दैत्य और दानव करोड़ों इकट्ठे हो गये। शुम्भ-निशुम्भ के समान उस वीर सेना में यूथप थे। कालनेमि भी और यूथपों समेत आया। ऐसी उत्तम सेना लेकर जलन्धर देवलोक को चला। उस समय पृथ्वी काँप उठी। दैत्य मार्ग में गर्जते हुए चले और देवलोक में पहुँचकर उसको चारों ओर से घेर लिया। जलन्धर नन्दनवन में ठहरा। यह देख इन्द्र क्रोधित हुए और अपने गुरु बृहस्पति की आज्ञा लेकर देवताओं की सेना लिये हुए अपने पुर से बाहर आये। दोनों सेनाएँ परस्पर लड़ने लगीं। नाना प्रकार के शस्त्र चलने लगे। देवता और दैत्य बड़े उत्साह से परस्पर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। रक्त की नदी बह निकली। दोनों ओर के बड़े-बड़े भारी भट मरे। उनके शव युद्धस्थल में ढेर हो गये। हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे आदि और देवता और दैत्य मृत्युवश हुए। पर देवताओं के हाथ से जो दैत्य मारे जाते थे, उनको असुरगुरु शुक्र मृतसंजीवनीविद्या की शक्ति से जिला देते थे, अर्थात् शुक्र मन्त्र से जल पढ़ मरे हुए दैत्य के भाल पर छिड़कते थे और वह जी उठता था। इसी प्रकार बृहस्पति द्रोणाचल से जिलानेवाली ओषधि ले जाकर देवताओं को जिलाया करते थे। जहाँ ऐसा गुरु हो, वहाँ क्या भय हो सकता है? निदान देवता और दैत्य फिर लड़ने लगे और किसी ने विजय न पाई। जब जलन्धर ने देखा कि देवता मरकर फिर जी जाते हैं तो वह बड़ा क्रोधित हुआ। उसने शुक्राचार्य से बहुत विनती कर पूछा कि हमने बहुत देवताओं को मारा, पर वे सब जी उठे। हम यही जानते थे कि संजीवनी

विद्या केवल आप ही जानते हैं, दूसरा कोई नहीं जानता। शुक्र ने कहा कि एक जिलानेवाली पवित्र ओषधि द्रोणा पर्वत पर है। बृहस्पति उसे लाकर देवताओं को जिला देते हैं। जो तुमको विजय की इच्छा है तो द्रोणागिरि को जड़ से उखाड़कर समुद्र में डलवा दो। जलन्धर ने प्रसन्न होकर द्रोणागिरि को मूल से उखाड़ा और समुद्र में डाल दिया। फिर युद्धस्थल में जाकर बड़ी लड़ाई की और हस्तलाघव और वीरता से सामना किया। जो दैत्य मारे जाते थे, उनको शुक्र तुरन्त जिला देते थे। पर जब बृहस्पति देवताओं को मरा हुआ देखकर फिर द्रोणागिरि पर ओषधि लेने गये तो वहाँ पर्वत ही को न देखा, ओषधि कहाँ हो सकती थी। बृहस्पति ने अति चिन्तित होकर समझा कि जलन्धर ने उसको नष्ट कर दिया है। तब अति भय से लौटकर दूर से कहा कि हे देवताओ! युद्ध करना बंद कर दो। जलन्धर बड़ा बलवान् है। यह रुद्र के अग्नि से उपजा है। यह परास्त न होगा। देखो, इसने तो पहाड़ को मूल से खोद डाला है। यह सृष्टि भर का राजा होगा। अब तुम समय को देखते रहो। यह गुरु का वचन सुन देवता युद्धस्थान से भाग चले। जिसको जहाँ जगह मिली, वह वहीं जा छिपा। दैत्यों ने यह देखकर भयानक सिंहनाद किया। विजय के बाजे बजाने लगे। जलन्धर देवताओं के पुर में चला गया। इन्द्र और बड़े-बड़े देवता सब सिमटकर एक कुन्तल में जा छिपे। वहाँ भी उनका भय न गया। इसी प्रकार उन्होंने बड़े-बड़े कष्ट उठाये। जलन्धर देवताओं को वश करने के अनन्तर राज्य करने लगा। जहाँ पर कभी देवताओं की राजधानी थी, वहाँ दैत्यों ने अपनी राजधानी बनाई। चन्द्र, अनल, यम, कुबेर, सोम, सूर्य, पवन आदि सब देवताओं के अलग-अलग पदों पर दैत्यों को नियत किया। वह ऐसा प्रतापी

और शक्तिशाली हुआ, जिसको कहा नहीं जा सकता। उसने संसार भर का राज्य करके पुत्रों के समान प्रजा पाली और फिर शुम्भ आदि को राजकाज सौंप आप सेनासमेत देवताओं के ढूँढ़ने को सुमेरु पर्वत पर चला।

पन्द्रहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! देवताओं ने जलन्धर को आते हुए देखा और बहुत घबराकर विष्णु का स्मरण किया। हाथ जोड़ सिर नवाते स्तुति करते "जय विष्णु जय विष्णु" बारम्बार कहने लगे और विनती की कि आप तो सदा से देवताओं के सहायक हैं। हम पर इस समय बड़ा कष्ट है। आप प्रकट होकर दैत्यों को नष्ट करें। अब हमारे सम्मुख जलन्धर चला आ रहा है। जो उचित हो, वह कीजिये। आपने देवताओं को दुखी देख मत्स्य अवतार लिया और मुनि के सब दुःख दूर करके प्रलय में विराजमान हुए। फिर देवताओं के निमित्त कूर्मावतार लेकर पर्वत को पीठ पर रक्खा। जब हिरण्याक्ष बड़ा बलवान् होकर देवताओं को दुःख देने लगा, तब आपने युद्धकर उसको नष्ट कर दिया। उसके भाई हिरण्यकशिपु ने जब प्रह्लाद के साथ बड़ा हठ किया तो आप नृसिंह अवतार धारण कर उसका उदर विदीर्ण कर दिया। केवल देवताओं के कार्य बनाने को आपने वामन होकर बलि के साथ छल किया और सब पृथ्वी उससे निकालकर हम सबको दे दी। परशुराम का अवतार लेकर सहस्रबाहु के गर्व को नष्ट किया और राजा बिना पृथ्वी को कर दिया। शिव की भक्ति में स्थित होकर आप सब संसार का उपकार करते रहे। जब कि रावण ने शिव के वरदान से बड़ी पदवी पर पहुँचकर सबको दुःख दिया तो आपने रामचन्द्र होकर शिव से बाण लिया और उसी बाण से रावण को मार डाला।

फिर आपने कृष्ण अवतार ले पृथ्वी के भार को उतारा। जब कि दैत्यों ने वेदों को छीन लिया और पृथ्वी भर म्लेच्छों से पूर्ण हो गई, तब आपने बुद्धरूप हो वेदों को उनसे छीन लिया। वेदों की निन्दा कर दैत्यों की बुद्धि भ्रष्ट कर दी। आप कलियुग में कल्कि अवतार लेकर सब म्लेच्छों को नष्ट करेंगे। इसी प्रकार आप भक्तों के लिए असंख्य अवतार ले उनके दुःख दूर किया करते हैं। आप कष्ट सह भक्तों को आनन्द देते हैं। अब हमारे दुःख को दूर कीजिये। इस समय हमारा रक्षक आपके सिवा कोई नहीं। इस समय अपने पीतवसन की झलक क्यों नहीं दिखाते? इसी प्रकार देवताओं ने बड़ी स्तुति की। यह स्तुति जो कोई सुने-सुनावेगा, वह कभी कष्ट न पावेगा। निदान ऐसी स्तुति सुनकर विष्णु ने जब जाना कि देवताओं पर कुछ दुःख पड़ा है तो तुरन्त उठकर गरुड़ पर चढ़े। लक्ष्मी ने विष्णु की इतनी शीघ्रता देख-कर कहा—इतनी जल्दी कहाँ जाते हो? विष्णु ने कहा कि तुम्हारे भाई जलन्धर ने देवताओं पर चढ़ाई की है। वे हमारी स्तुति कर रहे हैं। इसलिए हम उनकी रक्षा और दैत्यों के साथ युद्ध करने को जाते हैं। लक्ष्मी ने जलन्धर के प्रेम के कारण कहा कि तुम मेरे भाई जलन्धर को किस तरह मारोगे? विष्णु ने कहा कि जलन्धर बड़ा बलिष्ठ और पराक्रमी है। हमारे मारे से नहीं मरेगा। वह रुद्र का अंश है और ब्रह्मा के वरदान से ऐसे कष्ट देवताओं को दे रहा है। पर जो मैं नहीं जाता तो मेरा नाम मिट जायगा और वेद के मार्ग भ्रष्ट हो जायँगे। यह कहकर विष्णु चले। शङ्ख, चक्र, गदा, असि और बाण लिये। गरुड़ को तैयार किया और जहाँ जलन्धर था, वहाँ जा पहुँचे। उस समय गरुड़ ने शीघ्र ही अपने परों को हिलाया और वायु के समान, जो मेघों को उड़ा देती है, दैत्यों को उड़ा दिया। जलन्धर

ने पवन से दैत्यों को दुखी देखकर बड़ा क्रोध किया और सिंह के समान विष्णु पर जा पहुँचा। विष्णु और जलन्धर से बड़ा युद्ध हुआ। दोनों ओर से बहुत बाण चले। बाणों के छा जाने से आकाश दिखाई नहीं देता था। विष्णु ने जलन्धर के रथ के घोड़े, छत्र, ध्वजा, धनुष काटकर शङ्खध्वनि की और एक बाण जलन्धर के हृदय में क्रोध से मारा। जलन्धर ने भारी गदा गरुड़ के सिर पर मारी। गरुड़ चोट न सह सके, धरती पर गिर पड़े। विष्णु ने निर्भय होकर असि लेकर गदा काट दी। जलन्धर ने क्रोध कर विष्णु के हृदय पर एक घूँसा मारा। फिर दोनों लिपटकर भली भाँति मल्लयुद्ध करने लगे। नाना प्रकार के दाव-पेंच हुए। जब दोनों में से कोई न हारा, तब विष्णु ने बादल के समान गर्जकर कहा कि हे जलन्धर! तेरे समान मैंने तीनों लोकों में कोई वीर नहीं देखा। तेरे सिवा और कोई मेरा तेज नहीं सह सकता। मैंने कुछ अपने बल को नहीं रख छोड़ा। तेरे पराक्रम से मैं प्रसन्न हूँ। मुझसे वरदान माँग ले। इतना कह ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! राजनीति का मुख्य तात्पर्य यही है कि उपाय से अपना मनोरथ पूरा करे। जलन्धर ने यह सुनकर विष्णु से कहा कि मैं आपसे यही वर-दान माँगता हूँ कि आप मेरी बहन लक्ष्मी समेत मेरे घर में आकर रहें। इसी प्रकार जितने देवता हैं, सब मेरे वश में होकर मेरे घर में रहें। विष्णुजी जलन्धर का यह वर माँगना सुनकर अति दुखी हुए और उसका कहा मानकर जलन्धर के घर में स्थित हुए। जलन्धर तीनों लोकों को जीतकर बड़े आनन्द से रहने लगा।

सोलहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! जलन्धर ने तीनों लोक जीत-

कर देवताओं की जगह दैत्यों को नियुक्त कर दिया और संसार-भर के राजों को जीत लिया। सब देवता, गन्धर्व, सिद्ध आदि को अपने अधीन कर लिया। संसार में जितने बहुमूल्य रत्न और विचित्र और अद्भुत वस्तु हैं, उनको ले लिया। सब दिक्पालों को बुलाकर अपने नगर में प्रजा के समान बसा दिया। उनकी जगह दैत्यों को नियुक्त कर दिया। इन्द्र से ऐरावत हाथी छीन लिया। कल्पवृक्ष भी उसके आँगन में आ गया। उच्चैःश्रवा घोड़ा भी उसकी हयशाला में बँध गया। जो मुख्य-मुख्य वस्तुएँ थीं——जैसे वरुण का छत्र, प्रजापति का रथ और अनल के अंशुक, वह सबसे छीनकर उसने अपने अधीन कर लीं। फिर उसने बड़े दया-धर्म से आज्ञा चलाई और वह पुत्र के समान प्रजा का पालन कर दैत्यों में अद्वितीय गिना गया। उसके राज्य में किसी को कुछ दुःख न था। न देश में कहीं कुछ किसी प्रकार का कष्ट था। न चोरी होती थी। चारों वर्ण अपने-अपने धर्म और आश्रम में स्थित थे। कोई मनुष्य अधर्मी न था। तीनों प्रकार के दुखों में से किसी को एक भी न था। वेद के विरुद्ध कोई कर्म नहीं होता था। कोई मनुष्य अकालमृत्यु न पाता था। किसी मनुष्य के मन में पाप न उपजता था। सब जीव द्वेष उचित न जानकर स्वाभाविक मित्रता और प्रीति से रहते थे। छल-छिद्र तो था ही नहीं। स्त्रियाँ सब अपने पतिव्रत धर्म में स्थित थीं। ब्राह्मण धर्म की कथाएँ कहा करते थे। कोई मनुष्य दरिद्री न था। हे नारद! यह कुछ आश्चर्य की बात नहीं है; क्योंकि शिवजी की लीला ऐसी ही बलवान् है। उस समय में, अर्थात् जलन्धर के राज्य में, सिवा देवताओं के और किसी के मन में कुछ कष्ट न था। एक दिन सब देवता इकट्ठे होकर शिवजी का स्मरण और ध्यान कर स्तुति करने लगे। देवताओं ने कहा कि हे

शिवजी ! अब कोई उपाय और मति नहीं रह गई । अब तो आपही की कृपा होनी चाहिए; क्योंकि हमको विष्णुजी का बड़ा भरोसा था, सो उन्होंने अपनी स्त्री लक्ष्मी समेत जलन्धर के घर में डेरा किया है। जब तक हमारा काम विष्णु से निकलता था, हम आपको कष्ट न देते । यह सुन शिवजी ने आकाशवाणी द्वारा कहा कि हे देवताओ ! कुछ भय मत करो । हम तुम्हारी आशा पूर्ण करेंगे। देवताओं ने यह सुनकर बड़ा आनन्द मनाया। हे नारद ! शिवजी ने तुम्हारे मन में युक्ति सुझाई, जिससे तुमने जलन्धर के राज्य में जाकर विष्णु आदि को देखा । जलन्धर ने तुमको देखकर अगवानी की और तुम्हारी पूर्ण रूप से पूजा की। कुशल-प्रश्न के उपरान्त आगमन का कारण पूछा और कहा कि जो कुछ आपने संसार में आश्चर्यदायक चरित्र देखा हो तो वर्णन करो । तब तुमने उत्तर दिया कि एक दिन हम कैलास में गये, जो सृष्टि भर में श्रेष्ठ है। शिवजी की स्तुति और प्रणाम के उपरान्त इतनी सामग्री देखकर मैं आश्चर्य में पड़ा और विचार किया कि इतनी सामग्री किसी के यहाँ न होगी। सो मैं तुम्हारी सामग्री देखने आया हूँ। यह सुनकर जलन्धर ने अपनी सामग्री तुमको दिखाई और पूछा कि हे नारद ! सच कहना, दोनों जगह से कहाँ सामग्री अधिक है? नारद ने कहा कि वास्तव में तुम्हारे घर सब रत्न वर्त्तमान हैं, पर दारारत्न नहीं है। शिवजी के घर ऐसी स्त्री है, जिसके समान संसार में और कोई स्त्री नहीं, जिसकी सुन्दरता पर ब्रह्मा भी मोहित हुए थे। उसकी उपमा हम किससे दें। उसने शिवजी को, जो कामदेव के शत्रु कहलाते हैं, वश कर लिया है। ब्रह्मा ने बहुत चाहा कि दूसरी स्त्री शिवरानी के समान बनावें; पर न बना सके। इतना कह ब्रह्माजी बोले कि हे नारद ! यह कहकर तुम चले गये और

जलन्धर कामज्वर से रोगियों के समान दुःखसागर में डूब गया और काम के वश हो शिवजी को देवताओं के समान समझ राहु को शिवजी के पास भेजा। हे नारद! शिवजी के असंख्य चरित्र हैं। उन्होंने जलन्धर का ज्ञान खींच लिया। शिवजी की लीला बड़ी आश्चर्य देनेवाली है। राहु अपने स्वामी की आज्ञा मानकर शिव के पास जा छः डेवढ़ी तक चला गया। जब सातवें द्वार में जहाँ गणों के राजा नन्दी द्वारपाल बनकर बैठे थे, गया तो नन्दी ने रोका और शिवजी की आज्ञा लेकर और आप साथ होकर सदा शिव के पास ले गये। शिवजी ने भौंह की सैन से आज्ञा दी कि कहो। राहु ने कहा कि हे शिवजी! जलन्धर, जो सबसे श्रेष्ठ है, और जिसके अधीन देवता और विष्णु भी हैं, उसकी आज्ञा सुनिये। उसने कहा है कि तुम तो तपस्वी, योगी, दिगंबर, मरघटों में पड़े रहते हो। तुम भोगविलास से प्रयोजन नहीं रखते। हड्डियों की माला पहनकर अवधूतों के समान रहते हो। तुमको ऐसी कोमलाङ्गी स्त्री से क्या प्रयोजन है? तुम तो वन के रहनेवाले हो। ऐसी स्त्री तो हमको चाहिए। इससे तुमको उचित है कि ऐसी सुन्दरी हमको दो। यह सुनकर शिवजी कुपित हुए और तुरन्त शिव की भौंहों में से एक मनुष्य उपजकर आगे खड़ा हुआ। उसका अति भयानक शरीर वज्र के समान दृढ़ था। सिंह का सा स्वरूप, तीक्ष्ण जिह्वा किये, जलती हुई अग्नि के समान सब बाल खड़े हुए इसी प्रकार महाभयानक डील-डौल से वह विष्णु का चौथा अवतार नृसिंह जान पड़ता था। शिवजी की इच्छा समझकर राहु को खा लेने के लिए वह चला। यद्यपि राहु भागा, पर उस नये उपजे हुए गण ने जाने न दिया और पकड़ लिया। राहु अति कम्पित हो शिवजी से कहने लगा कि मुझको

ब्राह्मण जानकर छुड़ा दो। यह मुझको खाये डालता है। मैं तो आपका ब्राह्मण हूँ। ये विनय के वचन राहु के मुख से सुनकर शिवशंकर ने कहा कि छोड़ दे, छोड़ दे। गणने राहुको छोड़ शिवजी के पास आकर विनय की कि मैं बहुत भूखा हूँ। मेरे लिए कुछ भोजन बतला दीजिये। भूख की आग से मैं जला जाता हूँ। शिवजी ने कहा कि जो तुम ऐसे भूखे हो तो अपने हाथ और पाँव को खा डालो। गण ने यही किया। सिवा शिर के अपने सब अङ्ग खा डाले। यह दशा देख शिव अति आश्चर्य में हुए और अति प्रसन्न होकर कहा कि हम तुम्हारे आज्ञा-पालन से अति प्रसन्न होकर तुम्हारा नाम कीर्तिमुख रखते हैं। तुम हमारे द्वारपाल होगे। जो कोई पहले तुम्हारी पूजा न कर लेगा, उसको हम स्वप्न में भी दर्शन न देंगे। हे नारद! उस दिन से कीर्तिमुख गण शिवजी के द्वार पर रहते हैं। कीर्तिमुख के पूजे विना शिवजी की सब पूजा व्यर्थ हो जाती है। निदान जब कीर्तिमुख के हाथ से छूटकर राहु भागा तो कैलास पर्वत के एक गढ़े में ऐसा गिरा कि उसका अङ्ग-भङ्ग हो गया। राहु ने जलन्धर केसमीप आकर सब हाल कह सुनाया।

सत्रहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! दूत के वचन सुनकर जलन्धर अति कुपित हुआ और सब दैत्यों को आज्ञा दी कि सब इसी दिन शिव के कैलास पर्वत पर चढ़ाई करें। सब सरदार और सेनाधिप अपने-अपने शस्त्र लिये हुए चतुरङ्गिणी सेना से तैयार हों। एक कोटि असुर, पाँच सौ कबन्ध और सौ कुल धूम्र चलें। कालक, ध्रुव, मुरज, कालनेमि भी जो दैत्यों में प्रसिद्ध हैं, साथ रहें। यह आज्ञा देकर आप भी घर से जलता-भुनता हुआ निकला। उस समय जलन्धर की स्त्री ने बहुत समझाया और

हाथ जोड़कर मना किया। कहा कि शिव से कोई युद्ध करके नहीं जीता। देवताओं के बड़े सहायक विष्णुजी तो तुम्हारे घर में हैं। पर जलन्धर ने मृत्यु के वश होने से कुछ न माना। हे नारद! जब मृत्यु आती है तो बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। जो मनुष्य चलने के समय स्त्री, ब्राह्मण का आदर नहीं करता, वह फिर नहीं लौटता। बरन् वह काल के मुख में पड़ जाता है। सब सेना के आगे शुक्र, फिर जलन्धर और फिर उनके पीछे सब सेना चली। पहले तो जलन्धर को राहु दिखाई दिया। फिर मुकुट शिर से गिर पड़ा। ये बुरे असगुन सामने हुए। शुम्भ, निशुम्भ, दोनों सेनानी नियत किये गये। कालनेमि भी आज्ञा पाकर सेना सहित चला। इसी प्रकार और बहुत दैत्यवंशी राजा कैलास पर्वत को चले। जब जलन्धर सेना-सहित कुछ दूर नगर से बाहर गया, तब विष्णु ने देवताओं को बुलाकर कहा कि अब कष्ट के दूर होने का समय है। तुम गुप्त शिवजी के समीप जाकर जलन्धर की चढ़ाई के समाचार कहो। देवता छिपे-छिपे शिवजी के पास पहुँचकर स्तुति कर जैसा विष्णुजी ने कहा था सब विनय करने लगे। फिर जलन्धर के वध की इच्छा विनय-पूर्वक प्रकट की। शिवजी ने हँसकर कहा कि अब धैर्य रक्खो। तुमको कुछ कष्ट न होगा। यह कह फिर विष्णुजी को बुलाकर कहा कि तुमने जलन्धर को क्यों नहीं मारा और वैकुण्ठ छोड़ उसके घर में क्यों जा रहे? विष्णु ने कहा कि जलन्धर बड़ा बलवान् है। कोटि यत्न से भी वह नहीं मर सकता। वह तुम्हारा अंश है, इससे उस पर कोई शस्त्र नहीं चलता। मैंने उसके साथ बहुत युद्ध किया, पर वह न मरा। वह आप ही के मारे मरेगा। आप कृपा करके उसको मारें। आप तो पृथ्वी से लेकर आकाश तक के स्वामी और तीनों गुणों से परे हैं।

शिवजी ने कहा कि जलन्धर हमारे अंश से उपजा है, इससे उस पर हम त्रिशूल नहीं चला सकते। त्रिशूल के सिवा और जो शस्त्र हैं, वे जलन्धर पर काम न करेंगे। इससे हमने एक उपाय सोचा है। तुम सब अपना-अपना तेज देते जाओ। हम उसका एक शस्त्र बनावेंगे और उसी शस्त्र से जलन्धर को जलावेंगे। यह सुन मैं, विष्णु, इन्द्र और सब देवताओं ने अपना-अपना तेज दे दिया। हम सबका तेज इकट्ठा होकर प्रज्वलित हुआ। शिवजी ने उसमें से एक शस्त्र बनाया, जिसका नाम सुदर्शनचक्र रक्खा गया। वह कोटि सूर्य सा प्रकाशमान और अग्नि-समान प्रज्वलित था। जो तेज सुदर्शनचक्र के बनाने से शेष रह गया था, उससे वज्र बनाया, जिससे देवताओं को अति आनन्द प्राप्त हुआ। सुदर्शनचक्र को देखकर विष्णु और वज्र को देखकर इन्द्र अति प्रसन्न हुए और उन्हें दैत्यों के वध का पूर्ण विश्वास हुआ। इतने में जलन्धर कैलास पर्वत के समीप पहुँच गया और उस पर्वत की एक कन्दरा में सेना सहित डेरा किया। उसे देखकर सब देवता छिपे-छिपे अपने-अपने स्थानों को, जहाँ वे पहले रहते थे, चले। शिवजी के गणों ने दैत्यों की सेना के आने के पहले शिवजी को समाचार दिया और कहा कि दैत्यसेना आना ही चाहती है। जो आप उचित जानें, वह करें। शिवजी ने नन्दी, गणपति और वीरभद्र को आज्ञा दी कि तुम और गणों समेत जाकर दैत्यों से भली भाँति लड़ो। यह आज्ञा पाकर शिवजी के गण चले और पर्वत के नीचे उतर आये।

अठारहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! शिवजी के गण "जय शिव, जय मृत्युञ्जय, जय ईश" कहते हुए, प्रसन्नतापूर्वक गाते-बजाते

हुए दैत्यसेना से लड़ने लगे। ऐसी मारपीट दोनों ओर से युद्ध-स्थान में हुई कि पृथ्वी काँप उठी। हर प्रकार के शस्त्र दोनों ओर से चले। युद्धस्थल अस्थि, मांस, रुधिर से पूर्ण हो गया। रुधिर की नदी बह निकली। वह स्थान चलने के योग्य न रहा। जो दैत्य गणों के हाथ से मारे गये, उनको शुक्र ने जिला दिया। जब फिर गणों ने दैत्यों की सेना का वध किया तो फिर भी शुक्रजी ने उनको जिला लिया। इसी प्रकार बारम्बार गणों ने दैत्यों का वध किया और शुक्र ने फिर-फिर उनको जीवित किया। निदान गणों ने कोई उपाय न देख दुखी हो शिव के समीप जा सब हाल कहा कि हमसे दैत्य न मरेंगे। यह काम आप करें। शिवजी क्रोधकर कहने लगे कि यह शुक्र मृत्युञ्जयमन्त्र पाकर ऐसे कार्य कर रहा है! तब शिवजी के मुख से एक कृत्या नाम की स्त्री निकली। उसका अति भयानक रूप था। उसकी दाढ़ें बड़ी भयंकर पर्वत के समान थीं। नासिका और मुख बड़ा भारी था। अति ही भय देनेवाली आँखें अन्धे कुएँ के समान, स्तन पर्वत के शिखर सदृश लाल बाल खड़े हुए। ऐसे स्वरूप से प्रकट होकर शिवजी की सेना के युद्धस्थान में वह आई। पहिले अति भयंकर नाद कर दैत्यों को खाने लगी। दैत्य दुखी होकर भागने लगे। उनकी कोई युक्ति न चली। फिर कृत्या शुक्र को अपने गुप्त अंग में दबाकर उड़ गई और सबके देखते-देखते दृष्टि से ओझल हो गई। जब कृत्या शुक्र को उड़ा ले गई तब दैत्यों को बड़ा भय उपजा। मानों मारे बिन मर गये। उनकी सेना में हाहाकार मच गया। शिवजी के गण प्रसन्न होकर दैत्यों को चारों ओर से घेरकर सिंह के समान गर्जने लगे। दैत्यों ने भाग जाने के सिवा और उपाय न देखा। चारों ओर भागकर फैल गये। जिस तरह घास-फूस पवन के वेग से उड़ जाती है, उसी प्रकार दैत्य उड़

गये। यह दैत्यों की दशा देखकर शुम्भ, निशुम्भ और कालनेमि, ये तीनों सेनापति अति दृढ़ता से गणों का सामना करने लगे। अन्त में शिवजी के गणों को बहुत मारकर दुखी कर दिया। वे हार मान भाग चले। इतने में गणपति, नन्दी, वीरभद्र आदि ने दैत्यों को रोककर सब गणों को फिर धैर्य दे बुला लिया। फिर दोनों सेनाएँ ऐसी लड़ीं कि कालनेमि और नन्दी, गणपति और शुम्भ, वीरभद्र और निशुम्भ परस्पर लड़े। युद्धस्थान में अपनी-अपनी वीरता दिखाने लगे। वीरभद्र ने निशुम्भ के हृदय में बाण मारा। निशुम्भ धरती पर गिर पड़ा। वीरभद्र ने चाहा कि साँग से उसे मार ही डालें। इतने में शुम्भ ने उठकर वीरभद्र को बड़े क्रोध से अपनी साँग मारी। वीरभद्र दुःख पाकर धरती पर गिर पड़े। नन्दी ने कालनेमि के शरीर में सात बाण मारे, जिनके लगने से रथ के घोड़े और सारथी निर्जीव हो गये। कालनेमि ने क्रोधित होकर नन्दी के धनुष को काट डाला। नन्दी ने धनुष को फेंककर त्रिशूल चलाया, जिसके लगने से कालनेमि मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़ा। वह जब सचेत हुआ तो उसने नन्दी को उठाकर पर्वत के ऊपर फेंक दिया। गणपति और शुम्भ लड़ने लगे। गणपति तो मूषक पर चढ़े और शुम्भ रथ पर चढ़ा हुआ था। दोनों इतना लड़े कि कोई युद्ध से मुख नहीं मोड़ता था। निदान गणपति ने एक बाण शुम्भ के हृदय में मारा और तीन बाण से सारथी को पृथ्वी पर गिरा दिया। शुम्भ ने क्रोध कर गणपति के साठ बाण मारे और गणपति के मूषक वाहन को तीन बाण मारकर शिर धड़ से जुदा कर दिया। मूषक धरती पर गिर पड़ा और गणपति भी मूषक के ऊपर से पृथ्वी पर गिर पड़े, और पैदल हो गये। फिर अपनी साँग का शुम्भ के ऊपर प्रहार किया। शुम्भ साँग के लगने से पृथ्वी पर गिर पड़ा। गणपति

फिर मूषक पर सवार हुए। विजय गणेशजी की हुई। बाजे बजने लगे। सब गण अति प्रसन्न हुए और "जय जय" शब्द कर विजय के बाजे बजाने लगे। इतने में वृन्दनामक शुम्भ का पितामह कुपित होकर गणपति के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगा। गणेशजी दौड़कर वृन्द के पास पहुँचे। उनके साथ असंख्य भूत, प्रेत, कूष्माण्ड, पिशाच, भैरव, गण, वेताल, शाकिनी, डाकिनी, योगिनी किलकिला शब्द करते अर्थात् सिंह और हाथियों का नाद करते थे। उन्होंने सेना समेत शुम्भ को विकल कर दिया। वीरभद्र की सेना ने दैत्यों को अति दुखी किया। उन्होंने बहुत दैत्यों को खाकर रक्त भी पी लिया। इतने में नन्दी भी आ गये और ऐसे बाण छोड़े जो दैत्यों की ओर सर्प की तरह चले और दैत्यों की सेना नष्ट कर दी। कुछ तो दैत्यगण खाये गये, कुछ दैत्य मारे गये, कुछ मूर्च्छित हुए, कुछ भाग गये, कुछ गिर पड़े। इसी प्रकार सब दैत्यों की सेना नष्ट हुई। जो बचे वे महालज्जा को प्राप्त हुए।

उन्नीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! जलन्धर अपनी वीर सेना की ऐसी दुर्दशा देख बड़े क्रोध से रथ पर चढ़ कटक सहित गणों की ओर चला। दैत्यों की सेना फिर सँभलकर लड़ने को उद्यत हुई। युद्ध के बाजे बजने लगे। दोनों सेनाएँ फिर लड़ने लगीं। जलन्धर ने बाणों की वर्षा की और पाँच-पाँच बाण गणपति और नन्दी के और बीस बाण वीरभद्र के मार कर सिंह नाद किया। वीरभद्र ने एक साँग जलन्धर पर ऐसी चलाई कि जलन्धर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। फिर उठकर बड़े क्रोध से वीरभद्र के ऐसी गदा मारी कि वीरभद्र विकल होकर धरती पर गिर पड़े। इसी प्रकार जलन्धर ने नन्दी को भी प्रहार करके

गिरा दिया। तब गणपति ने क्रोधित होकर तुरन्त अपनी साँग से जलन्धर की गदा को काट डाला और तीन बाण जलन्धर के हृदय में मारे। सात बाण चलाकर रथ के घोड़े, ध्वजा पताका और छत्र काट दिया। जलन्धर ने अपनी साँग चलाकर गणपति को घायल किया और दूसरे रथ पर चढ़कर वीरभद्र के पास पहुँच लड़ने लगा। वीरभद्र ने धनुष काटकर जलन्धर के भाल में परिघ (बेलन) मारा, जलन्धर धरती पर गिर पड़ा। फिर चेतकर एक ऐसा परिघ वीरभद्र के मारा कि वीरभद्र मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़े। उस समय वीरभद्र की यह दशा देखकर सब गण भागने लगे और शिवजी के समीप जाकर सब वृत्तान्त वर्णन किया। कहा कि दैत्यों ने हम सबको विकल कर दिया। अब जो उचित हो वह आप करें। शिवजी यह हाल सुन बैल पर चढ़े और त्रिशूल लेकर दैत्यों की सेना पर चढ़ाई की। युद्ध के बाजे बजने लगे। शिवजी ने अपना डमरू बजा दिया। जब गणों ने शिवजी को आते देखा तो प्रसन्नमुख हो गये और फिर लौटकर लड़ने को तैयार हुए। फिर उन्होंने दैत्यों से घोर युद्ध किया। शिवजी ने अपना ऐसा भयंकर रूप धरा, जिसको देखकर दैत्यों की सेना महाभय पाकर भाग चली। दैत्यपति ने सेना की यह दशा देख शिवजी पर बहुत से बाण छोड़े। शुम्भ, निशुम्भ, कालनेमि, हयमुख, असिलोमा, बलाहक, प्रचण्ड सब दानव एक ही साथ शिवजी पर चढ़ाई करके बाण चलाने लगे। यहाँ तक कि आकाश दिखाई न देता था। पर शिवजी ने सब बाणों का जाल काट डाला और अपने बाणों से आकाश भर दिया। फिर फरसा लेकर असिलोमा का शिर काट डाला। बलाहक का भी वध कर डाला। घस्मर को पाश से बाँध लिया। हे नारद! शिवजी की लीला देखो कि जो सृष्टि उपजाकर प्रलय करनेवाला है, वह संसारी मनुष्य के

समान कैसी-कैसी लीला करता है। फिर शिवजी ने अपना बैल दैत्यों की सेना में छोड़ दिया, जिसने अपने सींगों से असंख्य दैत्यों को मार डाला। जो शेष रहे, वे भयभीत हो भाग गये। जैसे सिंह के प्रहार से हाथी विकल होकर भाग जाता है, वही दशा दैत्यों की हुई। तब जलन्धर ने शुम्भ, निशुम्भ और कालनेमि से कहा कि देखो, जो संसार में उपजते हैं, वे अवश्य ही एक दिन मरते हैं। मृत्यु का कोई उपाय नहीं। तब ऐसी मृत्यु कौन न चाहेगा, जो दोनों लोकों में यश और कीर्ति बढ़ावे। लोक में दो प्रकार की मृत्यु-वाले सूर्यमण्डल को भेद स्वर्ग को जाते हैं। एक योगी, दूसरा जो युद्ध में सम्मुख होकर निर्भय प्रसन्नतापूर्वक मर जाय। इससे अब तुम मृत्यु का भय दूरकर भली भाँति सामने डटकर युद्ध करो। यद्यपि ऐसी बातों से जलन्धर ने बहुत कुछ प्रबोध किया, पर उनके मन में कुछ न आया। तब जलन्धर ने उनको बहुत धिक्कार देकर कहा कि तुमने जन्म लेकर वृथा ही माता को कष्ट दिया। क्या तुमको युद्ध से भागना उचित है? क्या एक दिन तुम में कोई भी मृत्यु के पंजे से बचा रहेगा? यह कहकर वह सिंह के समान गरजा और आप अकेला युद्ध के लिए प्रस्तुत हुआ।

बीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! जलन्धर के शब्द से धरती काँप उठी। समुद्र, पर्वत सब थर थर काँपने लगे। दैत्य, जो पहले भाग गये थे, सब लौट आये। जलन्धर ने कहा कि हे शिवजी! मालूम हुआ कि तुम कुछ बल रखते हो; क्योंकि तुमने मेरे साथ युद्ध की इच्छा की। अब अपनी वीरता दिखाओ, जिसमें तुमको हम वीर समझें। यह कह शिवजी के ऊपर उसने एक भयानक बाण चलाया, जिसको शिवजी ने बीच ही से काट डाला। शिवजी ने सुगमतापूर्वक एक बाण चलाकर जलन्धर के रथ, सारथि और

घोड़े, धनुष आदि सबको नष्ट कर डाला। तब जलन्धर ने शिवजी के मारने को अपना तमाचा ताना। फिर छिपकर एक बाण शिवजी को मारा। शिवजी ने उसको अपने बाण से एक कोस पीछे फेंक दिया। तब जलन्धर ने विचार किया कि शिवजी बड़े बली हैं। ऐसे युद्ध करने से मैं इनसे न जीतूँगा। कोई ऐसी माया करूँ, जिससे शिवजी मोहित हो जायँ। शिवजी को नाद बहुत प्रिय है, यह सोच उसने ऐसी माया फैलाई कि गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर आदि उपजकर मनुष्यों के समान नाना प्रकार के नाचगान करने लगे। मृदङ्ग, मुरली, वीणा आदि नाना प्रकार के बाजे बजने लगे। तब शिवजी के मन में संगीत सुनने की इच्छा उपजी। वह उस आनन्ददायक नाद में मग्न हो गये। जैसा नियम है कि राग सुनने से बुद्धि जाती रहती है, वही बात हुई। असल में शिवजी ने आप राग की बड़ाई को दिखाया। नाद तो आप शिवजी का रूप है। इससे शिवजी उसमें मग्न हो गये। शिवजी नाद के सिवा और किसी से मोहे नहीं जाते यह बात वेद कहते हैं। इसी से शिवजी ने वेद के वचनों को सत्य बना कर नाद में अपना मन लगाया। उस समय शिवजी के हाथों से सब शस्त्र गिर पड़े। शिवजीने उस तुरीयावस्था में कुछ न जाना। जलन्धर ने कामवश शिवजी के समान अपना स्वरूप बनाया, जिसके दस भुजा, पाँच मुख, तीन नेत्र थे। एक बैल माया से बनाकर उसके ऊपर चढ़ा और जो मुख्य चिह्न शिवजी के हैं, वे भी सब धारण कर शुम्भ निशुम्भ को युद्धस्थल में ठहराकर आप गिरिजा के समीप गया। गिरिजा ने लोक रीति से उसको शिवजी जाना। जब गिरिजा सखियों के बीच में से उठीं और जाना कि यह छल से ऐसा स्वरूप बनाकर आया है तो तुरन्त वेद की रीति के अनुसार अन्तर्धान हो गईं।

जलन्धर लज्जित होकर युद्धस्थान को लौट आया। गिरिजा ने विष्णुजी का ध्यान किया तो विष्णुजी तुरन्त आये। गिरिजा ने जलन्धर का सब वृत्तान्त वर्णन किया और पतिव्रतधर्म की बहुत कुछ प्रशंसा की। कहा—जलन्धर की स्त्री बड़ी पतिव्रता है। उसी के धर्म से जलन्धर नहीं मरता, क्योंकि पतिव्रता स्त्री विधवा नहीं हो सकती। इससे तुमको उचित है कि जलन्धरपुरी में जाकर उसकी स्त्री के पतिव्रतधर्म का नाश करो। वृन्दा जो जलन्धर की स्त्री है, उसके साथ छल करो। कुछ धर्म का विचार न करना, क्योंकि धर्मशास्त्र लिखता है कि जो बुरे के साथ बुराई करे तो कुछ पाप नहीं होता। यह सुन विष्णुजी तुरन्त जलन्धर-पुरी को गये। उधर जलन्धर जब युद्धस्थल में आया और अपनी माया को दूर किया तो शिवजी ने चैतन्य होकर युद्ध का स्मरण किया। यह भी शिवजी की माया थी; क्योंकि संसार में जो शिवजी के भक्त हैं, उनका तो माया कुछ कर ही नहीं सकती तो शिवजी पर क्या प्रभाव हो सकता था। निदान शिवजी अति क्रोधित होकर जलन्धर के ऊपर दौड़े। जलन्धर ने अपने बाणों से शिवजी को छिपा दिया। शिवजी ने अपने बाणों से उसके बाणों को काटकर उसको दुखी किया। यद्यपि शिवजी और जलन्धर से बड़ा युद्ध हुआ, पर कोई उसमें न हारा। जो दैत्य शिवजी के हाथ से मारे गये, वे मुक्त हो गये। उन दैत्यों का कैसा अच्छा भाग्य था, जो शिवजी को सम्मुख देखते हुए अपने प्राण देते थे। हे नारद! यह लीला, जिस तरह विष्णुजी से हमने सुनी थी, तमसे कह दी।

इक्कीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! गिरिजा की आज्ञा से विष्णु जलन्धरपुरी में पहुँचे और विचार किया कि किसी प्रकार

जलन्धर की स्त्री वृन्दा का पतिव्रतधर्म बिगाड़ूँ। इसी सोच में शिवजी का ध्यान किया। शिवजी का ध्यान करते ही विष्णुजी को उपाय सूझ गया। वह तपस्वीरूप से एक शिष्य को साथ लिये हुए वृन्दा के उपवन में गये। वृन्दा ने उसी रात को स्वप्न में देखा था कि मेरा पति जलन्धर मारा गया। और यह भी देखा कि मेरा पति जलन्धर भैंसे पर तेल लगाये हुए सवार, नंगा और सिर के अशुभ बाल बनवाये हुए, काले फूलों की माला पहने, चारों ओर राक्षसों से घिरा यमदिशा को चला जाता है। फिर देखा कि नगर भर समुद्र में डूबा चाहता है। चारों ओर अँधेरा छा रहा है। यह दुस्स्वप्न देखकर वह उठी। सूर्य को उदय होते राहु ग्रस्त प्रकाश-हीन देखा। ऐसे अशकुनों को देखने से वह एकाएक रोने-पीटने और घबराहट से इधर-उधर फिरने लगी। यद्यपि उसने अपने उद्यान की बहार और इधर-उधर घूमने से मन के दुःख को भुलाया, पर मन ने कुछ भी आनन्द न पाया। निदान अपनी दो सखियों को साथ लेकर जलन्धर के उद्यान को गई। पर वहाँ भी फूल-फल देख कुछ हर्ष न पाया। घूमने में दो राक्षस उसके दृष्टि-गोचर हुए, जो अति भयानक थे। उनको देखकर रानी भाग गई। आगे जाकर शिष्यों समेत एक तपस्वी को देखा कि मौन साधे बैठा है। वृन्दा दौड़कर दोनों अपने हाथ उसकी गर्दन में डालकर लिपट गई और कहा कि मेरी रक्षा करो। तपस्वी ने दोनों नेत्र खोलकर बड़ा क्रोध किया और हुंकार दी कि वे दोनों राक्षस भाग गये। जलन्धर की स्त्री अति प्रसन्न हुई और प्रणाम-कर उनके तप की प्रशंसा करने लगी। कहा कि आप मेरे पति का वृत्तान्त, जो शिवजी से युद्ध करने के निमित्त गया है, कहिये। विष्णुजी ने हँसकर ऊपर की ओर देखा। तुरन्त ही दो बन्दर

आ पहुँचे और प्रणाम करके बैठे। फिर तपस्वी की सैन से गुप्त हो गये। एक क्षण भी न बीता कि दोनों बन्दर फिर पहिले की तरह आकर बैठ गये। उनके हाथ में जलन्धर का शीश और धड़ था। उन्होंने योगी के आगे उन्हें रख दिया और आप दुःखी होकर बैठ रहे। वृन्दा अपने पति का सिर देखकर धरती पर गिर पड़ी। तब मुनि ने पानी आदि छिड़क वृन्दा को जगाया। वृन्दा फिर रोकर अपने पति का सिर अपने शीश से लगा रोने लगी। कहा मैं तो तुमको शिव के साथ युद्ध करने को मना करती थी; पर तुमने न माना। इसी प्रकार वह बातें कह कहकर रोती थी। फिर मुनि से कहा कि आप मेरे ऊपर कृपा करके मेरे पति को क्यों नहीं जिलाते? आप इस योग्य हैं कि मेरे पति को जिला दें, क्योंकि मैं आपके प्रभाव को देख चुकी हूँ। मुनि बोले—जो मनुष्य शिवजी की क्रोधाग्नि से मारा गया, उसको हम जिला नहीं सकते। पर तुम्हारे दुःख को देखकर हम जिला देंगे। यह कह सिर को शरीर से जोड़ दिया और आप अन्तर्धान हो गये। उस शरीर में आप प्रवेश कर गये और जलन्धर के समान उठकर बैठ गये। अपनी स्त्री को गले लगाया और वृन्दा ने कुछ न जाना। बड़ी प्रसन्नता से सहवासकर अपना धर्म खो दिया और उत्तम रीति से विहार किया। एक समय विष्णुजी ने अपना शरीर धारण किया, जिसको देख वृन्दा ने पहचान लिया और बहुत दुखी हुई। ऐसा छल विष्णुजी का जानकर वृन्दा ने विष्णुजी को बहुत डराया और क्रोधित हो कहने लगी कि तुमने वेद के विरुद्ध पर स्त्री के साथ मैथुन करके मेरे धर्म को नष्ट किया। तुम ऐसा स्वरूप मुनीश्वरों का बनाये हुए बड़े अधर्मी हो। यह कहकर फिर शाप दिया कि जो दोनों राक्षस तुमने दिखाये, वे दोनों बड़े बली होकर तुम्हारी स्त्री को भगा ले जायँगे, जिससे तुम बहुत दुःख पाकर वन-

वन फिरा करोगे, जहाँ तुमको हर प्रकार के कष्ट मिलेंगे। और जो बन्दर तुमने मुझको दिखाये, वही तुम्हारे सहायक होंगे। यह कहकर वह बहुत रोई और चिता बनाकर अपने पति के साथ जलने की इच्छा की। यद्यपि विष्णुजी ने बहुत मनाया, पर पति-व्रतधर्म को दृढ़कर उसने कुछ न माना और तुरन्त शिव-गिरिजा का ध्यान करके सती हो गई। उसका तेज सबके देखते हुये गिरिजा के शरीर में प्रवेश कर गया। यह दशा देख विष्णुजी बार-बार पछताते उसकी सुन्दरता के स्मरण में दुखी हुए और चिता की भस्म अपने शरीर से मल उसी स्थान पर स्थित हुए। अपने मुख्य स्थान और लक्ष्मी को छोड़ दिया। यह दशा देख देवता, सिद्ध उसी के निकट आ गये। वे सब विष्णुजी को बड़े-बड़े इतिहास सुनाकर समझाने लगे कि आप तो स्वयं धर्म के पालनेवाले प्रति समय में रहे हो। आपको परस्त्रीगमन करना उचित न था। चलिए, अपने वैकुण्ठ में विहार करिए। परस्त्री की प्रीति छोड़ दीजिए। जो पाप भाग्यवश हुआ है, वह शिवजी की कृपा से नष्ट हो जायगा। अब कुछ खेद मत करिए और अपने स्थान को चलिए। हम आपको समझाते हैं, यह हमारी बड़ी ढिठाई है। आप क्षमा करेंगे। आपकी लीला को जानने-वाला कोई नहीं है। सो इतना समझाने पर भी विष्णुजी ने किसी को उत्तर तक न दिया और उसी प्रकार शोक में बैठे रहे। हे नारद! शिवजी की बड़ी माया है। उसी के अधीन सब हैं। जैसा शिवजी के मन में आता है, वैसा ही सब कुछ होता है।

बाईसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! जब शिवजी सचेत हुए तो उन्होंने देवताओं को सुखी कर दिया। अन्त को जलन्धर ने शिवजी की वीरता और पराक्रम देख विचार किया कि अब

मुझे माया करनी चाहिए, जिससे शिवरानी को प्राप्त करूँ। यह शोच उसने माया से एक गिरिजा बनाई और उस कृत्रिम गिरिजा को बिठलाकर शिवजी के सम्मुख लाया, इस तरह से शुम्भ निशुम्भ दोनों भाई मारते जाते थे और वह गिरिजा रोती हुई कहती थी कि मेरी रक्षा करो। इतने में जलन्धर ने ऊँचे स्वर से कहा कि हे सदाशिवजी! अपनी स्त्री को देखो। जो यह स्त्री तुमको अति प्रिय है उसको मैं पकड़ लाया हूँ और उसकी ऐसी दुर्दशा कर रहा हूँ। क्या तुम नहीं देखते। तुमको धिक्कार है। तुम अपने को बड़ा समझते हो। यह वचन सुन और माया की गिरिजा देख शिवजी अति दुखी हुए और मौन साधकर बुद्धि को भुला दिया। जब शिवजी ने लीला करके अपने को ऐसा शोकयुक्त दिखाया, तब जलन्धर ने धनुष को कान तक खींचकर तीन बाण शिवजी के मारे। एक सिर में, दूसरा छाती में, तीसरा उदर में। शिवजी जलन्धर की सब माया जान महा भयंकर रूप धारण कर अग्नि के प्रकाशतुल्य प्रकटे। ऐसा भयानक स्वरूप देख सब दैत्य डरकर युद्धस्थान छोड़ भाग चले। यहाँ तक कि शुम्भ और निशुम्भ भी पीठ दिखाकर भागे। जलन्धर की सब माया नष्ट हो गई। शिव ने अति तेजस्वी रूप से शुम्भ-निशुम्भ को यह शाप दिया कि तुमने जो छल करके गिरिजा को दुःख दिया, यह बड़ा पाप तुमसे हुआ है। और युद्ध से मुख मोड़कर भागे, तुम्हारा धर्म जाता रहा। इससे तुम गिरिजा के हाथों से मारे जाओगे। इतने में जलन्धर ने क्रोधित होकर बाणों से शिवजी को छिपा दिया। तब शिवजी कुपित हुए और जलन्धर के बाणों को काट डाला। इतने में जलन्धर ने एक परिघ (बेलन) बैल के मारा। बैल धर्म भूलकर लड़ाई से भागा। यद्यपि शिवजी ने उसको बहुत खींचा, पर वह युद्धस्थल में न ठहर सका। तब

तो शिवजी अति कुपित होकर महाभयंकर हो गये। सुदर्शनचक्र को हाथ में उठा लिया, जो कोटि सूर्य के समान चमकता था। उसे जलन्धर के ऊपर छोड़ दिया। उस चक्र का तेज दशों दिशाओं में पूर्ण हो गया। सारी पृथ्वी और आकाश जलने लगा। चक्र ने जाकर जलन्धर का सिर धड़ से अलग कर दिया और बड़ा शब्द हुआ। उस समय पृथ्वी थरथर काँपने लगी पर्वत जल उठे। जलन्धर का तेज शिवजी के शरीर में प्रवेश कर गया। जय-जय शब्द हुआ। हे नारदजी! उनके बड़े भाग्य हैं, जिनकी यह दशा हो; क्योंकि देवता मुनि बड़े-बड़े उपाय करके इतना शिवजी को प्रसन्न नहीं कर सकते। न इस गति को पा सकते हैं। उस समय में, इन्द्र और देवता आदि बड़ी-बड़ी स्तुति करने लगे।

देवताओं की की हुई स्तुति

हे शिवजी! तुम हर प्रकार से भक्तों के दुःख दूर करनेवाले हो। तुमको मन, वाणी और वेद आदि किसी ने नहीं पाया। वे भी नेति नेति कह अपनी अज्ञता जताते हैं। तुम्हारी महिमा अपार है, जिसको नारद, शारद, शेष, महेश भी नहीं जान पाते। केवल अपनी बुद्धि के अनुसार कहते हैं। तुम्हारे एक निमेष में करोड़ों इन्द्र, विष्णु बीत जाते हैं। तुम किसी से बनाये नहीं गये, बरन् परब्रह्म हो। तुम दीनदयालु और घट-घट व्यापक हो। तुमने यदुवंशी को मुक्ति दी और उसकी स्त्री कलावती भी तुम्हारी भक्ति से मुक्त हुई। तुमने मदयन्ती को मोक्ष दी और सौमुनि के पुत्र को बड़ी अच्छी गति दी। राजा तिमिरघन को तुमने अपना-कर सात जन्म तक बराबर आनन्द दिया। तुमने चन्द्रसेन का मान रख लिया। श्रीकर गोप को अपना भक्त बनाकर वह द्रव्य दिया, जो देवताओं को भी नहीं मिलता। तुम्हीं ने सत्यरथ की

आपदा दूर की और धर्मगुप्त तुम्हारा व्रत करने से दरिद्रता से छूट गये। तुमने चित्रधर्म के दुःख को दूर कर दिया। उसकी लड़की को कितना सुख नहीं दिया, अर्थात् उसका पति राजा चन्द्राङ्गद यमुना के भीतर डूब गया था और तुमने मरने न दिया। तुम्हारे बल से तक्षक को कुछ हानि और भय न होने पाया और एक स्त्री पुरुष हो गई। मद्रदेश के ब्राह्मण को आपने मोक्ष दिया और उसकी स्त्री चञ्चला को उबार लिया। भद्रामुखगिरि के कष्ट को दूर कर दिया और पिङ्गला की इच्छा के अनुसार उसको धन, आनन्द और सुख दिया। अपने भक्त भद्रामुख की इच्छा पूरी की। ऋषभ को तुमने हर प्रकार से अपने में मिला लिया। आपकी सेवा करके वामदेव कैसी गति को पहुँचा। आपने राजा दुर्जन को तार दिया, जिसने असंख्य स्त्रियों के साथ व्यभिचार किया था। आपने शबरी और शूकर को कैसी अच्छी गति देकर भस्म का माहात्म्य प्रकट किया। भद्रसेन के पुत्र सुधर्मा और तारक मित्र के पुत्र को उत्तम गति देकर रुद्राक्ष की बड़ाई दिखाई। आपने गङ्गा को, जिसका नाम महानन्दा था, तार दिया। सुश्रुमान् आपकी भक्ति से बहुत दिनों तक जिया। आपने शारदा के पति को जिलाकर उसके सौभाग्य को स्थिर रक्खा। बन्दिक नाम पापी ब्राह्मण को बहुत अच्छी गति दी। उसकी स्त्री बीजुका जो पुंश्चली थी, उसे मुक्ति दी। आपने दक्ष के यज्ञ का विध्वंश-कर उसके गर्व का नाश कर दिया। काम को जलाकर शिवरानी का गर्व हरा। बालक का रूप धारण कर तारक दैत्य को मार डाला। आपने गणपति को अपना बल देकर सब गणों से प्रबल कर दिया और फिर त्रिशूल से उनका सिर काट फिर भी जिला दिया। दैत्यों को देवताओं समेत जलते हुए देखकर हलाहल विष को आप पी लिया। आपने पहले त्रिशूल लेकर अन्धक के सिर को

काट डाला, फिर कृपा कर उसको अपने गणों में कर लिया। आपने त्रिपुर को जलाकर भस्म कर दिया और काल को आप ही ने जलाया और धर्म का पालन करके साथ रक्खा। आपने विष्णु और ब्रह्मा के मोह को दूर करके मन्त्र-शास्त्र को कील डाला। नृसिंह अवतार के गर्व का नाश किया और शरभ का अवतार धारण किया। अत्रि के पुत्र होकर कामरूप का वध किया। आपने कपि का स्वरूप धारणकर राम लक्ष्मण के दुःख को दूर कर दिया। सूर्य और चन्द्रमा आदि सातों ग्रहों ने आपकी कृपा से यह नाम पाया। राहु-केतु भी आपकी कृपा से उसी पद पर पहुँचकर ग्रह हो गये। आपकी सेवा से ब्रह्मा, विष्णु सृष्टि का पालन-पोषण करते हैं। आप तीनों गुणों से परे और सगुण हैं। विना हाथों के बड़े-बड़े कार्य करते हैं। हे नारद! हम तीनों ने शिवजी की ऐसी स्तुति की। जो कोई इस स्तुति को सुनेगा, वह दोनों लोकों में प्रसन्न रहेगा और शिवजी के लोक को जायगा।

तेईसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! देवताओं ने यह स्तुति कर फिर शिव से विनती की कि आपने जलन्धर को नष्ट करके हम लोगों को निर्भय कर दिया। अब और कोई कण्टक नहीं है। पर अकस्मात् एक और दुःख हम लोगों को उपजा है, अर्थात् विष्णुजी उस स्थान पर, जहाँ जलन्धर की स्त्री सती हो गई है, भस्म लगाये हुए लोट रहे हैं। वे किसी का कहना-सुनना नहीं मानते। अब कोई उपाय कीजिये, जिसमें विष्णुजी फिर हठ को छोड़ अपना पुराना मार्ग ग्रहण करें। शिवजी ने हँसकर कहा कि हे देवताओ! यह सब हमारी माया की लीला है। हमारी माया तीनों लोकों को नचाया करती है। विष्णुजी की बुद्धि को भ्रष्ट कर हमने यह

लीला कराई है। विष्णुजी हमको बहुत प्रिय हैं, इससे हमने यह लीला कर उनके अहंकार को दूर कर दिया। अब जो उपाय हम बतलाते हैं, वह तुम सब करो। विष्णुजी का मोह दूर हो जायगा। अब तुम सब देवी की शरण में जाकर अपना दुःख वर्णन कर दो। वह तुम्हारे सब कार्य करेंगी। विष्णुजी मुख्य स्वरूप पर आ जावेंगे। यह कह शिवजी अपने गणों समेत अन्तर्धान हो गये। देवता गिरिजा की स्तुति करने लगे। कहा कि हम तुम्हारी शरण में आये हैं, हमको दुःख से छुड़ा दो। यह स्तुति जो पढ़ेगा, वह कभी मोह और दरिद्रता में न पड़ेगा। यह स्तुति देवता कर रहे थे कि आकाश में एक अग्नि का कुण्ड देख पड़ा और उस कुण्ड में से शब्द हुआ कि हमने तीन रूप से अलग-अलग तीनों गुण से अलंकृत होकर संसार में अवतार लिया है। एक गिरिजा, दूसरी लक्ष्मी, तीसरी सरस्वती। सो हे देवताओ! तुम उनकी शरण में जाओ। तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा। इतना सुन देवता स्तुति करने लगे। जिसके हर श्लोक में जय-जय शब्द था। तीनों देवियों ने तीन बीज देकर कहा कि जहाँ विष्णुजी बैठे हैं, वहाँ इनको बो दो। तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। देवियों के ऐसे वचन सुनकर जहाँ विष्णुजी बैठे थे वहाँ देवताओं ने जाकर वे तीनों बीज बो दिये, जिससे तीन प्रकार की वनस्पति उपजी। उनका नाम धात्री, मालती और तुलसी हुआ। धात्री जो मेरी स्त्री है, उसी से धात्री और लक्ष्मी से मालती और गिरिजा से तुलसी उपजीं। ये तीनों देवियाँ रज, सत्, तम तीनों गुणों को धारण किये हुए स्त्रियों के समान प्रकट होकर वृन्दा से भी अति सुन्दर रूप रख विष्णु के आगे खड़ी हुईं उनको देख विष्णु आश्चर्य में हुए और तुरन्त कामवश हो उठ खड़े हुए। धात्री और तुलसी ने तिरछी चितवन से विष्णु

की ओर देखा और मालती यह दृष्टि उनकी सौतियाडाह से न सहकर दुखी हुई और मन में क्रोध किया, इससे वह शिव पर नहीं चढ़ाई जाती। विष्णुजी धात्री और तुलसी पर मोहित होकर उनको साथ लिये हुए वैकुण्ठ में आये और उनका मोह जाता रहा। जो मनुष्य इस जलन्धर के वध को पढ़ेगा, वह शिव लोक में स्थान पावेगा।

चौबीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले कि इस कथा के सुनने के उपरान्त नारद ने ब्रह्माजी से पूछा कि सुदर्शन चक्र विष्णुजी का शस्त्र प्रसिद्ध है। नहीं जानते कि वह यही सुदर्शनचक्र है, जो शिवजी ने सब देवताओं से तेज लेकर जलन्धर के वध निमित्त बनाया या वह कोई दूसरा है, मुझको बता दीजिये। यह सुनकर ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! सुदर्शन चक्र एक ही है, दूसरा नहीं। जब दैत्य अतिबल और द्रव्य प्राप्तकर देवताओं को दुःख देने लगे तो विष्णु ने शिवजी की बड़ी सेवा कर सुदर्शन चक्र पाया। वह उसी से सब दैत्यों का वध करते हैं। कल्पभेद से हर-चरित्र, लीला, वर्णन, व्याख्यान, कथा और इतिहास में बहुत अन्तर है। पर बुद्धिमान् को चाहिए कि जो उसे सन्देह उपजे, पूछे; पर सत्य मार्ग से भटक न जाय। सो जब जलन्धर के वध को बहुत समय बीता, तब दैत्य दिति के लड़के बड़े बली होकर उपद्रव मचाने लगे, जिससे संसार में मनुष्यों को बड़ा दुःख प्राप्त हुआ। तप, योग, यज्ञ, देवताओं की पूजा, ध्यान, वर्णाश्रम और सब धर्मों में विघ्न पड़ने लगा। गोवध बहुत होने लगा। पहले के सब अच्छे मार्ग जाते रहे। देवता और मुनि सब दुखी होकर मेरे पास गये, शरण-शरण कहकर मेरी स्तुति की और अपने कष्ट का वर्णन किया। मैं सबको साथ लेकर विष्णुजी के पास गया और बड़ी स्तुति

कर विनय की कि अब दानव और दैत्य बड़ा दुःख देते हैं। इन सबको नष्ट करो। हम सब आपकी शरण में आये हैं। विष्णुजी प्रसन्न होकर कहने लगे कि तुम सब अपने-अपने घरों को जाओ। हम दैत्यों से युद्ध करेंगे। यह कहकर वह दैत्यों के साथ युद्ध करने लगे। पर दैत्यों को न जीत सके; क्योंकि वे बड़े बली थे। विष्णु ने विचारा कि बिना सहायता के हम विजय न पावेंगे। पर शिवजी की रक्षा पाना बहुत दुर्लभ है। यह विचारकर तुरन्त ही अन्तर्धान हुए और कैलास पर्वत के निकट तपस्या के निमित्त बैठ गये। एक कुण्ड खोदकर उसमें अग्नि भर दी और बहुत ही कठिन तप करने लगे। यद्यपि पार्थिवपूजन, मन्त्र और ध्यान आदि बहुत से उपाय किये, परन्तु शिवजी प्रसन्न न हुए। तब विष्णुजी ने विचारा कि किस प्रकार शिवजी प्रसन्न होगें ? अन्त में विश्वास हुआ कि शिवजी सहस्र नाम के जपने से अति प्रसन्न होंगे। इस कारण सहस्र नाम जपने लगे। हरएक नाम के पीछे एक कमल का फूल चढ़ाकर प्रणाम करते थे। इसी प्रकार बहुत दिन पर्यन्त पूजन करते रहे। शिवजी ने प्रसन्न होकर चाहा कि अपनी प्रसन्नता प्रकट करें; परन्तु उन्होंने परीक्षा के निमित्त सहस्र पुष्पों में से एक कमल का पुष्प उड़ा लिया। विष्णुजी को कुछ न ज्ञात हुआ। अन्त में पूजा करते-करते एक फूल कम होने से उनको खेद हुआ। और कमलपुष्प प्राप्त होने की कुछ भी आशा न थी और पूजन में भी अन्तर पड़ता था। इस विचार से उन्होंने शिवजी का ध्यान किया, जिससे उनको यह भासित हुआ कि उनके नेत्र तो कमलपुष्प से कम नहीं। तुरन्त ही नेत्र को निकाल बहुत ही प्रसन्न होकर शिव के अर्पण किया। शिवजी ने दर्शन दिया। आम्रेडितम् मन्त्र का उच्चारण कर कृपादृष्टि से देखा। विष्णुजी ने शिवजी को प्रणाम किया। शिवजी मुसकिराये और कहा कि

जो तुम्हारी इच्छा हो, वह माँगो। विष्णुजी ने अति पवित्र स्तुति की। फिर प्रार्थना की कि हम दैत्यों से हार गये हैं, उनको हम किसी प्रकार नहीं जीत सकते, ऐसा यत्न कीजिये, जिससे वे मारे जायँ। शिवजी ने कृपा की और सुदर्शनचक्र दिया। कहा कि हमारे इस समय के रूप का ध्यान, यह सहस्रनाम और सुदर्शनचक्र, जो हम तुमको देते हैं। इन तीनों से तुम शत्रुओं और दैत्यों को मारकर जीत लोगे। त्रैलोक्य में कोई तुमको न जीत सकेगा। सुदर्शनचक्र को लघु कार्य पर न छोड़ना। यह सम्पूर्ण कार्य सिद्ध करनेवाला है। ब्राह्मणों के सिवा वह सबको जलावेगा। यह कहकर शिवजी तो अन्तर्धान हुए और विष्णुजी सुदर्शनचक्र को लेकर हँसी-खुशी रात्रि-दिन सहस्रनाम का जप करते और अपने भक्तों को उसी की शिक्षा देते रहे। अब भी जो कोई सहस्रनाम और विष्णुस्तुति पढ़ेगा, उसके सबकार्य सिद्ध होंगे। उसके शत्रुओं का नाश होगा। त्रैलोक्य में वह सुखी रहेगा। विद्या की वृद्धि होगी। रोग दूर होंगे। वह सब प्रकार से लाभदायक है।

पच्चीसवाँ अध्याय

नारदजी बोले हे ब्रह्माजी! और भी शिवजी के चरित्र वर्णन करो, जिस प्रकार उन्होंने दैत्यों को नष्ट किया। ब्रह्माजी बोले कि अब हम शङ्खचूड़ के मारने का वृत्तान्त वर्णन करते हैं, सुनो जिस प्रकार शिवजी ने शङ्खचूड़ को मारा, इसके श्रवण करने से शिवभक्ति अधिक उत्पन्न होती है। पहले मेरे पुत्र मरीचि से कश्यप उत्पन्न हुआ, जिसको मेरे लड़के दक्षप्रजापति ने तेरह पुत्रियाँ ब्याह दीं, जिससे बहुत सन्तान उत्पन्न हुईं। और देवता आदि सब उसी प्रकार से हैं। ऐसा कोई नहीं जो उस कुल का वर्णन विस्तारसंयुक्त करे। मैं केवल एक मनुष्य का इतिहास

वर्णन करता हूँ, जो भक्ति की वृद्धि करता है और इच्छा का देने-वाला है। कश्यप की स्त्री पतिव्रता और सुन्दर थी। उसके चार पुत्र हुए वे दैत्य और बड़े वीर थे। उनमें से एक पुत्र विप्रचित्ति बड़ा ही वीर और बलवान् था। उसका एक पुत्र दम्भनामी विष्णुजी का बड़ा सेवक और भक्त था। परन्तु कोई पुत्र न उत्पन्न होने से अपने बड़ों की इच्छा और विष्णुजी की आज्ञानुसार पुष्कर में तप करने गया और एक लक्ष वर्ष पर्यन्त कठिन तप करता रहा कि कोई पुत्र उपजे। विष्णुजी ने ऐसी आराधना देखकर दर्शन दिया और प्रसन्नता से कहा कि वरदान माँग। उसने उत्तर दिया कि मैं ऐसा पुत्र चाहता हूँ, जो बड़ा वीर हो, मेरे अधीन हो, सारे संसार को जीते और बड़ा बुद्धिमान् हो। विष्णुजी ने अङ्गीकार किया। जब विष्णुजी अन्तर्धान हो गये, तब दम्भासुर घर में आया। उसने अपनी स्त्री से सब कहा। वह बहुत प्रसन्न हुई और मङ्गनों को बहुत भिक्षा दी। थोड़े दिन बाद वह गर्भिणी हुई। सुदामा नाम एक कृष्णजी का भक्त, जो राधाजी के शाप से वैकुण्ठ या गोलोक में था, उसके गर्भ में आया। जब नव-दस महीने हुए तो शुभ दिन और शुभ नक्षत्र में उसका जन्म हुआ। दम्भासुर ने जातकर्म करके बड़ी धूमधाम से भाई-बन्धुओं की अनेक प्रकार से सेवा की और अधिक प्रसन्न हुआ। उसने लड़के का नाम शङ्खचूड़ रक्खा। शङ्खचूड़ सर्वविद्यानिधान हुआ। उसने अपना आचरण भी बहुत अच्छा रक्खा। माँ-बाप को सुखी रखने लगा। जैगीषव्य से उपदेश लेकर तप करने गया और मेरे पाठपूजन में ऐसा लीन रहा कि मुझको बहुत प्रसन्न किया। इसी हेतु से मैं तत्काल वरदान देने आया। शङ्खचूड़ ने मुझसे यह वरदान माँगा कि मैं देवताओं से न हारूँ, तीनों लोक में मेरी जीत हो और मैं बड़ा वीर होऊँ। मैंने अङ्गी-

कार किया और कृष्णकवच उसको दिया। फिर आज्ञा दी कि तुम बदरिकाश्रम में जाकर धर्मध्वज की पुत्री तुलसी से, जो तप करती है अपना विवाह करो। यह वरदान देकर मैं अन्तर्धान हो गया। शङ्खचूड़ ने कृष्णकवच को सिद्ध कर अपने कण्ठ में बाँध लिया और उस स्थान पर अर्थात् बदरिकाश्रम में जाकर, जहाँ तुलसी तपस्या करती थी वहाँ पहुँचा। तुलसी की सुन्दरता देखकर वह मोहित हुआ और कहा कि तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो? किस कारण ऐसा तप करती हो? मैं तुम्हारा सेवक हूँ। मुझसे सब वर्णन करो। यह सुनकर तुलसी ने कहा कि मैं धर्मध्वज की पुत्री हूँ। तप के निमित्त यहाँ बैठी हूँ। तुम कौन हो, जो मेरी परीक्षा लेते हो? तुम यहाँ से चले जाओ; क्योंकि स्त्री मोहिनीरूप होती है। वह अपवित्र है और योगीश्वरों के पूजन आदि को नष्ट करती है। शङ्खचूड़ ने कहा कि संसार में दो प्रकार के स्त्री-पुरुष होते हैं, अर्थात् बुरे कामी और भले तपस्वी। परन्तु मैं कामी और पापी नहीं। उसी प्रकार तुम भी इनसे रहित हो। मुझे ब्रह्मा ने भेजा है। मैं तुम्हारे साथ गन्धर्व-विवाह करूँगा। मैं शङ्खचूड़ हूँ। तीनों लोक का जीतनेवाला और दम्भासुर का पुत्र हूँ। प्रथम जन्म में मैं गोप सुदामा था और कृष्णजी की पूजा करता था, पर राधाजी ने क्रोध किया और शाप दिया, जिस कारण मुझको दानव होना पड़ा। मुझको कृष्णजी की कृपा से प्रथम जन्म की स्मृति है। तुलसी ने कहा कि तुम बहुत भले और लोभ और काम आदि से रहित हो। जो मनुष्य स्त्री के अधीन नहीं, वह बड़ा भाग्यवान् है। पर जो मनुष्य स्त्री के वश है, उससे बढ़ कर संसार में कोई बुरा नहीं। स्त्री चाहे जैसी पवित्र और पतिव्रता हो परन्तु वह मरे हुए पुरुष के समान अपवित्र है। ब्राह्मण दस दिन में, क्षत्रिय बारह दिन

में, वैश्य पंद्रह दिन में और शूद्र पूर्ण एक मास में पवित्र हो जाते हैं। परन्तु स्त्री किसी समय पवित्र नहीं होती। यह बात वेद में लिखी है। सब देवता, मुनीश्वर और पितर आदि स्त्री से ग्लानि करते हैं। स्त्री के दिये हुए पिण्ड पितरों को नहीं पहुँचते और न देवता आदि उसके चढ़ाये हुए पुष्प अङ्गीकार करते हैं। जिसका हृदय स्त्री के अधीन है, उसका पूजा-पाठ सब मिथ्या है। उसका जन्म मिथ्या है। पुरुष का जन्म फलदायक है। हे नारद! यह बात उन दोनों में हो रही थी कि मैं उस स्थान पर गया और शङ्खचूड़ से कहा कि तुम क्यों इस प्रकार वार्त्तालाप करते हो और क्यों गन्धर्व-विवाह नहीं करते? तुम दोनों एक ही वर्ण के हो। फिर मैंने तुलसी से उसके कुल और जप-तप का हाल कह सुनाया और आज्ञा दी कि तुम विवाह करो। और कहा कि शङ्खचूड़ विष्णुजी का बड़ा भक्त है। इसके साथ विवाह करने से कृष्णजी तुमको बहुत चाहेंगे और वैकुण्ठ देंगे। यह कहकर मैं चला गया और उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक गन्धर्व-विवाह कर लिया। शङ्खचूड़ तुलसी को लेकर घर सिधारा, माता और पिता को प्रणाम किया और सब समाचार सुनाया, जिससे वे बहुत प्रसन्न हुए। उसके पीछे दम्भासुर ने शङ्खचूड़ को राजतिलक दे दिया और आप तप करने गया। शङ्खचूड़ अच्छे प्रकार राज्य करने लगा।

छब्बीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! यह सुनकर असुरोंके गुरु शुक्र बहुत से दैत्यों समेत शङ्खचूड़ के निकट आये। शङ्खचूड़ ने नाना प्रकार से सेवा की। शुक्रजी ने आशिष और प्रशंसा के उपरान्त देवता और दैत्यों की कथा वर्णन की। अर्थात् वह शत्रुता, जो दोनों में बड़े समय से चली आती थी, और देवताओं की जीत

दैत्यों की हार, बृहस्पति की सहायता और देवताओं के चरित्र कहकर शङ्खचूड़ को सब दैत्यों का राजा बनाया। दैत्यों ने बहुत प्रसन्न होकर भेंटें दीं। शङ्खचूड़ ने बहुत प्रसन्न होकर एक बड़ी भारी सेना दैत्यों और वीरों की इकट्ठी कर इन्द्रलोक पर चढ़ाई की और नगर को घेर लिया। इन्द्र यह देखकर देवताओं की सेना लेकर लड़ने को गये। दोनों सेनाएँ बहुत लड़ीं। अन्त में देवताओं ने बड़ी वीरता से दैत्यों को हरा दिया। शङ्खचूड़ ने ऐसी हार देखकर अपने बड़े वीरों को लड़ाई के निमित्त भेजा। वे देवताओं से लड़े। अन्त समय में देवता ऐसी लड़ाई देखकर बिखर कर भाग गये। तब दसो दिक्पति दैत्यों के सम्मुख हुए और महायुद्ध हुआ। इन्द्र वृषपर्वा, अनल गौ, श्रुति संहार, यम कालिम्बिका, वरुण चञ्चल, पवन कलकेय, कुबेर दम्भ, ईश विप्रचित्ति, ऋभु राहु, चन्द्रमा कनकाक्ष, मङ्गल शुक्र, ब्रह्मपति कालासुर, काल यम, विश्वकर्मा शनैश्चर, रक्ताक्ष वसुगण, प्रजेशगण धूम्रलोचन, नलकूबर रत्नसार, इन्द्र का पुत्र किविट, मन्मथ दीःसमान्, अश्विनीकुमार सब दिक्पति, ग्रह, देवता और अच्छे-अच्छे वीर द्वन्द्वयुद्ध करने लगे। बहुत दिनों तक लड़ाई रही, परन्तु कोई न जीता। अन्त समय में दैत्यों ने शुक्रजी का ध्यान किया और एक बारगी देवताओं के सम्मुख होकर चढ़ाई कर दी। देवता भागे। उस समय ग्यारहों रुद्र दैत्यों के सम्मुख हुए और इतना त्रिशूल से मारा कि सब दैत्य भाग गये। ऐसी दुर्गति देखकर शङ्खचूड़ आया और उसने बाण चलाये कि देवता भाग गये। ग्यारह रुद्र खड़े रहे। उस समय आकाशवाणी हुई कि यह ग्यारह रुद्रों से शङ्खचूड़ न हारेगा और न मारा जायगा; क्योंकि ब्रह्माजी के वरदान से यह पृथ्वी का राजा होगा। तुम चले जाओ और अनुकूल समय देखो। यह आकाशवाणी सुन-

कर देवताओं ने लड़ाई त्यागी। दैत्य जीते और आनन्दपूर्वक घर गये। शङ्खचूड़ पृथ्वी का राजा हुआ। उसने देवताओं का द्रव्य दैत्यों को दे दिया और यज्ञ का भाग भी लिया। इन्द्रपदवी को धारण किया। प्रजाओं को पुत्र सदृश पालने लगा। उसके राज्य से किसी को किञ्चिन्मात्र खेद न हुआ। सब लोग अपने-अपने धर्म-कर्म वर्ण और आश्रम में स्थित रहे। उसके समय में काल नहीं पड़ा। अन्न अनन्त उपजा। ओषधियाँ भी बहुत गुणकारक उत्पन्न हुईं। पर्वतों में भाँति-भाँति के रत्न और मणि निकले। यहाँ तक कि सिवा देवताओं के और किसी को भी किञ्चिन्मात्र खेद न हुआ। शङ्खचूड़ कृष्णजी का बड़ा भक्त था। यद्यपि राधाजी के शाप से दानवरूप से उत्पन्न हुआ, पर दैत्यों के सदृश न था।

सत्ताईसवाँ अध्याय

नारदजी ने कहा कि हे ब्रह्माजी! शंखचूड़ को राधिकाजी ने क्यों शाप दिया? ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! जो गोलोक कहलाता है, वहाँ श्रीकृष्णजी रहते हैं। वहाँ कृष्णजी के मित्र सुदामा रहते थे। राधाजी ने उनका अनाचार देखकर उन्हें शाप दिया, जिससे उन्होंने दैत्य का शरीर धारण किया। नारदजी ने कहा कि हे ब्रह्माजी! गोलोक कहाँ है, जहाँ श्रीकृष्णजी विराजमान हैं और कौनसी बुरी बात देखकर राधाजी ने शाप दिया? ब्रह्माजी ने उत्तर दिया कि हे पुत्र! प्रथम मेरा लोक है, जहाँ मैं शिवजी के ध्यान में मग्न रहता हूँ। उसके ऊपर वैकुण्ठ है, जहाँ विष्णु भगवान् विराजमान हैं। उसके ऊपर शिवशासन है, जहाँ शिव भक्त रहते हैं। उन्हें शिवजी के भजने से खेद और शोक नहीं होता। उसके ऊपर वीरभद्र का लोक है, जहाँ स्कन्द अर्थात् स्वामिकार्त्तिक रहते हैं। उसके ऊपर उमालोक है, जहाँ शिवरानी विराजमान हैं। उसके

ऊपर शिवलोक है, जहाँ शिवजी परब्रह्म जगत् के स्वामी अन्तर्यामी विराजमान हैं । उसको आनन्दवन और काशी भी कहते हैं । वहाँ के राजा शिव हैं, जो तीनों देवताओं को उत्पन्न करनेवाले हैं वे निर्गुण और सगुणरूप हैं । उनको आदिशक्ति ब्याही हैं । उन्हीं के बायें अङ्ग से विष्णुजी और दाहने अङ्ग से मैं और हृदय से रुद्र उत्पन्न हुए हैं । मैं और विष्णुजी शक्ति की अग्नि से उत्पन्न हुए हैं । रुद्र शिव हैं । शिव तीनों गणों से उत्तमोत्तम हैं । उमापति और सृष्टि के स्वामी हैं । इस प्रकार का जो शिवलोक मैंने वर्णन किया, उसी के निकट गोलोक है । वहाँ श्रीकृष्णजी विराजमान हैं । अर्थात् जहाँ शिवजी की गौएँ रहती हैं, वहाँ शिवजी ने कृष्णजी का स्थान बनाया है कि वह उनका पालन करें । तब से वह गोलोक और कृष्णलोक कहलाता है । प्रथम शिवजी ने विष्णु को दिया था, पर विष्णुजी ने कृष्णजी का अवतार धरा और लक्ष्मीजी ने राधाजी का अवतार लिया । उनका शिवजी ने अभिषेक करके ब्रह्माण्ड का राज्य दिया और बड़ा भारी वरदान देकर सबसे उत्तम पदवी दी । कहा कि हे कृष्णजी ! जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा ही करना । तुम्हारी महिमा और बड़ाई विष्णुजी से भी अधिक होगी । तुम गोपियों के संग विहार करना । इस कारण श्रीकृष्णजी श्रीराधाजी को लेकर गोपियों के नगर में आये और गौओं का पालन करने लगे । एक दिन श्रीकृष्णजी ने राधाजी को कहीं भेज दिया और आप विरजा के संग विहार करने लगे । यह किसी सखी ने राधा से कह दिया । राधाजी क्रोधवती होकर इस चरित्र को देखने आईं । वह विरजा के घर जाकर रथ से उतरीं और चाहा कि भीतर जायँ, पर सुदामा जो एक लक्ष गोपों के साथ द्वार पर बैठा था, उसने राधाजी को अन्दर जाने न दिया । बहुत चिल्लाहट हुई । कृष्णजी ने जाना कि राधा आई हैं । इस

हेतु से भयभीत होकर आप तो अन्तर्धान हुए और विरजा ने अपने शरीर को नदी बना लिया, जो चारों ओर मीठे जल से बह निकली। जब राधिकाजी ने भीतर जाकर दोनों में से किसी को न पाया, तब विष्णुजी पर बड़ा क्रोध किया। विरजा को नदी देखकर वह बहुत रोईं, पर विरजा श्रीसदाशिवजी की आज्ञानुसार कृष्णजी के वियोग के दुःख को देख प्रकट हुई। कृष्णजी ने फिर राधाजी को भुला दिया और विरजा के सङ्ग विहार करने लगे। जब फिर राधाजी ने सुना तो कोपभवन गईं और वस्त्र और गहने आदि शरीर से उतार भूमि पर लोटने लगीं। यह सुनकर श्रीकृष्णजी कोपभवन में राधाजी के निकट आये और सुदामा उसी प्रकार एक लाख गोपों की सेना लेकर द्वार पर खड़ा रहा। राधाजी ने कृष्णजी को देखकर कहा कि कहाँ आते हो? पराई स्त्री से संभोग करते हो और इसी में मग्न रहते हो। यहाँ से चले जाओ। इच्छानुसार जहाँ जी में आवे वहाँ जाओ। तुम्हारे पास बहुत स्त्रियाँ हैं। मेरे निकट आने का क्या प्रयोजन है? मेरे जाने से विरजा तो नदी हो गई, तुमको भी उचित है कि नद होकर परस्पर मिलो और भोगविलास करो। तुम यहाँ से निकल जाओ। तुम्हारे सब कार्य मनुष्यों के सदृश हैं, इससे मेरा यह शाप है कि तुम भी मनुष्य का शरीर धरो और यहाँ से जाकर भरतखण्ड में विराजमान हो। ऐसा शाप देकर राधाजी ने अपनी सखियों को आज्ञा दी कि इनको इस स्थान से निकाल दो। कृष्णजी वहाँ से निकाले गये, पर गुप्त रहे। जब सुदामा ने अपने स्वामी की ऐसी गति देखी तो राधाजी से कहा कि तुमने क्यों ऐसा शाप दिया? तुम सब गोपियाँ कृष्णजी के अधीन हो। राधाजी ने कहा—हे मूर्ख! तू नहीं जानता, कृष्णजी मेरे सेवक हैं। कृष्णजी और सब मेरे वश में हैं। मेरे विना तीनों लोकों के

काम नहीं होते। इस हेतु से तुझको भी मैं शाप देती हूँ कि तू दानव का जन्म ले; क्योंकि तूने दैत्यों के समान कृष्णजी का मान किया और मुझसे ग्लानि की। मेरे विना तेरी कोई रक्षा न करेगा। मेरे शाप से तू यहाँ न रह सकेगा। सुदामा ने उत्तर दिया कि अब तुम्हारी बुद्धि मनुष्यों के सदृश है, इस कारण तुम भी मनुष्यों का शरीर पाओ और कलङ्कित हो। कोई गोप तुम्हारे सङ्ग विवाह न करे। कृष्णजी को फिर पाकर सौ वर्ष पर्यन्त दुःख भोगो। हे नारद ! शिवजी ने ऐसे ऐसे चरित्र किये और फिर अपनी माया को खींच लिया। उस समय विष्णु भगवान् वहाँ आये और देखा कि दोनों रुदन करते हैं। विष्णुजी ने कहा कि तुम कुछ भी खेद न करो और दानव होकर संसार का राज्य करो। शिवजी के सिवा तुमको कोई न जीतेगा। उनके हाथ से मरोगे और फिर यहीं चले आओगे। मैं और राधा भी अवतार लेकर मनुष्यों के सदृश लीला करेंगे। यह कहकर कृष्णजी राधाजी को लेकर गोलोक में रहे और सुदामा दानव हुए। समय पर राधिकाजी और श्रीकृष्णजी ने अवतार लिया और भक्तों के सुख देने को बड़े-बड़े अच्छे चरित्र किये। यह मैंने पुरातन कथा कही है। अब और क्या श्रवण करने की अभिलाषा है।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

नारदजी बोले—हे हमारे पिता! शिवजी ने किस प्रकार शङ्खचूड़ को मारा, यह भेद हमसे कहो। ब्रह्माजी ने कहा कि शङ्खचूड़ ने सब देवताओं को निकाल दिया और फिर अच्छा राज्य किया। देवता आदि सब चिन्तामग्न होकर इन्द्र के निकट गये और उनको आगे करके मुनीश्वरों सहित मेरे पास आये और हाय-हाय करके शङ्खचूड़ का सारा वृत्तान्त कहा। कि हम गुप्त होकर इधर उधर मारे-मारे फिरते हैं। यह कहकर सब

रोये। इस कारण मैं सबको लेकर विष्णु भगवान् के निकट गया। और स्तुति पढ़कर शङ्खचूड़ का वृत्तान्त कहा और रुदन करके विष्णुजी की सेवा करने लगा। विष्णुजी ने कहा कि शङ्खचूड़ हमारा बड़ा भक्त है, इस हेतु से वह सिवा त्रिशूल के और किसी से न मरेगा। यह कहकर विष्णुजी हम सबको लेकर शिवलोक में गये। यह लोक विष्णुलोक से ऊपर है। उसकी महिमा बखानना अति कठिन है। ड्योढ़ी पर पहुँचकर शिवजी की आज्ञा के अनुसार अन्दर गये और बड़ी स्तुति की और कहा कि हमारी दुर्गति को देखिये और कृपादृष्टि कीजिये। हम दैत्यों के हाथ से मारे जाते हैं। यह कहकर हम सब रोने लगे। शिवजी ने यह दशा देख हम पर दया की।

उन्तीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! शिवजी प्रसन्न हुए और कहा कि हे देवताओ! अभय रहो। तुम्हारा कल्याण होगा। शङ्खचूड़ ने प्रथम जन्म में कृष्णजी की पूजा की थी, परन्तु शाप राधाजी से पाया था। वह आदि से अन्त तक सब वृत्तान्त कहते ही थे कि श्रीकृष्णजी राधिकाजी सहित वहाँ आये और स्तुति करने लगे। कहने लगे कि आपकी माया में फँसकर और अपने तईं भूलकर हमने ऐसा शाप पाया। आप अब क्षमा करें। शिवजी ने कहा कि हमारी ऐसी ही इच्छा थी। तुम्हारा अभिमान और अहंकार तोड़ने के निमित्त हमने यह चरित्र किया। अब अपने धाम को जाओ और आनन्द से रहो। परन्तु ऐसा अपराध फिर न करना। जब क्रीड़ाकल्प में तुम दोनों मनुष्य का शरीर धरकर अवतार लोगे तो तुम्हारा शाप नष्ट हो जायगा और फिर गोलोक में आनन्द करोगे। तुम्हारा मित्र सुदामा दानव होकर शङ्खचूड़ कहलाता है। उसने देवताओं को बहुत दुखी किया है, जिससे

वे चारों ओर मारे-मारे फिरते हैं। ये सब रोते-पीटते हमारे निकट आये हैं। हम उनका दुःख दूर करेंगे। यह श्रीकृष्णजी से कहकर देवताओं की ओर देखा और कहा कि तुम कैलास पर्वत पर जाओ और रुद्र जो हमारे अवतार हैं, उनसे सब वृत्तान्त कहो। वह तुम्हारे दुःख को दूर करेंगे। हममें और रुद्र में कुछ भेद न जानना। वह केवल देवताओं के निमित्त अलग रूप धारण किये हैं। हमारा वहाँ सगुणरूप है। जो कोई हममें और रुद्र में भेद समझता है, वह कष्ट भोगता है। यह सुनकर हम प्रसन्न हुए और राधाजी और श्रीकृष्णजी गोपसहित चले गये। मैं भी इन्द्र और देवताओं सहित कैलास पर्वत पर गया और प्रणाम के पीछे प्रार्थना की कि हे गिरिजापति! हम सब तुम्हारी शरण हैं। हमारे दुःखों का नाश करो। शङ्खचूड़ का सब वृत्तान्त सुनाया। रुद्र ने उत्तर दिया कि तुम अपना कार्य सिद्ध समझो और अपने-अपने घर सिधारो। हम शङ्खचूड़ को दैत्यों सहित मारेंगे और नाना प्रकार से तुम्हारे मनोरथ पूर्ण करेंगे। शिवजी की यह अमृत-तुल्य वाणी सुनकर सब देवता प्रणाम करके अपने-अपने घर सिधारे।

तीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! शिवजी ने शङ्खचूड़ के मारने की युक्ति विचारकर अपने भक्त पुष्पदन्त को बुलाया और कहा कि हे पुष्पदन्त! तुम गन्धर्वराज हो। सो शङ्खचूड़ के निकट जाओ और कहो कि जो तुमने देवताओं का राज्य छीन लिया सो भला नहीं किया। तुम ऐसी माया से अभिमानी और अहङ्कारी हो गये हो। अभी कुछ नहीं गया, तुमको उचित है कि देवताओं का राज्य दे दो और कुछ भी झगड़ा न करो। अगर अपनी मृत्यु नहीं चाहते तो पाताल में जाओ और राज्य करो। बरन् हमसे

युद्ध करो। तुमको हम तुरन्त ही मार डालेंगे और फिर देवता अपना राज्य छीन लेंगे। यह सुनकर पुष्पदन्त शङ्खचूड़ के निकट गया। वह ऊँची अटारी पर बैठा हुआ था और तीन करोड़ दैत्य उसके निकट सेवा करते थे। वह ऐसी सेना देखकर आश्चर्य-युक्त हुआ। अन्त में शङ्खचूड़ के निकट बैठ गया। शङ्खचूड़ ने पूछा—तुम किसके दूत हो और क्यों ऐसे बेखटके बैठे हो? तुम्हारे कर्म सेवकों के से नहीं हैं। जिस काम को आये हो, वह कहो। पुष्पदन्त ने सब वृत्तान्त, जो शिवजी ने कहा था, कह सुनाया और अपनी ओर से यह कहा कि चाहे देवताओं को राज्य दो या युद्ध के निमित्त चलो। शङ्खचूड़ ने कहा कि हम शिवजी के भय से देवताओं को राज्य न देंगे। हम भली प्रकार जानते हैं कि पृथ्वी का यह राज्य वीरों और दैत्यों के निमित्त है। हम युद्ध करेंगे, जिससे दोनों लोकों में सुख मिलता है। मुझको यह आश्चर्य है कि महादेवजी ऐसे महात्मा होकर देवताओं की रक्षा करते हैं। हम प्रातःकाल कैलास पर्वत पर आयेंगे। शिवजी को जो उचित हो, वह करें। पुष्पदन्त ने मुसकराकर कहा कि शिवजी सबसे उत्तम हैं। तुम ऐसे अहंकारी न हो। उनको और देवताओं के सदृश न समझो। वह परब्रह्म भगवान् हैं। उनके अधीन ब्रह्मा और विष्णुजी हैं। उनसे युद्ध करके तुम मृत्यु को प्राप्त होगे। उनके गणों के तो सम्मुख हो लो। उनसे लड़ना तो बहुत ही कठिन है। ऐसे-ऐसे वचन कहकर पुष्पदन्त चुप हो रहा। तब शङ्खचूड़ ने कहा कि मैं विना शिवजी के लड़े अप्रसन्न रहूँगा। सारी सृष्टि काल से उत्पन्न होती है और काल ही से नष्ट हो जाती है। हार अथवा जीत दोनों में मैं प्रसन्न हूँ, कृष्णजी हमारे बड़े काल हैं और दयालु भी हैं। हे पुष्पदन्त! यह सारा वृत्तान्त जैसा मैंने कहा, शिवजी से कह देना। पुष्पदन्त

वहाँ से उठकर शिवजी के निकट आये और सारा समाचार कह सुनाया।

इकतीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले--हे नारद ! पुष्पदन्त से ऐसे कठिन वचन सुनकर शिवजी को क्रोध हुआ और आज्ञा दी कि सब तैयार हों और वीरभद्र, नन्दीगण, भृङ्गि, क्षेत्रपाल, भैरव और मुनिभद्र इन सबके नाम पुकार पुकार कर बोले कि तुम सब शस्त्रादिक लेकर चलो। ये सब प्रसन्न होकर बाजे बजाने लगे और सेना को लेकर बाहर आये। शिवजी ने कहा कि सब सेना और सेनापति हमारे सङ्ग चलें। पर गजानन अर्थात् गणपति अपनी सेनासहित यहाँ रह जायँ। शिवजी शस्त्रादिक लेकर बैल पर चढ़े हुए चले और कैलासपर्वत के बाहर ठहरे। बड़े-बड़े सेनापति गण वीरभद्र, नन्दी, महाकाल, बाण, सुभद्रक, विकृत, पिङ्गलाक्ष, मणिभद्र, विरूपाक्ष, विशालाक्ष, वाष्कल गतिहूत, वृष, दृष्टदंष्ट्र, कालंजर, दुर्गम, विद्रुम, बलभद्र, कपिल, कूटाम्बर, ताम्रनयन, विकर्ण, कीचर, बिल्वल, संतर्दन अभिलाषी, भृङ्गी, द्रव्यबल और आठों भैरव, ग्यारहों रुद्र और क्षेत्रपाल आदि गणों के स्वामी और राजा भी शिवजी की सेना के सङ्ग हुए। इस सब सेना के स्वामी वीरभद्र हुए। वीरभद्र की रक्षा के निमित्त भवानी सहस्रभुजा धारण किये विमान पर चढ़कर आईं। उनके वस्त्र लाल थे और मुण्डों की माला पहने थीं। हाथ में खप्पर था और हाथों में अनेक प्रकार के शस्त्र थे। गाती और नाचती एक योजन की लंबी जिह्वा किये भयंकररूप धारणकर तेंतीस कोटि डाकिनी, शाकिनी, भूत, प्रेत कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, वेताल और पिशाच आदि को लिये आईं। उनके पीछे देवता आदि की सेना थी, जिसमें इन्द्र, वरुण, कुबेर, पवन, सूर्य, चन्द्रमा आदि नवग्रह,

वसुकर्मा, अश्विनीकुमार, बृहस्पति, धर्म और आठों वसु आदि सब देवता थे। ये सब शिवजी की सेना के सङ्ग हुए। शिवजी ने सबको अलग-अलग बिठाया और एक बार कृपादृष्टि से देखा, जिससे उनको बड़ी शक्ति प्राप्त हुई। शिवजी विन्ध्यभागा नदी के किनारे विराजमान हुए और बरगद के वृक्ष के नीचे बैठ गये।

बत्तीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद ! जब पुष्पदन्त शङ्खचूड़ के पास से चले आये, तब शङ्खचूड़ अपनी रानी के निकट आया और सब वृत्तान्त कहा कि मैं प्रातःकाल शिवजी से युद्ध करूँगा। उसकी रानी ने सुनकर शोक किया, रोने लगी और कहा कि शिवजी के सब अधीन हैं। तुम उनसे न लड़ो। वह अन्तकाल के स्वामी हैं। तुमको ऐसी बात अयोग्य है। इस प्रकार शिवजी की महिमा बखानी और कहा कि कल रात्रि को मैंने बुरा स्वप्न देखा, अर्थात् मेरा बायाँ अङ्ग फरका। यह देखकर तुमको उचित है कि शिवजी से युद्ध न करो। परन्तु शङ्खचूड़ ने कुछ न सुना और कहा कि मुझको कुछ खेद नहीं; क्योंकि तीनों लोकों में सब कार्य समय पर होते हैं। समय पर अच्छी और बुरी बातें, सुख-दुःख, वृक्षों का फलना-फूलना, देवताओं और सृष्टि की उत्पत्ति, संसार का जीना-मरना और अन्तकाल आदि सब ही होते हैं। इस कारण समय सबसे उत्तम है। इस प्रकार अपनी स्त्री को समझाकर संभोग किया और धर्म को भूल गया। परन्तु उसकी स्त्री को भोग करना अच्छा न लगा; क्योंकि वह श्रीसदाशिवजी के साथ लड़ने जाता था। पर शङ्खचूड़ बहुत समझाकर भोगविलास करता रहा और प्रातःकाल उठकर अपने पुत्र को तिलक दिया और अपनी रानी को रुदन करते देखकर अपने पुत्र को उपदेश कर और स्त्री को सौंपकर लड़ने को चला। सेनापति को बुला-

कर कहा कि आज ही परीक्षा का दिन है, इस कारण सब सेना ले चलो; क्योंकि शिवजी देवताओं को राज्य देने और मुझको अपने अधीन बनाने की इच्छा रखते हैं। इसलिए चलकर भलीभाँति युद्ध कीजिये। छियासी कम्बुदैत्य, पचास कुल असुर बन्दर, एक कोटि वीर्य और सात कुल दानव धौम्र, ये सब शस्त्रादिक लेकर निकल चलें और कालक अपनी सेना को सङ्ग लिये चलें। यह आज्ञा देकर वह घर से निकला और सोने-चाँदी के विमान पर चढ़कर शिवजी के संग लड़ने चला। उस समय बाजे बजने लगे। बाजे बजानेवाले एक अक्षौहिणी और तीन लाख थे। सब सेना और सेनापति निश्शङ्क और प्रसन्नता-पूर्वक चले जाते थे। शङ्खचूड़ वहाँ पर गया, जहाँ शिवजी विराज-मान थे और राजनीति को स्मरणकर शिवजी की सेना के निकट ठहरा।

तेंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! शङ्खचूड़ ने एक दूत भेजा और सब वृत्तान्त कहकर उसको उपदेश दिया। वह शिवजी की शरण हुआ और शिप्रा नदी के निकट, जहाँ शिवजी विराजमान थे, वहाँ पहुँचकर शिवजी को प्रणाम किया और कहा कि शङ्ख-चूड़ ने यह कहा है कि आपकी क्या अभिलाषा है? शिवजी ने कहा कि तुम हमारी ओर से यह कह देना कि तुम सुरज के वंश में हो और सुदामा तुम्हारा नाम था। तुम श्रीकृष्णजी के मित्र थे परन्तु राधाजी के शाप से दैत्य हुए। वास्तव में दैत्य नहीं हो। इस कारण तुमको उचित है कि प्रथम जन्म और धर्म का स्मरण करके देवताओं के साथ शत्रुता न रक्खो, यथायोग्य राज्य करो और देवताओं को यथाशक्ति सुख दो। जो इसके विरुद्ध करोगे तो दुःख प्राप्त होगा। जो राज्य तुमने देवताओं से छीन लिया

है, उसे फेर दो। तुम और सब देवता कश्यप मुनि से उत्पन्न हो। तुम में किसी प्रकार का अन्तर नहीं। तुम दोनों परस्पर मिलो और आनन्द करो। इससे हम प्रसन्न हैं। जो इसके विपरीत करोगे तो तुमको दुःख प्राप्त होगा। संसार में सबसे बड़ा पाप अपने भाई-बान्धवों से शत्रुता रखना है। हम किसी की ओर नहीं। पर सेवा से प्रसन्न हैं और अपने सेवक की सदा रक्षा करते हैं, उसे सुखी रखते हैं। इसी प्रकार शिवजी ने बहुत से उपदेश वेद और धर्मशास्त्र की रीति के दिये। दूत ने कहा—आपने जो कहा कि परस्पर की शत्रुता बुरी होती है, वह सत्य है। पर विष्णुजी ने जो राजा बलि से छल करके उनका नगर और राज्य छीन लिया और उनको पाताल भेज दिया, यह क्या किया? क्या उनको उचित था कि बलि के पिता को मार डाला। फिर देवताओं और दैत्यों ने सागर को मथा। देवताओं को क्यों अमृत मिला? महिषासुर को क्यों देवीजी ने विना किसी दोष के मार डाला? फिर तारक और त्रिपुर मारे गये। इसी प्रकार उन्होंने अन्धक, गज और जलन्धर आदि को मारा। तब उनके यह बुद्धि नहीं थी कि अपने भाइयों के साथ शत्रुता करना पाप है? क्या इसको ज्ञाति-द्रोह नहीं कहोगे? देवताओं और दैत्यों की यह शत्रुता बहुत प्राचीन है। समय पर सुख दुःख सब होते हैं; क्योंकि सब काम समय पर होते हैं। पाना और न पाना, जीत और हार, जीना और मरना, सब समय पर होता है। यह तुमको उचित नहीं कि देवताओं अथवा दैत्यों के युद्ध में तुम ईश्वर होकर पक्षपात करते हो; क्योंकि शत्रुता और मित्रता समान लोगों से होती है। परन्तु तुम जैसे ईश्वर और स्वामी को यह अयोग्य है कि हमारे संग युद्ध करो। तुमको क्या लज्जा भी नहीं आती? ऐसी दूत की बातें सुनकर शिवजी हँसे। शिवजी ने उसकी प्रशंसा की और कहा

कि प्रथम ही से हम अपने सेवक के अधीन हैं। वेद की आज्ञानुसार चलते हैं। उसी की आज्ञा से हमने दैत्यों को मारा है। हम किसी की रक्षा नहीं करते। अब हमारे आने का कारण यह है कि इन्द्र आदि देवता हमारे शरणागत हुए। जितने दैत्य हो गये हैं, उन सबसे तुम बड़े हो और कृष्णरूप विष्णुजी के भक्त हो। इससे तुम भी उनके समान और उत्तमोत्तम हो। इस हेतु से हम लज्जित नहीं। अधिक कहना व्यर्थ है। तुम देवताओं को राज्य दे दो और पाताल में जाकर राज्य करो। देवताओं से शत्रुता रखना बुरा है। यद्यपि कैसा ही धर्मवान् हो तो भी देवताओं से शत्रुता करके कोई नहीं बचा। जो इस वचन से अप्रसन्न हो तो युद्धस्थान में चलो और लड़ाई करो। हे दूत! तुम ये सब बातें शङ्खचूड़ से कह देना। जो उसकी इच्छा हो, वह करे। हम अवश्य देवताओं का मनोरथ पूर्ण करेंगे। यह कहकर शिवजी चुप हो रहे। दूत भी उठकर चला गया और शङ्खचूड़ से सब वृत्तान्त कहा।

चौंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! शङ्खचूड़ ने लड़ना अच्छा समझकर सुलह न की और सेना को तैयार किया। जो बाजे लड़ाई में बजवाये जाते हैं, वह बजवा दिये और युद्धस्थान में खड़ा हुआ। शिवजी भी आये और देवता और दैत्य लड़ने लगे। इन्द्रजी पुरुष-प्रिय के साथ, शुक्र बृहस्पति के साथ, मृत्यु पुष्कर के साथ, इसी प्रकार दोनों ओर के बड़े-बड़े नामी सेनापति परस्पर युद्ध करने लगे। नाना प्रकार के शस्त्रादिक चलाये गये, जिससे बहुत से देवता और दैत्य, हाथी और घोड़े मारे गये. इसी प्रकार बहुत दिनों तक युद्ध होता रहा; परन्तु न किसी की जीत हुई न हार। अन्त में दैत्यों ने चढ़ाई की और देवता भागकर तितर-बितर हो

गये। उस समय में वीरभद्र और नन्दी आदि शिवजी के गण सम्मुख हुए। वीरभद्र ने अपने त्रिशूल से सब दैत्यों को कुरूप बना दिया। इस हेतु से दैत्यों को युद्ध त्यागना पड़ा। यह दुर्गति देखकर शङ्खचूड़ ने भागती हुई सेना को ढाढस दिया और आप लड़ने चला। उसने इतने बाण बरसाये कि सब शिवगण भाग गये। केवल नन्दी और वीरभद्र, जो शिवजी के अंश से उत्पन्न हुए हैं, युद्धस्थान में खड़े रहे। शङ्खचूड़ ने नन्दी के बाण मारा जिससे वह धरती पर गिर पड़े और उठकर फिर लड़ने लगे। वीरभद्र ने अपना त्रिशूल शङ्खचूड़ के मारा, पर शङ्खचूड़ ने उसे काट डाला और वीरभद्र को अपने शस्त्र से मारा, जिससे वह पृथ्वी पर गिर पड़े। वीरभद्र तुरन्त उठे और क्षेत्रपाल दैत्य से लड़ने लगे। भैरव ने शङ्खचूड़ को अपने त्रिशूल से मारा, जिससे वह अचेत हो गिर पड़ा। उस समय बड़ा युद्ध हुआ। भैरव को आकाशवाणी हुई कि शङ्खचूड़ विना शिवजी के और किसी से न मरेगा। तुम शिवजी के निकट जाओ। वे मार डालेंगे। शिवगण उनके पास गये और सब वृत्तान्त कह सुनाया।

पैंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! शिवजी ने देवताओं की हार सुनकर और अपने गणों की दुर्गति देखकर वीरभद्र को आज्ञा दी कि तुम जाकर लड़ो। यह श्रवणकर वीरभद्र सेनासहित गये। युद्धस्थान में जाकर शिवजी के समान शङ्ख बजाया और क्रोध किया, जिससे दैत्य काँप गये और एक अक्षौहिणी दैत्यों की सेना का नाश कर दिया। महाकाली ने सबका रुधिर पिया। दैत्यों को तोड़-तोड़कर निगलने और बार बार युद्धस्थल में लड़ने लगीं। एक ही हाथ में सात लाख करोड़ घोड़े और एक लाख करोड़ हाथी रखकर खा गईं। सहस्रों कबन्ध इधर-उधर

फिरने लगे। वीरभद्र ने क्रोधित होकर एक करोड़ दैत्यों को मार डाला। अन्त में विप्रचित्ति, वृषपर्वा, जम्भासुर, वीरविकम्पन ये चारों वीरभद्र के सम्मुख हुए और अलग-अलग लड़े। महामारी ने जाकर दैत्यों को नष्ट किया। फिर भैरव ने दैत्यों को खाया। उस समय सब दैत्य हारे और वीरभद्र जीते। देवता बहुत प्रसन्न हुए। अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। आकाश से पुष्पों की वर्षा हुई। उस समय शङ्खचूड़ अपने कवच को कण्ठ में पहने विमान पर चढ़कर बहुत सी सेना लेकर मारूबाजा बजवाता युद्धस्थान में आया और अपनी भागी हुई सेना को इकट्ठा किया। फिर अपने धनुष को तान-तान कर बाण मारने लगा। उस समय अँधेरा हो गया। बहुत से देवता हार मानकर भाग गये। वीरभद्र ही खड़े रहे। शङ्खचूड़ ने अपनी माया से पर्वत, सर्प, अग्नि आदि को उपजाया और इन्हीं की वर्षा की जिसमें वीरभद्र छिप गये, मानों बदली में सूर्य छिप गये। उन्होंने अति आश्चर्य में होकर शिवजी का ध्यान किया और महाशक्ति को छोड़ा। दैत्यों की माया का नाश हुआ। तब शङ्खचूड़ ने क्रोध करके वीरभद्र के रथ और धनुष को अति पवित्र बाण से काट डाला। घोड़े मरकर पृथ्वी पर गिर पड़े। दूसरा बाण वीरभद्र के मारा, जिससे वह पृथ्वी पर गिर पड़े। जब वीरभद्र सचेत होकर उठे तो दूसरे रथ पर चढ़कर शङ्खचूड़ के रथ, सन्नाह, घोड़े, शक्ति आदि को काट डाला और धरती पर गिरा दिया। उनके सारथी को मार डाला और अपनी शक्ति से शङ्खचूड़ को अचेत कर दिया। शङ्खचूड़ थोड़े समय के पीछे उठा और गर्जने लगा। फिर वीरभद्र ने अपनी शक्ति से उसे गिरा दिया। इसी प्रकार कई बार गिराया, परन्तु शङ्खचूड़ ने उठकर अन्त को अपनी साँग से वीरभद्र को पृथ्वी पर गिरा दिया और मार डाला। यह

शिवजी का वरदान था। महाकाली ने वीरभद्र को उठाकर शिवजी के सम्मुख रख दिया और सब वृत्तान्त कह सुनाया। शिवजी ने वीरभद्र को छुआ और वह जी उठे। वीरभद्र फिर उठकर चिल्लाने लगे और युद्धस्थान में गये। उन्होंने अपना त्रिशूल चलाया, जिससे शङ्खचूड़ पृथ्वी पर गिर पड़ा। जब चेत हुआ, तब जितने बाण वीरभद्र को मारे, वे सब व्यर्थ हुए। अन्त को अपनी बर्छी वीरभद्र के हृदय पर मारी, जिससे वह पृथ्वी पर गिर पड़े। पर फिर वीरभद्र उठे। शङ्खचूड़ ने अपने त्रिशूल से चाहा कि फिर उसे मारें, परन्तु महाकाली ने उसकी रक्षा की और सब गण भी आ गये। देवता अति प्रसन्न हुए। दैत्यों ने भी अपनी भागी और थकी सेना को इकठा किया। दोनों सेनाएँ युद्धस्थान में खड़ी रहीं। दोनों ओर बाजे बजे और वीर परस्पर लड़ने लगे।

छत्तीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! फिर बड़ा युद्ध हुआ और दिन रात के सदृश हो गया। कालीजी ने भयंकर शब्द किया, जिससे सब दैत्य अचेत हो गये और पृथ्वी पर गिर पड़े। कालीजी ने महामद को पिया और नाचने लगीं। कालीजी के सिवा और बहुत सी देवियों ने कालीरूप धारण किया और मद को पीकर नाचने लगीं। उस समय दैत्यों को बड़ा दुःख और शोक उत्पन्न हुआ। पर देवता प्रसन्न थे। शङ्खचूड़ सब दैत्यों को इकट्ठा कर युद्धस्थान में खड़ा होकर वीरभद्र से लड़ने लगा। दोनों वीरों के शरीर इस प्रकार घायल हुए, मानों फूले हुए ढाक के वृक्ष हों। शङ्खचूड़ ने अग्निबाण चलाया, जिससे चारों ओर आग फैल गई। वीरभद्र ने वरुणास्त्र छोड़ा, जिससे सब अग्नि बुझ गई। इसी प्रकार शङ्खचूड़ ने नाना प्रकार के बाण छोड़े, पर वीरभद्र ने सबको नष्ट कर दिया। अन्त में शङ्खचूड़ ने नारायणबाण छोड़ा। उसको भी

वीरभद्र ने पाशुपत अस्त्र से दूर कर दिया। फिर शङ्खचूड़ ने चक्र छोड़ा। महाकाली ने तुरन्त ही उसे निगल लिया और शङ्खचूड़ को किसी प्रकार जीतने न दिया। कालीजी ने अपने धनुष को, जिसका शब्द अन्तकाल से कम न था, खींचकर अग्निबाण छोड़ा। पर शङ्खचूड़ ने वैष्णवास्त्र से दूर कर दिया। फिर कालीजी ने नारायणास्त्र छोड़ा, पर शङ्खचूड़ ने रथ से उतर दण्डवत् की, जिससे वह निष्फल होकर दूर गया। इसी प्रकार कालीजी ने ब्रह्म-अस्त्र आदि सब छोड़े; परन्तु शङ्खचूड़ ने सबका नाश किया। शङ्खचूड़ ने भी दिव्य अस्त्र व शक्ति आदि कालीजी को मारे; पर सब निष्फल हुए। बहुत दिनों तक दोनों लड़ते रहे। अन्त को कालीजी ने पाशुपत अस्त्र के छोड़ने की इच्छा की; पर आकाश-वाणी हुई कि यह किस निमित्त छोड़ती हो? यह तुमसे न मरेगा; क्योंकि कृष्णजी का भक्त है। महाकाली ने उसको तो न छोड़ा, पर अधिक क्रोधित होकर सात लाख दानवों को खा लिया और अपने शरीर को भयङ्कर बनाया। शङ्खचूड़ ने रुद्रशिली को मुख में रख लिया, जिससे कालीजी हट गईं। शङ्खचूड़ ने अपने खड्ग को छोड़ा, कालीजी ने उसे भी खा लिया और मुख खोलकर शङ्ख-चूड़ को ग्रसने चलीं। परन्तु वह माया से गुप्त हो गया। काली-जी ने उसके रथ और सारथि को तोड़-फोड़ डाला। शङ्खचूड़ फिर प्रकट हुआ और अपना चक्र चलाया। पर कालीजी ने उसे लील लिया और एक ऐसा घूसा मारा कि वह अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। कालीजी ने घुमाकर आकाश की ओर उसे फेंक दिया और एक करोड़ दैत्यों को मारकर रुधिर पी लिया। फिर अपने केशों को बिखराकर युद्धस्थान में नाचीं। शङ्खचूड़ ने उठ-कर कालीजी को प्रणाम किया और विमान पर चढ़कर निर्भय लड़ने लगा। ऐसा धैर्य शङ्खचूड़ में देखकर देवीजी ने महाभयङ्कर

शरीर बनाया और रुद्र-महाधनुष को हाथ में लिया और चाहा कि उसी समय प्रलय करें। पर आकाशवाणी हुई कि इसकी मृत्यु तुम्हारे हाथ से नहीं। तुम वृथा युद्ध करती हो। तुम शिवजी के निकट जाओ। वह तुरन्त ही इसे मारेंगे। यह वाणी श्रवण कर महाकाली शिवजी के निकट गईं।

सैंतीसवाँ अध्याय

इतना सुन ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! महाकालीजी शिवजी के निकट गईं और सेना को ले जाकर सब वृत्तान्त कहा, जिसको सुनकर शिवजी चिन्तित हुए। फिर हँसकर अपनी माया को विचारा और शङ्खचूड़ के पहले जन्म का वृत्तान्त वर्णन किया। फिर श्रीसदाशिव अपने गणों को साथ लेकर बैल पर चढ़कर चले। क्षेत्रपाल, वीरभद्र, भैरव और नन्दीश्वर की ओर एक बार देखा, जिससे उनको महाशक्ति प्राप्त हुई। सब अस्त्र-शस्त्र लिये भयङ्कर रूप धारण किये युद्धस्थान में आये। दैत्यों ने उनको रुद्र कालान्तक के रूप में देखा और सब डर गये। शङ्खचूड़ ने शिवजी को देख रथ से उतर प्रणाम किया और शिवजी की आज्ञा के अनुसार धनुष और बाण लेकर शिवजी से लड़ने लगा। शिवजी और शङ्खचूड़ सौ वर्ष तक लड़ते रहे और देवता और दैत्य चुपचाप खड़े देखते रहे। उस समय में अपने कुल सहित और वैकुण्ठवासी आकाश पर युद्ध-कौतुक देखते रहे। जो बाण शङ्खचूड़ ने छोड़े, वे शिवजी ने काट डाले और जो शस्त्र शिवजी ने मारे, वे शङ्खचूड़ ने तुरन्त ही काट डाले। अन्त को शङ्खचूड़ ने क्रोध करके शिवजी को चक्र मारा। शिवजी ने अपने घूंसे से उसको चूर-चूर करके धरती पर फेक दिया। शिवजी ने शङ्खचूड़ को घायल करके पृथ्वी पर गिरा दिया। जब वह सचेत हुआ, तब फिर रथ पर चढ़कर शिवजी के सम्मुख हुआ। शिवजी ने

शङ्खचूड़ को आते देखकर डमरू बजाया और शृङ्गीनाद करके अपना धनुष टङ्कारा, जिससे यह जाना जाता था कि अन्तकाल आ गया। चारों दिशाओं में शिवगण गर्जने लगे। जब शिवजी ने शङ्खचूड़ से "तिष्ठ-तिष्ठ" शब्द कहा तो देवता बहुत प्रसन्न हुए और जय-जय करने लगे। उस समय शङ्खचूड़ ने अपनी शक्ति चलाई। क्षेत्रपाल ने तुरन्त ही उसे लील लिया। शिवजी और शङ्ख-चूड़ परस्पर इतना लड़े कि सब डर गये। शिवजी ने पाशुपत अस्त्र चलाया, जिससे वह पृथ्वी पर गिर पड़ा और फिर उठकर लड़ने लगा। उसने रुद्रबाण से शिवजी को और अन्य बाणों से भैरव को मारा। फिर बहुत भुजाएँ अपने शरीर में माया से उत्पन्न कीं और हरएक ने इतने बाण चलाये कि सब देवता दुखी हुए। अन्त को शिवजी ने सब भुजाएँ काट डालीं। तब शङ्खचूड़ अपनी गदा लेकर शिवजी की ओर झपटा। शिवजी ने उसे काट डाला और अपने त्रिशूल से शङ्खचूड़ के हृदय को फाड़ डाला। उसके उदर से एक मनुष्य तिष्ठ-तिष्ठ कहता निकला। शिवजी ने अपने शस्त्र से उसका भी शिर काट डाला। वह शिर काँपने लगा और उसने भयंकररूप धरकर देवताओं को बहुत दुःख दिया। तब सदाशिवजी की आज्ञा के अनुसार कालीजी दैत्यों की सेना में घुस गईं और दैत्यों को खाने लगीं। इसी प्रकार बहुत पक्षी आदि को खाया। महामारी ने भी सेना का ग्रास किया। क्षेत्रपाल, भैरव, नन्दी और वीरभद्र ने बहुत दैत्यों को खाया और बहुतों को नाश किया। सारे सेनापति दैत्यों को नष्ट करने लगे। योगिनीगण दैत्यों को खाने लगीं। ज्वर ने भी शरीर धारणकर दैत्यों को मार डाला। ऐसी दुर्गति देखकर सब दैत्य भाग गये। सन्निपात ने भी सबको दुखी किया। नन्दी ने भी दैत्यों को मार डाला। उस समय सब देवता ऐसे प्रसन्न

हुए कि वर्णन नहीं हो सकता। शिवजी भी आनन्द को प्राप्त हुए।

अड़तीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! शङ्खचूड़ ने इस प्रकार अपनी सेना की दुर्गति देखकर क्रोध किया और शिवगणों को डाँट-डपटकर शिवजी से कहा कि तुम मेरे सम्मुख होकर लड़ो। दैत्यों को मारने से क्या फल, वीर निर्बल मनुष्यों से नहीं लड़ते। मैं वह हूँ, जो तुम्हारे गर्व को नष्ट करूँगा। यह कहकर शिवजी पर बड़े तीक्ष्ण बाण मारे। शिवजी ने सब काट डाले। शङ्खचूड़ ने एक माया को उपजाया, जिसको शिवजी ने महादिव्य बाणों से दूर कर दिया। शङ्खचूड़ पृथ्वी में गुप्त हो गया। उस समय मैंने और विष्णु ने 'जय-जय' की। शिवजी ने क्रोध करके चाहा कि शङ्खचूड़ को मार डालें। अपना त्रिशूल उठाकर चाहा कि मारें, पर आकाशवाणी हुई कि हे शिवजी! जब तक यह कृष्ण-कवच पहने रहेगा और तुलसी इसकी स्त्री पतिव्रता रहेगी, तब तक यह तुलसी समेत न मरेगा, क्योंकि ब्रह्माजी का यही वरदान है। यह सुनकर शिवजी ने त्रिशूल न छोड़ा। विष्णु शिवजी की अभिलाषा जानकर आये और कहा कि जो आज्ञा हो, सो करूँ। शिवजी ने कहा कि तुम किसी प्रकार से कृष्णकवच उसके कण्ठ से उतार लो और उसकी स्त्री का पातिव्रतधर्म नष्ट कर डालो। यह सुनकर विष्णुजी ब्राह्मण हो गये और शङ्खचूड़ के पास गये। ब्राह्मण को शङ्खचूड़ ने प्रणाम किया। ब्राह्मण ने आशीर्वाद देकर कहा कि पानी पिलाओ। शङ्खचूड़ ने पानी पिलवाया। फिर ब्राह्मण ने कहा कि हमको कृष्णकवच दे दो। शङ्खचूड़ ने निश्शङ्क उसको दे दिया, यद्यपि वह अतिप्रिय था। हे नारद! उदारता इसी को कहते हैं, जो शत्रु भी ब्राह्मण बनकर कोई वस्तु माँगे

तो निश्शङ्क दे दे। यद्यपि प्राण जायँ, पर ब्राह्मण विमुख न जाय। जिसके निकट विष्णुजी भिखारी ब्राह्मण बनकर जावें, उसके धन्यभाग्य हैं। जिसके यहाँ से भिखारी विमुख होकर न जायँ, उसके भी धन्य भाग्य हैं। उसके समान संसार में अन्य नहीं। इसी उदारता पर राजा बलि, दधीचि, जरासंध, सांख्य आदि अति कीर्तियुक्त हो गये। फिर विष्णुजी शङ्खचूड़ का वेष धारकर उसके घर गये और बड़े चरित्रों से उसकी स्त्री का, जो पतिव्रता थी, धर्म नष्ट किया और लौटकर शिवजी से सब वृत्तान्त कहा। शिवजी ने सुनकर अपने विजय के त्रिशूल को उठा लिया, जिसमें पृथ्वी और आकाश दिखाई देते थे। वह मध्याह्न के सूर्य के समान था और उसमें सब शस्त्र थे। शिवजी ने त्रिशूल को छोड़ा, जिससे शङ्खचूड़ जलकर भस्म हो गया। त्रिशूल फिर शिवजी के हाथ में आ गया। बहुतेरे दैत्य जल गये, इस हेतु सब दैत्य भाग गये। जो कुछ बचे, वे भागकर पाताल में छिप रहे। देवताओं ने बड़ा आनन्द किया और सभा रची, जिसमें देवताओं की स्त्रियों ने नाचा। शङ्खचूड़ गोलोक में गये और शाप से छूटकर वैसे ही हो गये। उनकी हड्डियों के शङ्ख बने। वह विष्णुजी को अति प्रिय हैं। देवता और मुनि जो विष्णुजी के परिवार में हैं, उन सबको भी शंख प्यारे लगते हैं। पर शिवजी को प्रिय नहीं। उस समय में, इन्द्र और सब देवता शिवजी के पास गये। बहुत स्तुति की और बार-बार प्रणाम और दण्डवत् किया। फिर सब देवता शिवजी की आज्ञा से अपने-अपने घर सिधारे। उस समय संसार भर में आनन्द छा गया। सबके दुःख दूर हुए। शिवजी भी अपने गणों को लेकर कैलास पर्वत पर गये। शिवजी परब्रह्म और दीनजनों के रक्षक हैं। जो इस चरित्र को सुनेगा अथवा पढ़ेगा, उसको किञ्चित् भी दुःख

प्राप्त न होगा। उसको शिवजी की भक्ति अधिक होगी। वह भुक्ति मुक्ति दोनों को प्राप्त करेगा। चारों वर्णों के दुःख भस्म हो जायँगे। यह शिव-चरित्र दोनों लोकों का फलदायक है।

उन्तालीसवाँ अध्याय

नारदजी बोले कि हे ब्रह्माजी! विष्णुजी ने किस प्रकार तुलसी का पातिव्रतधर्म नष्ट कर डाला? ब्रह्माजी बोले कि यह चरित्र शिवजी और विष्णुजी की भक्ति को अधिक करता है। मन लगाकर सुनो। विष्णुजी शङ्खचूड़ का वेष धारणकर तुलसी के घर गये और तुलसी के द्वार पर जाकर जीतने के बाजे बजवा दिये। यह देखकर तुलसी अति प्रसन्न हुई और बहुत धन आदि भिक्षुकों और ब्राह्मणों को दिया। फिर अपने रूप को सँवारकर, अनेक प्रकार से शृङ्गारकर बैठी। विष्णुजी उसके घर गये। तुलसी ने चरण धोये और स्तुति करके चाँदी की चौकी पर बिठलाकर ताम्बूल दिये और कहा कि धन्यभाग्य हैं जो आप जीतकर आये। शिवजी की बहुत स्तुति करके पूछा कि किस प्रकार तुमने उनको जीता? मुझको प्रतीति नहीं। विष्णुजी ने कहा कि हमने युद्धस्थान में जाकर बहुत लड़ाई की। देवता भाग गये। फिर शिवजी और वीरभद्र लड़ते रहे। देवता और दैत्य मारे गये। उस समय ब्रह्माजी ने सुलह करवा दी। हमने ब्रह्माजी की आज्ञा के अनुसार देवताओं को कुछ दे दिया। शिवजी अपने घर गये और देवता आदि भी अपने अपने लोकों को सिधारे। यह कहकर विष्णुजी अपनी सेज को सजा हुआ पाकर तुलसी के साथ भोगविलास करने लगे। पर तुलसी को सन्देह उपजा कि यह कोई दूसरा मनुष्य है। तुलसी ने कहा कि तुम शङ्खचूड़ नहीं। तुमने हमसे छल किया है और हमारे पातिव्रत धर्म का नाश किया है। अब सत्य-सत्य वर्णन करो कि तुम कौन हो?

विष्णुजी ने डरकर कहा कि हम विष्णु हैं। देवताओं के निमित्त यह कार्य किया। विष्णुजी ने अपने दर्शन दिये। जब तुलसी ने विष्णुजी को देखा तो क्रोध करके कहा कि तुमने हमारे पातिव्रत धर्म को नष्ट किया। तुमने यह छल करके हमारे स्वामी को मरवा डाला, इस हेतु से हमारा यह शाप है कि तुम पत्थर हो जाओ। जो तुमको दयासिन्धु कहते हैं, वे मूर्ख हैं। हमारा स्वामी जो तुम्हारा भक्त था, उसको तुमने देवताओं के मनोरथ सिद्ध करने के लिए मरवा डाला। यह कहकर तुलसी रोने लगी। यह देखकर विष्णुजी डरे और शिवजी का ध्यान किया। शिवजी ने तुलसी को दर्शन दिया और कहा कि तुम रुदन मत करो। अपने-अपने कर्म का फल सब भोगते हैं। दुःख और सुख कोई वस्तु नहीं। वह समुद्र के समान है, जिसमें दोनों प्रकार का जल है। तृष्णा उसकी लहर है। धर्म विना कोई पार नहीं हो सकता। तुम दोनों से हम कहते हैं कि जो तुमने प्रथम योग और तप किया था वह निष्फल न हो। तुम दोनों हमारे मांस हो। तुम्हारा पति कृष्णजी का मित्र सुदामा था। उसे राधिकाजी ने शाप दिया, इससे वह यहाँ उत्पन्न हुआ। अब वह मारा गया और इस शरीर को त्यागकर वह फिर वैसा ही हो गया। तुम भी इस शरीर को छोड़ो और विष्णुजी के साथ विहार करो। तुम्हारा पातिव्रत धर्म नष्ट नहीं हुआ। देवताओं की भलाई के लिए जो हमने तुम्हारे पति का वध किया था, उस पर क्रोध न करना। तुम नदी होकर गण्डकी नदी के नाम से प्रसिद्ध होगी और विष्णुजी के अंश से जो समुद्र है, उसकी स्त्री होकर विहार किया करोगी। इसके सिवा तुम दोनों एक और रीति से इकट्ठे रहोगे। अर्थात् तुम पृथ्वी में इसी नाम अर्थात् तुलसी के नाम से प्रसिद्ध होकर उपजोगी और विष्णु के शरीर में चढ़ा करोगी

कि विष्णु अपने कर्म का फल पावें और विष्णु तुम्हारे शाप से पत्थर बनकर गण्डकी नदी के तीर स्थित रहें। उस जगह बड़े तीक्ष्ण दंष्ट्रावाले भयदायक जीव उपजकर पत्थर को काट-काटकर बहुत टेढ़े-सीधे टुकड़े बनाया करेंगे। वे टुकड़े शालग्राम के नाम से प्रसिद्ध होंगे, और टूटे-फूटे टुकड़े केवल पत्थर कहलावेंगे। चक्र के भेद से वेद ने शालग्राम-शिला का बहुत विस्तार से वर्णन किया है। उन शालग्राम के साथ तुम्हारी भेंट सदा हुआ करेगी, जो पुण्य बढ़ानेवाली और पापों का नाश करनेवाली समझी जायगी। तुम शङ्खचूड़ की स्त्री हो और बहुत युगों तक उससे विहार किया, इससे तुम्हारा संयोग शङ्ख के साथ हुआ करेगा। इस बात में भेद करनेवाला दुःख पावेगा। ये बातें तुलसी से कहकर शिव अन्तर्धान हो गये और तुलसी प्रसन्न होकर अपना शरीर छोड़ वैकुण्ठ चली गई। उत्तम स्वरूप धारणकर विष्णुजी के साथ विमान पर चढ़ी और उसको हर प्रकार का आनन्द प्राप्त हुआ। उसके प्रथम शरीर से गण्डकी नदी उपजकर ऐसी तेजोवती हुई कि जो मनुष्य उसके जल को देखे या स्पर्श करे उसके सब पाप मिट जावें। उसके तट पर विष्णुजी पर्वत के आकार से स्थित हुए, जिनके दूर ही के दर्शन से पाप क्षीण हो जाते हैं। बड़े-बड़े कठोर दाँतवाले कीड़े उपजकर शिलाओं में बड़े-बड़े छिद्र किया करते हैं। उनसे जो टुकड़े होकर गण्डकी नदी में गिरते हैं, वही शालग्राम की मूर्तियाँ हैं, जो अति पवित्र और दुःखदूर करनेवाली हैं। उनमें जो चक्रसहित हो, वे पूजने के योग्य हैं। उनके लक्ष्मीनारायण आदि बहुत प्रकार हैं। परन्तु हमने विस्तार के भय से नहीं कहा। जो नदी से बाहर मिलती हैं, वे पिङ्गलादि नाम से प्रसिद्ध हैं और गृहस्थ के पूजने योग्य नहीं हैं। चारवर्ण के बाहर जो मनुष्य हैं, उनके पूजने योग्य हैं।

वे मूर्तियाँ दो भाँति की हैं। एक प्रकार आनन्द और दूसरी प्रकार दुःख देती हैं। ये शालग्राम-शिला तीन वर्ण के विशेषकर शूद्र वर्ण के पूजने योग्य नहीं हैं। शालग्राम-शिला की बहुत बड़ी बड़ाई है जैसे कि नर्मदा के पत्थरों की महिमा है। शालग्राम और नर्मदा की मूर्तियाँ स्वयं विष्णु और शिव स्वरूप हैं। शालग्राम-शिला को तुलसीपत्र अति प्रिय है। कदाचित् तुलसी पत्र से अलग शालग्राम की मूर्ति रक्खी जाय तो बहुत ही दुःख प्राप्त होगा। कष्ट और दुःख के अतिरिक्त स्त्री का भी वियोग होगा। इसी प्रकार शङ्ख का वियोग भी शालग्राम को बहुत दुःखदायी है। जब तुलसी, शङ्ख, शालग्राम इकट्ठा करे और एक ही स्थान पर रक्खे तब दोनों लोकों का सुख प्राप्त होता है। यह विष्णु का इतिहास मुक्ति देनेवाला सुनने-सुनाने से आनन्द देता है। शङ्ख-चूड़-वध और शिव का चरित्र सब मनोरथ पूरे करनेवाला है। दुःख को दूर करता है और अति पवित्र है। इस इतिहास में विष्णु का भी यश कहा गया है, इससे और भी अधिक आनन्द-दायक हुआ। शिव और शिव की लीला अति आश्चर्यदायक है। वे भक्तों के अधीन होकर कैसी-कैसी अनोखी लीलाएँ करते हैं। हे नारद! अब क्या सुनना चाहते हो?

चालीसवाँ अध्याय

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! जिस तरह शिव ने अन्धकासुर का वध किया, वह कथा सुनने की मुझे अभिलाषा है। कृपा करके वर्णन कीजिये। ब्रह्मा ने कहा कि जब विष्णु ने नृसिंह और वाराह अवतार लेकर दिति के पुत्रों को मारा, तब दिति ने बड़ा विलाप किया और कश्यप की शरण में जाकर उनकी सेवा करने लगी। हर प्रकार अपने पति कश्यप के प्रसन्न होने के उपाय में सब शृंगार आदि को छोड़ ब्रह्मचर्य धारण कर रहने लगी। वह

केवल कश्यप की इच्छा के अनुकूल मीठे वचन कहती, बहुत न बोलती। कश्यप ने प्रसन्न होकर कहा कि हम तुम्हारी सेवा से अति प्रसन्न हुए। वरदान माँगो। फिर पातिव्रत धर्म का वर्णन किया और कहा कि कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसको हम शिवजी की कृपा से नहीं दे सकते। दिति ने कहा कि देवताओं ने मेरे साथ शत्रुता करके विष्णु के द्वारा मेरे दोनों पुत्र मरवा डाले और बहुत दैत्यों को वध कराया। इस बात का मुझे बड़ा दुःख है। इसी से मैं आपकी शरण में आई हूँ। मुझे ऐसा पुत्र कृपा करके दीजिये, जो देवताओं के हाथ से न मर सके। कश्यप बोले कि अच्छा, हमने दिया। पर मृत्युञ्जय जो रुद्र हैं, जिनके समान कोई देवता और दैत्य नहीं, उनके सामने विष्णु और ब्रह्मा की कुछ नहीं चलती। उनके समान दूसरा कोई नहीं। उनके समान वही हैं। जब तुम्हारे लड़का उपजे, तब उसको भली भाँति समझा देना कि वह किसी प्रकार मृत्युञ्जय को क्रोधित न होने दे, क्योंकि शिव के कुपित होने पर फिर और कोई बचानेवाला नहीं है, यह बात वेद कहते हैं। इतना कह कश्यप चुप हो गये और दिति कश्यप के तेज से गर्भवती हुई। दिति का इतना तेज बढ़ा कि कोई मनुष्य बहुत तेज से उसकी ओर नहीं देख सकता था। दसवें मास दिति के पुत्र उपजा, जिसका विचित्र स्वरूप था। अर्थात् उसके हज़ार शिर और दो हज़ार आँखें, पाँव और भुजाएँ थीं। बहुत ही सुन्दर तेजस्वी हृष्ट-पुष्ट ऐसा कि जो सब देवता और मुनि उसको उठावें तो भी न उठ सके। वह अन्धों के समान इधर-उधर झुका हुआ चलता था। इससे उसका नाम अन्धक रक्खा गया। जैसा उसका अन्धक नाम था उसी प्रकार उसने सब कार्य भी किये। वह मतवालों के समान चलता और अपने समान दूसरों को नहीं समझता था। इसी प्रकार अन्धकासुर ने

संसार में बहुत उपद्रव मचाये और सब रत्न देवताओं से लात मारकर छीन लिये। उसने संसार भर को अपना सेवक जानकर अप्सरा, गन्धर्व और देवताओं को अपने घर डाल लिया और परस्त्रियों को और धन द्रव्य कोष को छीन लिया। इसीप्रकार अन्धक दैत्यों को साथ लिये हुए तीनों लोकों में नाना प्रकार के उपद्रव करता रहा। वह देवता और मुनीश्वरों को महादुःख देता था। वह इन्द्र की सभा में जा इन्द्रासन पर बैठ केवल देवताओं को ही नहीं, बरन् इन्द्र को भी अपनी आज्ञा सुनाता था। देवताओं को तो अपना चाकर ही जानता था। इन्द्र को कुछ भी बड़ा न समझता था। वह अंकुशरहित हस्ती के समान था, जिसको दैत्य और देवता कोई रोक नहीं सकते थे। एक दिन सब दैत्यों के अधिपति ने आकर प्रणाम के उपरान्त कहा कि हे अन्धक! जितने देवता और मुनि हैं, वे सब तुम्हारे शत्रु हैं। उन्होंने बड़े छल से दैत्यों का वध किया है। इसी प्रकार इन्द्र दैत्यों का बड़ा शत्रु है। उसने पहले दैत्य को, जो सबसे प्रथम उपजा था, मारा और देवताओं ने मुनीश्वरों की सम्मति से हम दैत्यों का बड़ा भारी वन जलाया है। इससे आप पुरानी शत्रुता का विचार कर तीनों लोक का विजय कीजिये। अन्धक तीनों लोक विजय करने के निमित्त तैयार हो गया। उसने बड़ी सेना इकट्ठी की। यह देख देवता और मुनि सब दुखी हुए। इन्द्र ने आप कश्यप के पास जाकर अति विनय से कहा कि हे पिता! आपने देवताओं को बड़े आनन्द से रक्खा। अब अन्धक सबको निकाले देता है। आप देवता और मुनीश्वरों के ऐसे दुःख को किस निमित्त नहीं देखते? वह क्षण-क्षण पर हमको आज्ञा दिया करता है। यद्यपि वह हमसे छोटा है, पर हमको बड़ा नहीं समझता। हम भाई होने के कारण सब कुछ सहते हैं। अब वह दैत्यों को लेकर

त्रिलोक विजय करना चाहता है। अब बड़ा उपद्रव होगा। तीनों लोकों का कार्य बिगड़ जायगा।

इकतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! इन्द्र से यह सुनकर कश्यप अति आश्चर्य में होकर कहने लगे कि हे इन्द्र! जो दुःख तुमको अन्धक ने दिया है, उससे कुछ भय मत करो। हम उसको दूर कर देगें। यह कहकर इन्द्र को बिदाकर अन्धक को बुलाया और कहा कि जो हम कहते हैं, उसको छल छोड़ मानो। अदिति और दिति, दोनों हमारी स्त्रियों से दैत्य और देवता उपजे, वे बराबर हमारी सेवा करते हैं। हमको दोनों प्यारे हैं। हम तुम दोनों को बराबर सिखलाते हैं। तुम तीनों लोकों के विजय का विचार छोड़ दो; क्योंकि यह बड़ा दुःख दायक होगा। तुम और इन्द्र राज्य को आधा-आधा बाँटकर शत्रुता छोड़ दो और एक ही मत से दोनों काम किया करो। मुझे तङ्ग न करो। नहीं तो बड़ा दुःख पाओगे। यह कहकर अन्धक को बिदा किया। अन्धक कुछ दिन तो चुपका बैठा रहा, पर थोड़े ही दिनों में फिर दैत्यों की संगति से उपद्रव मचाने लगा, फिर वही बातें करने लगा, जिनसे देवता आदि को दुःख पहुँचे। वास्तव में संगति का बड़ा प्रभाव है। यह दशा अपने पुत्र की देखकर दिति अति प्रसन्न हुई और एक दिन उसको बुलाकर समझाने लगीं। जैसा कि पहले कश्यप ने कहा था, वही बात विचारकर कहा कि हे अन्धक! तेरे कर्म देखकर मुझे दुःख प्राप्त होता है। मैं तुझ से एक बात कहती हूँ, उसको कर, फिर जैसा तेरे मन में आवे, वैसा ही करना। बेटा, तुम शिवजी की सेवा करो। उनसे शत्रुता मत रक्खो, क्योंकि उनसे शत्रुता करके सुख नहीं मिलता। फिर शिवकी बड़ी स्तुति करके कहा कि शिव की उपासना किया करो।

अन्धक ने माता की यह आज्ञा मान सबों की संगति छोड़ी और इन्द्रियों को जीत कठिन तप करने लगा। पहले तीनों ऋतुओं में वन और जल में बैठकर परिश्रम करता रहा। फिर इन्द्रियों को जीतकर केवल वनफल खाने लगा। कुछ दिन तक ऊर्ध्वबाहु हो एक पाँव से सूर्य के सामने खड़ा रहा। फिर केवल अँगूठे के बल खड़ा रहकर शिव का ध्यान करता रहा। जब इस तप से भी शिव प्रसन्न न हुए तो साँस रोक तीनों प्रकार का प्राणायाम किया। तब अन्धक का तेज बहुत बढ़ा। उसकी ओर देखा नहीं जाता था। ऐसा कठिन तप उसे करते देख देवता भयभीत होकर मेरी शरण में आये। मैं सबको लेकर विष्णुजी के निकट गया। विष्णु सब हाल सुनकर हम सबको साथ लिये शिव के समीप पहुँचे और स्तुति की जो अति पवित्र है।

बयालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! ऐसी स्तुति कर सब चुप हो खड़े रहे। शिव बोले कि हे विष्णुजी और ब्रह्माजी और सब देवताओ! हम प्रसन्न हुए। जो कार्य हो, वह कहो। हम वरदान देने को उद्यत हैं। देवताओं ने कहा कि अन्धक के कठिन तप से हम अति भयभीत हैं। इसलिए आप जाकर अन्धक को वरदान दें, जिससे हमारा दुःख दूर हो। यद्यपि वह वरदान पाने से देवताओं का पूरा शत्रु हो जायगा, जिस तरह कोई मनुष्य अग्नि से जलकर पानी में कूद पड़ता है, पर पानी में कूदने से भी उसे चैन नहीं पड़ता; बरन् उसके फफोले पड़ जाते हैं। ऐसे मनुष्यों के लिए बुद्धिमान् वैद्य दरकार होता है। इससे हम सबकी इच्छा है कि आप कृपा करके अन्धक के कठिन तप की अग्नि को बुझा दें और फिर हमारे लिए भिषक् के समान होकर चिकित्सा करें। यह सुनकर शिव वरदान देने को चले। वाहन, गिरिजा

और गणों समेत पहुँचकर "वर माँग-वर माँग" कहा। अन्धक ने प्रणाम और स्तुति की और कहा कि मैं केवल यह वरदान माँगता हूँ कि अपने पिता के वरदान के अनुसार मैं सिवा आपके और किसी के हाथ से न मारा जाऊँ। ऐसा कीजिये कि मेरे पिता का वचन ठीक हो। शिवजी बोले कि अच्छा, हम यही वरदान देते हैं। पर जो तुम तीनों लोकों के राजा होकर अपना धर्म छोड़ कुकर्मी हो जाओगे तो हम निस्सन्देह बड़ा क्रोध करेंगे, जिससे तुम्हारा सब पाप नष्ट हो जायगा। ऐसी दशा में भी हम बड़ी दया करेंगे, जिसमें तुम्हारा श्रम निष्फल न जायगा। यह कह शिवजी अन्तर्धान हो गये और अन्धक ने प्रसन्नतापूर्वक घर आकर अपने माता-पिता से वर पाने का हाल कह सुनाया। जब देवताओं ने सुना कि शिवजी ने अन्धक को ऐसा वरदान दिया तो वे बहुत घबराये और इन्द्र से जाकर अन्धक के वरदान पाने का सब हाल कह सुनाया। अभी सब देवता इन्द्र के पास जाकर सब हाल कह ही रहे थे कि चारों ओर से दैत्यों ने अन्धक के पास आकर देवता और दैत्यों की पुरानी शत्रुता की गाथा कह सुनाई। पर अन्धक ने कुछ न कहा। केवल इन्द्रपुरी के देखने को रथ पर चढ़ चला और अपने घर के समान इन्द्रपुरी में पहुँच गया। अन्धक को आते देखकर और देवताओं समेत इन्द्र बहुत भयभीत हुए। इन्द्र ने तुरन्त उठकर अन्धक को बराबर एक ही गद्दी पर बिठा लिया। उस समय अन्धक के तेज से देवता प्रभात के तारों के समान तेजहीन हो गये। इन्द्र ने मन में दुखी होकर अन्धक से आने का कारण पूछा और कहा कि आपने बड़ी कृपा की, जो यहाँ आये। जो आज्ञा हो उसका हम पालन करें। हमारे घर में जो रत्न, धन, द्रव्य आदि हैं, उन्हें आप अपना समझकर ले लीजिये। अन्धक ने

अहंकार से उत्तर दिया कि तुम केवल मुझे अपनी सब सामग्री दिखा दो। मुझे किसी वस्तु के लेने की इच्छा नहीं है। तुम्हारे पास जो ऐरावत हाथी और उच्चैःश्रवा घोड़ा आदि उत्तम रत्न और उर्वशी अप्सरा आदि महास्वरूपवती स्त्रियाँ हैं, वे सब मुझको दिखला दो। उनके देखने से केवल मैं प्रसन्न हूँगा। निदान निरुपाय होकर इन्द्र ने अपनी सब सामग्री दिखा दी। अन्धक ने सब सामग्री देखी और आश्चर्यकर फिर इन्द्र की जगह पर बैठ गया। बड़ा उत्सव हुआ। अन्धक ने आज्ञा दी कि नृत्य की सभा हो। इन्द्र ने भयभीत हो सब चेलियों और गन्धर्व और अप्सरादि से कहा कि भलीभाँति नाच-गाकर अन्धक को प्रसन्न करो। ऐसा ही हुआ। सब तरह के बाजे ताल-स्वर समेत बजने लगे। सातो स्वर, इक्कीस मूर्च्छना और तीन ग्राम के साथ गान होने लगा। अन्धक ने ऐसे नृत्य-गान से मोहित होकर चाहा कि अप्सरागणों को अपने वश में करूँ; पर देवताओं ने न माना। जब अन्धक ने देवताओं की ऐसी अवज्ञा देखी तो अति क्रोधित होकर बड़ा सिंह नाद किया और देवता भी बदल गये। इन्द्र ने देवताओं से कहा—उठो, ईश्वर का स्मरण करो। भली प्रकार लड़ो। क्योंकि स्त्रियों के दे देने से मर जाना उत्तम है। देवता तुरन्त लड़ने पर तैयार हुए। अन्धक ने पाँच सौ धनुष अपने हज़ार हाथों से लेकर हरएक धनुष में बहुत-बहुत बाण लगाये और बड़ी लड़ाई हुई। इन्द्र ने अन्धक के सामने आकर वज्र से अन्धक को बहुत मारा। अन्धक ने क्रोधित होकर अपने त्रिशूल, गदा आदि नाना प्रकार के शस्त्र छोड़े। इन्द्र देवताओं समेत युद्धस्थल छोड़ भाग गये। दैत्यों ने जो कुछ देवताओं की सामग्री थी, सब लूट ली। इन्द्र को भी अपने वश में कर लिया। अन्धक अपनी माता दिति को भी वहीं बुलाकर राज्य करने लगा और

डौंड़ी पिटाई कि सब प्रजा आनन्दपूर्वक रहे। कुछ कोई सन्देह मत करे। इन्द्र का राज्य बीत गया। मेरे राज्य करने का समय है। सब वर्ण अपने धर्म में स्थिर रहकर मेरी आज्ञा का पालन करें। जो आज्ञा के विरुद्ध करेगा, वह मेरे हाथ से मारा जायगा। यह आज्ञा देकर आप इन्द्रपुरी का राज्य करने लगा।

तेंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! उसके राज्य में देवताओं के सिवा कोई मनुष्य या जीव दुखी न था, न किसी को कुछ दुःख मिलता था। निदान देवता अति दुखी हो मेरे पास पहुँचे और सब वृत्तान्त कह दिया। यह भी कहा कि देवता यज्ञभाग नहीं पाते। पवन, सूर्य, चन्द्रमा तक अधीन होकर उसकी आज्ञा पर चलते हैं। हम सब देवता छिपे रहते हैं। यह कह देवताओं ने मेरी बड़ी स्तुति की। मैंने कहा कि तुम कुछ खेद मत करो। तुम्हारे सब दुःख दूर हो जायँगे। बहुत से पुरातन इतिहास कहकर सबको साथ लिये हुए विष्णुजी के पास जा बहुत स्तुतिकर अन्धक के अन्याय का वर्णन किया। विष्णुजी बोले कि तुम सब अपने घरों को जाओ। हम शीघ्र ही जहाँ दैत्य होंगे पहुँचकर उनको नष्ट कर देंगे। यह सुनकर देवता अपने स्थानों को पलट गये। विष्णुजी तुरन्त गरुड़ पर सवार हो अपने शस्त्रों समेत अन्धक के पास पहुँचे। बड़े शब्द से 'तिष्ठ, तिष्ठ' कहकर बाण चलाये, जिनसे तीनों लोक जल उठे। पर अन्धक ने वारुणास्त्र चला उसे शान्त कर दिया। इसी प्रकार विष्णुजी बड़े-बड़े अस्त्र अन्धक पर चलाते रहे और अन्धक निवारण करता रहा। जब अन्धक ने विष्णु को अपने शस्त्रों से दुखी कर दिया, तो विष्णुजी ने कुपित होकर सुदर्शन चक्र को अपने हाथ में लेकर छोड़ा जिससे संसार जलने लगा। जान पड़ा कि प्रलय हो रहा है। अन्धक भी दैत्यों समेत भय-

भीत हो गया। शिव का ध्यानकर, उसने अपना त्रिशूल चलाकर सुदर्शन को व्यर्थ कर दिया। इस प्रकार लड़ते-लड़ते विष्णुजी ने शिव का ध्यान करके मन में बड़ी स्तुति की और कहा कि हे शिव ! मैं देवताओं के मनोरथ कैसे पूर्ण करूँ, आप आज्ञा दें। शिवजी बोले कि मुझे तुम्हारे समान कोई वस्तु, प्राण भी प्रिय नहीं हैं। जो तुम्हारा शत्रु है, वह मेरा भी शत्रु है। तुम्हारी सेवा बिना मुझको किसी ने नहीं जाना। हर मनुष्य जो मेरी भक्ति चाहता है, तुम्हारी भक्ति पहले कर ले। तुम आप ही कुरीति से देवताओं के पक्ष में उद्यत हुए हो। जब तक अन्धक ब्राह्मणों से शत्रुता न करेगा, तब तक मैं उसके ऊपर क्रोध न करूँगा, क्योंकि ब्राह्मण मुझको गौरी से भी अधिक प्रिय हैं। इससे तुम कोई ऐसी युक्ति करो, जिससे अन्धक मेरी आराधना और भक्ति छोड़कर ब्राह्मणों से शत्रुता करे। यह आज्ञा पाकर विष्णुजी ने अन्धक से कहा कि तुम्हारी वीरता और बल देखकर हम अति प्रसन्न हुए, वरदान माँगो। अन्धक ने गर्व से कहा कि वरदान लेना छोटे मनुष्यों का काम है। हमको किस बात की इच्छा है, जो हम तुमसे माँगें। तुमको जो इच्छा हो, वह माँगो। वह तुमको दे देंगे। विष्णुजी ने अति प्रसन्न होकर कहा कि हम तुमसे वर माँगते हैं कि तुम शिवजी की भक्ति छोड़कर आप शिव बनकर विहार किया करो। अन्धक ने विष्णुजी की माया में भूलकर कहा कि 'तथास्तु' ऐसा ही होगा। फिर विष्णुजी और अन्धक अपने-अपने घर को चले गये। अन्धक ने आप अपने को शिव ठहराकर तीनों लोकों को वश कर लिया और सबको दुःख देने लगा। ब्राह्मणों के मान को स्थिर न रक्खा और आप अपने को परब्रह्म प्रसिद्ध किया। जप, तप, यज्ञ, होम आदि सब बन्द कर दिये। दैत्यों को दिक्पति के स्थान पर नियत कर दिया। तब दैत्यों की सब

रीतियों का प्रचार हो गया, जिनसे धरती पर बड़े बड़े पाप होने लगे। देवताओं का मान कम हो गया। वर्णाश्रम धर्म कुछ शेष न रहा। स्त्रियाँ अनाचार करने लगीं, पातिव्रत धर्म नष्ट हो गया। इतना कह ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! मृत्यु या विनाश के समय इसी प्रकार बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।

चवालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! उस समय देवताओं और मुनीश्वरों की दशा बहुत खराब थी। वे दैत्यों के भय से इधर-उधर भागे फिरते थे, जैसे कोई विक्षिप्त मारा मारा फिरे। जब देवता और ब्राह्मण बहुत दुःख पाकर शाप देने लगे, तब अन्धक का तेज कम हो गया। एक दिन सब देवताओं ने इकट्ठे होकर कहा कि अब तो अन्धक हमको कुछ धर्म-कर्म करने नहीं देता। न हम विष्णु और शिवजी की पूजा करने पाते हैं। सब तरह से आपदा और दुःख है। कौन उपाय से यह मर सकता है? बृहस्पति बोले कि अन्धक शिवजी के सिवा संसार भर से अवध्य है। जब शिव ने प्रसन्न होकर वर दिया था तो उसके साथ यह भी प्रण था कि जब तुम पाप करने लगोगे, तब हम ऐसा क्रोध करेंगे, जिससे तुम्हारा तेज घट जायगा। शिवजी ने पहले ब्राह्मणों को दुःख देने का निषेध किया था। सो अब वह समय आ गया है। अच्छा हो कि हम सब चलकर शिवजी की शरण ग्रहण करें। वे सब दुःख दूर कर देंगे। हे नारद! फिर तुमको सब देवताओं ने यह वृत्तान्त कहने के लिए शिवजी के पास भेजा। तुम वहाँ से चलकर शिवजी को मन्दार के वन में देखकर स्तुति करने लगे। तुम्हारी स्तुति सुनकर शिवजी बहुत प्रसन्न हो कहने लगे कि हे नारद! किस कार्य को आये हो? तुमने अन्धक के अन्याय का सब हाल उनसे कह सुनाया। शिवजी

ने कहा कि तुम मन्दार के पुष्पों की माला पहनकर अन्धक के पास जाकर हर प्रकार से हमारी प्रशंसा करना और ऐसी युक्ति करना, जिसमें वह क्रोधित होकर हमारे पास आवे। तुम बिदा होकर वन से मन्दारपुष्प तोड़ उसकी माला कण्ठ में पहने हुए अन्धक के समीप गये। अन्धक सब दैत्यों समेत तुम्हारी माला को, जिसमें उत्तम सुगन्ध थी, देखकर आश्चर्य में हुआ। कहा कि ये पुष्प कहाँ उपजते हैं? उस उद्यान का कौन रक्षक है? ये पुष्प मैं अपने भुजबल से लिया चाहता हूँ। तुमने उत्तर दिया कि मन्दराचल में जो वीरकाम्यक वन है, उसमें ये पुष्प उपजते हैं। वहाँ शिवजी के गण रक्षक हैं। वे गण बड़े बलिष्ठ हैं। शिव, जिनके बराबर दूसरा नहीं है, अपनी स्त्री सहित उसी वन में विहार करते हैं। उनको जीतनेवाला सृष्टि में कौन है? पर हाँ उनकी सेवा करने से ये पुष्प मिल सकते हैं। इनके सिवा उस वन में और भी सैकड़ों प्रकार के पुष्प हैं। कइयों की इनसे भी अच्छी सुगन्ध है। कई वृक्षों से रत्न और कइयों से वस्त्र और कई तरुओं से चारों प्रकार का अन्न मिलता है। वहाँ किसी को कुछ भी दुःख नहीं होता। न किसी को भूख, प्यास, चिन्ता, लज्जा, खेद व्याप्त होता है। शिवजी की सेवा से मनुष्य इन्द्र को जीत लेता है। ऐसे उपदेश के वचन कहकर तुम बिदा हुए। उधर अन्धक ने दैत्यों की सभा बुलाकर मन्दार के फूलों की प्रशंसा की और कहा कि तुम सब उद्यत होकर मेरे साथ फूल लाने को चलो। कोई यहाँ रह न जाय। यह कह अन्धक सेना सहित चला और शिव की महिमा भूल गया।

पैंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! अन्धक ने जाकर मन्दराचल का देखा। वह नाना प्रकार का औषध और जड़ी बूटी से सुशो-

भित था। सिद्ध, मुनीश्वर, देवतागण उसकी रक्षा करते थे। चंदन, अगर, साल, चम्पा, बेल और रुद्राक्ष आदि हज़ारों प्रकार के वृक्ष वर्तमान थे। गन्धर्व, किन्नर, अप्सरा आदि नाचते-गाते थे। हंस, चकोर, अरना, सिंह, बघेले आदि जीवों से भरा हुआ था। ऐसी बहार देखकर उसने देवताओं को देखा और बड़े क्रोध से कहा कि हे मन्दराचल! तू मुझको भली भाँति जानता है। मैं अपने बराबर संसार में दूसरे को नहीं समझता और किसी के हाथ से मर नहीं सकता। संसार भर मेरे वश में है। देवता, मुनि, दैत्य आदि सब मेरे चेले हैं। इसी प्रकार तुम भी मेरी प्रजा और अधीन हो। मेरी आज्ञा सुनो। आज से मैं तेरे निकट के वन को अपने विहार और भोग के लिए नियत करता हूँ। जो तू मेरी आज्ञा न मानेगा तो तेरे लिए अच्छा न होगा। हे नारदजी! इसी प्रकार अन्धक ने चारों प्रकार की राजनीति के वचन कहे, पर शिवजी का पर्वत कुछ भी न डरा और अन्तर्धान हो गया। जब अन्धक ने पर्वत को अन्तर्धान होते हुए देखा तो क्रोध करके कहा कि देख, मैं आज तुझे भस्म किये डालता हूँ। यह कहकर पर्वत को जड़ से उखाड़कर मिट्टी के समान पीस डाला और बहुत योजन की दूरी पर फेंक दिया। तब उस वन के रहनेवाले सब थर-थर काँपने लगे और पर्वत उठते, बैठते, काँपते, भागते शिवजी के समीप गया। उस समय शिवजी गौरी के साथ विहार कर रहे थे। गौरी ने पर्वत को काँपते देखकर कहा कि तू आज क्यों काँप रहा है? और धरती आकाश और पाताल भी काँपता है। किसने इतना क्रोध किया है? शिवजी ने कहा कि नहीं जानते कि किसने इतना उपद्रव मचाया है। देखिये, आज कौन यमलोक को जाता है। जिसने यह काम किया होगा, उसको अवश्य दंड दिया जायगा, चाहे वह

मेरा पुत्र भी होगा। यह कहा और पर्वत को प्रसन्न करके जो टुकड़े पहाड़ के टूट-टूटकर गिर पड़े थे, वे शिवजी की कृपा से दैत्यों की सेना में गिरने लगे। दैत्यों को बड़ा दुःख प्राप्त हुआ। तब तो अन्धक क्रोधित होकर कहने लगा कि हे पर्वत! मुझको नहीं जानता कि मैं परब्रह्म हूँ। तू ऐसा छल क्यों करता है? प्रकट होकर क्यों नहीं लड़ता? यह सुनकर शिवजी ने बड़ा क्रोध किया। इतने में मैं, इन्द्र और देवता आदि सब शिवजी की सेवा में पहुँचकर स्तुति करने लगे। वह ऐसी स्तुति है कि जिसके सुनने-सुनाने से दोनों लोकों में मुक्ति मिलती है।

छियालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! जब शिव ने ऐसी स्तुति सुनी तो अन्धक पर अति क्रोधित होकर अपने गणों से कहा कि तुम जाकर दैत्यों को नष्ट करो। गण चले और नन्दी सब गणों के सेनानी होकर युद्धस्थान में पहुँच बड़ा भारी युद्ध करने लगे। गणों ने बहुत दैत्यों का नाना प्रकार के शस्त्रों से वध कर डाला। नन्दी के तेज को कोई न सह सका। नन्दी ने हुण्ड, थुण्ड, जृम्भासुर, कुञ्जासुर, कार्तस्वन, पाकहारीत, मदनमर्दन आदि दैत्यों के अधिपों को मारा, जिससे सब दैत्यों को बड़ा दुःख पहुँचा। अन्धक अति शोकाकुल होकर भयभीत हुआ। फिर अपने गुरु शुक्र के समीप जा स्तुति करने के उपरान्त कहने लगा कि तुमने बहुत बार दैत्यों का दुःख मिटाया है। मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। मैं तुम्हारी कृपा से देवताओं को ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु और शिव समेत तृण-सा तुच्छ जानता हूँ। तुम्हारे बल पर दैत्य देवताओं पर ऐसे प्रबल हैं, जैसे सिंह हाथी पर और मोर सर्प पर। तुम्हारी कृपा से विष्णु दैत्यों से भयभीत रहते हैं। वज्रव्यूह, जिसको देवता वज्र के समान तैयार करते हैं,

उसके भीतर दैत्य सन्देहरहित होकर प्रवेश कर जाते हैं। तुम्हारी सेवा के बल से दैत्य पर्वत के समान युद्धस्थान में स्थिर रहते हैं। इस समय हे भृगो! शिलाद के पुत्र नन्दीगण ने असंख्य दैत्यों का युद्धस्थान में वध कर डाला है। हुण्ड, थुण्ड आदि अच्छे-अच्छे दैत्यों को मार कर धरती पर लिटा दिया। अब जैसा उचित हो, वैसा कीजिये। हम तुम्हारी शरण में आये हैं। तुमने जो विद्या प्राप्त की है, उसके वर्तने का समय यही है। दैत्यों को जिलाओ, जिससे संसार में तुम्हारा नाम हो। भृगु ने हँसकर कहा कि सहस्र वर्ष पर्यन्त जो विद्या हमने केवल धान की भूसी का धुआँ पीकर प्राप्त की है, उसकी सिद्धि देखो। विद्या दैत्यों को आनन्द देनेवाली है। हम मरे हुए दैत्यों को मृत्यु-निद्रा से जगाते हैं और जिस तरह सूखे धानों को पानी हराकर देता है उसी प्रकार हम दैत्यों को जिलाये लेते हैं। यह कहकर हर एक दैत्य पर अपना मन्त्र पढ़ा। वे तुरन्त जीकर यह समझे कि निद्रा से जागे हैं। अन्धक अपने वीरों को जीवित देखकर अति प्रसन्न हुआ। शिवजी के गणों ने नन्दी से भृगुनन्दन की यह सिद्धि वर्णन की। नन्दी ने तुरन्त शिवजी के पास जा विनय की कि जो दैत्य हमारे हाथ से मारे जाते हैं, उनको शुक्र बार-बार जिला देते हैं। हमारी विजय क्योंकर होगी? यह सुनकर शिव का रूप अति भयंकर हो गया। उन्होंने नन्दी से कहा कि ब्राह्मणों में जो अति नीच शुक्र है, उसको हमारे पास पकड़ लाओ। यह सुनकर नन्दी बेधड़क दैत्यों की सेना में प्रवेश कर गये। देखा कि शुक्र की रक्षा बहुत से दैत्य कर रहे हैं। निदान नन्दी ने सबको मोहित कर शुक्र को पकड़ लिया, जैसे बाज लवा को पकड़ता है और घसीटते हुए ले चले। यद्यपि शस्त्र चलाकर शुक्र ने अपना छुटकारा चाहा, पर नन्दी ने अपने शरीर से अग्नि

उपजाकर सब भटों को जला दिया और शिवजी के पास शुक्र को पकड़ ले चले। शुक्र को शिवजी के आगे खड़ा करके कहा जो उचित हो, वह आप करें। शिव ने कुछ न कहा और शुक्र को अपने उदर में डाल लिया, जैसे कोई फल को खा ले। दैत्यों को अति दुःख प्राप्त हुआ और विजय की आशा न रही। जब अन्धक ने यह हाल सुना तो दैत्यों को धिक्कार देने लगा। कहा कि आज मैं नन्दी का वध ही कर डालूँगा। शुक्र को छुड़ाकर विष्णु और देवताओं समेत इन्द्र का वध कर डालूँगा। शुक्र योगशास्त्र में निपुण हैं, इससे उनके मरने का कुछ भय नहीं। फिर गणों और दैत्यों से युद्ध होने लगा। नन्दी ने गणों समेत ऐसा युद्ध किया कि दैत्यों की सेना बिखरकर बहुत भागी।

सैंतीलासवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! अपनी सेना को भागते हुए देखकर अन्धक आप रथ पर चढ़ युद्धस्थल में पहुँचा। तब कई एक वीर लड़ने लगे। बलभद्र, शाख, विशाख, गणेश, सोम और नन्दीश्वर आदि शिव के गणराजों ने अन्धक के ऊपर एक साथ चढ़ाई कर दी। तब बड़ा भारी युद्ध हुआ। शुक्र ने शिव के उदर में ब्रह्माण्ड भर देखा। इसी प्रकार वह सौ वर्ष पर्यन्त उदर में घूमा किये, पर निकलने के लिए छिद्र न पाया। तब शिव की वंदना करके उनके लिङ्ग के छिद्र द्वारा, जिस मार्ग से वीर्य आता है, प्रकट होकर शिवजी की स्तुति करने लगे। ऐसी सावधानता शुक्र की यह चतुराई देख शिव प्रसन्न हुए और कहा जो कि तुम शुक्र के मार्ग से प्रकट हुए, इससे तुम्हारा शुक्र नाम होगा। तुम हमारे पुत्र हो। अब अपने घर को सुखपूर्वक चले जाओ। शुक्र दैत्यों की सेना में आये, जिनको देखकर दैत्यों ने बड़ा आनन्द मनाया। अन्धक शुक्र को रक्षापूर्वक

किसी स्थान में बिठाकर आप लड़ाई करने लगा और गणों को दुखी कर दिया। यहाँ तक कि गण युद्धस्थान से भागकर खड़े हुए और लज्जा से शिव के पास जाकर कहा कि हमको दैत्य-गणों की सेना मारे डालती है। शिवजी बोले कि हमारा रथ सजाओ। तब जिस प्रकार से त्रिपुर का वध करने के निमित्त रथ तैयार किया गया था, उसी तरह से रथ बनाया गया। शिव अपने गणों के दुःख को स्मरण कर क्रोध के साथ रथ पर चढ़े और युद्धस्थान में पहुँच कर अन्धक से लड़ने लगे। जो बाण और शस्त्र अन्धक चलाता था, उनको शिव अपने बाणों और अन्य उत्तम शस्त्रों से काट देते थे, और जो शिव शस्त्र छोड़ते थे, उनको अन्धक नष्ट करता था। निदान अन्धक ने एक मुष्टिका शिव के मारी। शिव ने भी प्रहार करके पृथ्वी पर मूर्च्छित करके गिरा दिया। उस समय शिव की इच्छा से चामुण्डा देवी, जो दुर्गा का रूप हैं, प्रकट हुईं। वह नाना प्रकार के शस्त्र धारण किये थीं। उनका घनगर्जन-सा शब्द महाभयंकर था। दंष्ट्रा विकराल स्वरूप, महाकठोर, आँखें लाल-लाल किये, लाल-लाल कान बहुत ही लम्बे, काली आँखें, ऐसे स्वरूप से चामुण्डा देवी सेना में प्रवेश कर दैत्यों को विदीर्ण करने लगीं और अपने केशों को बिखरा कर नृत्य करने लगीं। अन्धक ने क्रोधित होकर अपना शूल चण्डी के सम्मुख कर दिया। अन्धक की ऐसी ढिठाई देख शिवजी ने बड़ा क्रोध किया और अपने त्रिशूल से अन्धक को छेद लिया, जिससे रक्त की नदी बह निकली। केवल अन्धक के अस्थि और चर्म त्रिशूल पर रह गये, बाकी रक्त सब निकल गया। वह कमल के समान त्रिशूल पर रक्खा रहा। शिवजी ने शत्रुता भुलाकर अन्धक को उत्तमबुद्धि दी, जिससे वह सतोगुण धारण करके दैत्यभाव से छूटा और शिवजी की स्तुति करने लगा।

अड़तालीसवाँ अध्याय

अन्धक ने बहुत स्तुति करने के उपरान्त कहा कि हे शिवजी! मैं तुम्हारे शरणागत हूँ। मेरी ओर दया की दृष्टि कीजिये यह स्तुति सुनकर शिवजी ने दया की दृष्टि से अन्धकासुर की ओर देख दिया और उसकी बहुत सी प्रसंशाकर कहा कि धन्य-धन्य, हम तुमसे अति प्रसन्न हुए। जो इच्छा हो, वह वरदान माँग लो। अन्धक ने कहा कि मुझको अपना गण करके अपने निकट रक्खो और वीरभद्र के समान मुझको भी समझो। मुझे सारूप्यमुक्ति दो कि तुम्हारे चरणों की सेवा किया करूँ। शिवजी ने कहा कि अच्छा। अपना गण बनाकर उसको मुक्त किया और अपने साथ ले जाकर कैलास पर्वत पर स्थित हुए। इतना कह ब्रह्माजी बोले कि उस समय विष्णु ने मैंने और देवताओं ने पहुँचकर शिव शङ्कर को प्रणाम किया और हम सबों ने अलग अलग शिवजी की स्तुति की। इस स्तुति और चरित्र को जो कोई सुने-सुनावेगा, वह अपने कुल समेत प्रसन्न रहेगा। उसके सामने कोई दुःख न आवेगा। परलोक में उसको शिवजी की समीपता प्राप्त होगी। सब देवताओं की बनाई हुई यह स्तुति सुनकर शिवजी ने प्रसन्नता-पूर्वक सबको बिदा किया। फिर शिव सब गणों समेत कैलास पर्वत पर विराजमान हुए।

उनचासवाँ अध्याय

इतना सुन नारद ने कहा कि हे ब्रह्मन्! इस चरित्र के सुनने से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई अब आप और सदाशिवजी का कोई चरित्र सुनावें। आपके बराबर शिवजी का भक्त कौन है। ब्रह्मा बोले कि विष्णु के साथ जिस तरह से शिवजी का युद्ध हुआ, वह हम वर्णन करते हैं। मन लगाकर सुनो कि मेरे पुत्र मरीचि, जो शिवजी के भक्त थे, उनसे कश्यप उपजे, जो सदाशिवजी के

भक्त हैं। उनके तेरह स्त्रियाँ थीं, जिनसे बड़ी सन्तति हुई। उनकी बड़ी स्त्री दिति थीं। उनसे बयासी बड़े वीर दैत्य उपजे, जिनका नाम हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष था। वे बहुत समय पर्यन्त तप करते रहे हिरण्यकशिपु के चार पुत्र हुए। उनमें प्रह्लाद सबसे छोटा था। प्रह्लाद से शिव का बड़ा भक्त बिरोचन उपजा और विरोचन से बलि। बलि शिवजी का भक्त, बड़ा उदार और देवताओं के साथ युद्ध करने में अति बलवान् उपजा। उसके एक लड़का बाण के नाम से प्रकट हुआ। यह भी शिव का बड़ा भक्त था। वह सत्संगति का मित्र, अपने व्रत-नियम में अतिदृढ़, निरहंकार, सहस्त्र-बाहु धारण किये था। उसने अति उदारता से सारे ब्रह्माण्ड का राज्य किया। इन्द्र के समान उसके नौकर थे। उसने अपनी राज-धानी शोणितपुर में स्थापित कर बड़ी धूमधाम से राज्य किया। उसके राज्य में किसी को भी दुःख न था। एक दिन वह शिवजी की भक्ति और प्रेम में आनन्दित होकर अपने सहस्त्र बाहुओं से बाजा बजाकर शिवजी के आगे ताण्डवगति से नृत्य करने लगा। शिवजी अति प्रसन्न हुए। कहा—वरदान माँगो। बाणासुर ने विनती की कि आप मेरे सदा सहायक रहा करें और मेरे दुःख दूर किया करें। शिवजी यह मानकर अपने कुल समेत बाणासुर के घर में स्थित हुए और अपनी शक्ति समेत बाणासुर की रक्षा करने लगे। एक दिन सब देवताओं के राजा शिवजी देवगण समेत नर्मदा नदी के तट पर बड़ा उत्सव रच विहार करने लगे। देवता, सिद्ध आदि सब शिवजी का विहार देखने आये। उस समय नाच, गाना, बजाना और नाना प्रकार की आनन्द की बातें होने लगीं। शत्रुओं को दुःख और भक्तों को सुख प्राप्त हुआ। तीनों प्रकार की वायु बहने लगी। नाना प्रकार के फूल खिल उठे। पक्षी मधुर वाणी से बोलने लगे। मानो वे भी गायक बनकर

गा रहे थे। वन फूल उठा। ऐसे समय में शिवजी ने रुचि-पूर्वक विहार किया। फिरते-फिरते काम के वश हो नन्दीगण को बुलाकर कहा कि तुम तुरन्त कैलास में जाकर गिरिजा को अपने साथ ले आओ। वे अपना सब शृङ्गार किये हुए आवें। हम उनके साथ विहार करेंगे। नन्दी ने तुरन्त गिरिजा की सेवा में जाकर सब हाल कह सुनाया। गिरिजा ने कहा कि तुम चलो, हम शृङ्गार करके तुम्हारे पीछे आती हैं। नन्दी चला और गिरिजा शृङ्गार करने लगीं। इतने में नन्दी ने शिवजी के निकट पहुँचकर कहा कि गिरिजा पीछे आती हैं। शिवजी ने कहा कि तुम शीघ्र ही जाकर अपने साथ ले आओ। नन्दी फिर गये और गिरिजा से चलने को कहा। गिरिजा ने कहा—अच्छा चलती हैं, तुम बैठो। यह कहकर उन्होंने शृङ्गार करने में अपना बहुत समय लगाया। शिवजी अप्सराओं के नाच और रङ्ग को देख-कर बहुत ही कामवश हुए। गिरिजा ने जब कि आने में बहुत विलम्ब किया तो सब सभा की स्त्रियों ने सम्मति की कि हम सब अपना-अपना और ही प्रकार का पवित्र रूप धारण करें। यह सोच सब स्त्रियाँ अपना-अपना स्वरूप धारण करने लगीं कि शिवजी को भुलावे में डालें। नन्दी ने उर्वशी का रूप सुकेशी ने लक्ष्मी का स्वरूप, घृताची ने काली का स्वरूप, विश्वाची ने चण्डी का रूप, प्रेमगोत्रा ने सावित्री का रूप, मैना ने गायत्री का रूप पद्मावती ने विजयस्थला का रूप और जया ने सहजन्या का रूप धारण किया। जितनी अप्सराएँ थीं, सबों ने इसी तरह सब देवपत्नियों के स्वरूप धारण किये। ऊषा ने, जो बाणासुर की कन्या थी, गिरिजा का स्वरूप धारण कर लिया और कहा कि इस समय शिवजी को अपने वश कर लें और भली भाँति शिवजी के साथ भोग-विलास करें। यह सब सलाह और बनावटी स्वरूप

धारण करना गिरिजा जान गईं। उन्होंने ऊषा को बुलाया और हँसकर कहा कि तुमने कामवश हो हमारा स्वरूप धारण किया, इसलिए हमारा वचन सुनो। मधुमास की शुक्ल द्वादशी को सोते हुए कोई मनुष्य तुमको मिलेगा। उसके साथ मन भरके भोग-विलास करना। वही तुम्हारा पति है। हमारा वचन सत्य है। यह कहकर गिरिजा अति प्रसन्नता से शिवजी के समीप गईं। यह लीला कर शिवजी अपनी सारी सभा समेत अन्तर्धान हो गये। सब अप्सराएँ अति लज्जित होकर गिरिजा की स्तुति करने लगीं। हे नारद! अब और चरित्र सुनिये।

पचासवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! एक दिन बाणासुर ने अपने ताण्डव-नृत्य से शिवजी को अति प्रसन्नकर विनती की कि आपकी कृपा से मैं बड़ा बलिष्ठ हुआ हूँ; पर जो आपने मुझको सहस्र भुजाएँ कृपा की हैं, वे मेरे शरीर पर भाररूप हैं। क्योंकि उनके बल से कोई कार्य आज तक नहीं किया। न कोई युद्ध तीनों लोक में मुझसे हुआ। मेरी दृष्टि में आपके बराबर कोई बलवान् नहीं है। मैं तीनों लोकों में केवल युद्ध के निमित्त फिरता हूँ। मैं दिक्पालों के पास युद्ध की इच्छा से गया। मुझे आता देखकर दिग्पाल और दिग्गज भाग गये। हे शिवजी! मेरी भुजाएँ बल की अधिकता से खुजलाया करती हैं। आप वह खुजली दूर करें। मैंने इन्द्र को जीत अपने अधीन किया है। वह मुझसे सदा ही अपने मन में डरा करता है। मैंने अपने यहाँ अग्नि को आग सुलगानेवाला, पितृ को पाककर्ता, वरुण को द्वारपाल, पवन को बाजा बजानेवाला, कुबेर को हाथियों का रक्षक और सूर्य-चन्द्रमा को मशालची बनाकर बाकी देवताओं को अपने नगर का रक्षक कर दिया है। इसी प्रकार मैंने सब ब्रह्माण्ड को जीतकर सबको अपने

अधीन कर लिया है। पर मुझको युद्ध की बहुत बड़ी इच्छा है। आप कृपा करके मेरा मनोरथ पूरा करें। या तो और कोई मेरी हज़ारों भुंजा काट डाले या मैं उसकी भुजा छाँट दूँ। यह सुनकर शिवजी ने बड़ा क्रोध किया और प्रकट में क्रोध और भीतर से प्रसन्न हो बाणासुर से कहा कि तुझे धिक्कार है जो तुझे इतना गर्व है। तू दैत्यों के कुल में महाअधम है। तू बलि का पुत्र और मेरा भक्त होकर ऐसी ख़राब बातें बकता है। यह तेरा अहंकार वेग ही मिट जायगा। हमारे समान कोई मनुष्य तेरे निकट आवेगा। उसके साथ तू लड़कर अपना अहंकार भूल जायगा। वह आकर तेरी भुजाएँ काट डालेगा। केवल मेरी कृपा से तेरे प्राण बच जायँगे। मैं तुझको वह समय भी बताता हूँ, जब ये सब बातें प्रकट होंगी। जब तेरा यह झंडा, जिसका सिर मनुष्य के शीश के समान और नीचे मोर का आकार है बिना पवन गिर पड़ेगा और नाना प्रकार के अशकुन प्रकट होंगे, तब तू निश्चय जानना कि अब वही समय आया है और युद्ध के निमित्त तैयार हो जाना। यह कह शिवजी चुप हो गये। बाणासुर बहुत ही प्रसन्न हुआ और शिव की बड़ी पूजा की। फिर घर में जाकर अपनी स्त्री से सब हाल कहा। उसकी स्त्री का नाम कन्दला था। वह भी शिवजी की बड़ी भक्त थी। जब उसने सुना तो अति चिन्तित हुई। कहा कि यह क्या आनन्द का समय है? यह तो बहुत बुरी बात हुई। क्या तुम इस बात को नहीं समझे? तुम तो सब तरह से नष्ट हो गये। क्या तुमको शिवजी से यही वर लेना उचित था? तुम्हारी बुद्धि अधिक अहंकार से नष्ट हो गई। शिव सदा अहंकार को नष्ट करते हैं। तुम्हारी सब भुजाएँ कट जायँगी। तुम कभी हारे न थे, पर अब अवश्य ही हारोगे। यह शिवजी ने तुमको शाप दिया है, वर नहीं दिया। इससे उत्तम है कि अब

भी शिवजी को प्रसन्न करके उनकी इतनी सेवा करो कि तुम्हारा भला हो। यह कह महादुःख से शिवजी को ध्यान में लाकर बाणासुर के चरणों पर गिर पड़ी। तब आकाशवाणी हुई कि हे कन्दला! तुम कुछ मन में खेद न करो। उस समय शिवजी तुम्हारे सहायक होंगे और बाणासुर के गर्व को नष्ट करके उस पर कृपा करेंगे। यह सुनकर कन्दला कुछ प्रसन्न हुई। पर इस बात को बाणासुर ने न जाना। वह घर से निकलकर बाहर आया और फिर अपने सभ्यों को इकट्ठाकर युद्ध के लिए सलाह की सब मिलकर बाट देखने लगे कि देखिये कब समय आता है, जब युद्ध होगा।

इक्यावनवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारदजी! अब हम तुमको बाणासुर की कन्या अर्थात् ऊषा का चरित्र सुनाते हैं, जो युद्ध का मूल है और जिसमें बाणासुर की भुजाएँ कट गईं। यह सब लीला शिवजी की समझो। जो शिवजी की इच्छा है, वही होता है। बाणासुर की कन्या, जिसे गिरिजा ने वर दिया था कि तुमको पति मिलेगा, वह एक दिन ऊषा-तिथि अर्थात् वैशाख सुदी द्वादशी को शिवजी की पूजा कर अर्धरात्र को सोने लगी। तब गिरिजा की इच्छा से कृष्णचन्द्र के पोते अनिरुद्ध ने पहुँचकर ऊषा के साथ भोग किया। ऊषा रोने-पीटने लगी और अनिरुद्ध गिरिजा के प्रभाव से तुरन्त कृतकार्य होकर अपने घर चला आया। ऊषा मृतक समान शिथिल होकर बहुत रोई और अपनी सखियों से यह सब हाल कह सुनाया। अनिरुद्ध से फिर मिलने की इच्छा करके अपनी सखियों से उनकी बड़ी प्रसंशा की और गिरिजा का ध्यान किया। उस समय कुम्भाण्ड की पुत्री चित्रलेखा, जो ऊषा की सखी थी, उसने ऊषा को समझाया और पहले जन्म का सब हाल कह सुनाया,

जिसको सुनकर ऊषा अति प्रसन्न हुई। उसने अति विनय कर कहा कि जिस पति को गिरिजा ने कृपापूर्वक मुझे रात्रि के समय दिखाया है, उसे तुम छिपाकर मेरे पास लाओ और मुझसे मिला दो। यह बात तुम्हारे लिए कुछ कठिन नहीं है। जिसने हमारे मन को छीन लिया है, उससे जो तुम मुझको न मिलाओगी तो मैं अवश्य ही मरजाऊँगी, इसमें कुछ सन्देह नहीं। और कहा कि तुम सब हमारी सखी इस बात को समझ लो कि जिस मनुष्य के मिलने से रात्रि के समय मुझको बहुत दुःख और सुख प्राप्त हुआ है, वह मनुष्य जो न मिला तो मेरे मरने में कुछ संशय न जानना, यह सत्य ही कहती हूँ। चित्रलेखा ने हँसकर कहा कि मैं तुम्हारे सब दुःख दूर कर दूँगी, जिससे तुमको बड़ा आनन्द प्राप्त होगा। जो वह तीनों भुवन में है तो तुमसे तुरन्त मिला दूँगी। यह कहकर वह कपड़े पर सबके स्वरूप लिखती गई। आदि से अन्त तक जितने देवता आदि आकाश के निवासी थे, सबके रूप लिखे। जब ऊषा ने उनमें से किसी को न पहचाना तो फिर वह मनुष्यों के चित्र बना बनाकर दिखलाने लगी। जब चित्रलेखा यदुवंश के घराने को लिखने लगी और क्रमशः शूरसेन, वसुदेव, राम, कृष्ण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध का चित्र लिखकर दिखाया तो ऊषा ने तुरन्त अनिरुद्ध का स्वरूप देख करके कहा कि यही है, जिसने मेरा चित्त चुराया है। इसको युक्ति से लाओ, जिसमें मेरा दुःख दूर हो जाय। चित्रलेखा ने यह जानकर कि यह कृष्ण के पोते अनिरुद्ध पर मोहित है, शिवजी का ध्यान कर योगमाया के बल से ज्येष्ठ-शुक्ल चतुर्दशी को कृष्ण के मन्दिर में गई। देखा, अनिरुद्ध अपनी स्त्री के साथ मद्य पी रहे हैं। उनकी किशोर अवस्था, श्यामरंग, महासुन्दर स्वरूप को देखकर अपने तामस योग को प्रकट करके अँधेरा कर दिया।

वह अपने सिर पर शय्या को, जिस पर अनिरुद्ध बैठे थे, लेकर योग बल से उड़ी और लाकर ऊषा के पास रख दिया। ऊषा ने आश्चर्य कर उसको अति गुप्त रीति से भीतर ले जाकर चाहा कि भोग-विलास करूँ। उस समय यह वृत्तान्त द्वारपालों और रक्षकों ने जान लिया और अति आश्चर्य कर ऊषा के अपकर्म और छल पर पश्चात्ताप किया। उन्होंने ऊषा के घर के भीतर जाकर अनिरुद्ध को देखा कि वह भोग-विलास में लगे थे। उन्होंने तुरन्त बाणासुर के पास जा उसकी स्तुति कर कहा कि आप तीनों लोक के ऐसे राजा हो, जिससे ब्रह्मा भी डरते हैं। हे स्वामी! इस समय आपकी लड़की के घर में एक अकेला आदमी बैठा है। चलकर आप ही उसे देख लें, जो उचित हो उसके लिए आज्ञा दें। यह सुनकर बाणासुर अति दुःखी होकर क्रोधित हुआ, जाकर अनिरुद्ध को देखा और विचार किया कि यह मनुष्य कोई बड़ा वीर, युद्ध करनेवाला और प्रण का दृढ़ है। व्यभिचारी, महाकामी, मूर्ख, पापी यह किस युक्ति से यहाँ पहुँचा है? इसने मेरे कुलधर्म को नष्ट कर दिया? यह विचार कर अपने वीरों को आज्ञा दी कि तुम दया छोड़ इसको प्राण से मार डालो। यह आज्ञा देकर उसने अनिरुद्ध को देखा और अनिरुद्ध का शरीर तेज से भरा हुआ देख बहुत सन्देह किया। सो दस सहस्र सेना अनिरुद्ध के मारने को खड़ी हुई और छिंधि-भिंधि नाद कर अनिरुद्ध को चारों ओर से घेर लिया। अनिरुद्ध भी निर्भय होकर युद्ध के निमित्त खड़े हुए, एक परिघ हाथ में उठाकर तुरन्त द्वार की ओर चले और इतना उस सेना को मारा कि एक भी न बचा। फिर और सेना जो आई, उसको मारा। फिर एक लाख वीर आकर और लड़ने लगे। उनको भी अनिरुद्ध ने भगा दिया। बाणासुर यह हाल

देख अपने रथ पर सवार हो आप ही युद्ध करने को उद्यत हुआ। उसके रथ पर कुम्भाण्ड मन्त्री सारथी के स्थान पर बैठा था। अनिरुद्ध ने तलवार से सारथी समेत बाणासुर को दुखी कर दिया। तब बाणासुर ने अनिरुद्ध पर साँग चलाई। अनिरुद्ध ने साँग को हाथ से पकड़कर वही बाणासुर के ऊपर चलाई। यह युद्ध देखकर दैत्य और देवता आश्चर्य में हुए। निदान बाणासुर अनिरुद्ध को बड़ा बली समझ अन्तर्धान हो गया और छल-युद्ध करके अनिरुद्ध को बड़ा कष्ट दिया। फिर नागफाँस से अनिरुद्ध को बाँधकर बहुत से दुर्वचन कहे। तब कुम्भाण्ड को आज्ञा दी कि तुरन्त इसका सिर काट डालो; क्योंकि राजनीति की यही आज्ञा है कि इसने हमारे कुल में लाञ्छन लगाया, जो अति पवित्र था। इसके शरीर के खण्ड-खण्ड कर राक्षसों को खाने के लिए बाँट दो, या भरे हुए पानी के कुएँ में डाल दो कि यह जीता न बचे। इसको मार डालना ठीक है। कुंभाण्ड ने शिवजी का ध्यान करके बाणासुर से कहा कि यह बात ठीक नहीं है, क्योंकि इसका वध करने से आत्मघात का पाप होगा। तुम भली भाँति समझो कि शिवजी की अप्रसन्नता से तुम्हारी यह दशा हुई है। यह कृष्ण का नाती अनिरुद्ध शिवजी की कृपा से बड़ा बल रखता है। इसी प्रकार कुंभाण्ड ने बाणासुर को बहुत प्रकार से समझाकर क्रोध दूर किया। फिर अनिरुद्ध को अच्छे उपदेश देकर भली प्रकार समझाया और कहा कि अब तुम बाणासुर का हाथ छोड़कर गुप्त कथन करो और कहो कि हम तुमसे हार गये। हमको प्राणदान दो। अनिरुद्ध ने कहा कि हे मूर्ख! तू क्षात्रधर्म नहीं जानता। क्षत्रियों को लड़ाई में सम्मुख होकर मरना आनन्द और मोक्ष देनेवाला है। जो धर्म ही न रहा तो जीना किस काम का? वह मनुष्य दोनों लोकों में आनन्द

नहीं उठा सकता। ऐसे वचन सुनकर बाणासुर अति क्रोधित हुआ और चाहा कि अनिरुद्ध का वध कर डाले। इस इच्छा से त्रिशूल उठाया, तब आकाशवाणी हुई, जिसको सबने अनिरुद्ध समेत सुना कि हे बाणासुर! तू यह क्या करता है? तू बलि का पुत्र शिवभक्त है। यह बात अच्छी नहीं करता। यह बालक मार डालने के योग्य नहीं। इसके शिवजी रक्षक हैं। शिवजी सबके स्वामी हैं, जिनके अधीन तीनों लोक हैं। वही शिवजी पालनेवाले और प्रलय करनेवाले हैं। वही तीनों गुण, अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और हर हैं। तुमको चाहिए कि ऐसे शिवजी की शक्तिसहित सर्वदा पूजन किया करो। तब जो शिवजी कृपा करेंगे तो तुम्हारा गर्व नष्ट होगा। यह आकाशवाणी सुनकर बाणासुर उस जगह से उठकर घर में गया और भोगविलास में कालक्षेप करने लगा। अनिरुद्ध ने भी देवी का स्मरण किया और मन में बड़ी स्तुति की। सो श्रीमहाकालीजी प्रसन्न हुईं। वह गिरिजा के समान एक शक्ति हैं। उन्होंने अनिरुद्ध की नागफाँस को जला डाला। फिर पहले के समान अनिरुद्ध को आनन्द देकर आप अन्तर्धान होगईं। अनिरुद्ध फिर ऊषा के समीप गये और जो मन में आया वह किया। यह हमने ऊषा चरित्र सुनाया।

बावनवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि जब चित्रलेखा अनिरुद्ध को लेकर आकाश को चली। तब अनिरुद्ध की स्त्री बड़े ज़ोर से रोने लगी, जिसको सब यदुवंशी और कृष्ण बलराम ने सुना और अनिरुद्ध को न देखकर अति चिन्तित हुए। चार महीने तक उनको अनिरुद्ध का हाल कुछ मालूम न हुआ कि कहाँ गये, कौन ले गया। हे नारदजी! निदान शिवजी की आज्ञा से तुम कृष्णजी के पास गये और आदि से अन्त तक अनिरुद्ध का वृत्तान्त कहा। कृष्ण और

बलराम अति दुखी हुए। निदान राम और कृष्ण असंख्य वीरों की सेना साथ लेकर शोणितपुर को गये और गरुड़ भी श्रीकृष्णजी की सहायता के निमित्त आये। उन्होंने शोणितपुर को चारों ओर से घेर लिया और नाना प्रकार के उपद्रव मचाने लगे। बाणासुर ऐसे उत्पात को न सहकर युद्ध की इच्छा से आया और रुद्र भी, जिनकी रक्षा में शोणितपुर था, बाणासुर से भिड़ गये। हे नारद! उस समय बड़ा भारी प्रलय के समान युद्ध हुआ। कृष्ण और रुद्र यह दोनों लड़ने लगे। वीरभद्र प्रद्युम्न के साथ और कोपकर्ण और कूष्माण्ड दोनों बलराम के साथ लड़ने लगे। आप बाणासुर साँग लिये हुए लड़ने लगा। बाणासुर के पुत्र ने साम्ब के साथ युद्ध रचा। नन्दीश्वर, जो शिवजी के वाहन हैं, गरुड़ के साथ लड़ने लगे। इसी प्रकार सम्पूर्ण भट द्वन्द्व युद्ध करने लगे। यह युद्ध देखने के लिये मैं और सब देवता आदि आये। शिवजी के गणों के साथ यदुवंशी पूर्ण रूप से लड़े। राम, कृष्ण और प्रद्युम्न दृढ़तापूर्वक युद्ध में स्थिर रहे। कोई एक भी न हटा। जहाँ एक ओर शिव और दूसरी ओर कृष्ण हैं, वहाँ रण से भागना किस तरह हो सकता है। पर जब राम और कृष्ण ने बहुत बड़ी चढ़ाई करके दैत्यों समेत शिवजी के गणों का युद्ध-स्थान से मुँह फेर दिया और पीछे हटाकर गर्जने लगे, तब शिवजी ने अति कुपित होकर केवल अपने नाद से परसेना को बहुत दुःख दिया। शिवगण भी लौटकर लड़ने लगे। कृष्ण अति कुपित होकर शिवजी के ऊपर पैने बाण छोड़ने लगे। शिवजी ने सब बाण काट डाले। कृष्ण ने शिवजी के ऊपर ब्रह्मास्त्र छोड़ा। शिवजी ने ब्रह्मशर छोड़कर उसको व्यर्थ कर डाला। इसी प्रकार जो बाण और शस्त्र कृष्ण ने शिवजी के ऊपर चलाये, वे कोई फलदायक न हुए। शिवजी ने काट दिये और कृष्ण की सेना को

डाँट दिया, किसी शस्त्र को न छोड़ा, केवल शस्त्ररहित होकर कृष्ण की सब सेना को भगा दिया, जिससे कृष्ण अति कुपित हुए। उन्होंने शीतज्वर को शिवजी के ऊपर छोड़ा, जिससे सबके शरीर थर-थराने लगे और बहुत विकल हुए। शिवजी ने पित्तज्वर छोड़ा जिससे शीतज्वर का मुख मोड़ दिया। शीतज्वर शिवजी के पास पहुँचा, स्तुति की, शरण में आया। शिवजी ने दोनों ज्वरों से कहा कि जो तुमको स्मरण करे, उसको न सताओ। प्रसन्न रहो, जाओ। हमने तुम दोनों को अपना सेवक बना लिया। जब कृष्ण ने शिवजी का यह चरित्र देखा, तब दुखी हुए, आनन्द जाता रहा। प्रद्युम्न और वीरभद्र ने बहुत समय तक युद्ध किया। निदान वीरभद्र ने वही शक्ति प्रद्युम्न पर छोड़ दी, जिसने तारक को मारा था। प्रद्युम्न अति विकलहो युद्धस्थल को छोड़ भाग गये। इसी प्रकार बलभद्र आदि सम्पूर्ण यादववंशी वीर युद्धस्थान से भाग गये। तब गरुड़ ने अपने पंखों को फैलाकर बड़ा उपद्रव किया। नन्दीश्वर ने अपने सींगों से पंखों को छेद उठा लिया। बड़ी कठिनता से गरुड़ नन्दी से छूटकर भाग गये और युद्धस्थान छोड़ दिया। कृष्ण अपनी सेना की यह दुर्दशा और उनका भागना देख चिन्ताकुल हुए। उन्होंने अपने सारथी दारुक से कहा कि देखो, हम बाणासुर की भुजा काटने आये थे; क्योंकि आप शिवजी ने उसको यह शाप दिया था कि कृष्ण तेरी भुजा काट डालेंगे। हमको अपने भाग्य का बड़ा पश्चात्ताप है कि इस समय आप जिन्होंने शाप दिया था, हमारे विरुद्ध युद्ध करने को खड़े हैं। अपने वचन को झूठा करते हैं। हमारी हीनता करते हैं। न जानिये, इनके मन में कैसी आई! मुझे कई बातें शिवजी से कहनी हैं। तुम उनके निकट मेरा रथ ले चलो। मैं उनको बाणासुर के शाप की बात स्मरण करा दूँगा, जिसमें शिवजी बाणासुर की सहायता न करें। दारुक ने

ऐसा ही किया। कृष्ण ने पहुँचकर हाथ जोड़ शिवजी की स्तुति की, सिर झुकाया, अहंकार दूर किया, शिवजी के शरणागत हुए और ये वचन कहे कि हे शिवजी! तुम सबके स्वामी, सबसे श्रेष्ठ, हमको प्रसन्न करनेवाले, हमारे कष्ट हरनेवाले सदा से रहे। हम आपकी आज्ञा से बाणासुर की भुजा काटने आये थे; क्योंकि आपने बाणासुर को यही शाप दिया था। उस वचन का स्मरण कीजिये। मुझे प्रसन्न कीजिये। बाणासुर की रक्षा छोड़ दीजिये, जिसमें हमको हर प्रकार की सिद्धि और विजय का अवकाश मिले, आपका वचन भी न टले। शिवजी ने कहा—हे कृष्ण! तुम हमारे बड़े और श्रेष्ठ और राम के भक्त हो। हमने तुमको अपने बराबर का पद दिया है। तुम तो पूर्ण विष्णु के अवतार हो। तुम्हारे काम हमको बहुत प्यारे हैं। तुमने जो कुछ कहा वह सत्य है। पर हम भी भक्ति के अधीन हैं। उसी भक्ति के करनेवाले भक्त के अधीन होकर यह लीला करते हैं। हमारे देखते-देखते बाणासुर की भुजा क्योंकर कट सकती हैं? अब तुम जाकर हम पर जृम्भणास्त्र छोड़ना। हम निद्रावश सो जायँगे। तब तुम अपना कार्य करना। संसार में यश पाना। यह सुन कृष्ण अपने स्थान पर आये और शिवजी पर उन्होंने जृम्भणास्त्र छोड़कर उन्हें सुला दिया! फिर बाणासुर की सेना को हिला दिया।

तिरपनवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि जब बाणासुर ने अपनी सेना के बल की कमी देखी तो क्रोधित हुआ और महानाद करता हुआ श्रीकृष्ण महाराज के सामने आया और बहुत ही युद्ध किया। सब शस्त्र चलाये। कृष्ण ने उसके सब शस्त्र व्यर्थ कर दिये। फिर अपने शार्ङ्ग-धनुष को चढ़ाकर बहुत से बाण बरसाये। बाणासुर भी उनकी वीरता को मान गया और उनके सब प्रहारों को निवारण किया,

कृष्ण को बाणों से छा लिया। दोनों सेनाएँ युद्ध करने लगीं। जब कुम्भाण्ड यदुवंशी सेना को मारने लगा और उनको अपनी वारों से दुखी किया, तब श्रीबलरामजी ने अपना हल-मुशल हाथमें लिया और कुम्भाण्ड के भाल को हल से हिलाया। कुम्भाण्ड ने बलराम को त्रिशूल मार धरती पर गिरा दिया। फिर दोनों युद्ध करने लगे। गरुड़ ने कृष्ण की इच्छा पाकर दोनों पङ्ख फैला दिये और असंख्य दैत्यों को गिरा दिया। यहाँ तक कि दैत्यों की सेना युद्धस्थान में रुक न सकी। बाणासुर ने अपना त्रिशूल गरुड़ पर चलाया और उन्हें धरती पर गिरा दिया। जब गरुड़ सचेत हुआ, युद्ध से भाग गया। फिर बाणासुर और कृष्ण इतना लड़े कि संसारभर में हाहाकार मच गया। बाणों की वर्षा से आकाश दिखाई न देता था। देवता भयभीत और निराश हो कहने लगे कि न जानिये, यह क्या हो रहा है। शिवजी के चरित को न जाना। उनकी लीला न पहचानी। कृष्ण ने बाणासुर के रथ के घोड़े मार डाले और वीरों के समान गर्जने लगे। फिर एक बाण बाणासुर के हृदय में मारकर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। जब बाणासुर चेत में आया तो कृष्ण पर त्रिशूल चलाया। कृष्ण ने त्रिशूल और गदा काट डाली और उसको अपने बाणों से पाट दिया। बाणासुर ने कृष्ण के धनुष को बेकार कर दिया। कृष्ण ने भी बाणासुर के सब शस्त्र व्यर्थ कर डाले, सेना मार डाली और बड़ा भारी युद्ध किया। फिर शिवजी का शाप स्मरण किया। शिवजी से बहुत बल पाकर बाणासुर को पकड़ लिया और चक्र से उसकी सब भुजाएँ काट डालीं, केवल चार भुजाएँ रहने दीं। बाणासुर को शिवजी की कृपा से कुछ कष्ट न पहुँचा। तुरन्त ही घाव भर गये। उस समय कृष्ण को इतना कोप हुआ कि वीर भाव से चाहा कि बाणासुर का सिर धड़ से जुदा कर डालें। तब तुरन्त शिवजी

ने, जो सो रहे थे, कृष्ण की ओर देख दिया और कुछ तिरछी दृष्टि से अपनी भुजा ऊँचीकर क्रोधपूर्वक कहा कि हे कृष्ण! जो तुमको हमने आज्ञा दी थी, वह तुम सब कर चुके। अब चक्र न चलाना और बाणासुर का शीश न काटना। यह सुदर्शन चक्र हमने तुमको दिया था। हमारे भक्तों पर यह चक्र नहीं चल सकता। देखो, तारक और रावण पर यह तुम्हारा चक्र न चला। अब मत लड़ो। हमारे भक्त पर इतना क्रोध मत दिखाओ। अब इसके साथ प्रीति कर अनिरुद्ध को ऊषा सहित अपने घर ले जाओ। कृष्ण ने स्वीकार किया। शिवजी ने बाणासुर को बुलवाकर कृष्ण से प्रीति करा दी। बाणासुर ने ऊषा और अनिरुद्ध को दान-मान आदि से संतुष्ट कर कृष्ण को सौंप दिया। सब रीतें पूरी करने के उपरान्त कृष्ण बिदा हुए और अपने नगर में पहुँचे। बाणासुर भी गण बनकर दैत्यों से देवता हुआ। बाणासुर ने देवताओं की बड़ी सेवा की, जिससे शिवजी ने प्रसन्न होकर उसे ऐसी गति दी।

चौवनवाँ अध्याय

इतना सुन नारदजी बोले कि जब श्रीकृष्ण अपने कुल समेत अनिरुद्ध को साथ लिये हुए द्वारका चले गये तो बाणासुर ने क्या किया? शिवजी ने क्योंकर बाणासुर को अपना गण बनाया? ब्रह्माजी बोले कि श्रीकृष्णचन्द्र के चले जाने के उपरान्त बाणासुर अपनी मूर्खता पर बहुत पछताया और अपने अहंकार को धिक्कारा। तब नन्दीश्वर ने उसको बहुत समझाया और कहा कि जो तुमने शिवजी को अहंकार दिखाया, उसीका यह फल है। शिवजी तुम्हारे अपराध क्षमा करेंगे। वे भक्तवत्सल हैं, तुम इतनी चिन्ता मत करो। शिवजी की इच्छा से जो कार्य हो, उसी में प्रसन्न हो, गर्व छोड़, शिवजी की सेवा और ध्यान

में लगे रहो। तागडव नृत्य करके शिवजी को रिझाओ। नन्दीश्वर के वचन सुनकर बाणासुर अति प्रसन्न हुआ। शिवजी के समीप जा रोने लगा, अहंकार दूरकर स्तुति करने लगा, सैकड़ों प्रकार से प्रणाम कर ताण्डव नृत्य करने लगा। उसने पूर्ण रीति से पदगत, प्रत्यालीढ़, प्रमुखगत, मदनबाणगत, सरकम्पा आदि सब प्रकार की गतें और भाव दिखाये, जिससे शिवजी प्रसन्न हुए। शिवजी को राग और नाच प्यारा है, इसलिए कृपाकर बाणासुर से कहा कि तेरे नाच राग और प्रेम से हम प्रसन्न हुए, वरदान माँग। तू हमको बहुत प्रिय है, इससे हमने इस प्रकार की लीला करके तेरे गर्व को नष्ट कर दिया है। बाणासुर ने प्रसन्नतापूर्वक शिवजी के वचन सुन, हाथ जोड़, विनती की कि हे शिवजी! मेरा शरीर दैत्यभाव से छूट जाय और मैं निर्भय आपके गणों में गिना जाऊँ। मेरी पुत्री ऊषा से जो लड़का उपजे, उसको मेरा राज्य शोणितपुर प्राप्त हो। वह कभी देवताओं से शत्रुता न करे। मेरे कुल से दैत्यपना उठ जाय। यह भी मैं आपसे माँगता हूँ कि मुझको आपकी नवधाभक्ति प्राप्त हो। आपके भक्तों से मैं विशेष प्रीति करूँ। सब जीवों पर कृपा रक्खूँ। आपकी माया मुझ पर अपना प्रभाव न डाले। इसके सिवा और जो कुछ उचित हो, वह मुझको वर दीजिये। आप हर प्रकार से मुझे अपनी शरण में लीजिये। इतना वर माँग बाणासुर शिवजी के चरणों पर गिर पड़ा। प्रेम की अधिकता के कारण उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। मारे प्रीति के जिह्वा कुछ कह न सकी। बाणासुर की यह दशा देखकर शिवजी अति प्रसन्न हुए। बाणासुर को धरती से उठा लिया और हँसकर कहने लगे कि हे बाणासुर! तुम हमारे बड़े भक्त हो। हमने तुमको अपना कर लिया। तुमने जो वर माँगे वे

सब हम तुमको देते हैं। तुम हमारे गणों के राजा होकर महाकाल के नाम से प्रसिद्ध हो। किसी से परास्त न होगे। हमारी कृपा से सब देवता तुम्हारे सेवक होंगे। तुम पर माया अपना असर न करेगी। जो मुझको बहुत प्रिय हैं, वे तुमसे बहुत प्यार रक्खेंगे। यह कह बाणासुर को दया की दृष्टि से देखा। फिर अपने दोनों हाथ बाणासुर के ऊपर फेर दिये। तब बाणासुर ने शिवजी की बड़ी स्तुति की, जिसको सुनकर शिवजी तो अन्तर्धान हुए और बाणासुर गणपति महाकाल होकर शिवजी की सेवा में रहने लगा।

पचपनवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! अब हम नागासुर अर्थात् गज के वध का वर्णन करते हैं, जिस तरह शिवजी ने अपने त्रिशूल से उसका वधकर उसे अपना गण बनाया। जब शिवजी की आज्ञा से जगदम्बा ने विष्णु और मुझ पर कृपा करके देवताओं और मुनीश्वरों आदि के उपकार के निमित्त महिषासुर का नाश किया, तब उसके पुत्र गजासुर ने बहुत दुखी होकर अपने पिता के वध का स्मरण कर चाहा कि देवताओं से बदला ले। इसी इच्छा से वह तप के निमित्त वन में चला गया और हमारे प्रसन्न होने के लिए उसने अति परिश्रम के साथ तप किया। उसके तप करने का उद्देश्य यह था कि जिस स्त्री या पुरुष ने काम को नहीं जीता, वह मुझे न मार सके। वह गजासुर हिमाचल के शिखर पर रहकर ऊर्ध्वबाहु होकर, आकाश में दृष्टि लगाये, अँगूठे के बल खड़ा हुआ। इसी प्रकार वह बहुत वर्षों तक खड़ा रहा, जिससे उसमें तप का ऐसा तेज झलकने लगा कि सूर्य भी उसके सामने कान्तिहीन हो गया। जब गजासुर का तप पूर्ण हो गया तो उसके शरीर से अग्नि की ज्वाला उठी, जो अपने

तेज से संसार भर को जलाने लगी। धरती दिक्पालों समेत जलने लगी। समुद्र नदियों सहित घबराये। ग्रह, नक्षत्र आदि गिरने लगे। महाउल्कापात हुआ। दशों दिशाएँ जलने लगीं। तब देवता, मुनि आदि महादुखी हो मेरे समीप पहुँचे और गजासुर के घोर तप का हाल कहने लगे। बोले कि आप कृपा करके गजासुर के पास जाकर वरदान दें जिसमें हम ऐसे दुःख से छूटें। हम आपकी शरण में आये हैं। मैं, भृगु और दक्ष आदि अपने पुत्रों को साथ लिये हुए गजासुर के स्थान पर गये, जहाँ वह तप कर रहा था। उसके ऐसे तपको देखकर सब आश्चर्य में हुए। मैंने कहा कि हे गजासुर! हम प्रसन्न हैं, जो इच्छा हो, वह वर लो। तब गजासुर ने नेत्र खोल प्रणाम किया। फिर स्तुति कर कहा कि जो पुरुष अथवा स्त्री कामदेव के अधीन है, वह मुझे किसी दशा में न मार सके। तीनों लोक में मुझको कोई न जीत सके। न मुझपर कोई शस्त्र चलाने के योग्य हो। मैं तीनों लोकों से अधिक बलवान् बनकर तीन लोक चौदह भुवनों को अपने अधीन करूँ। मुझे तीनों लोकों का सुख प्राप्त रहे। यह सुन मैंने कहा कि अच्छा, यह वर मैंने तुमको दिया। यह कहकर मैं चला गया। गजासुर ने अपने घर पहुँच बहुत सेना इकट्ठी की और तीनों भुवन जीत लिये। वह निष्कण्टक राज्य करने लगा। देवता आदि को अपने अधीनकर उनके सब रत्न छीन लिये। वह प्रजा का पालन भली भाँति करता था। इसी प्रकार वह बहुत दिनों तक राज्य करता रहा। फिर वह धर्म के विरुद्ध पाप करने लगा। ब्राह्मणों को नाना प्रकार के दुःख देने लगा। मनुष्यों से ही नहीं, देवताओं से भी सेवा कराने लगा। तपस्वियों, योगियों और धर्मवानों को बहुत सताने लगा; क्योंकि उसको अपने पिता के वध का स्मरण सदा बना रहता था, अकस्मात् एक दिन

गजासुर शिवजी की राजधानी आनन्दवन में बड़े अहङ्कार से पहुँचा। उसके जाने से काशीवासी अति भयभीत हो शिवलोक में जाकर शिवजी की स्तुति करने लगे। जो उत्पात गजासुर ने काशी में किये थे, वे सब विस्तार से वर्णन किये। कहा कि गजासुर ने तीनों लोकों को जीतकर काशी में पदार्पण किया है। उसने सबको अपने अन्याय से दुखी किया है। तुम्हारे सिवा उसको और कोई जीतनेवाला नहीं है। वह बड़ा बलवान् हृष्ट-पुष्ट और शरीरधारी है। हाथी की गति से चलता है। उसके चलने से पर्वत हिल उठते हैं और वृक्ष टूटकर गिर पड़ते हैं। उसकी आज्ञा से बादल आकाश से उड़ जाते हैं। उसके भय से समुद्र सूख जाते हैं। उसके शरीर की लंबाई सौ हज़ार योजन है। उतनी ही चौड़ाई है। वह चौकोण बना हुआ है। नाना प्रकार की माया करता है। वह इस समय वाराणसी क्षेत्र में सबको कष्ट दे रहा है। तुम्हारे भक्तों ने उसके हाथ से बड़ा कष्ट पाया है, इसलिए तुम दैत्य का वधकर सबको प्रसन्न करो। काशी की सदा तुमने रक्षा की है। यह सुन शिवजी तुरन्त त्रिशूल लेकर गजासुर के वध के लिए काशीजी में पहुँचे। शिवजी ने ऐसा भयंकर नाद किया कि दैत्यसेना में बड़ा हाहाकार मचा गया। तब काशीवासी जय-जयकार करके प्रसन्न हुए। जब गजासुर ने शिवजी को त्रिशूल लिये देखा तो शिवजी को धमकाता हुआ बहुत गर्जा। शिवजी और गजासुर लड़ने लगे। उस समय विचित्र युद्ध हुआ। गजासुर ने जो शस्त्र शिवजी पर चलाये, सबको काटकर शिवजी ने ऐसा भयंकर रूप धारण किया, जिसको देखकर सब दैत्य युद्धस्थान छोड़ भाग गये। यह देखकर गजासुर नङ्गी तलवार अपने हाथ में लेकर शिवजी के मारने को चला। बोला कि अब तुमको जीता जाने नहीं दूँगा। शिवजी के गण

भागकर शिवजी के शरणागत हुए। शिवजी ने गणों को अभय देकर इच्छा की कि अब गजासुर का वध करना चाहिए। यह सोचकर कि यह असुर किसी और के हाथ से न मारा जायगा, तुरन्त अपने त्रिशूल से तृण के समान गजासुर के शिर को छेद लिया। त्रिशूल के लगने से गजासुर पवित्र हो गया। उसका दैत्यभाव जाता रहा। अपने को छत्र के समान शिव के शीश पर देख उसने बड़ी प्रसन्नता से शिवजी से विनती की कि हे शिवजी! आप परब्रह्म हैं। मेरे बड़े भाग्य हैं, जो आपके हाथ से मेरी मृत्यु हुई और सब पापों से शुद्ध हो गया। मेरी यह विनय है कि आप मुझे परमपद देने की कृपा करें। आप सबसे श्रेष्ठ मृत्युञ्जय हैं। संसार में एक न एक दिन सब मरेंगे। ऐसी मृत्यु जो मुझको मिली है, उसको वेदों ने बहुत दुर्लभ कहा है। मुझे अब जीने की इच्छा नहीं है, इसलिए आप मुझको मार डालें। ऐसे सात्त्विक वचन सुनकर शिवजी ने कहा कि हम तुम्हारे ऐसे वचनों से प्रसन्न हुए। वर माँगो। गजासुर ने कहा कि जो आप इतने प्रसन्न हैं तो मेरी यह इच्छा है कि आप मेरे शरीर के चर्म को प्रतिदिन धारण किये रहें। आपके त्रिशूल से प्रतिदिन मेरे शरीर का स्पर्श हुआ करे। आप कृत्तिवासा के नाम से प्रसिद्ध हों, जिसको मनुष्य मुख पर लाते ही अपना मनोरथ पावें। गजासुर की प्रर्थना सुन-कर शिवजी ने कहा—'तथास्तु'। फिर शिवजी बोले कि तेरा यह शरीर मेरा लिङ्ग होकर कृत्तिवासेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हो जिसके केवल दर्शन ही से मोक्ष प्राप्त हो और दर्शन करनेवाले के सब पाप तुरन्त नष्ट हो जायँ। काशी में जितने हमारे लिङ्ग हैं, उन सबमें यह लिङ्ग सबसे बड़ा मणि के समान होगा। यह कह-कर शिवजी ने गजासुर को परमगति दी। उस स्थान पर बड़ा उत्सव हुआ। फिर हम सब बिदा होकर अपने-अपने लोक को

गये। यह शिवजी का चरित्र गजनाशन दोनों लोकों में आवागमन से छुड़ा देता है। जो इसको सुने-सुनाये, उसको शिवजी अपना लेते हैं।

छप्पनवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! अब हम नृसिंह अवतार का वृत्तान्त सुनाते हैं, जिस तरह विष्णुजी ने नृसिंह अवतार लिया और दिति के दोनों पुत्र, देवताओं को आनन्द देने के लिए मारे। शिवजी का कैसा अद्भुत चरित्र है। जब विष्णुजी ने नृसिंहरूप धारणकर दिति के दोनों पुत्रों को नष्ट किया, तब दिति ने बड़ा दुःख किया और महाशोकवती हुई। उस समय दुन्दुभि ने, जो दिति का भाई था, दिति को बहुत समझाया; पर दिति शान्त न हुई। दुंदुभि ऐसा कष्ट न सह सका। इससे उसने विचार किया कि किसी प्रकार देवताओं को कष्ट देना उचित है; क्योंकि उन्होंने विष्णुजी के हाथ से मेरे बहनोई को मरवा डाला है। वे किसके बल का भरोसा रखते हैं? किसके कारण अमर हैं? मुझको कौन उपाय करना चाहिए, जिससे वे दुःख पावें। निदान बहुत सोच-विचारकर उसने इस बात का निश्चय किया कि ब्राह्मण वेद से अपनी रक्षा करते हैं और देवता ब्राह्मणों से पलते हैं। जब ब्राह्मण नष्ट हो जायँगे, तब वेद भी विनाश को प्राप्त होंगे। जब वेद नष्ट होंगे तो आप ही देवता निर्बल होंगे। तब सबको जीतकर देवताओं का राज्य हम भोगेंगे। जिस प्रकार ब्राह्मण संसार में बड़े हैं और वे वेद मार्ग पर चलते हैं, उसी प्रकार काशी ब्राह्मणों का अच्छा घर है। इसलिए पहले काशी में जाकर ब्राह्मणों को मारना चाहिए, फिर और स्थानों पर पहुँचकर सबको खा जाऊँगा। यह विचारकर दुन्दुभि काशी में गया और हज़ारों ब्राह्मणों का वध कर डाला। जब ब्राह्मण कुश लेने के निमित्त वन

में जाते थे, वह तुरन्त उसी स्थान पर पहुँचकर ब्राह्मणों को खा जाता था। यहाँ तक कि कोई हड्डी भी न छोड़ता था। वह बड़ी माया करना जानता था। वन में पशु, नदी में मगर और पृथ्वी में मनुष्य बनकर ब्राह्मणों को खा डालता था। जब दोपहर के समय मुनीश्वर योग और ध्यान में लगते थे, तब और रात्रि को भी उन्हीं का जैसा अपना स्वरूप बनाकर जाता था। उसने अपने रूप बदल-बदलकर असंख्य मुनीश्वरों को खाया और किसी ने इस बात को न जाना। यहाँ तक कि वह हड्डी भी नहीं रखता था। एक दिन रात्रि के समय एक शिवभक्त शिवजी की पूजा करता था। जब वह ध्यान लगाकर शिवजी का स्वरूप देखने लगा, तब दुन्दुभि ने सिंह का स्वरूप बनाकर चाहा कि उसको खा जायँ, पर अपने में इतना बल न देखा। पर्वत के समान बड़ा होकर भी उसको खाना तो क्या, पकड़ भी न सका। तब श्रीशिवजी प्रकट हुए। उसने चाहा कि शिवजी को भी लील जाऊँ। वह शिवजी की ओर चला। शिवजी महाकुपित हुए। शिवजी ने उसको पकड़ लिया और हाथों से मार-मारकर मार डाला। उस शिवभक्त के प्राण बच गये। नेत्र खोल शिवजी के दर्शन पाये। उस समय सब काशीवासी इकट्ठे हुए और दुन्दुभि को, जो भयङ्कर रूप से पड़ा था, देखकर प्रसन्न हुए; क्योंकि उस समय तक ब्राह्मणों के गायब हो जाने से काशी के लोग आश्चर्य में थे। ब्राह्मणों ने मिलकर शिवजी की स्तुति की और विनय की कि इसी स्वरूप में आप यहीं स्थित रहकर हर व्याघ्र के नाम से प्रसिद्ध हों, अपनी नगरी काशी की रक्षा करें। अब यह सबसे श्रेष्ठ स्थान हो गया; क्योंकि यहाँ आप प्रकट हुए हैं। आपके दर्शन से हम अति प्रसन्न हुए। यहाँ आकर हमारी रक्षा करो, शत्रुओं का विनाश करो। यह सुनकर शिवजी 'तथास्तु'

कहकर बोले कि जो निश्चयपूर्वक हमारे रूप को देखेगा, उसके सब दुःख दूर करूँगा, उसको दोनों लोकों में बड़ा सुख दिया जायगा। इस मेरे चरित्र का स्मरणकर जो युद्ध करने जायगा, उसको निस्सन्देह विजय प्राप्त होगी। तब मैं और विष्णुजी सब देवताओं समेत आकर शिवजी की स्तुति करने लगे। फिर विनय की कि आपने दुन्दुभि को मारकर तीनों भुवन समेत हम सबकी रक्षा की। इसी प्रकार हम पर कृपा किया करो। हम आपके सेवक और आप हमारे स्वामी हैं। यह सुनकर शिवजी तुरन्त उसी लिङ्ग में प्रवेशकर अन्तर्धान हो गये। विष्णु और मैं दोनों सब देवताओं और ब्राह्मणों समेत अपने-अपने स्थान को गये।

सत्तावनवाँ अध्याय

इतना कह फिर ब्रह्माजी बोले कि हे नारद ! किसी समय में उत्पल और विदल नाम के दो दैत्य बड़े बलवान् उपजे। वे दोनों वन में जाकर बहुत वर्षों तक कठिन तप करते रहे। मेरी भक्ति में उन्होंने एक ही पाँव से खड़े होकर बहुत समय बिताया। तब मैं प्रसन्न होकर उन्हें वर देने को गया और कहा कि वर माँगो। तब दोनों भाई कहने लगे कि हम किसी मनुष्य के हाथ से न मारे जावें और सबसे अधिक बलवान् रहें। मैंने शिवजी का स्मरण कर कहा कि ऐसा ही होगा। वे अपने स्थान को चले गये। उन्होंने तीनों लोकों को जीत लिया। वे हर प्रकार से देवताओं को दुःख देने लगे। उनके पास अधिकार, धन और हर प्रकार की वस्तुएँ बढ़ गईं। देवता और मुनि दुखी होकर मेरी शरण में आये और सब वृत्तान्त कहा। मैंने कहा कि वे तो हमारे वरदान के कारण अवध्य हैं। केवल शिवजी के हाथ से मरेंगे। इससे तुम शिवजी का ध्यान करो। उनकी कृपा से तुम्हारा दुःख दूर

होगा। तब देवता आदि बिदा हुए। कुछ दिनों के बाद तुम उन्हीं दैत्यों के समीप गये। तुमने उनकी बहुत प्रशंसा कर उनकी सामग्री को भी बहुत सराहा। फिर तुम गिरिजा की प्रशंसा करने लगे। इस प्रकार गिरिजा की सुन्दरता की प्रशंसा कर बिदा हो चले आये। दोनों दैत्योंने गिरिजा की इतनी प्रशंसा सुनकर चाहा कि किसी ढब से गिरिजा को छीन लावें। वे बहुत समय तक इसी विचार में रहे कि कब गिरिजा हमारे हाथ में आवेंगी। यह सब वृत्तान्त शिवजी जान गये। एक दिन शिवजी ने एक विचित्र लीला रची। आप तो गणों के साथ बाजी खेलने लगे और गिरिजा ने अपनी सखियों के साथ ऐसा खेल रचा कि जो सबके मन भाया। अकस्मात् मृत्यु के पञ्जे में फँसे हुए दोनों दैत्यों ने आकाशमार्ग से आकर गिरिजाजी को खेल करते देखा। तुरन्त विमान उतार गणों के स्वरूप से गिरिजाजी के सामने गये और इच्छा की कि शिवा को ले भागें। यह देख शिवजी ने गिरिजा से युक्तिपूर्वक कहा कि ये तुम्हारे गण नहीं, बरन् दैत्य हैं। ये किसी और पुरुष के हाथ से मारे नहीं जा सकते। इनका तुम्हीं वध करो। यह शिवजी की सैन समझकर गिरिजा ने चाहा कि दोनों का विनाश करूँ। सो गिरिजा ने युक्ति से अपने गेंद को उन दोनों के ऊपर फेंक दिया। वे देर तक घूमते रहे। अन्त में पृथ्वी पर गिरकर मर गये। उस समय विष्णु, मैं और सब देवताओं ने आकर उस स्थान पर जहाँ ज्येष्ठेश्वर उपलिङ्ग है, शिवजी की और गिरिजा की स्तुति की और विनय की कि आप भक्तों के निमित्त अवतार धारण किया करते हैं, जैसा कि इस समय भी यह गयन्दकेश आपका लिङ्ग प्रकट हुआ। निदान शिवजी से बिदा हो सब अपने स्थानों को चले गये। और काशीवासी भी बिदा हुए। वह शिवजी का लिङ्ग उसी स्थान

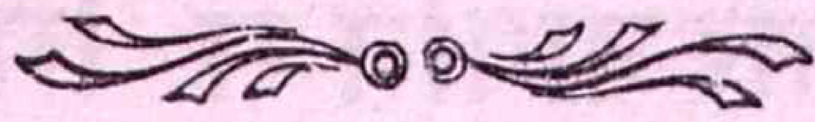
पर स्थित रहा, जिसकी सेवा से दोनों लोक में असंख्य आनन्द मिलता है। वह लिङ्ग कुण्डलेश के नाम से प्रसिद्ध है। हे नारद, शिवजी का यह चरित्र जो हमने तुमको सुनाया, बड़ा सुखदायक है। जो कोई इसको सुने-सुनावेगा, वह दोनों लोकों में बड़ा ही आनन्द पावेगा। यह युद्धखण्ड जो हमने तुमको सुनाया, उसके सुनने और पढ़ने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। कभी तीनों व्याधियाँ सामने नहीं आतीं; असंख्य धन रत्न प्राप्त होता है; शत्रु भी कभी बलवान् नहीं हो पाता, मनुष्य मोक्ष पाकर आवागमन से छूट जाता है।

इति श्रीशिवपुराणे ब्रह्मानारदसंवादे पञ्चमखण्डः समाप्तः ॥ ५ ॥



ॐ नमः शिवाय

शिवपुराण भाषा



छठा खण्ड

पहला अध्याय

इतनी कथा सुनाकर श्रीसूतजी शौनकादि मुनियों से बोले कि हे तापसो ! जब ब्रह्माजी कह चुके तो नारद मुनि ने सन्देह-युक्त होकर फिर पूछा कि हे पिता ! आपने अन्धकासुर की कथा कही, पर मुझे उसमें कुछ संशय उपजा है। कृपा करके आप उसको निवृत्त करें। शिवजी कैलास छोड़कर मन्दराचल को कब गये ? कृपा करके आप इस कथा का विस्तार से वर्णन करें। ब्रह्माजी ने नारद की बहुत सराहना कर कहा कि पूर्व समय में एक दिन शिव, जो कैलास के महाराजा हैं, विश्वेश्वरपुरी को गये। साथ में श्रीजगदम्बा गिरिजा महारानी और बहुत से गण भी थे। विष्णु, मैं और अपने कुल-परिवार और गणों समेत देवता भी मुक्तिपुरी में शिवजी के समीप गये। इन्द्र, देवता, मुनि, सिद्ध, अहीश आदि भी सब विद्यमान हुए। उस स्थान पर शिवजी के तेज और सभा के शृङ्गार का हम कहाँ तक वर्णन करें, वह कहा नहीं जा सकता। निदान शिवजी हम सबों को साथ लिए हुए विश्वनाथ के समीप पहुँचे। पहले मणि-कर्णिका में स्नानकर फिर विश्वनाथजी के दर्शन किये और अतिप्रेम से विश्वनाथजी की पूजा कर शिवजी अति प्रसन्न हुए, फिर गिरिजा ने भी विश्वनाथ की पूजा की। फिर गणों ने विश्वनाथ के पूजन में अपना प्रेम दिखाया और बड़ी स्तुति

की। फिर विष्णु ने, मैंने फिर सब देवता, मुनि, सिद्ध आदि ने विश्वनाथजी की पूजाकर स्तुति की। जब कैलासवासी शिवजी को ऐसी लीला करते विश्वनाथजी ने देखा तो प्रसन्न होकर दोनों भुजा फैलाकर गिरिजापति से मिले और प्रेम की अधिकता से आँसू बहे। कुशल-प्रश्न और अन्य संसारी रीतों के पूछने के उपरान्त विश्वनाथजी ने कहा कि हे गिरिजापति, चन्द्रभाल ! हम तुम एक ही रूप हैं। कुछ किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। संसार के उपकार निमित्त तुमने सगुण रूप धारण किया है। हम पर तुम्हारा बड़ा अनुग्रह हुआ, जो आप यहाँ आये। अब जो आज्ञा हो, कहिये। यह सुन गिरिजापति शिवजी ने कहा कि हे विश्वनाथ! हम और तुम किसी प्रकार से दो और अलग नहीं हैं। तुम तो तीनों लोकों के स्वामी हो, मुझको आज्ञा दो और आप इसी स्थान पर स्थित रहकर संसार का राज्य-कर तीनों लोक का पालन करो। यह सुन विश्वनाथजी हँसकर बोले कि तुम तो पूर्णरूप से शिव, ब्रह्म अनादि और आदि अन्त से रहित हो। इसी स्थान पर अपनी राजधानी नियत कर अपने गणों और गिरिजा समेत रहो। कुछ दिनों तक कैलास के समान देवताओं और मुनीश्वरों को लिये हुए यहाँ स्थित रहकर भरत-खण्ड को कृतार्थ कर दो। संसारी मनुष्यों के समान अनुग्रह कर शत्रुओं का नाश करो। जैसे तुम कैलास को प्रिय जानते हो, उसी प्रकार इस स्थान को भी प्रिय जानकर स्थित रहो। जो कोई इस पुरी में रहे, उसको मोक्ष दो। आपकी आज्ञा में तीनों लोक हैं। आपसे विरुद्ध होकर कहीं किसी का ठिकाना नहीं। आप सबसे श्रेष्ठ और स्वामी हैं। आपके सेवक तीनों लोक हैं। विष्णु और ब्रह्मा भी तुम्हारे अधीन हैं। उन्होंने तुम्हारी ही सेवा से ऐसे-ऐसे अधिकार पाये हैं। विष्णु और ब्रह्मा की रक्षा

भी तुम्हारे अधीन हैं। जब इनको कोई दुःख पड़े, तब आपको उनकी सहायता करनी उचित है। ब्रह्मा सब सृष्टि उपजाते हैं, विष्णु पालते हैं। इन्द्र इन्हीं दोनों की आज्ञा से राज्य करते हैं। इसलिए संसार के उपकार के निमित्त इनके कार्य किया करना। जो कोई काम इनसे न बन पड़े, उसको पूरा करने में साहस अवश्य करना। ऐसे वचन विश्वनाथजी के सुनकर गिरिजापति बोले कि हे देवताओं के देवता, महादेव ! तुम परब्रह्म हो, काल हो। जैसी आज्ञा आपने मुझे दी है, उसका पालन करूँगा। यद्यपि कैलास पर्वत, जहाँ हमारे सेवक और गण हैं, हमको प्रिय है; पर हमको काशी कैलास से भी अधिक प्यारी है। हम काशी में रहेंगे। यह सुन विश्वनाथजी अन्तर्धान हो गये। सदाशिव के पूर्णांश से गुप्त होकर विश्वनाथ उसी स्थान पर रहे। जो मनुष्य वहाँ मरता है, उसको तारकमन्त्र देकर मुक्ति देने की कृपा करते हैं। कैलासनाथ गिरिजापति भी गिरिजा समेत उसी स्थान पर स्थित हुए। इसी से काशी बड़ी सिद्धपीठ हुई, जहाँ जीव जप, तप, संयम और भक्ति के विना भी मुक्ति पाते हैं। वह काशी तीनों लोकों से श्रेष्ठ और प्रज्ञानक्षेत्र के नाम से तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। वहाँ शिवजी की सगुण, निर्गुण दोनों मूर्तियाँ दयाभाव से अपनी सभा समेत विराजमान हैं। मैं विष्णु, देवता, मुनि, सिद्ध, नाग, देवताओं समेत उन्हीं दोनों मूर्तियों की सेवा करता हूँ और स्तुतिकर शीश झुकाता हूँ। जिस तरह काशी में गिरिजापति शिवजी ने राज्य किया, उस कथा को मैं वर्णन करता हूँ। विश्वनाथ की आज्ञा पाकर गिरिजापति शिवजी काशी में स्थित हुए और हर प्रकार से मनुष्यों के कष्ट हरे। काशी को अपनी राजधानी बनाया, जो बड़ी मुक्ति देनेवाली है। गिरिजा भी उसी काशीस्थान में रहीं, जो अन्नपूर्णेश्वरी देवी

के नाम से प्रसिद्ध हुईं। इसी से काशी में कोई भूखा नहीं रहता। वे अपनी प्रजा के सब मनोरथ पूरे करती हैं। शिवजी ने जो अपनी एक मूर्ति उपजाई थी, जिसका भैरव नाम है, उसने मेरा पाँचवाँ सिर काट डाला और त्रिशूल को हाथ से लेकर बड़ा नाद किया। मैंने उस मुख से शिवजी की निन्दा की थी, इसी से भैरव ने शिवजी की आज्ञा से प्रकट होकर मेरा वह शीश काट डाला था। भैरव को मेरा सिर काटने से चाण्डाली हत्या लगी थी, इससे वे संसार भर में फिरते रहे। जब वे काशीजी में आये तो तुरन्त उनकी हत्या जाती रही। जहाँ पर वह मेरा शीश गिरा, उस स्थान पर शिवजी ने बड़ा नृत्य किया। वह बड़ा तीर्थस्थल हो गया और कपालमोचन के नाम से ख्यात हुआ। वह तीर्थ सब पापों को नष्ट करता है। भैरव शिवजी ही हैं, जिनका वर्णन ऊपर किया गया है। शिवजी ने इन्हीं भैरव को कोतवाली का पद दिया और कहा कि तुम्हारा पाप नष्ट हो गया। यह लीला मैंने इसलिए कही कि संसार में फिर ऐसा कर्म कोई न करे। तुम काशीजी की रक्षा करते रहो, पापियों को दण्ड दिया करो और सब प्रजा को कृतार्थ करो। यद्यपि भैरव का चरित्र बहुत बड़ा है, पर विस्तारभय से कहा नहीं गया। जब भैरव की उत्पत्ति और अवतार का वर्णन करेंगे, तब वहाँ उनका वर्णन विस्तार से किया जायगा।

दूसरा अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि एक दिन गिरिजापति गणों को साथ लेकर नन्दीश्वर पर सवार और गिरिजा को भी बैल पर साथ लिये आनन्दवन देखने को चले। आनन्दवन में पहुँचकर गिरिजा से उस क्षेत्र की लीला कह उसकी स्तुति करते विचरने लगे। उस क्षेत्र की प्रशंसा कौन किस मुख से कर सकता है? उसमें मन्दार, कनैर,

चम्पा, केतकी, अनार, चमेली, मालती, कुन्द, मौलसिरी, जाही, जुही, कमल आदि नाना प्रकार के सुगन्धित पुष्प जिनमें भौंरे अन्धे होकर लिपटते थे, खिले हुए थे। उत्तमोत्तम ताल-तमाल आदि वृक्षों पर पक्षी मधुर स्वर से गान करते थे। तीनों प्रकार की पवन चलती थी। मुनीश्वर नदी किनारे अपना नियम करते थे। सिंह आदि हिंसक पशु वैरभाव छोड़ अन्य जीवों को कुछ दुःख नहीं देते थे। ऐसा उत्तम वन देखकर गिरिजापति अति प्रसन्न हुए। फिर माली को बुलाया और उसे पारितोषिकआदि दे कृतार्थ कर दिया। फिर वन के भीतर गये, और गिरिजा से कहा कि जिस प्रकार हम तुमको चाहते हैं, उसी प्रकार यह काशी भी हमको प्रिय है, उसी प्रकार यह आनन्दवन भी हमको प्यारा है। इसमें मरने से मनुष्य को मोक्ष प्राप्त होती है। यह ब्रह्मज्ञान का क्षेत्र है। यहाँ मरकर तुरन्त भक्तजन आप शिव स्वरूप हो जाते हैं। यह आनन्दवन हमको प्राण के समान प्रिय है। यहाँ रहनेवाले सदा प्रसन्न रहते हैं। यह गिरिजा से कह शिव आगे चले। देखा कि आनन्दवन में हरिकेश अतिप्रेम से तप कर रहे हैं, अशोकवृक्ष के नीचे बैठे हुए "शिव शिव" जप रहे हैं उनके शरीर में केवल खाल और नसें दिखाई देती हैं। माँस का नाम नहीं मानो तप आप ही रूप रखकर तप कर रहा है, जिसके चारों ओर वन के जीव सेवा कर रहे हैं, सिंह, सर्प आदि बड़े-बड़े भयंकर जीव अपने स्वाभाविक वैरभाव को छोड़ रक्षा के लिए खड़े हैं। उन हरिकेश के शरीर पर नाना प्रकार की वनस्पतियाँ उगी हुई हैं। गिरिजा ने हरिकेश की यह दशा देखकर शिवजी से कहा कि इसको वर दीजिये, जो यह माँगे। यह तो आपका भक्त है। आपके भरोसे पर जीता है। इसके भाल पर कर कमल रखो। यह सुन शिव ने बैल से उतर उसके शरीर को

छूकर कृतार्थ कर दिया। हरिकेश ने नेत्र खोल दिये। शिव को देखा कि कोटि सूर्य की प्रभा समान महातेजवान् और कोटि-चन्द्र के सदृश भस्म रमाये, पञ्चमुख लाली लिये, त्रिनेत्र दस भुजा, गौर शरीर, गिरिजा वामभाग में, भाल में चन्द्रमा विराज-मान, ऐसे आगे खड़े हैं। ऐसा स्वरूप देखकर यक्षपति अर्थात् हरिकेश अपने मन में फूला न समाया उसके शरीर के रोम खड़े हो गये, मुख से बात नहीं निकलती थी। फिर उसने शिवजी को प्रणाम किया और स्तुति करने लगा। कहा—आपने जो मेरा शरीर छुआ उसने मुझे अमृत के समान हरा-भरा कर दिया। मैं आपकी शरण हूँ। आप मेरे स्वामी हैं। यह सुन शिवजी हरिकेश के माँगे बिना ही वर देने लगे कि हे हरि-केश! तुम बड़े भक्त हो। तुमको हर प्रकार का आनन्द प्राप्त हो। यह काशीपुरी मुझे अति प्रिय है। इसकी तुम रक्षा किया करो। शत्रुओं को क्रोधित होकर दण्ड दो, भलों का पालन करो। तुम दण्डधर और दण्डकर होकर दण्डपाणि के नाम से प्रसिद्ध होगे। हमारे गणों के भी स्वामी होकर जिसको अनाचार करते देखो, उसको शिक्षा दो। हम तुमको सम्भ्रम और उद्भ्रम नाम के दो गण अपनी आज्ञा के प्रतिपाल के निमित्त देते हैं। वे पापियों को भली भाँति दण्ड देंगे। तुमको हम आज्ञा देते हैं कि काशी में हमारे भक्तों के सिवा और कोई बसने न पावे और अभक्तों को यहाँ से दुःख दे निकाल दो। तुम यहाँ अन्न देनेवाले प्राण के दाता और ज्ञानदाता होकर हमारी आज्ञा से मुक्ति देने-वाले भी होगे। जो मनुष्य तुम्हारी सेवा करके हमारी पूजा करेगा, वह मुक्ति पावेगा। जो मनुष्य मोक्ष की कांक्षा करता है, उसको उचित है कि वह पहले हमारी सेवा करके हमारी पूजा इस स्थान पर करे। तुम हमारे गणों में सर्वश्रेष्ठ हो। दण्ड देना अपने

अधीन समझो शिवजी यह कह अपने बैल पर चढ़कर चले और पार्वती समेत अपने स्थान पर पहुँचे। उस दिन से दण्ड-पाणि और दण्डविनायक काशी के निवासियों को आनन्द देकर वहाँ स्थित रहते हैं। वे दुष्टों के लिए बड़े भयंकर और शिवजी के भक्तों के दुःख दूर करनेवाले हैं। दोनों गण सम्भ्रम और उद्भ्रम शिवजी के शत्रुओं को दंड और शिक्षा देते हैं। दण्डपाणि शिवजी की इच्छानुसार सब कार्य करते हैं। वीरभद्र ने दण्डपाणि का अनादर किया और अप्रसन्न होकर दूसरे स्थान पर जा रहे, अर्थात् उन्होंने दण्डपाणि की सेवा न की इससे वीरभद्र को काशी का वास प्राप्त न हुआ। इसी से अगस्त्यमुनि भी काशी में न रह सके। उदको दण्डपाणि की सेवा न करने से काशी छोड़ देनी पड़ी। एक धनंजयनाम का वैश्य बड़ा धनवान् था। वह शिवजी की भक्ति में मन न देता था। इसी प्रकार उसकी माता भी शिवजी से कुछ प्रेम न करती थी। जब धनंजय की माता मर गई तो धनंजय उनके आस्थि काशी में लाया। पर उसको कुछ भी शिव का प्रेम न था। दण्डपाणि ने शिवजी की इच्छा से यह चरित्र किया कि उनके गण ने धनंजय की माता की हड्डियों को देखा। गण का देखना ही था कि वे हड्डियाँ वहीं गुप्त हो गईं। धनंजय निरुपाय हो घर लौट आया। इसी प्रकार काशी में रह-कर जो दण्डपाणि को सेवा से प्रसन्न न रखे तो वह काशी में रहने नहीं पाता और उस पर बड़े-बड़े कष्ट पड़ते हैं। सो जिसको काशी में रहने की इच्छा हो, वह दण्डपाणि की अवश्य पूजा करे और शिव की भक्ति कर मुक्ति पावे।

तीसरा अध्याय

इतना सुन नारदजी बोले कि हे पिता! हमारी इच्छा है कि आप हरिकेश के सम्पूर्ण वृत्तान्त आदि से अन्त तक वर्णन करें।

ब्रह्माजी बोले कि किसी समय में रत्नभद्र मुनि यक्षपति गन्ध-मादन पर्वत में रहा करता था। उसके घर में संसार की सब वस्तुएँ थीं। वह बड़ा कुल, परिवार और सन्तानवाला था। जितने यक्ष थे उन सबका वही राजा था। हाथी, घोड़ा, पालकी आदि सब सामग्री, वस्त्र और रत्नों समेत सब कुछ उसके पास था। वह महासुन्दर और शिवजी की भक्ति में दृढ़ था। स्त्रियों की संगति से अलग रहा करता था। उसकी स्त्री पतिव्रता थी। वह रत्नभद्र की इच्छा बिना कोई काम न करती थी। रत्नभद्र उसको बहुत चाहता था। उसके समान पति की प्रिया स्त्रियाँ लोक में कम हैं। वह रत्न-भद्र को ही शिव जानती थी दोनों स्त्री-पुरुष संसार की भलाई के काम करते और इसमें शिवजी की प्रसन्नता जानते थे। साधु को प्रिय जानते, साधु को शिवजी के समान समझ उसकी सेवा करते और शिवजी के पूजन-पाठ में लगे रहकर सदा परिश्रम और प्रयत्न करते थे। उनके मन शिवमन्दिर थे। वे उदारता में विख्यात थे। नित्य उठ पार्थिव पूजन करते और रुद्राक्ष हाथ में लिये, भस्म तन में लगाये शिव भजन करते थे। उनका एक पुत्र था, जिसका नाम पूर्णभद्र था। माता-पिता अति प्रसन्न हुए। जब उनको जरा-वस्था प्राप्त हुई और दोनों मरे तो शिवपुरी में पहुँचे। उनकी मुक्ति हो गई। पूर्णभद्र ने उनका क्रिया-कर्म किया। फिर आप राजा होकर चतुरङ्गिणी सेना सहित सदा आनन्द करता रहा। पर जब कोई उसके सन्तान न हुई तो उसने मनमें विचार किया कि पुत्र दोनों लोकों में आनन्द देता है, स्वर्ग में पहुँचाता है, गृहस्थाश्रम का अलंकार उसी से है, अपने कुल के लिए सूर्य के सदृश है, जो संसार की अग्नि में जल गये हैं उनके लिए अमृत-सा है जो दुःख-सागर में डूब गये हैं, उनके लिए नाव है। पुत्र बिना और किसी उपाय से वंश नहीं चलता। यह सोचकर वह अति जवा सबका

उसका संसारी सुख दुःख में बदल गया। इस दुःख से उसको सब पदार्थ अशुभ और व्यर्थ जान पड़ने लगे। उसकी स्त्री कनककन्दला पतिव्रता, भर्ता की प्यारी, शिवभक्त, दृढ़-बुद्धि और धर्म में अति-दृढ़ थी। उसे पूर्णभद्र ने अपने समीप बुलाया और उससे कहा कि मुझे बड़ा दुःख है। संसार की सब सामग्री मेरे घर में उप-स्थित है; पर मुझको कुछ अच्छा नहीं लगता मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? मेरे दुःख को दूर करनेवाला कौन है? सन्तान बिना प्राण, जीवन, धन और पद को धिक्कार है, सहस्रों बार धिक्कार है। यह कहकर वह रोने लगा स्त्री ने ठंढी साँस खींचकर कहा कि तुम ऐसे बुद्धिमान् होकर क्यों व्यर्थ दुःख करते हो? इसका उपाय मैं बताती हूँ। उपाय करनेवाले को लोक में कोई वस्तु अप्राप्य नहीं है। जिनका मन शिवजी के प्रेम में मग्न है, उनके सब मनोरथ पूरे होते हैं। तुम शिवजी की शरण में जाओ; क्योंकि उनकी सेवा से सब कुछ मिलता है। वे सन्तान, धन, घर, घोड़े, हाथी, स्त्री, सुख, आनन्द, कुल, भुक्ति, मुक्ति, सब दे सकते हैं। जो शिवजी के भक्त हैं, उनको सब कुछ मिल सकता है। विष्णु ने भी शिवजी की भक्ति करके पालन करने की पदवी प्राप्त की है। शिवजी की कृपा से इन्द्र आदि दिक्पाल, शिलाद मुनि अपने पुत्रों सहित, जिनका नाम मृत्युञ्जय और नन्दीश्वर प्रसिद्ध है, और श्वेतकेतु, उपमन्यु, अन्धक, दैत्य, जो भृङ्गी नाम से विख्यात है, और दधीचि मुनि, ब्रह्मा, शुक्र, विश्वामित्र अर्थात् कौशिक, बाणासुर, गौतम, बृह-स्पति आदि सब शिवजी की भक्ति करके कैसे कैसे पद पर पहुँचे हैं। अर्थात् शिलाद मुनि के पुत्र मृत्युञ्जय भृङ्गी के नाम से प्रसिद्ध होकर शिवजी के गणों में गिने गये। श्वेतकेत काल-फाँस में पड़कर भी बच गये। उपमन्यु ने शिवजी की सेवा से क्षीरसमुद्र पाया। दधीचि मुनि ने सब देवताओं का परास्त

किया। ब्रह्माजी ने सदाशिवजी की सेवा से यह पद पाया है। शुक्र ने संजीवन मन्त्र शिवजी से पाया। विश्वामित्र ने शिवजी की सेवा से दूसरी सृष्टि बनाई। गौतम ने शिवजी की सेवा कर अपने पाप छुड़ाये। बृहस्पति ने काशी में शिवजी को पूजा तो सब देवताओं के गुरु हो गये। शिवजी तो शीघ्र ही प्रसन्न होकर वर देनेवाले हैं, यह बात वेद पुराण कहते हैं। तुम निश्चय करके शिवजी की शरण जाओ। यह सुन पूर्णभद्र आनन्द में मग्न हो काशी में गये और शिवजी के समीप पहुँच उनको भली भाँति गाना सुनाया; क्योंकि वह नादविद्या में अतिचतुर थे। उन्होंने इक्कीस मूर्च्छना और पाँच सौ इक्यावन तान और बारह श्रुतिभेद, जिनकी बहुत सी शाखाएँ हैं, शिवजी को सुनाईं। ऐसा अच्छा गाना यक्षपति का सुनकर शिवजी प्रसन्न हुए। कहा—वरदान माँगो। पूर्णभद्र ने स्तुति की और चरणों पर ध्यान लगा चुप रहे।

चौथा अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! पूर्णभद्र की स्तुति सुनकर शिवजी प्रसन्न हुए। फिर कहा कि वर माँगो। पूर्णभद्र ने विनय की कि मुझे सन्तान दीजिए। शिवजी अङ्गीकार कर अन्तर्धान हो गये। पूर्णभद्र फिर प्रसन्न होकर घर आया और अपनी स्त्री को वर पाने का हाल सुनाया। कुछ दिनों के उपरान्त पूर्णभद्र की स्त्री गर्भवती हुई। समय पर उसके पुत्र उपजा, जिससे उनको अति प्रसन्नता हुई। उसका नाम हरिकेश हुआ। जब वह बालक आठ वर्ष का हुआ तो उसने शिवजी पर बहुत प्रेम बढ़ाया। जब वह बालक लड़कों में खेलता तो मिट्टी का शिवलिङ्ग बनाकर उत्तमोत्तम पुष्प मँगाकर पूजन करता और लड़कों से उस शिवलिङ्ग की पूजा कराता। आप शिव-शिव कहता और दूसरों से भी कहलाता। निदान शिवचरित्र के सिवा उसके कान और बातों पर

ध्यान न देते। वह यही चर्चा रखता। उसकी आँखों ने सिवा शिवजी के और कुछ न देखा और सिवा शिवजी के चरण कमलों के किसी का ध्यान न किया। उसकी नाक ने और कोई सुगन्ध न सूँघी, उसकी जिह्वा ने शिवनाम के स्वाद के सिवा और कोई स्वाद न चखा। उसकी त्वचा ने सिवा सदाशिव के और किसी का स्पर्श न किया। न उसके वाक्य ने शिवजी के सिवा कोई बात स्वप्न में भी नहीं कही। हाथ शिवजी की पूजा में और पाँव कैलासपति के क्षेत्रों की यात्रा में लगे रहे। निदान रात्रि-दिवस उसको हर बात में शिवजी से काम था। वह हर अवस्था में शिवजी को देखता और सदा भस्म रमाये रुद्राक्ष के सर्वाङ्ग वस्त्र बनाये शिव-शिव कहता हुआ अहर्निश बिताता था। पूर्णभद्र ने अपने पुत्र की यह दशा देख कहा कि हे पुत्र! तुम हमारे बड़े शिवजी के कठिन तप से उपजे हो। तुमको उचित है कि गृहस्थ बनो और तपस्वियों के मार्ग को छोड़ो। हमारे घर में सब प्रकार का धन और रत्न हैं। तुम राजनीति को देखो। यह मार्ग जो तुमने अङ्गीकार किया है, दरिद्रियों का है। बाल्यावस्था को विद्याध्ययन में और युवावस्था को भोगविलास में बिताकर तीसरी अवस्था में तप करना। हमारे कुल का यही नियम है। निदान हरिकेश अपने पिता की आज्ञा को न पाल सकने के कारण घर से भाग गया। जब नगर के बाहर गया तो उसे दिशा-भ्रम हो गया। वह अतिचिन्ता से पश्चात्ताप करने लगा। कहा कि मैं तो बालकपन से घर में रहा, अब कहाँ मारा-मारा फिरूँ? मुझको कुछ नहीं सूझता। यह दुःख मुझे पिछले जन्म के पापों से मिला है। हाँ, एक समय मैंने अपने पिता के पास शैव लोगों से सुना था कि जिनको माता-पिता छोड़ दें या कुल के लोग त्याग दें, जिनका कोई सहायक न हो, जो पापी, अधर्मी,

दरिद्री, चिन्तित, भयभीत हों और जिनको कहीं शरण न मिले, जिनके पास कुछ न हो, जिनको कुछ न सूझ पड़े, जो संसार में सब तरह से अनाथ हों, ऐसे मनुष्यों के सहायक शिव और काशी हैं। इस बात को मन में विचारकर वह प्रसन्न हुआ और विदेशियों से काशी का मार्ग पूछकर वहाँ पहुँच गया। उसे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। उसने मणिकर्णिका में जाकर स्नान किया। फिर विश्वेश्वर महादेव की पूजा की। तब आनन्दवन को गया और दृढ़तापूर्वक कठिन तप करने लगा। वहाँ जो वर शिवजी ने उसको दिया, वह मैं पहले कह चुका हूँ, हरिकेश ने अपने कुल को तार दिया। वास्तव में शिव के भक्तों की ऐसी ही महिमा है। उसके माता पिता काशीवासी हो गये। शिव के भक्त अकेले नहीं मुक्त होते, वरन् कुल भर को मुक्त करते हैं। यह चरित्र दोनों लोकों में आनन्द देनेवाला है।

पाँचवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! इसीतरह शिव काशी में राज्य करते थे कि एक महाबलवान् दुर्गनाम का दैत्य देवताओं को दुःख देने लगा, जिससे धर्म नष्ट हो गया। उसको वर प्राप्त था कि तीनों लोकों में पुरुष के हाथ से न मरेगा। इस वर के बल से उसने तीनों लोकों को जीत लिया और पृथ्वी पर आकर ठहरा। उस समय विष्णु और मैं तथा सब देवता मुनियों समेत शिवजी की शरण गये। यह सम्पूर्ण वृत्तान्त सुन शिवजी ने गिरिजा से कहा कि तुम इस शत्रु का वध करो। यह आज्ञा पाकर गिरिजा ने विन्ध्यवासिनी होकर सदाशिवजी के ध्यान के उपरान्त दुर्ग दैत्य को मार डाला। तब से गिरिजा का नाम दुर्गा हुआ। देवता आदि को बड़ा आनन्द मिला। फिर देवता दुर्गा-देवी की स्तुति करने के उपरान्त अपने लोक को चले गये।

इसी प्रकार बहुत दिनों तक शिवजी ने काशी में राज्य किया। जब राजा दिवोदास ने कष्ट दिया तो शिवजी ने काशी को छोड़ा और मन्दराचल में जाकर बड़े उपाय से अपनी राजधानी काशी पाई। इतना सुन नारदजी आश्चर्य कर ब्रह्माजी से कहने लगे कि वह दिवोदास कौन है, जिसने शिवजी से काशी छुड़ाई? फिर शिवजी ने किस उपाय से काशी को पाया? ब्रह्माजी ने विस्तार से यह कथा इस प्रकार सुनाई। इससे पहले पद्मकल्प स्वायम्भुव मन्वन्तर में मनु के कुल में एक राजा रिपुंजय उत्पन्न हुआ। वह अपने नाम के अनुरूप क्षात्रधर्म में अति दृढ़, ब्रह्मभक्त और शिवपूजक था। उसने राज्य छोड़ काशी में बड़ा तप किया। इससे संसार में बड़ा अकाल पड़ा, जिससे मनुष्यों को बड़ा दुःख मिला। कितने ही मर गये कितने ही महा दुःख में पड़े। लोग अपने घर छोड़ पर्वतों की कन्दराओं में चले गये। जब देश में कोई राजा ही न रहा, तब चोरियाँ होने लगीं। मांसविक्रय मानों एक व्यवहार हो गया। धर्म भ्रष्ट हुआ। सब बातें धर्म के विरुद्ध हुईं। यज्ञ आदि कर्म नष्ट हो गये। कोई प्रसन्न न रहा। देवता आदि ने आकर मुझसे रोकर कहा कि आप कुछ उपाय करें। मैंने शिवजी का ध्यान करके दुःख का हाल जान लिया और काशी में जाकर जय जयकार शब्द किया। जहाँ वह तप करता था, वहाँ मैं गया। और उससे बहुत समझाकर कहा कि तुम फिर राज्य करो। तुम्हारे राज्य करने से वर्षा होगी, जिससे प्रजा इस दुःख से मुक्त होगी। तुमको वासुकि नाग अपनी कन्या देगा, उसका नाम अनङ्गमोहिनी है। वह पातिव्रत धर्म में अतिदृढ़ है। उससे तुमको बड़ा आनन्द मिलेगा। राजा ने उत्तर दिया कि आपकी आज्ञा को मैं अमान्य नहीं कर सकता। पर मैं अब इस शर्त पर राज्य करूँगा कि देवता आकाश में स्थित

हों, और नाग आदि पाताल में जाकर रहें, फिर पृथ्वी पर न आवें। हे नारद! मैंने अहंकार करके इस शर्त को मान लिया। मुझको शिवमाया ने मोह लिया, जिससे हम तीनों देवताओं ने और इन्द्र आदि सबने पृथ्वी छोड़ी। इतने में मैं शिवजी के समीप गया। शिवजी ने कहा कि किसी देश का राजा मन्दरगिरि पर तप कर रहा है? हम उसको वर देने जाते हैं। तुम भी साथ चलो। निदान वहाँ पहुँचकर शिवजी ने कहा कि वर माँगो। मन्दरगिरि ने कहा कि मैं काशी के समान हुआ चाहता हूँ। आप मेरे ऊपर आकर रहें। मेरी यही इच्छा है कि आप गिरिजा और गणों समेत कुशद्वीप को चलें। यह सुनकर शिवजी आश्चर्य में हो चिन्तित हुए। मैंने कहा कि हे शिवजी, मैंने आपकी माया में भूलकर रिपुंजय को वर दे दिया है कि देवता धरती पर न रहेंगे। आप भी मन्दरगिरि की विनय को मानें। मेरे वचन सुन शिवजी अपना लिङ्ग काशी में स्थित करके गणों समेत मन्दरगिरि को चले गये। इस रहस्य को किसी ने न जाना। हे नारद! उस समय भी शिवजी लिङ्गरूप होकर काशी में स्थित रहे, काशी को न छोड़ा। उस लिङ्ग का नाम अविमुक्त हुआ, जो आनन्दवन अर्थात् काशी में वर्तमान है। उस लिङ्ग का नाम लेने से सब कार्य पूर्ण होते हैं। पहले मैंने भी उस लिङ्ग का हाल नहीं जाना। जब शिवजी अपने अविमुक्त-स्थान को छोड़कर मन्दरगिरि को गये और विष्णुजी भी अपना धाम त्यागकर मन्दरगिरि पर सुशोभित हुए तो सूर्य, गिरिजा, गणपति, देवता, मुनि आदि सब अपने-अपने तीर्थ छोड़ वहीं जा रहे। शेष पाताल लोक को चले गये। सबके मन में बड़ा दुःख हुआ। जब हम सब चले गये तो रिपुंजय राज्य करने लगा। उसने अपनी राजधानी काशी नियत की और अपनी

विद्या और बल से देवताओं की ऐसी रीतियाँ प्रचलित कीं कि कोई मनुष्य उसके राज्य में कुकर्म नहीं करता था। देवताओं ने यथाशक्ति रिपुंजय के राज्य में कुकर्म देखने के बहुत उपाय किये; पर कोई कुकर्म न देखा। तब तो देवताओं ने अपने गुरु बृहस्पति के समीप जाकर स्तुति करने के बाद कहा कि आप ऐसी युक्ति बतावें, जिससे रिपुंजय को कोई पाप लग जाय और वह राज्य से निराश रहकर प्रतापहीन हो जाय। हम लोग अपने पुराने स्थानों को पावें। पहले तो वेद कहते हैं कि पृथ्वी पर रहना दुर्लभ है। जो वहाँ का बास मिल गया तो परमपद मिलने में क्या सन्देह है? मुख्य रूप से काशी में, जहाँ स्वयं सदाशिवजी विराजमान हैं, मरने से मुक्ति प्राप्त होती है। जिसने काशी को छोड़ा, वह मानों सब प्रकार से बिगड़ा। मुक्ति उससे निराश हो गई। काशीजी के चाण्डाल भी अन्य स्थान के राजाओं से भले हैं; क्योंकि अन्य स्थान में आवागमन और मृत्यु का भय रहता है। काशीजी में यह भय कहाँ है? देवताओं के वचन सुनकर बृहस्पति बोले कि धर्म छोड़े बिना राज्य नष्ट नहीं होता और धर्म त्यागे बिना उस स्थान को पाना कठिन है। राजा रिपुंजय धर्मात्मा है। पर तुम कुछ संशय मत करो। उपाय करो, जिससे रिपुंजय का धर्म नष्ट हो जाय। जाना जाता है कि राजा रिपुंजय अज्ञानी हो गया है और तुम सबको दुःख देता है। वह अवश्य ही नाश को प्राप्त होगा; क्योंकि देवताओं से शत्रुता करके कौन प्रसन्न रहा है? जब नल, दधीचि, शंख, ययाति, रावण, बाणासुर आदि बहुत से बड़े बड़े लोग अपने धर्म को छोड़कर सुखी नहीं हुए हैं, तो मनुष्य क्या चीज है? तुम तेज को बुलाकर कहो कि वह पृथ्वी से अपना अंश खींच ले। अग्नि बिना पृथ्वी पर कोई कार्य न होगा। रिपुंजय का

राज्य अपने आप नष्ट हो जायगा। बृहस्पति से यह उपाय सुनकर सब देवता हँस पड़े। इन्द्र ने तुरन्त अग्नि को बुलाकर सब हाल कहा। अग्नि ने तुरन्त आज्ञा का पालन किया, अर्थात् अग्नि ने इन्द्र की आज्ञा से तीनों प्रकार के अपने रूप (प्रत्यक्ष, जलगत, जठरगत) को पृथ्वी से अन्तर्धान कर लिया। अग्नि के गुप्त होने से धरती के रहनेवाले महादुखी हो गये और सब इकट्ठे होकर रिपुंजय के समीप गये। जब रिपुंजय ने इस बात को सुना तो उसको निश्चय हुआ कि यह देवताओं ने मेरे साथ शत्रुता की है। वह कुछ चिन्तित न हुआ। अपनी प्रजा से कहा कि तुम कुछ शङ्का न करो। मैं अपने बल से तुम पर कोई दुःख न आने दूँगा। यह कहकर प्रजा को बिदा किया। फिर अपने मन में विचारने लगा कि देवताओं ने आज अग्नि को बुला लिया है; कल और किसी को बुलावेंगे। इससे मुझको उचित है कि मैं देवताओं की सहायता न लेकर अपने ही प्रताप से राज्य करूँ। यह सोचकर उसने सब देवताओं को, जो उसके यहाँ रहा करते थे, बिदा कर दिया। फिर उसने तीनों प्रकार की अग्नि आप बनकर सारी प्रजा का भय दूर कर दिया। आप ही पवन, जल और आप ही चन्द्रमा होकर प्रकाश करने लगा। निदान जिस वस्तु से प्रजा का उपकार होता था, उसी का रूप उसने धारण किया। यह देखकर सब देवता बहुत लज्जित हुए। उनके उपाय ने कुछ काम न किया।

छठा अध्याय

यह सुन नारद बोले कि हे पिता! पहले कभी दिवोदास अर्थात् रिपुंजय के समान कोई ऐसा राजा नहीं हुआ, जिस पर देवताओं की युक्ति भी निष्फल हो गई हो। सो हे ब्रह्मन! मेरी इच्छा है कि ऐसे प्रतापी राजा का वृत्तान्त विस्तार से सुनूँ, जिसने अपनी

प्रजा को दुखी न होने दिया। मैं जानना चाहता हूँ कि फिर देवताओं ने लज्जित होकर और कोई युक्ति सोची या बैठ रहे? शिवजी काशी छोड़ जब मन्दराचल पर्वत पर चले गये तब वहाँ उन्होंने क्या-क्या चरित्र किये? उन्होंने क्योंकर काशी को फिर पाया? ब्रह्माजी बोले—धन्य हो नारद! तुम सदैव शिवकथामृत पीने के प्यासे रहते हो। तुम ये सब बातें केवल शिवजी का चरित्र और लीला जानो जिनके अधीन सारा संसार है। संसार में ऐसा कौन है जो शिवजी को कुछ दुःख दे सके। अब मैं सम्पूर्ण कथा कहता हूँ। दिवोदास शिवजी का बड़ा भक्त था। उसने जब देखा कि काशी को शिवजी प्राण के समान समझते हैं तो उसने भी काशी की बड़ाई जानकर काशी में रहना अङ्गीकार किया। उससे देवताओं की कुछ न चली; क्योंकि वह काशी में अतिनम्रता से रहा करता था। उसने उत्पातरहित राज्य किया। किसी को कुछ दुःख न था। युद्ध में वह सिंह के समान था। यद्यपि उसे राज्य की सब सामग्री प्राप्त थी, देवता भी उसकी आज्ञा का पालन करते थे, गन्धर्वों, विद्याधरों से उसकी सभा भरी रहती थी और धन-द्रव्य की कुछ गिनती न थी, तो भी उसने धर्म के मार्ग को न छोड़ कोई कुकर्म नहीं किया। सब प्रकार की कुचाल छोड़ अपना राज्य करता रहा। उस दिवोदास ने सूर्य होकर शत्रुओं को जलाया, चन्द्रमा होकर मित्रों को आनन्द दिया। वह धनुष को युद्धस्थान में उठाकर विजय पाता रहा, इससे उसको लोग इन्द्र कहने लगे। वह अग्निरूप था; क्योंकि उसने अपने शत्रुओं के नगरों को अपने तेज से जला दिया। धर्म-अधर्म का विवेक करके दण्ड देने के कारण धर्मराज जाना गया। वह अपराधियों को दण्ड और धर्मात्माओं, भले मनुष्यों को आनन्द देता था। उसने अपने शत्रुओं को जीतकर वरुण की, वायु के समान चलकर पवन की और

याचकों को धन देकर कुबेर की पदवी प्राप्त की। सबका पालन करके और शत्रुओं को जीतकर शिवजी का पद पाया। तप और योग में वह विष्णु के समान था। सबको भाग्य का फल देने के कारण वह ग्रह-उपग्रह से अधिक था। उसके समान कौन कला-कुशल था, जिसने सर्व कलाकारों को अपनी कला सिखाकर सन्तुष्ट कर दिया। वह रूप में अश्विनीकुमार से भी अधिक सुन्दर था। गानविद्या में विद्याधरों को भी उसने जीत लिया। शिवजी को प्रसन्न करने के समय अपने गाने से उसने गन्धर्वों को भी अहंकार-रहित कर दिया। इसी प्रकार उसने अनेक गुणों और कलाओं से परिपूर्ण देवताओं के समान होकर राज्य किया। यक्षों को नाना प्रकार के अधिकार सौंपे। नागों को भी नाना प्रकार के पद प्राप्त हुए। गुह्यक छिप रहे और उन्होंने दिवोदास की सेवा में दृढ़ रहकर दैत्यों का स्वभाव त्याग दिया। दिवोदास के प्रताप से इन्द्र ने अपना ऐरावत हाथी और सूर्य ने उच्चैःश्रवा घोड़ा दे दिया। उसके वीर किसी से कभी हारे नहीं। उनके सम्मुख देवताओं का धैर्य भी जाता रहा। उसने बड़े धर्म से राज्य किया। उसके शासन में आकाश के राज्य से पृथ्वी का राज्य बहुत बढ़ गया था। आकाश में तो केवल एक ही चन्द्रमा है उसके यहाँ धरती पर असंख्य चन्द्रमाओं के समान चद्रमुखी सुन्दरियाँ थीं। आकाश पर केवल एक कामदेव अनङ्ग था, धरती पर सभी मनुष्य पूर्णकाम थे। आकाश पर इन्द्र पर्वतों के पङ्ख काटनेवाले हैं, पर धरती पर एक यही गोत्र (अर्थात् अपने कुल) का मारनेवाला हुआ। आकाश पर चन्द्रमा पन्द्रह दिन के बाद घटता है; पर धरती पर कोई ऐसा क्षीण होनेवाला न था। आकाश पर तो केवल एक प्रकार के नवग्रह प्रसिद्ध हैं, पर पृथ्वी पर सब गृह नवग्रहों से सुशोभित थे।

आकाश पर केवल एक सुवर्णगर्भ अर्थात् ब्रह्मा हैं, पर धरती पर सब भवन सुवर्णगर्भ अर्थात् सुवर्ण से भरे थे। आकाश पर हंस आदि केवल सात घोड़े प्रसिद्ध हैं; पर धरती पर असंख्य जातियों के घोड़े थे। जिस प्रकार आकाश अप्सराओं से अलंकृत है, उसी प्रकार रिपुञ्जय का नगर (अर्थात् काशी) भी अप्सराओं, मंगला-मुखियों से खाली न था। स्वर्ग में केवल पद्मा (अर्थात् लक्ष्मीजी) अकेली हैं, पृथ्वी पर पद्माकर अर्थात् सम्पूर्ण कमल की खान वर्तमान थी। आकाश पर धनदायक केवल एक ही कुबेर है, पर धरती पर घर घर असंख्य धनद उपस्थित थे। इसी प्रकार राजा, प्रजा और नागरिक कोई धर्मशास्त्र के विरुद्ध न चलता था। उसके राज्य में कोई मनुष्य अपनी स्त्री के सिवा दूसरी स्त्री से भोगविलास में प्रवृत्त न हुआ। स्त्रियाँ भी पातिव्रत धर्म में दृढ़ थीं। कोई मनुष्य उसके नगर में धनहीन, हिंसक, अधर्मी, निर्लज्ज, चुगली खानेवाला, दुश्शील और असत्यवादी न था। उसके नगर में मूर्ख ब्राह्मण, वीरता-रहित क्षत्रिय व्यापार-रहित वैश्य और सेवाहीन शूद्र न था। चारों आश्रम अपने अपने धर्म में दृढ़ थे। शेष अन्य जातियाँ अपनी पुरानी चालों में प्रवृत्त थीं। उसके राज्य में न कोई अनाचारी, दुष्ट शत्रु, कृपण, छली, पतिहीन स्त्री थी। चारों ओर वेदाध्ययन और शास्त्र का अभ्यास होता था। मद्यपान और मांसभक्षण का प्रचार यज्ञ के सिवा और कहीं न था। बालक माता-पिता की सेवा करते थे; छोटे भाई अपने बड़े भाइयों की सेवा निष्कपट भाव से करते थे। नौकर-चाकर स्वामी की सेवा धर्मपूर्वक करते थे। स्वामी पर आपदा भी पड़े तो उसे न छोड़ते थे। दण्ड के शब्द को संन्यासी के सिवा और किसी के पास न सुना। धनवानों से तपस्वी का पद बड़ा था। उससे योगी की, बरन् मुख्य करके ब्रह्मज्ञानी की पदवी श्रेष्ठ थी। उससे भी बढ़कर शिव के योगी को मानते थे। स्थान-स्थान पर

ब्रह्मभोज होते थे। ब्राह्मणों की सेवा को राजा से लेकर प्रजा तक प्रिय जानते थे। चारों ओर कुआँ, बावली, तालाब, पग पग पर फुलवारियाँ और उद्यान उपस्थित थे, जिनके बनवानेवाले मन का मनोरथ पाते थे। सब मनुष्य तीर्थ, व्रत, दान देवाराधन में प्रवृत्त रहते थे, किसी को किसी से कुछ दुःख या कष्ट न था। ब्रह्मभक्ति के सिवा और कोई कार्य न था। सब स्त्री-पुरुष केवल वेद की आज्ञा पर चलते थे, और अपनी प्राचीन रीति को न छोड़ते थे। वे सब धनवान् और हृष्ट-पुष्ट होने पर भी कुकर्मों से बचे रहते थे। प्रतिदिन शिव की भक्ति में मग्न रहते थे। किसी को द्रव्य, पुत्र, वस्त्र, भूषण आदि का दुःख-कष्ट न था। सब स्त्री-पुरुष रत्न और भूषणों से लदे रहते थे। सबसे अधिक धनी दिवोदास राजा था, जिसके राज्य में किसी को कुछ दुःख न हुआ, उससे अधिक कौन धनवान् है। उसने अपनी प्रजा को अपने पुत्र के समान पाला। उसके रक्षक शिवजी थे। उसको कोई वस्तु दुर्लभ न थी। हे नारद! यह सत्य है कि जिसके सहायक शिवजी हों, उसको किस तरह दुःख पहुँच सकता है। जिसके मन में रात-दिन सदाशिव रहते हैं, उसको आनन्द के सिवा दुःख नहीं हो सकता। उसके राज्य में देवताओं ने ढूँढ़ने पर भी कोई दोष न पाया। देवताओं ने युक्तियाँ करके भी सिद्धि न पाई। दिवोदास राजनीति और धर्म में बड़ा ज्ञानी और सबका मित्र था। वह तीनों शक्तियाँ और षट्गुण को धारण करके चारों उपायों का अच्छी तरह से प्रयोग करता था, जिससे उसे कभी कोई कठिनाई नहीं होती थी। निदान जब देवता सब उपाय करके थक गये और राजा की हानि न हुई, तब इन्द्र ने देवताओं समेत मेरी शरण में आकर स्तुति कर अपना दुःख वर्णन किया। कहा—जिस तरह से राजा दिवोदास को कोई पाप लग जाय, वह पृथ्वी के राज्य

से हीन हो जाय और हमको फिर पृथ्वी मिले, वह उपाय कीजिये। जब तक यह न होगा, हमारे दुःख दूर न होंगे। स्वर्ग से अधिक पृथ्वी का पद है, उससे अधिक तीर्थ का पद है। पृथ्वी में सर्वोपरि काशी क्षेत्र है। मैंने सोचकर उत्तर दिया कि दिवोदास बड़ा धर्मात्मा है। मैंने अपने प्रयोजन से उसको राजा बनाया था। वह देवताओं को दुःख देकर भी तप के कारण बचा रहता है। उसको दुःख नहीं होता। पर जो दुःख-कष्ट तुमको है, वही मुझे भी है। मुझको प्रयाग बहुत प्रिय था, पर अब मेरा प्रयाग में रहना कठिन हो गया। प्रयाग बिना मुझे आनन्द नहीं, सुख नहीं। यह कह देवताओं को अपने साथ ले मैं विष्णु के समीप गया और स्तुति करने के उपरांत विनय की कि ऐसा कुछ उपाय कीजिये, जिससे मुझे और देवताओं को आनन्द प्राप्त हो। दिवोदास राज्यहीन हो जाय। विष्णु ने अति खेद से कहा कि हे ब्रह्मा! मुझको बड़ा खेद है। मैं चाहता हूँ कि दिवोदास पृथ्वी पर से निकाल दिया जाय, पर वह बड़ा धर्मवान् है। काशी का पालन करने के कारण शिवजी भी उसको चाहते हैं। मुझे वृन्दावन प्राणों से बढ़कर प्रिय था, वह मुझसे छूट गया। इससे मेरा कुछ वश नहीं है। यद्यपि मेरी इच्छा है और शिवजी भी काशी के न मिलने से बहुत दुखी हैं; अपना दुःख सदा कहा करते हैं; पर अपराध के बिना शिवजी भी उसके राज्य में कोई विघ्न नहीं डाल सकते। देवता आदि की भी कुछ युक्ति नहीं चलती। इसका कारण यह है कि काशीपुरी शिवजी का ही रूप है। परमशैव अर्थात् विश्वनाथ ने भी इस बात को कहा था। उसी काशी में दिवोदास धर्म के साथ रहता है। उसके राज्य का नाश कैसे हो? हाँ, जो सदाशिवजी हम पर कृपा करें तो सम्भव है कि हम सबके कार्य पूर्ण हों। हम सब उनके समीप चलें। अपना दुःख कह दें। उनकी

सेवा करें। निश्चय ही शिवजी प्रसन्न होंगे; क्योंकि काशी उनको अतिप्रिय है। यह सलाह कर विष्णु और मैं, दोनों देवताओं समेत शिवजी के पास गये और प्रणामकर हाथ जोड़ स्तुति की।

सातवाँ अध्याय

इतना कह ब्रह्माजी बोले कि शिवजी ने स्तुति सुनकर कहा कि तुम सब मिलकर कहाँ आये हो? हे विष्णु, ब्रह्मा और देवताओ! अपना दुःख वर्णन करो। तुमने क्या दुःख पाया? सबने सोच-विचारकर उत्तर दिया कि हे महाराज! दिवोदास दृढ़ धर्म धारण कर, पाप छोड़, पृथ्वी का राज्य कर रहा है, जहाँ नाना प्रकार का आनन्द प्राप्त है। यद्यपि वह ब्रह्मभक्त है, पर हठ से उसने किसी देवता और नाग आदि को पृथ्वी में नहीं रहने दिया। यद्यपि दिवोदास देवताओं की सेवा में लगा रहता है, पर तीर्थ बिना हमको आनन्द नहीं। इसके सिवा सबको काशी अतिप्रिय है। आपको भी प्राण के समान प्यारी है। वह काशी सबको निर्वाणपद देती है। इससे उचित है कि आप इसके निकालने का कोई उपाय करें। दिवोदास के राज्य छोड़ने पर हम सब राज्य पावेंगे, काशी को देखकर मन प्रसन्न करेंगे। शिवजी ने कहा कि दिवोदास ने हमारी बड़ी सेवा की है। काशी हमारे दूसरे शरीर के समान है। उसके रक्षक को दुःख नहीं मिल सकता। यह कहकर शिवजी चुप हो गये और काशी के प्रेम में मग्न होकर अपने शरीर को न सम्हाल सके। आँखों से आँसू बहने लगे। कुछ देर बाद चेत में आये और काशी की स्तुति करने लगे कि हे आनन्द देनेवाली काशी! तू अपनी अप्रसन्नता दूर करके मुझको कब मिलेगी। तेरे वियोग की अग्नि मुझको जलाती रहती है। अमृत भी दुःख देता है। जो तू मुझको न मिली तो निश्चय जानना कि मेरा जीना कठिन है। ऐसे करुण वचन

कहकर शिवजी मूर्च्छित हो गये। गिरिजा ने कहा कि हे शिव! तुम तो सबके स्वामी हो। संयोग-वियोग सब तुम्हारे हाथ है। तुम तो तीनों लोक के राजा हो। तुम्हारी कोपदृष्टि से प्रलय होता है। इस प्रकार बहुत स्तुति कर कहा कि शीघ्र ही काशी को सिधारो। तुमको कौन देवता, मुनि या मनुष्य रोक सकता है? तुम तो स्वाधीन हो। काशी क्यों छोड़ दी है? काशी तो सर्वोपरि है, जिसके निवासी यमराज से नहीं डरते। मुझको काशी अति-प्रिय है। वह पापियों के लिए मोक्ष की जगह है। इससे आप वह उपाय करें कि फिर काशी मिले, मन को शान्ति प्राप्त हो। गिरिजा की बातें सुनकर शिवजी प्रसन्न हो कहने लगे कि हे गिरिजा! तुम मुझे बहुत प्यारी हो; पर काशी मुझको तुमसे दूनी प्यारी है। अब तुम्हारे अमृत के समान वचन पान कर मुझे कुछ कुछ आनन्द मिलता है। पर तुमको मालूम है कि मैं दिवोदास का आदर और मान करता रहता हूँ। इसके सिवा उसने ब्रह्मा से आज्ञा पाकर काशी का राज्य लिया है। उसने कहा था कि जो पृथ्वी में देवता आदि न रहें तो हम राज्य अङ्गीकार करते हैं। इसी से मुझको काशी छोड़नी पड़ी। दिवोदास मुझको बहुत प्रिय है; क्योंकि वह मेरी पुरी की रक्षा करता है। वह बहुत ही धर्म में दृढ़, प्रजा के पालन में चतुर और मेरी सेवा में प्रवृत्त है। उसके राज्य को मैं क्यों छीन लूँ? अपनी इच्छा को क्यों छोड़ूँ? क्योंकि संसार में जो धर्मवान् हैं, मैं उनका रक्षक हूँ, इसमें कुछ सन्देह नहीं। उनकी कुछ भी हानि नहीं होती। इस बात को तुम भलीभाँति जान लो। जो कोई उनको हानि पहुँचाने की इच्छा रखता है, उसको आप ही दुःख पहुँचता है। मैं किसी निर्दोष को हानि पहुँचाने का उद्योग नहीं करता। मुझे ऐसी कोई बात नहीं सूझती जिससे काशी को पाऊँ। शिवजी इसी चिन्ता में थे कि

काशी क्योंकर पावें, अकस्मात् योगिनियों को अपने सम्मुख देखा। उनको बुलवाकर बिठाया और बहुत आदर करके कहा कि तुम सब काशी को जाओ। दिवोदास जो धर्मपूर्वक राज्य कर रहा है, उसके धर्म में विघ्न करो, जिसमें वह काशी को छोड़ दे। ऐसा उपाय करो कि मैं फिर काशी में सुशोभित होकर आनन्द उठाऊँ। इस प्रकार बहुत कुछ सिखा-पढ़ाकर भेजा। आप समय को देखते रहे। योगिनीगणों ने तुरन्त काशी में पहुँच अपना देवस्वरूप बदला और वहाँ स्थित हुईं। वे काशी को देख कर अतिप्रसन्न हुईं। फिर कई योगिनियाँ तपस्विनियों के समान बनीं और कई रोगिनियों का स्वरूप रख बहुत रोने लगीं। कोई मालिन, कोई नाइन, कोई दाई, कोई रोटी पकानेवाली, कोई बजानेवाली, कोई गानेवाली, कोई सामुद्रिकविद्या की जाननेवाली और पुत्र देनेवाली, कोई चित्र आदि लिखनेवाली, कोई मूर्ति बनानेवाली, इसी प्रकार बहुत रूप धारण कर वे घरों में आने-जाने लगीं। यद्यपि उन्होंने सब प्रकार की उत्तम युक्तियाँ कीं, पर दिवोदास के नगर में कोई पापी न हुआ। तब इकट्ठी होकर परस्पर कहने लगीं कि हम मन्दराचल पर्वत में जाकर क्योंकर अपना मुख शिवजी को दिखलावें? सो चौंसठ योगिनियाँ मणि-कर्णिका के आगे स्थित हुईं और शिवजी के समीप लज्जा से न जा सकीं। जो उनको प्रणाम करता है उसको कोई दुःख नहीं पहुँचता।

आठवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! योगिनीगण के न लौट जाने से शिवजी को चिन्ता उपजी तो सूर्य से कहा कि तुम काशी में जाकर तुरन्त समाचार लाओ कि योगिनीगण के अधिक विलम्ब करने का क्या कारण है। हमको बड़ी चिन्ता है। तुम अपने उपाय से राजा दिवोदास का धर्म भ्रष्ट करो कि वह राज्य से हीन हो जाय। पर

ध्यान रहे कि दिवोदास की कुछ अप्रतिष्ठा न होने पावे; क्योंकि वह धर्मात्मा है। अपनी बुद्धिमानी से उसके धर्म को छुड़ा दो, फिर यहाँ चले आओ। तुम त्रिभुवन में श्रेष्ठ हो। तुम्हारा नाम जगच्चक्षु है। अब सूर्य देवताओं का स्वरूप बदलकर काशी में पहुँचे। उन्होंने बहुत प्रकार के स्वरूप रखे; पर उनकी भी कोई युक्ति न चली। कहीं वह भिखारी, कहीं उदार, कहीं ज्योतिषी, कहीं पर दीन मतिहीन, कहीं योगी जटाधारी, कहीं नग्न, कहीं वेद के विरुद्ध प्रचार करनेवाले, कहीं छली बने। किसी स्थान पर उन्होंने इन्द्रजाल फैलाया। कहीं उन्होंने ब्रह्मज्ञान प्रकटाया। कहीं वह मीमांसक, कहीं विद्वान्, कहीं सर्वज्ञ, किसी स्थान पर ब्राह्मण, कहीं राजकुमार, कहीं नीच, कहीं उच्च बनकर असंख्य उपाय किये; पर कुछ न हुआ। एक वर्ष बीत गया। निरुपाय हो उन्होंने अपनी निन्दा की और कहा कि मुझको धिक्कार है। मैं कुछ न कर सका। मैं क्या करूँ? कुछ नहीं चलती। जो शिवजी के पास जाता हूँ तो डरता हूँ कि उनके कोप से जल न जाऊँ। तब ब्रह्मा और विष्णु की भी कुछ न चलेगी। इससे काशी में ही रहना ठीक है; क्योंकि शिवजी की आज्ञा के उल्लंघन का पाप जो होगा, वह सब काशी में रहने से नष्ट हो जायगा। काशी शिवजी का रूप है। उसका सेवन बड़ा धर्म है। बाकी सब उपाय अन्धे कुएँ हैं। यद्यपि त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम अङ्गीकार करना बहुत उत्तम है; पर धर्म को स्वीकार करना बहुत ही अच्छी बात है। यह शरीर अवश्य ही नष्ट हो जायगा। उचित है कि ऐसे शरीर को पाकर प्रीति के साथ धर्म की रक्षा करे। अर्थ और काम को धर्म के विपरीत न सेवन करना चाहिए; क्योंकि धर्म के विरुद्ध चलनेवालों को वैकुण्ठ नहीं मिल सकता। जो ये दोनों इस योग्य होते तो शिवजी क्यों अर्थ (धन) का त्याग करते और

काम को किस लिए भस्म कर डालते! कुछ लोगों का मत है कि अर्थ रक्षा के योग्य है। पर मैं इसे नहीं मानता; क्योंकि राजा हरिश्चन्द्र, कुश और ययाति ने धर्मके लिए अर्थ को छोड़ दिया। ब्राह्मण दधीचि और राजा शिबि ने अपने शरीर को छोड़ दिया; और धर्म को नहीं छोड़ा, जिससे उनको मोक्ष प्राप्त हुआ। इसके सिवा राजा बलि, विरोचन और प्रह्लादने धर्म के लिए दुःख उठाये। काशी-सेवन से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। वह हमारी रक्षा करेगी और शिवजी भी क्रोध न करेंगे। जो मनुष्य काशी पाकर फिर उसको प्रसन्नता से छोड़ते हैं, वे मानों रत्नों के बदले काँच लेते हैं। जो कोई शिवजी को छोड़कर काशी-सेवन करता है, तो भी शिवजी प्रसन्न होते हैं, क्रोध नहीं करते। सूर्य ने यही विचार कर अपने बारह शरीर धारण किये और अति प्रेम से काशी में स्थित हुए। उनके बारह नाम हुए, जो आगे लिखे जाते हैं। वे सबकी कामना पूर्ण करते हैं। प्रथम सूर्य लोलार्क असीसंगम पर स्थित हैं। वह सब तीर्थों का शिरोमणि है। दूसरे उत्तरार्क हैं, जो भक्ति करने पर बहुत बड़ा फल देते हैं। वह उस स्थान पर हैं, जहाँ पहले राजा प्रियव्रत ने जाकर सबसे पहिले स्त्री का शरीर पाकर तप किया था और शिव और शिवरानी से वर पाकर गिरिजा की सखी हो गये थे। उस स्थान पर एक बकरी ने राजा की लड़की का जन्म पाकर मुक्ति पाई। तीसरे सूर्य आदित्य साम्बपुर में उपस्थित हैं। वहाँ साम्ब का कुष्ठ दूर हुआ था। पाँचवें सूर्य मयूषादित्य हैं, जो शिव गिरिजा की सेवा से शिव के दाहने नेत्र हुए। वह आठों वसुओं में भी एक वसु हैं। छठे खखोलादित्य हैं। जब कद्रू और विनता से विवाद हुआ, विनता हार गई और कद्रू की लौंडी हुई तब यह हाल सुनकर गरुड़ को बड़ा कष्ट हुआ। इसी से गरुड़ जी अमृत लेने के निमित्त सुरपुर गये और देवताओं को जीतने के

उपरान्त अमृत लेकर अपनी माता विनता के पास चले। गरुड़ कश्यप के पुत्र थे। मार्ग में विष्णु ने रोका, जिससे बड़ा युद्ध हुआ। जब विष्णु गरुड़ को न जीत सके तो उन्होंने छल करके वर माँगा कि हमको भी अमृत दो और हमारे वाहन भी तुम्हीं हो जाओ। गरुड़ ने मान लिया, अमृत दिया और विष्णु के वाहन हुए। विनता ने कनिकस्थान पर खखोल्कादित्य रवि को स्थापित किया। उन्हीं की उपासना से विनता की लज्जा दूर हुई। सातवें सूर्य अरुण हैं, जो विनता के लड़के अरुण के नाम से प्रसिद्ध हुए। वे महादेव के उत्तर ओर विराजमान हैं। उनकी सेवा से सब कष्ट दूर होते हैं। आठवें सूर्य बृहदादित्य हैं, जिनकी अतिपवित्र महिमा है। उनकी सेवा से मुनीश्वर हारीत, जो अल्पायु थे, युवा हो गये। वे रोगों को दूर करते हैं और आनन्द और आरोग्य देते हैं। बड़े बुद्धिमान् हैं। उनका स्थान विशालाक्षी देवी के दक्षिण ओर है। शिवजी को बृहदादित्य बहुत प्यारे हैं। नवें सूर्य केशवादित्य हैं, जिन्होंने विष्णु से उपदेश पाया। अर्थात् एक दिन सूर्य ने देखा कि विष्णुजी पादोदक तीर्थ पर शिवजी के लिङ्ग की पूजा कर रहे हैं। उन्होंने तुरन्त उसी स्थान पर आकर विष्णुजी से पूछा कि तुम सबमें श्रेष्ठ हो, फिर किसकी पूजा करते हो? विष्णुजी बोले कि शिवजी सबसे बड़े हैं। हम उन्हीं की पूजा करते हैं। तुम भी शिवजी के लिङ्ग की पूजा करो। तब से सूर्य प्रतिदिन शिवलिङ्ग को पूजते हैं। वह उनको गुरु जानकर वहीं स्थित हुए। दसवें सूर्य विमलादित्य हैं, जिनको हरिकेश ने वन में स्थापित किया था। प्रबाहु का पुत्र, जो उच्चदेश में रहता था, भाग्यवश कोढ़ी हो गया था। स्त्री, पुत्र और घर छोड़कर काशी में आया और सूर्य की पूजाकर अच्छा हो गया। तब से वह विशेष रूप से कुष्ठ के निवृत्त करने में प्रसिद्ध हैं। ग्यारहवें सूर्य कनका-

दित्य विश्वेश्वर के दाक्षिण की ओर स्थित हैं। वह प्रतिदिन गङ्गा की स्तुति करते हैं, इसी से उनका मुख गङ्गा की ओर है। बारहवें सूर्य यम-आदित्य उस स्थान पर हैं, जहाँ यम-राज ने कठिन तप किया था। उनके दर्शन से यमपुरी को नहीं जाना पड़ता। वे यमराज के स्थान से पश्चिम की ओर और वीरेश्वर से पूर्व हैं। यमराज ने उनको स्थापित करके बड़ा तप किया था। उस स्थान पर आकर जो कोई मनुष्य चतुर्दशी के दिन भरणी नक्षत्र में श्राद्ध करते हैं, उनको गया के समान फल होता है। हे नारद ! ये बारहों सूर्य, जो काशी में स्थित हैं, हमने वर्णन किये। इनकी कथा सुनने से रोग-दोष दूर हो जाते हैं। इनकी सेवा से शिवजी अति प्रसन्न होते हैं। इनसे मनुष्य अखण्ड आनन्द पाता है। शिवजी अष्टमूर्ति संसार में प्रसिद्ध हैं। इससे बारहों सूर्य शिवजी के भक्त हैं। बारहों सूर्यों को शिवजी वर देनेवाले हैं। वे शिवजी के मुख्य सेवक हैं। इसके सिवा पाँचों देवता शिवजी के सेवक हैं। जिस तरह सब नदियाँ समुद्र में गिरती हैं, उसी प्रकार सब देवता शिवजी में लीन होते हैं। शिवजी सर्वरूप होकर काशी में अपनी पूजा कराते हैं। जो कोई शिवभक्ति छोड़कर और की पूजा करे, अर्थात् और देवता को भी शिवरूप न जानकर उस देवता के भाव से पूजन करे, वह महा-मूर्ख जड़ पशुतुल्य है, यह वेद कहते हैं। शिवजी सबमें प्रकट हैं। वे निर्गुण ब्रह्म आनन्द देनेवाले हैं। यह सुनकर नारद अति प्रसन्न हुए। फिर ब्रह्मा से पूछा कि ये बारहों प्रकार के सूर्य काशी में अपना रूप धारण करके स्थित हुए। फिर उन्होंने क्या किया, वह सब वर्णन कीजिये।

नवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद ! जब सूर्य काशी में रह गये,

शिव के पास न लौटे, तब शिवजी अति विकल हुए और खेद से आँसू बहाने लगे। बोले कि काशी पाकर कब मेरे हृदय का दाह मिटेगा! हाय, सूर्य भी लौटकर न आये। इसी प्रकार बहुत धीरे धीरे रो-रोकर काशी को बहुत स्मरण किया और कहा जो काशी का समाचार लावे उसे मैं सब कुछ देने को तैयार हूँ। पर हाँ, वेदज्ञ ब्रह्मा निस्संदेह वहाँ का समाचार ला सकते हैं। यह सोच मुझे बुलाया, अति आदर से बैठाया और यह कहा कि हमारे भाग्य फिर गये हैं। हमने जो योगिनीगण और सूर्य को भेजा था, वे लौटकर नहीं आये। नहीं जानते, इसका क्या कारण है? काशी का प्रेम मेरे मन में प्रिया के समान है, जिसका स्मरण बना रहता है। हमको मन्दरगिरि पर प्रेम नहीं, जैसे मछलियों को छिछला ताल नहीं भाता। इस तरह तो विष भी दुःख नहीं देता, जिस तरह काशी का वियोग दुःख दे रहा है। यद्यपि चन्द्र भाल पर है, पर काशी के वियोग का दाह नहीं मिटता। इसलिए हे ब्रह्मन्! हम तुमसे एक काम कराना चाहते हैं। तुम हमको प्राण के समान प्रिय हो। तुम काशी में जाकर हमारा कार्य पूरा करो, विलम्ब मत करो। हमारे दुःख का विचार करो। तुमको काशी की यात्रा का पुण्य प्राप्त होगा। हमारा दुःख दूर होगा। यह सुन मैं हंस पर चढ़ काशी की ओर गया और अपने भाग्य की बड़ाई की। मैंने दुर्बल ब्राह्मण बन काशी में प्रवेश किया और राजा दिवोदास को देखा। राजा तुरन्त उठ खड़ा हुआ। उसने मुझको आदर-सम्मानकर बैठाया। फिर आगमन का कारण पूछा। मैंने कहा कि मैं तो बहुत समय से यहाँ रहता हूँ और तुमको भली भाँति जानता हूँ। पर तुम मुझको नहीं जानते। तुम्हारे समान संसार भर में कोई राजा नहीं है। तुम तो महीसुर देशपाल हो। तुम्हारी प्रजा, सन्तान, भाई, बन्धु तो आरोग्य और

अच्छे हैं ? तुम्हारे भय से देवताओं को शक्ति नहीं कि शुद्ध मार्ग छोड़ अशुद्ध को स्वीकार करें। फिर मनुष्य किस गणना में है ? मैं जिस कार्य को आया हूँ, वह यह है कि मैं यज्ञ किया चाहता हूँ। मेरे पास शुद्ध धन, देवता आदि सब उपस्थित हैं। तुम्हारी राजधानी श्रीकाशी भी कर्मभूमि और सर्वोपरि है। शिवजी के सिवा और कोई संसार भर में काशी से उत्तम नहीं है, जैसा कि वेद कहते हैं। धर्म छोड़ने से सब जगह बड़ा पाप होता है, पर काशी में शिवजी की कृपा से कुछ पाप का भय नहीं। काशी शिवजी का दूसरा शरीर है। वह मानो मोक्ष देने को मुक्ति-रूप है। तुम जो शिव के प्रसन्न करने को काशी का पालन करते हो, इसी कारण किसी की कोई युक्ति तुम पर नहीं चलती। इसके सिवा एक और बात मैं तुमको बताता हूँ। विश्वनाथ शिवजी के सिवा और कोई प्रणाम के योग्य नहीं। जिनको प्रणाम करने से सबका मनोरथ पूरा होता है। तुम और देवताओं के समान शिव को न जानना। वे सबसे श्रेष्ठ हैं, जैसा कि वेद कहते हैं। विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, पवन आदि सब शिव की प्रसन्नता के निमित्त उपजे हैं। जो ब्राह्मण कुछ प्रतिफल राजाओं को दिया चाहते हैं, वे इसी प्रकार का उपदेश देते हैं। इससे हमने भी तुमको यह उपदेश दिया कि तुम्हारी इच्छा पूरी हो जाय। आप हमारे यज्ञ में सहायता दें। यह कह ब्राह्मण चुप हो गया। राजा ने उत्तर दिया कि आप आनन्दपूर्वक यज्ञ करिए। जो इच्छा हो वह आप लें, मैं सब प्रकार से आपका सेवक हूँ। जो मेरे घर में है, वह निस्सन्देह आपका है। मेरी सब सामग्री और प्रताप औरों के ही लिए है; क्योंकि वेद में प्रजा का पालन बड़ा धर्म कहा गया है। प्रजा के दुखी होने से जो अग्नि उपजती है, वह बहुत ही तीक्ष्ण वज्र की अग्नि से भी अधिक प्रभाव

रखती है; क्योंकि वज्र की अग्नि तो केवल थोड़े मनुष्यों को जलाती है, पर प्रजा की आह की अग्नि तो सबको भस्म कर डालती है। हे ब्राह्मण! मेरी यही रीति है कि मैं सब ब्राह्मणों का दास हूँ जिनसे मेरे दुःख नष्ट हो जाते हैं। जब मुझको स्नान करने की इच्छा होती है तब मैं ब्राह्मणों के चरण धोकर उसी से अभिषेक करता हूँ। मैं जो ब्रह्मभोज करता हूँ, उसको सौ यज्ञ से कम नहीं समझता। अहर्निश मेरी इच्छा यही रहा करती है कि मेरे घर कोई अतिथि आवे। मैं अपने धर्म की सौगन्द खाकर कहता हूँ कि मेरी इच्छा पूरी हुई, जो आप मेरे घर पधारे। आप यज्ञ करें, मैं सहायता दूँगा। यह बात सुनकर ब्राह्मण प्रसन्न होकर हरिसर में यज्ञ करने को गया और राजा की सहायता से दश अश्वमेध यज्ञ किये। वह स्थान दशाश्वमेध के नाम से प्रसिद्ध होकर तीर्थ हो गया। गङ्गा के निकट होने से वह स्थान और भी मुक्तिदायक हो गया। मैं उसी स्थान पर शिवलिङ्ग स्थापित कर स्थित हो गया। मैंने राजा में कोई दोष न पाया, यद्यपि मैंने बड़ी युक्ति की। काशी को सर्वगुणसम्पन्न पाकर मैं भी शिवजी के पास लौटकर न गया। यद्यपि मैंने शिव की अवज्ञा की, पर मुझको कुछ भय न हुआ; क्योंकि जो कोई काशीजी का सेवन करता है, उस पर शिव क्रोध नहीं करते। काशी निर्भयता और निष्कण्टकता का स्थान है। वहाँ शिवजी के भक्त निर्भय रहते हैं। बड़े-बड़े पापी काशी में रहकर अपने पापों का कुछ भी विचार नहीं करते। देखो, सूर्य ने क्या पाप करके काशी में शरण ली। शिवजी को काशी गिरिजा से अधिक प्रिय है। काशी शिवजी की मुख्य देह है। हरएक मनुष्य वहाँ जाकर पवित्र हो जाता है। वहाँ यमराज से भी पापी नहीं डरते। वहाँ किसी देवता की आज्ञा नहीं चलती। जो आनन्द पापियों को काशीजी में है,

वह वैकुण्ठ में भी नहीं। जो मनुष्य काशी में शिवलिङ्ग की स्थापना करे, वह अपने मन में किसी बड़े पापको न डरे। यही जानकर मैंने शिवजी का लिङ्ग अपने स्थान में स्थापित किया। उसका नाम ब्रह्मेश्वर महादेव है। वे सब मनोरथों को पूर्ण करनेवाले हैं। जो इस कथा को सुनता है, उसके सब दुःख दूर होते हैं।

दसवाँ अध्याय

इतना सुनकर नारदजी ने पूछा कि हे ब्रह्मन्! जब आप काशीजी में स्थित हो गये तो फिर सदाशिवजी ने क्या किया? ब्रह्माजी प्रेमसागर में डूबकर बोले कि हे नारद! अपने भक्तों के निमित्त शिवजी निर्गुण ब्रह्म होने पर भी मनुष्य के समान होकर लीला और चरित्र करते हैं। जब मेरे आने में विलम्ब हुआ तो शिवजी बारम्बार चिन्तित होकर रोने लगे। जिह्वा से शब्द नहीं निकलते थे। नेत्रों से आँसू चलते थे। काशी के स्मरण में कहने लगे कि जिस तरह काशी मुक्ति देनेवाली है, वैसा कोई क्षेत्र संसार में नहीं। जिसको हम भेजते हैं, वही वहाँ रह जाता है। योगिनी जाकर वहाँ भोगिनी हो गई और ब्रह्माजी ऐसे बुद्धिमान् होकर निरुपाय हो वहीं रह गये। इसी प्रकार बहुत सोचकर जो बातें मनुष्यों की हैं, वे उन्होंने कीं, अर्थात् शिवजी ने अपने गणों को बुलाया। ३५ गण शिवजी के समीप आये। उनके नाम ये हैं-- शंकुकर्ण, महाकाल, घण्टाकर्ण, महोदर, सोमनन्द, नन्दसेन, काल-पिङ्गल, कुक्कुट, कुकूट, मयूरबाण, गोकर्ण, तारक, तिलप्रण, सुरतदर्भ, चण्डकेश, विन्दक, छाग, कपर्दी, पिंगलाक्ष, वीरभद्र, किरात, चतुर-रत्न, निकुम्भ, तेजाक्ष, भारभूत, अक्षक्षेमक, लाङ्गल, सुखादि, दुःखादि इत्यादि। ये ३५ गण शिवजी को बहुत प्रिय हैं। शिवजी ने कहा कि तुम सब काशी में जाकर हमारा दुःख दूर करो। तुम सब बड़े कार्य करने में कुशल हो। सो जिस तरह से कि हमको

स्कन्द, गणपति, शाख, विशाख, नैगमेयी, नन्दी, भृङ्गी प्रिय हैं, उसी प्रकार तुम भी मुझको प्रिय हो। तुमसे काल भी भयभीत रहता है। देखो, योगिनी, सूर्य और ब्रह्मा आदि जो काशी में हमारी आज्ञा से गये, उनकी कुछ ख़बर नहीं मिली। हमको बड़ा दुःख है। शंकुकर्ण! तुम तुरन्त काशी में जाकर और वहाँ से लौटकर हमको प्रसन्न करो। दोनों गण तुरन्त चले। जैसे कोई मनुष्य इन्द्रजाल की माया से गुप्त हो जाय वैसे ही वे दोनों तुरन्त अन्तर्धान हो गये। जब काशी में पहुँचे तो उनके मन प्रफुल्लित हो गये। जो चिन्ता मन में थी, दूर हो गई। वे भी शिव का लिङ्ग स्थापित कर वहीं स्थित हो गये। शिव के पास न लौट जाने से उनके ऊपर कुछ पाप न हुआ। हे नारद! वास्तव में काशी को जो किसी तरह से पाकर फिर छोड़ते हैं, उन्होंने वेद का अर्थ नहीं समझा। मानो मिली हुई मुक्ति उनके हाथ से जाती रही है। वे बड़े मूर्ख और शिव के विरुद्ध हैं। शिव ने दोनों की ढील को समझ कर दो गण और भेजे। वे भी काशी में शिव-लिङ्ग स्थापित कर स्थित हो गये, शिवके समीप लौटकर न गये। तब तो शिव को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने अपने शिर को हिलाया, मन में काशी की बड़ाई की और प्रशंसा करके कहा कि हे काशी! तुमको महामोहहारिणी कहते हैं। परन्तु मेरे लिए तो तुम मोहन-विद्या हो गईं। मैंने बहुत गण भेजे। तुमने सबको मोह लिया। यद्यपि इस बात का निश्चय है कि वहाँ जाकर कोई नहीं लौटेगा, पर हम फिर भी और गणों के भेजने में ढिलाई न करेंगे; क्योंकि बुद्धिमान् उपाय से नहीं चूकते। अपनी सिद्धि के लिए उपाय करना नहीं छोड़ते; क्योंकि भाग्य के लौट जाने पर कार्य करनेवाला आनन्द नहीं पाता। देखो, चन्द्रमा और सूर्य ग्रहण के होने पर भी अपनी गति नहीं छोड़ते। पूर्वजन्म के कार्यों का नाम संस्कार है। ऐसे

संस्कार को दूर करने के लिए उपाय करना उचित है। विचार करो कि संस्कार के बल से भोजन पकाने के लिए बर्तन आदि सब उपस्थित हैं, भोजन भी रक्खा हुआ है, पर जब तक हाथ से मुँह में न डाला जाय, वह अपने आप मुख के भीतर नहीं जा सकता। निदान भाग्य पर उपाय को प्रबल करके पाँच गणों को भेजा। पर वे भी काशी में जाकर मृतक पुरुषों के समान फिर न लौटे। उन्होंने भी शिव का लिङ्ग स्थापित कर काशी में रहना अङ्गीकार किया। शिव ने उनको भी स्थित होते हुए जानकर कहा—बहुत अच्छा हुआ। और गण भी जाकर इसी तरह स्थित होते जायँ, क्योंकि हमारे गणों का काशी में रहना हमारे रहने के समान है। पीछे हम भी काशी में जाकर रहेंगे। यह विचारकर शिव ने कण्डूर आदि चार गण और भेजे। वे भी उपाय करके अधीर हो गये और चार शिव के लिङ्ग स्थापित कर काशी में ठहरे। इन चारों लिङ्गों की बड़ी महिमा है। इनकी पूजा से फिर पाप सामने नहीं आते। शिव ने फिर तारक आदि २२ गणों को भेजा। वे भी काशी में जाकर सब युक्ति करके थक गये। निदान इकट्ठे होकर कहने लगे कि हमको सहस्रों धिक्कार हैं कि शिव के गण होकर उनका काम पूरा न कर सके। एक मनुष्य भी हमारे जाल में न फँसा! हम मानो सदाशिव के शत्रु हैं, इससे हम सबको नरक प्राप्त होगा; क्योंकि जो शिवजी का कार्य नहीं करते, वे मानो इन्द्रियों से रहित आयु बिताते हैं। उनको पग-पग पर नरक है। वे करोड़ों शुभ कार्य कर आनन्द नहीं पाते। जो सदाशिव का काम न करके अपना मुख दिखाते हैं, उनको अवश्य ही नरक प्राप्त होता है। वे मानो दुःख के रूप हैं। ऐसी दशा में गणों ने शिवजी का ध्यान किया। तब उनको शुभ मति प्राप्त हुई। कहने लगे कि जो मनुष्य विश्वासघाती और स्वामी की आज्ञा भङ्ग

करनेवाले हैं, उनका तीनों लोक में कहीं ठिकाना नहीं लगता। केवल उनके लिए संसार भर में एक ही काशीजी का स्थान है। उसी में रहने से वे पापों से मुक्त हो जाते हैं। ऐसे वेद के वचनों को स्मरण कर वे निश्चयपूर्वक राजा से छिपकर काशी में स्थित हो गये और सारी चिन्ता को भुला दिया। राजा ने भी उनको नहीं जाना। उन्होंने अपने-अपने नाम से शिवलिङ्ग स्थापित किये। उन लिङ्गों की सेवा से किसने क्या नहीं पाया? कपर्देश्वर लिङ्ग की माहिमा का कौन बखान कर सकता है? उसी स्थान पर विमलोदक, जिसके जल का स्पर्श करने से मनुष्य शिव के समान हो जाता है, उसका इतिहास आनन्द देता है। वह इस तरह पर कि त्रेतायुग में एक वाल्मीकि ऋषीश्वर शैव, काम और इच्छा-जित् हुए। वह उसी कुण्ड पर स्नान कर तप करते थे। एक दिन उन्होंने एक बड़े भयानक पिशाच को देखा। ऋषीश्वर ने उसको मलिन स्वरूप में देख दुःख का कारण पूछा। वह उस पर प्रसन्न हुए और उसको कुण्ड के भीतर शिवलिङ्ग दिखाकर स्नान कराया। उसके सर्वाङ्ग में भस्म लगा दी, जिससे वह पिशाच मुक्ति पाकर सुन्दर स्वरूप रख शिवपुरी को चला गया। उसी समय से यह कुण्ड संसार में प्रसिद्ध हुआ। उसका नाम पिशाचमोचन है। एक शिवयोगी को वहाँ भोजन कराने से कोटि ब्रह्मभोज का फल मिलता है। जो इस इतिहास को सुनेगा, वह दोनों लोक में आनन्द पावेगा। इस कपर्देश्वर लिङ्ग के सिवा और गणों के स्थापित किये हुए लिङ्ग भी वहाँ अतिप्रतिष्ठित हैं। उनकी पूजाकर सब गण आनन्द में रहे। अन्य जीव भी जो उनकी सेवा करते हैं, वे निस्सन्देह शिवरूपहैं। यह कथा अतिआनन्द देनेवाली है। जो इसको पढ़कर कोई यात्रा को जाय, वह सदा आनन्द में रहेगा। कभी उसको दुःख न प्राप्त होगा और न उसको भूत-पिशाच कभी दुःख दे सकेंगे।

ग्यारहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! शिवजी अपने गणों के न लौटने से अतिचिन्तित हुए। कहा कि अब कौन जाय? राजा ने मुझको बड़ा दुःख दिया। मेरा भाग्य ही विपरीत है; क्योंकि मुझको कोई मित्र नहीं दिखाई देता। यह विचार कुछ सोचकर हँसे और काशी का स्मरण कर कहा कि जो काशी में रहते हैं, वे मानो हमारे उदर में समाये हुए हैं। उनको कुछ भय नहीं है, जैसे हव्य को यज्ञ में जलते हुए कुछ भय नहीं। जो काशी में लिङ्ग स्थापित करनेवाले हैं, वे हमारे जङ्गम लिङ्गतुल्य हैं। जो शिव की कथा सुनकर 'शिव-काशी' मुख पर लाते हैं, वे उच्चगति पाते हैं। पाँच कोस तक काशी हमारा शरीर है। वहाँ जो रहते हैं, उनको अति आनन्द मिलता है। जो काशी-सेवन करते हैं, वे हमारे शत्रु और पापी नहीं हैं। हम ऐसी काशी की बड़ाई भली भाँति जानते हैं। मुक्ति तो काशी की लौंडी है। जो शुद्ध मन से हमारे भक्त हैं, उनको भी यह काशी की बड़ाई विदित है। इसी लिए हमारे गणों ने काशी की बड़ाई समझकर दृढ़तापूर्वक काशी में अपना स्थान बनाया है। नहीं तो वे और किसी तरह मुझको छोड़ वहाँ न रह सकते। अच्छा हुआ, उनके भाग्य उत्तम हैं। अब औरों को भी भेजना चाहिए। यह दृढ़ विचारकर गणपति को बुलाया। आदर और प्यार कर गोद में बैठा लिया। फिर कहा कि दिवोदास, जो काशी में राज्य कर रहा है, मुझको बड़ा दुःख दे रहा है; क्योंकि उसी के कारण काशी मुझसे छूट गई। सब देवताओं को बड़ा दुःख है। जब तक वह राज्य करता है, मैं काशी में नहीं जा सकता। जो अच्छे लोग मैंने काशी में भेजे, वे सब वहाँ रह गये। मुझे काशी को देखे विना चैन नहीं। ऐसा कौन है, जो वहाँ जाकर मेरा काम करे? मेरे गणों में

कोई ऐसा नहीं दिखाई देता। जितने मेरे गण हैं, वे सब युद्ध के कामों में प्रवीण हैं। पर उनमें कोई तुम सरीखा बुद्धिमान् नहीं देख पड़ता। तुम्हारे भाई स्कन्द ने भी बड़ा काम किया है। केवल तुम्हीं हमको बुद्धिमान् जान पड़ते हो। तुम सब काम बुद्धि के बल से करते हो। जिसको जैसा चाहो, तुरन्त वैसा ही करोगे। इससे तुमको उचित है कि तुम आप ही मेरा काम पूरा करो। तुम काशी में जाकर स्थित हो जाओ और सब गणों समेत छिपे-छिपे रहकर राजा को दुःख पहुँचाओ, जिससे मेरा काम निकले। पिता-पुत्र में जो प्रीति होती है, उसी को प्रकट करके मेरा कार्य सिद्ध करो। यह कह शिव और गिरिजा दोनों ने आशिष दी और स्तुति के उपरान्त गणपति को भेज दिया। गणपति चलकर मार्ग में नाना प्रकार के उपाय सोचते आनन्दपूर्वक काशी में पहुँचे। उन्होंने ब्राह्मण का स्वरूप रखकर काशी में प्रवेश किया। चलने में अच्छे सगुन हुए। गणेशजी ज्योतिषी ब्राह्मण बनकर काशी में घूमने लगे। सब काशीवासी बड़ी प्रीति से उनका आदर-सम्मान करने लगे। जब काशीवासी गणेशजी का आदर पूर्ण रूप से करने लगे तो उन्होंने एक यह नई युक्ति रची कि रात्रि के समय आप मनुष्यों के अन्तःकरण में प्रवेश कर उनको दुस्स्वप्न दिखाने लगे। प्रभात को उसी स्वरूप से उनके घरों में जाकर स्वप्नफल कहते थे। गणपति ने उनको जहाँ तक कि दुस्स्वप्न थे, जिनका फल भी बहुत बुरा होता है, सब दिखा दिये। फल सुनकर बहुतेरे मनुष्य काशी छोड़ इधर-उधर भाग गये। गणेशजी ने किसी के ग्रहों को बुरा बताया, जिनके सुनने से लोगों को बड़ी चिन्ता उपजी। इसी प्रकार ऐसे ऐसे बहुत से उपायों से काशीवासियों को दुखी किया, डराया और माया करके घरों के भीतर जाकर स्त्रियों के मन में बड़ा सन्देह उपजाया, जिसे सुन-

कर स्त्रियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। ऐसी ऐसी बातें देख-सुनकर सब स्त्री-पुरुष गणेशजी से प्रेम करने लगे। यहाँ तक कि दिवोदास की स्त्री भी गणेशजी को प्रिय जानने लगी। स्त्रियाँ परस्पर गणेशजी की अतिप्रशंसा करती थीं कि हमने जैसा यह ब्राह्मण देखा है, वैसा आज तक और नहीं देखा न सुना। इसकी बात असत्य नहीं होती। यह ब्राह्मण महाशीलवान्, बुद्धिमान् है। यह तो थोड़े ही जलमात्र से प्रसन्न हो जाता है। यह अति सुन्दर, निष्क्रोध, शान्त, बड़े आनन्द के साथ दूसरों के उपकार के लिए तत्पर रहता है। किसी की निन्दा नहीं करता। यह बड़ा बुद्धिमान् है। अहंकारी, व्यभिचारी या कृपण नहीं है। इसके सब काम अच्छे हैं। यह बुद्धिमान्, पवित्र, दृढ़ स्वभाव, बड़ा उदार, प्रतिष्ठित, शौचयुक्त, दयालु है। किसी से दान नहीं लेता। दूसरों की पीड़ा जानता है। इसी प्रकार जो शुभ गुण हैं, वे सब इसमें पाये जाते हैं। यह उत्तम गुणों की खानि है और ज्योतिष विद्या भलीभाँति जानता है। इसके बराबर कोई देखा-सुना नहीं गया। निदान रानी गणेश को राजमन्दिर में ठहराकर उनका आदर करती थी। एक दिन दिवोदास की स्त्री लीलावती ने अवकाश पा राजा से बिनती की कि हे राजन्! एक ब्राह्मण यहाँ आया है। वह मानो सब विद्याओं की खानि है। मैं तो जानती हूँ कि वह ब्रह्म है, जो शरीर धारण करके आया है। हे राजन्! वह दर्शन करने के योग्य है। राजा प्रसन्न होकर कहने लगा कि उसको हमारी आज्ञा से बुलाओ। रानी लीलावती ने अपनी सखी भेजकर उसको बुला लिया। जब गणेशजी निकट पहुँचे तो राजा ने देखा, मानो ब्रह्मतेज आप शरीर धारण किये चला आ रहा है। राजा ने अगवानी कर बड़ी प्रसन्नता से प्रणाम किया। गणपति ने वेद के मन्त्रों से आशीर्वाद दिया। फिर राजा

ने आसन पर बिठाया। दोनों ओर से कुशल-प्रश्न और आदर के उपरान्त वार्त्तालाप हुआ। दोनों धर्मज्ञ और बुद्धिमान् थे, इसलिए ऐसी संगति से राजा ने अति प्रसन्न होकर गणेशजी को तो बिदा कर दिया और अपनी रानी की प्रशंसा करने लगा। उससे कहा कि तुमने ब्राह्मण की जो प्रशंसा की, वास्तव में यह ब्राह्मण उसके योग्य है। यह त्रिकालज्ञ है। अब हम कल प्रातःकाल ब्राह्मण को बुलाकर भविष्य के लिए कई प्रश्न करेंगे। प्रभात होते ही राजा ने गणेशजी को बुलाया और बहुत प्रकार के बहुमूल्य रत्न आदि उन्हें भेंट दिये। फिर अलग ले जाकर ब्राह्मण से यह पूछा कि मैंने देश का राज्य किया और प्रजा को पुत्र के समान पाला। मैंने धर्मपूर्वक भोग भी बहुत किये और हर प्रकार के दान भी दिये। ब्राह्मणों के चरण पूजने के सिवा मैंने कोई दूसरी बात नहीं जानी। इससे बढ़कर कोई बात नहीं समझी। मैं ब्राह्मणों से श्रेष्ठ देवताओं को भी नहीं मानता। देवताओं ने मेरे ऊपर क्या-क्या उपद्रव नहीं किये। पर ब्राह्मणों के चरण पूजने के कारण मेरा कुछ न हो सका। मैंने अपने धर्म को किसी समय नहीं छोड़ा और न मेरी कुछ निन्दा हुई। पर ऐसी बातों के कहने से कुछ लाभ नहीं। अब मेरे मन में कोई अभिलाषा नहीं रही। न किसी वस्तु की इच्छा होती है। मेरे मन में त्याग बसा है। न जाने मुझे क्या हो गया है? आप भली भाँति विचारकर मुझे इसका उत्तर दें। ब्राह्मण ने कहा कि जो आपने मुझसे पूछा है तो मैं अवश्य ही इसका उत्तर दूँगा; क्योंकि बिना पूछे राजाओं के सामने कोई उत्तर देना योग्य नहीं। यह बात राजनीति और वेद के विरुद्ध है। जिससे आपका मन नहीं लगता वह कारण हम आपको बताते हैं। निश्चय जानो कि तुम बड़े भाग्यवान् हो; क्योंकि तुमको ब्राह्मणों

से इतना प्रेम है। तुम्हारा शरीर यश और कीर्ति से अलंकृत है। विद्या में तुम श्रेष्ठ हो। तुम्हारे समान इन्द्र भी नहीं है; क्योंकि सृष्टि भर की कला सब तुम में हैं। तुम बड़ाई में विष्णु के समान हो। तुम्हारा तेज अग्नि के समान है। सत्यता में धर्मराज के समान हो। युद्ध में निर्ऋति के समान। धन में कुबेर के सदृश हो। आज्ञा देने में रुद्र की बराबरी रखते हो। भार उठाने में शेष के समान, क्रोध में सूर्य, प्रसन्नता में चन्द्रमा हो। बुद्धिमानी और निपुणता में बृहस्पति और गम्भीरता में समुद्र हो। नीति में तुमको भृगु के समान कहना उचित है। उँचाई में तुमको हिमाचल पर्वत और राज्य के कारण राजा मनु कहना उचित है। पवित्रता में गङ्गा के समान, मुक्ति देने में काशी, दाह के दूर करने में मेघ, नाश करने में रुद्र, पालन करने में विष्णु, यज्ञ करने में ब्रह्मा, वाचालता में सरस्वती और सुन्दरता में कामदेव हो। पद्मा अर्थात् लक्ष्मी आप तुम्हारे हाथ में हैं। तुम्हारे क्रोध में हलाहल विष और वचन में अमृत है। यह लक्षण मुख्यतया तुम्हारे मुख से प्रतीत है जैसा कि हमने वर्णन किया। अब और एक बात सुनिये। अठारह दिन के बाद उत्तर से एक ब्राह्मण तुम्हारे पास आवेगा। वह जो तुमको उपदेश करे उसे सत्य समझना। उसके कहने को मानना। तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा। यह कह ब्राह्मण राजा से आज्ञा लेकर अपने डेरे को लौट गया और राजा ब्राह्मण का यह वचन सुन प्रसन्न हुआ। इस भेद को गुप्त रक्खा और समय को देखता रहा। गणपति भी अपने पिता की आज्ञा पूर्ण करके अति प्रसन्न हुए। अपने बहुत स्वरूप बनाकर काशी में स्थित रहे। जब काशी दिवोदास के अधीन न थी, उस समय में भी गणेशजी काशी के बहुत से स्थानों में वर्तमान थे। वे ही स्थान गणेशजी ने भली भाँति

सजाये। वे सब सिद्धस्थान हैं। जब विष्णु ने आकर राजा को भगाया, तब शिवजी ने फिर काशी को सिरे से बसाया, अर्थात् शिवजी ने मन्दरगिरि से आकर सबसे पहिले गणेशजी की बहुत प्रशंसा की, फिर अपने मन्दिर में जाकर बड़े आनन्द से रहे। हर प्रकार से अपनी पुरी काशी की रक्षा करने में लगे रहे। चारों ओर योगिनीगणों को रक्षा के लिए स्थापित किया। सात ओर गणों को स्थापित किया, आठवीं ओर ब्रह्मा और विष्णु को रक्षा के निमित्त रक्खा, जो भक्तों को बड़ा आनन्द देते हैं। यह शिवचरित्र दोनों लोकोंमें अति आनन्ददायक और सबकी कामना पूरी करनेवालाहै।

बारहवाँ अध्याय

इतना सुन नारदजी बोले कि दिवोदास ने क्योंकर राज्य छोड़ा और शिवजी क्योंकर पर्वत से उतरकर काशी में पहुँचे? क्या-क्या चरित्र किये, सब विस्तार से वर्णन कीजिये। ब्रह्माजी ने कहा कि शिवजी ने जब गणेश को भी देखा कि काशी से लौट कर न आये तो अति चिन्तित हुए और महाखेद की दृष्टि से विष्णु की ओर देखकर कहा कि तुम संसार भर को आनन्द देनेवाले और विश्वम्भर हो। हमको तुम प्राण से भी अधिक प्रिय हो। तुमसे कौन अधिक आनन्द देनेवाला है? हमने बहुत मनुष्यों को काशी भेजा; पर वे सब वहाँ स्थित हो गये। न तो वे लौट आये, न हमारा काम पूरा किया। न जानिये कि उन पर क्या दुःख पड़ा। हमको काशी के देखे बिना चैन नहीं। हमको काशी प्राण से भी अधिक प्यारी है, यह बात हम सत्य कहते हैं। तुम हमारे मन का सब सुख-दुःख जानते हो। इससे मैं इच्छापूर्वक तुमसे कहता हूँ कि तुम आप जाकर हमारा काम पूरा करो। पर तुम भी औरों के समान जैसा उन्होंने किया है, वैसा न करना। तुम तो सब योग्य हो। हमारी प्रेरणा से तुमने

बहुत अवतार लिये हैं। जिस तरह हमारा काम हो, वही करना। तुमको कुछ पाप न होगा। अधिक क्या समझावें। तुम हर प्रकार से सब कार्य करने के योग्य हो। विष्णु ने कहा कि आप तो पर-ब्रह्म हैं। आपकी जब जो इच्छा होती है, वही करते हैं। हमारा विश्वास इसी पर है। यश-अपयश के दिलानेवाले आप ही हैं। डूबी हुई नाव के आप ही केवट हैं। जिसको आप आज्ञा दें, उसके बड़े भाग्य हैं। वेद ने इस बात को भली भाँति वर्णन किया है; अर्थात् जिसको आप अपना सेवक समझ लें, वह बड़ा भाग्य-शाली है। अपनी बुद्धि के अनुसार सब कोई उपाय करते हैं, परन्तु सिद्धि आपके ही हाथ है। संसार में सब कार्य जड़ मुर्दे के समान हैं। और यह जीव भी स्वाधीन नहीं है। आप सब कर्मों के साक्षी और जीवदान देनेवाले हैं। मन्त्र भी आपके ही अधीन हैं। आपकी सेवा से शुभ मति उपजती है। उसी से सब कार्य पूर्ण होते हैं। आपकी सेवा किये विना न तो शुभ कार्य और न सिद्ध कर्म पूर्ण होते हैं। आपकी कृपा के विना कोई कार्य पूरा नहीं होता। इस जीव को केवल आपकी ही शुभ दृष्टि से आनन्द मिलता है। जो कार्य होने के योग्य नहीं, वे भी जो बुद्धिमानी और युक्ति के साथ आपको स्मरण करके किये जायँ तो सिद्ध हों। उनमें कुछ विघ्न न हो। तुम्हारी प्रदक्षिणा करके किसी मनोरथ को जाय तो सब काम निकल सकते हैं। आप कृपा करके जो मुझको भेजते हैं तो मैं अवश्य माया के बल से काम पूरा करूँगा। मुझको कुछ मुहूर्त देखने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि मेरे लिए केवल वही मुहूर्त शुभ है, जब आपने आज्ञा दी। मैं जाता हूँ; प्राणों के जाने पर भी मैं कार्य करने से न हटूँगा। आप कृपा की दृष्टि रक्खें। यह कह विष्णु ने शिवजी को बार-बार प्रणाम किया और उनकी स्तुति और भजन कर काशी को चले। दूर

ही से काशी को देखकर प्रसन्न हो गये, और शिर झुका काशी को प्रणाम किया। वह काशी के भीतर जब गये तब शुभ शकुन हुए। जहाँ पर गङ्गा और वरणा परस्पर मिली हैं, सबसे पहले विष्णु उसी स्थान पर गये और हाथ-पाँव धोकर सचैल स्नान किया। उनको काशी के वियोग से जो दुःख था, वह दूर होकर मन निर्मल हो गया। उसी दिन से वह स्थान पादोदक तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अपने स्वरूप को विष्णु ने उस स्थान पर पूजा। उसकी पूजा से पापियों को पाप से मुक्ति मिलती है। वही मूर्ति आदिकेशव के नाम से प्रसिद्ध है। उस स्थान को श्वेतद्वीप कहते हैं। इसके सिवा उस स्थान पर क्षीरोदधि आदि और बहुत तीर्थ हैं। वहाँ स्नान करने से दुःख दूर हो जाते हैं। शङ्ख-तीर्थ उससे दक्षिण में है। उससे दक्षिण में चक्रतीर्थ, गदातीर्थ पद्मतीर्थ, रमातीर्थ, गरुड़तीर्थ, नारदतीर्थ और प्रह्लादतीर्थ आदि हैं। उनमें स्नान करने से सब पाप छूट जाते हैं और दुःख और शोक का नाम भी नहीं रहता। अन्य तीर्थ विस्तारभय से वर्णन नहीं किये।

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि विष्णु अपनी केशवी नामक मूर्ति में प्रवेश कर कुछ-कुछ अंशों से निकल शिव के कार्य में प्रवृत्त हुए। इस बात को सुन नारदजी ने पूछा—क्यों विष्णुजी अंशांशी होकर निकले और कहाँ गये? ब्रह्माजी बोले—जिस कारण विष्णु का पूरा रूप केशवी मूर्ति से बाहर नहीं निकला, वह यह है कि जब अगले जन्म के पुण्य प्रकट होते हैं, तब काशी मिलती है। फिर वेद ने कहा है कि कदाचित् काशी अपने भाग्य से मिल जाय तो फिर उसे छोड़ना न चाहिए। त्याग करनेवाला अतिपापी, भाग्यहीन और मूर्ख है। जिस पर शिवजी की कृपा नहीं

होती, वह काशी में नहीं रह सकता। जिस पर शिवजी बहुत ही प्रसन्न होते हैं, वह सदा काशी में रहता है। जो मनुष्य काशी में स्थित नहीं होते, उनका जन्म वृथा है। संसार के सब तीर्थ सेवकों के समान काशी की सेवा करते हैं। काशी महाश्रेष्ठ और तीनों लोकों से न्यारी है, जिसके रहनेवाले पापी नहीं हो सकते। काशी के बराबर और तीर्थ नहीं है। उसका सेवन तप, यज्ञ, पूजा आदि के समान है। वहाँ का चाण्डाल भी और देशों के राजा से श्रेष्ठ है। तीनों लोकों में सब स्थानों पर पाप का भय है; पर काशीवासी जीवों को नहीं। देवताओं की इच्छा रहा करती है कि हम काशी में मरें; क्योंकि वहाँ मरने से स्वर्ग से भी अधिक आनन्द मिलता है। हे नारद! इसी से विष्णु अपने पूर्ण स्वरूप से केशवीरूप रख काशी में स्थित हुए और अपने एक छोटे अंश से, जो उसी मूर्ति से निकाला, काशी के भीतर गये। गरुड़ और लक्ष्मी भी उस स्थान से कुछ दूर उत्तर की ओर स्थित हुए। उस स्थान को, जहाँ गरुड़ और लक्ष्मी स्थित हुए, धर्मक्षेत्र कहते हैं, जिसके दर्शन से आनन्द प्राप्त होता है। विष्णु ने अपना स्वरूप इस प्रकार का धारण किया, जो तीनों लोकों को मोह ले। विष्णु ने उत्तमोत्तम वस्त्रों से भूषित और मधुरवाणी तथा ज्ञान-ध्यान से सम्पन्न होकर अपने पुण्यकीर्ति के नाम से प्रसिद्ध किया। गरुड़ भी पुण्यकीर्त्ति अर्थात् विष्णु के शिष्य होकर विनयकीर्त्ति के नाम से विख्यात हुए। वह पोथी हाथ में लिये गुरु की सेवा में लगे। लक्ष्मी भी मनुष्यों के समान उत्तम स्वरूप धारण किये गोमोक्ष नाम से प्रसिद्ध हुईं। हाथ में पुस्तक लिये हुए, मानो मूर्तिकार ने चित्र खींच लिया हो। लोग उस अनूप रूप को देखकर अधीर और मोहित हो गये। विष्णु अपना स्वरूप बदल यह चरित्र करने लगे कि जब उनको देखने

के लिए काशीवासी झुंड के झुंड आते, तब विष्णु और गरुड़ गुरु-चेले की तरह परस्पर संवाद करने लगते। शिष्य गुरु की स्तुति कर कहता कि गुरुजी, वह धर्म वर्णन कीजिये, जिससे संसार को आनन्द मिले। तब गुरु अपने मन में मुसकराकर ऊँचे स्वर से सबको सुनाकर कहने लगते कि हे शिष्य! यह सृष्टि अनादि है। इसका कर्ता कोई नहीं। यह पुरानी है। इसी प्रकार चली आती है। अपने आप उपजकर फिर आप ही नष्ट हो जाती है। यही बात अच्छे लोग और वेद कहते हैं। ब्रह्मा से लेकर तृण तक बराबर जन्म लेते और मरते हैं। आत्मा ही ईश्वर है। आत्मा के सिवा और कोई स्वामी नहीं है। ब्रह्मा आदि जो बड़े देवता कहे जाते हैं, उनको भी काल ने खाने से नहीं छोड़ा। हाँ, कोई शीघ्र उपजता है, कोई देर में मरता है। पर शरीर धारण करके सब मर जायँगे। जो इस बात पर विश्वास करता है, वही चतुर है। जो मन में विचार करो तो प्रकट होगा कि संसार में न कोई बड़ा है, न छोटा, न कोई दुखी है, न सुखी। आहार-विहार में सब समान हैं। न कोई बुरा है न अच्छा, न कोई पापी है न पापरहित; क्योंकि भोजन सबको तृप्त करता है, पानी सबकी प्यास बुझाता है। स्त्री चाहे किसी प्रकार की हो, भोग करने में समान है। सवारी चाहे किसी प्रकार की हो, उससे प्रयोजन केवल चढ़ने का है। बिछौना चाहे कैसा ही हो, सोने में जो आनन्द प्राप्त होता है, वैसा ही सबमें सुख मिलता है। सबको, देवताओं को भी मृत्यु का भय लगा हुआ है। ब्रह्मा और विष्णु भी मृत्यु से डरते हैं। जो शरीरधारी हैं, वे बुद्धि, विद्या और मन में एक से हैं। यह सब झगड़ा मिथ्या है। केवल एक बात अवश्य ध्यान रखने के योग्य है कि किसी जीव को दुःख देना बड़ा पाप है। जीवों पर दया करने के समान कोई

धर्म नहीं। चार वेद, अठारह पुराण, छः शास्त्र इस बात पर एकमत हैं। दान चार बड़े हैं—रोगी को औषध देना, भयभीत को निर्भय करना, भूखे को भोजन कराना, विद्यार्थी को विद्या पढ़ाना। औषध और मन्त्र के प्रभाव से धन सञ्चित कर अपने शरीर को पालना चाहिए। यहाँ नरक और स्वर्ग, दोनों हैं। उन्हें और किसी जगह न जानो। सुख को स्वर्ग और दुःख को नरक जानो। आनन्द से मरना ही मुक्ति है। वासना-सहित क्लेश के दूर होने को प्रमोक्ष अर्थात् मुक्ति समझना चाहिए। वेद में जो दो प्रकार की आज्ञा हैं, एक प्रवृत्ति दूसरी निवृत्ति, उनका आशय यह है कि जो जीव-हिंसा है वह प्रवृत्ति है और जीवों पर दया ही निवृत्ति है। वेदान्त का यह वचन है कि प्रत्यक्ष प्रमाण से बढ़कर और कोई विश्वास योग्य प्रमाण नहीं। सो विचार करो कि ये यज्ञ करनेवाले लोग बलिदान में जीवों को मार डालते हैं। और तिल, घी आदि आग में जलाते हैं कि स्वर्ग मिले। इससे अधिक आश्चर्य और क्या होगा? इसी प्रकार की और भी बहुत धर्म विपरीत बातें कहीं। सुनकर सब काशी के निवासी मोहित हो गये और पुराने धर्म से विमना होने लगे। इसी प्रकार लक्ष्मीजी ने भी काशी की स्त्रियों को उल्टा धर्म सिखाकर अपने अधीन कर लिया। बौद्धधर्म उन्हें सुनाकर उनकी इच्छा पूरी की। शरीर के पालने की शिक्षा दी और पातिव्रत धर्म को दूर करा दिया। अपने उपदेश से वर्णाश्रम को मिटा दिया। उनके उपदेश का सारांश यह है—कि वेद जो आनन्दब्रह्म स्वरूप कहते हैं, सो वह बहुत जन्म का नहीं है, यह बात अशुद्ध है। वरन् उसका आशय यह है कि यह तन जब तक इन्द्रियों समेत परिपूर्ण है तब तक आनन्द करना चाहिए। जो कोई मनुष्य माँगे तो शरीर भी दे देना चाहिए; क्योंकि यह

केवल पृथ्वी का भार है। इसकी उत्पत्ति पर धिक्कार है। जिस शरीर को कौए, कुत्ते, स्यार, कृमि, कीट अपना भक्ष्य समझते हैं, उसका नाश अवश्य है। यह एक दिन जल जायगा। इसके रखने से क्या लाभ? इससे उत्तम है कि इससे और जीवों को लाभ पहुँचे। यदि सारी सृष्टि के उपजानेवाले अकेले ब्रह्मा हैं तो सब लोग परस्पर भाई के समान हैं। फिर उन्होंने परस्पर विवाह आदि करके अधर्म पर विचार न किया। इस समय के मनुष्य बड़े बुरे मन के हैं। व्यर्थ ही वेद के कहे पर चलते हैं। जो चार वर्ण वर्णन करते हैं सो विचार करने से चारों वर्ण का होना सूचित नहीं होता; क्योंकि यह शरीर मिट्टी है। इसी से चार पुत्र उपजे, तब चारों वर्ण अलग-अलग क्योंकर हो सकते हैं? यह जाति का विचार करना मिथ्या है। और भी ऐसी बातें झूठ हैं। जाति कुछ नहीं। ये बातें केवल वाग्जाल ही हैं। बरन् यह समझना चाहिए कि सब मनुष्य बराबर हैं। इसी तरह की और बहुत सी बातें सिखलाकर लक्ष्मी ने स्त्रियों के पातिव्रत धर्म को छुड़ाया। स्त्री-पुरुष दोनों व्यभिचारी होकर अपनी इच्छा के अनुसार पर-पुरुषों और परस्त्रियों के साथ भोग करने लगे। राजा के पुत्र अपनी दासियों के साथ बिगड़ गये। पुरुष स्त्रियों के कहे पर चलने लगे। जो स्त्री ने कहा वही किया। इसी प्रकार सब मनुष्य धर्म के विरुद्ध कार्य करने लगे, जिससे चारों ओर पाप की सेना फैल गई। सिद्ध भी ऐसे अधर्म के कारण राजा समेत प्रतापहीन हुए। राजा दिवोदास ने ब्राह्मण का वचन स्मरण कर राज्य से हाथ खींच लिया और मनुष्यों की यह दशा देखकर ब्राह्मण की बात को सत्य जाना। वह राह देखता था कि कब ब्राह्मण आवे और मेरा दुःख दूर हो। इसी विचार में रात-दिन डूबा रहता। किसी से कुछ मन की बात न कहता।

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि जब अठारहवाँ दिन आया, जैसा कि ब्राह्मण अर्थात् गणपति ने कहा था तो राजा अति प्रसन्न हुआ। भोर की निद्रा से उठकर नित्यकर्म से छुट्टी की और ब्राह्मण के आने की बाट देखने लगा। दोपहर के समय विष्णुजी ब्राह्मण के स्वरूप से कई विप्रों को साथ लिये हुए अग्नि समान तेज धारण किये आये। राजा ने दूर से देखा। समझा कि वही उपदेश करने-वाले ब्राह्मण आते हैं। तब बहुत प्रसन्न हुआ और अगवानी कर प्रणाम किया। आशीष पाने के अनन्तर ब्राह्मण को अन्तः-पुर में ले गया। पूजन, यजन और सेवन के उपरान्त उनका बहुत आदर और सम्मान किया, उत्तमोत्तम भेंटें दीं और अपने भाग्य की सराहना करने लगा। जब देखा कि उनकी थकान दूर हो गई, तब राजा ने विनती की कि हे महाराज ! मैं सदा दुखी रहा करता हूँ, इसका कारण जाना नहीं जाता। भार हो रहा है। मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, जिससे मेरा कष्ट मिटे और मुझे आनन्द प्राप्त हो। इसी चिन्ता में एक मास बीत गया, पर मेरा कष्ट नष्ट नहीं होता। फिर अपने राज्य-पालन, प्रताप, विजय और ब्राह्मण के मान करने का वर्णन करके कहा कि मुझको दुःख के उपजने का यह कारण जान पड़ता है कि मैंने अपने तपोबल के गर्व से देवताओं को तृणवत् समझा है। मेरी यह दशा है कि मैंने सब भोगों को भोगा, पर अब मुझको वे रोगरूप भासित होते हैं। रीति है कि जो कोई मनुष्य बराबर एक कल्पतक जीता रहे तो भी वह भोग से तृप्त नहीं होता। मुझको राज्य करना चक्की के चलाने के समान भारू हो गया है। अब आप ऐसा उपदेश करें, जिससे मैं आवागमन से छूटूँ। मैं आपकी शरण में आया हूँ। जो आप मुझसे कहेंगे, उसे मैं अधीनतापूर्वक स्वीकार करूँगा।

मुझको तो आपके दर्शन से अति आनन्द मिला है। मुझको इस बात का भी विचार आता है कि देवताओं की शत्रुता से किसी ने भी आनन्द नहीं पाया। त्रिपुर, राजा बलि, वृत्रासुर, उपव्रत, दधीचिमुनि, सहस्रबाहु आदि की कथाएँ इसकी साक्षी हैं। इन सबको इन्हीं देवताओं ने नष्ट कर दिया। उन्होंने शिव को भी बहकाया और छल किया। यद्यपि उनमें बहुत से शिव के पूजक थे, तो भी शिव के हाथ से नष्ट हो गये। देवताओं के भी बड़े-बड़े छल हैं। इसलिए बहुत से मनुष्यों का कहना है कि देवताओं की शत्रुता आनन्द नहीं देती। पर मुझको इस बात का कुछ भय नहीं है कि देवता मेरे विरुद्ध हैं; क्योंकि मैं ब्राह्मणों का सेवक हूँ। जो बड़ाई देवताओं ने यज्ञ, जप, तप से प्राप्त की है, वह मैंने ब्राह्मणों की सेवा से पाई है। मैं उनके समान हूँ, कुछ भी कम नहीं। मेरी इच्छा है कि आप मुझे उपदेश देकर आवागमन से छुड़ा दें। यह सुनकर ब्राह्मण-रूप विष्णुजी ने दिवोदास की बड़ी प्रशंसा की और कहा—हे राजन्, जो कुछ हमको कहना था वह तो तुम ही कह चुके। तुमने जो कहा वह सत्य है। तुम्हारे प्रताप को हम जानते हैं। तुम्हारे समान न कोई राजा हुआ है, न होगा। तुमने देवताओं के साथ कुछ शत्रुता नहीं की; क्योंकि तुम बुद्धिमान् हो। तुम धर्मात्मा और वेदज्ञ हो। तुम्हारे राज्य में कोई कार्य वेद के विरुद्ध नहीं होता। तुमने प्रजा को अच्छी तरह पाला, जिससे देवताओं को भी आनन्द प्राप्त हुआ है। पर हाँ, मुझे तुम्हारा एक बड़ा पाप मालूम होता है। तुमने जो शिवजी को काशी से दूर कर दिया, यह बड़ा भारी पाप हुआ। जो यह पाप किसी ढब से दूर हो जाय तो अति प्रसन्नता के साथ तुम्हारे तीनों प्रकार के पाप-ताप दूर हो जायँगे। अब केवल एक उपाय है। वेद का वाक्य है कि

जो कोई मनुष्य शिव का लिङ्ग स्थापित करता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं, वह हर प्रकार से निर्मल हो जाता है। मनुष्य के शरीर में जितने रोम हैं, उतने पाप शिवलिङ्ग स्थापन करनेवाले के नाश को प्राप्त होते हैं। विशेष रूप से काशी में शिवलिङ्ग स्थापन करके किसी पाप से स्वप्न में भी डरना न चाहिए। जो काशी में शिवजी का एक लिङ्ग भी स्थापित कर दे तो मानों बहुत देशों में शिवलिङ्ग स्थापित कर चुका। समुद्र के रत्नों की संख्या है, जो उसमें उपजते हैं। पर शिवलिङ्ग के स्थापित करने की महिमा अपरिमित है। इससे उचित है कि आप शिवलिङ्ग की स्थापना करें। इससे आप बड़े यशस्वी होंगे और अपना मनोरथ पावेंगे। विष्णु ने यह कहा। फिर चुप होकर कुछ देर तक पढ़-पढ़ाकर राजा के शरीर को अपने हाथ से स्पर्शकर कहा कि मैंने ज्ञानदृष्टि से जो देखा है, वह तुमसे कहता हूँ। धन्य है तुमको। तुम बड़े ज्ञानी, शुभ गुण-युक्त हो। तुम्हारे समान पृथ्वी पर दूसरा राजा नहीं। जिस मनुष्य को कुछ धन अथवा देश की इच्छा हो, वह प्रभात के समय प्राति दिवस तुम्हारे नाम को जपे। मुझे तुम्हारे समीप आने से बड़ा लाभ हुआ। यह कहकर ब्राह्मण हँसते हुए बार-बार शिर हिलाने लगे। फिर कहा कि इस राजा के बड़े भाग्य हैं, जो अब मुक्ति पावेगा। जिनका मैं, ब्रह्मा, इन्द्र, देवता, मुनि और शेष ध्यान करते हैं, वे शिवजी इस राजा का प्रतिदिन स्मरण करते हैं। जैसे इसके भाग्य हैं, वैसे तीनों लोकों में किसी के नहीं। इसको संसार के सब अलभ्य पदार्थ प्राप्त हैं। इस तरह अपने मन में कहकर फिर ध्यान छोड़ वह राजा से कहने लगे कि हमारी इच्छा पूर्ण हुई। तुम इसी शरीर से परमपद चले जाओगे। सब प्रकार से परम आनन्द पाओगे। जब तुम शिवजी का लिङ्ग स्थापित करोगे, तब शिवपुर में जाकर मृत्यु से छूटोगे। आज

के सातवें दिन शिवजी के गण तुम्हें लेने आवेंगे। तुम चाहे किसी और धर्म का फल इसको जानते हो, पर हम केवल काशी-सेवन का फल इसे समझते हैं कि तुमने वही पद पाया। जिसने काशी की भक्ति भली भाँति की, वह तुम्हारे समान कृतार्थ हो जाता है; क्योंकि काशीसेवन करनेवाला शिव को बहुत प्रिय है। यह कहकर ब्राह्मण अर्थात् विष्णु चुप हो गये। राजा अति प्रसन्न हुआ। राजा ने शिष्य समेत विष्णुरूपी ब्राह्मण को उनकी आज्ञा के अनुसार सब कुछ दिया और कहा कि तुमने मुझको भव-सागर से पार उतारा। जो कुछ भी मैं आपको दूँ, वह सब तुच्छ है। विष्णु भगवान् बिदा होकर अपने स्थान को गये और काशी भर में भ्रमणकर वहीं स्थित हुए। स्नान के उपरान्त शिवपूजा की। फिर गरुड़ को शिव के समीप भेजा और शिव के आगमन की राह देखते रहे। अग्निबिन्दु ब्राह्मण को वह देश कृपा करके दिया और पञ्चनद के ऊपर बैठकर प्रीति से शिव का स्मरण करने लगे।

पन्द्रहवाँ अध्याय

नारद के प्रश्न करने के उपरान्त ब्रह्माजी बोले कि राजा ने ब्राह्मणरूपी विष्णु से उपदेश पाकर अपने भृत्य जनों को बुलाया। सब राजा, प्रजा, मन्त्री, मण्डलेश्वर अपने परिवार, पुरोहित, यज्ञ करानेवालों, सेनापतियों, सेना, राजकुमारों और वेदपाठियों आदि सहित आये। फिर राजा ने अपने बड़े पुत्र रिपुंजय को तथा अपनी सब स्त्रियों को बुलाया। जब सब आ चुके तो ब्राह्मण ने जो कहा था, वह सब हाथ जोड़कर प्रसन्नता के साथ सबको सुना दिया। और कहा कि अब हम सात दिन और पृथ्वी पर हैं। फिर अवश्य ही शिवलोक को जायँगे। यह सुनकर सब लोगों को आश्चर्य हुआ। पर किसी ने राजा के भय

से कुछ न कहा। फिर राजा तुरन्त उठकर घर के भीतर गये और सामग्री इकट्ठी कर शुभ लग्न में रिपुंजय का युवराज-पद पर अभिषेक किया। फिर काशी में आकर बड़ी सामग्री इकट्ठी की और गङ्गा के पश्चिम की ओर शिव की पूजा की। जितना धन देशों को जीतकर इकट्ठा किया था और जो द्रव्य शुभ नीति-रीति से संग्रह हुआ था, वह सब शिवालय बनाने में लगा दिया। काशी में वह स्थान प्रसिद्ध है। उसकी बड़ाई तीनों लोकों में विख्यात है। जिसके केवल स्मरण करने से कोई दुःख नहीं होता, उस शिवालय में नरेश्वर नाम शिवलिङ्ग स्थापित किया। फिर राजा के मन में अति प्रसन्नता उपजी। उसका मुख सूर्य के समान चमकने लगा। कारीगरों को बड़ा पारितोषिक दिया। सब बाजे बजने लगे। काशी के सब देवताओं अर्थात् निवासियों को बहुत कुछ दिया और अन्य मनुष्यों को भी भरपूर कर दिया। सब सामग्री इकट्ठी करके षोडशोपचार से पूजा की। राजा के मन में जो दुःख था, वह दूर हो गया। राजा ने शिव को सबसे श्रेष्ठ समझा और काशी के रहनेवालों का, जो मनुष्यरूप में शिव हैं, बहुत आदर किया। जितने लिङ्ग काशी में सुनने, देखने या विचार से विदित होते हैं, उन सबकी पूजा कराई। काशी में जितनी देवताओं की मूर्तियाँ थीं, उनको भी पूजा। फिर शिव के ध्यान में मगन हो गया। राजा ने सिवा शिवलिङ्ग के और किसी देवता की पूजा न की। पूजन और प्रणाम के अनन्तर ध्यान में मग्न हुआ। जब विष्णु के बताने के अनुसार सातवाँ दिन आया, उस दिन राजा ने शिवलिङ्ग की बड़ी पूजा की। पूजन और प्रणाम के उपरान्त स्तुति करने लगा। तब आकाश से उत्तम विमान पृथ्वी पर उतरा। उसके ऊपर शिव के गण चारों ओर बैठे थे। उन सबके चार चार भुजाएँ थीं,

जिनका तेज दूर तक फैल गया। उनकी दीप्ति सूर्य की-सी थी। वे सब अपने हाथ में त्रिशूल लिये हुए थे। उनके पाँच मुख और तीन आँखें, उत्तम सुन्दर शरीर, जटाजूट धारे, सर्पों से अलंकृत, नीलकण्ठ, शशि भाल पर, शरीर में भस्म रमाये, शरीर भर में सर्प लिपटे थे। निदान वे हर बात में शिव के समान थे। बहुत सी स्त्रियाँ भी विमान पर विराजमान थीं, जो अपने हाथ में चँवर लिये हुए थीं। मानों संसार भर की सुन्दरता केवल विमान में आ बैठी थी। शिवगण विमान से उतरे और उनसे अपनी पूजा ली। गणों ने राजा की आज्ञा के अनुसार राजा के शरीर को स्पर्श किया। राजा तुरन्त ही देवताओं के समान दिव्यदेह हो गया। उसके शरीर में शिव और गणों के समान सम्पूर्ण चिह्न प्रकट हुए। वह तुरन्त विमान पर बैठ अपने समाज सहित गणों के साथ शिवलोक को गया और गणों में गिना गया, उसे मुक्ति प्राप्त हुई। वह स्थान, जहाँ से राजा शिवपुर को गया था, भूपाल-श्री के नाम से बड़ा तीर्थ हुआ। जो लिङ्ग दिवोदासेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है, उसकी पूजा से फिर मनुष्य को आवागमन का भय नहीं रहता। यह बड़ा पवित्र इतिहास है, जिसके पढ़ने-सुनने से सब मनोरथ पूरे होते हैं, कुछ कष्ट नहीं रहता, तीनों लोकों में सिद्धि प्राप्त होती है।

सोलहवाँ अध्याय

नारद के प्रश्न के उपरान्त ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! विष्णु की आज्ञा के अनुसार गरुड़ शिव के समीप आये और आदर-सम्मान कर खड़े हो स्तुति की। शिव ने पूछा कि तुम कहाँ से आये? गरुड़ ने कहा कि सब वेद, पुराण और सब गण इस बात पर एक-मत हैं कि संसार में वह सबसे अधिक चतुर है, जो आपकी सेवा और आज्ञा का पालन करे। आप सब कुछ जानकर भी

संसारी रीति से पूछते हैं। पर मुझको इन बातों से क्या प्रयोजन है। मैं तो हर प्रकार से सेवक हूँ। फिर सब योगिनीगण, गणेश और विष्णु के चरित्र की सब कथा वर्णन की और कहा कि विष्णु ने मुझको आपके पास भेजा है। यह सुनकर शिवजी हँसे। गिरिजा अति प्रसन्न हुई और वीरभद्र के आनन्द का वर्णन नहीं हो सकता। इसी प्रकार और सब गण भी महाप्रसन्न हुए। शिवजी ने गरुड़ से कहा कि तुम हमारे बड़े हितकारी हो। तुमसे अधिक और कोई हमको प्रिय नहीं। जो इच्छा हो, वह हमसे वरदान माँग लो। तुम हमारे उत्तम भक्त और प्राण से प्यारे हो। हमारी आज्ञा से ही तुम विष्णु के वाहन हुए हो। गरुड़ ने प्रीतिसागर में डूबकर विनय की कि मुझको और वर क्या चाहिए? इससे अधिक और क्या होगा कि मैंने आपके चरणों को देखा। इन्हीं चरणों के पाने को ब्रह्मा, विष्णु, देवता, मुनि आदि कैसा-कैसा तप करते हैं। जब आप मुझ पर प्रसन्न हुए तो मैं माया के बन्धन से मुक्ति पा चुका। मुझको यही बड़ा वरदान है। हाँ, जो आपने प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा है सो मेरी यह इच्छा है कि मुझको भक्ति प्राप्त हो; आपके चरणारविन्द की प्रीति कदापि कम न हो; आपके भक्तों की सेवा करूँ; किसी से शत्रुता न हो। शिवजी ने कहा कि यही होगा। फिर शिवजी ने सबको बुलाकर चलने की तैयारी की। उस समय मन्दरगिरि महादुखी हो शिवजी के चरणों पर गिर पड़ा और कहा कि महाराज, मुझे मत छोड़ो। शिवजी बोले—तुम खेद न करो। तुमको मैं बहुत प्यारा मानता हूँ। मैं तुम पर लिङ्गरूप होकर स्थित रहूँगा और मन से तुमको कभी न भुलाऊँगा। इसी प्रकार बहुत समझाकर उसका कष्ट दूर किया और लिङ्गरूप होकर मन्दरगिरि पर स्थित हुए। फिर काशी जाने के लिए शुभ

लग्न पाकर चले। चलने के समय सबको बड़ा आनन्द हुआ जिस तरह शिवजी गिरिजा और पुरीसहित चले। जो प्रसन्नता चलने के समय हुई, उसको कोई कोटि मुख से भी वर्णन नहीं कर सकता। शिवजी ने गरुड़ से कहा कि तुम आगे जाकर विष्णु को हमारे आने का समाचार दो। सो गरुड़ उसी समय विष्णु के समीप आये। जब विष्णु अग्निबिन्दु को उपदेश दे रहे थे, उसी समय गरुड़ ने पहुँचकर विष्णु को प्रणाम किया।

सत्रहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! प्रणाम के उपरान्त गरुड़ ने विष्णु से कहा कि महाराज! शिवजी आते हैं। यह सुनकर विष्णु अति प्रसन्न हुए। उन्होंने शिवजी की ध्वजा देखी, जो असंख्य सूर्यों के समान झलकती थी और जिसके प्रकाश से चारों ओर उजियाला हो गया था। नाना प्रकार के बाजों का शब्द सुना। जय-जय शब्द हुआ। यह देख विष्णु ने भी कहा—"जय शिव"। फिर अग्निबिन्दु से कहा कि हमारा चक्र छू ले, जिसमें तुझको मुक्ति प्राप्त हो। अग्निबिन्दु ने ऐसा ही किया और मुक्त हुआ। गरुड़ को सब कुछ देकर ब्रह्मा को बुलाया। योगिनीगण और सब सूर्यों को साथ लेकर गणेश के समीप आये। ब्रह्मा को सबके आगे करके प्रसन्नतापूर्वक चले। काशी के भीतर शिव को देखकर प्रणाम किया। मैंने चावल, फल, फूल हाथ में लेकर रुद्रसूक्त पढ़ आशिष दी; क्योंकि मुझको शिव ने संसारी रीति से प्रणाम करने का निषेध किया। उन्होंने संसारी जीवों के समान आप मुझे प्रणाम किया और विष्णु ने शिव को प्रणाम किया। गणपति की ओर जब शिव ने देखा तो गणपति चरणों पर गिर पड़े। शिव ने गणपति को उठाकर शिर सूँघने के उपरान्त अपने आसन पर बैठाया और बहुत प्रकार से गणेश की प्रशंसा की।

योगिनीगण शिव की इच्छा पाकर प्रणाम के उपरान्त मङ्गल गाने लगीं और बारहों सूर्यों ने भी प्रणाम किया। शिव ने विष्णु को अपने आसन पर बाईं ओर बैठा लिया और मुझको दाहिनी ओर बैठाया। गणों की ओर देखकर केवल देखने ही से उनका सत्कार किया। योगिनियों का शिर हिलाकर आदर किया। बारहों सूर्यों से यह कह कर कि बैठ जाओ, उनको आनन्द दिया। तब जब कि शिव काशी से बाहर बैठे थे, उत्तमोत्तम सभा अलंकृत थी। कौन ऐसा था, जो उस समय आनन्द से फूला न समाता। काशी के मनुष्य तालाब के कमल के समान विराजमान थे। चन्द्रमा, जो कि शिव के वियोग से मुख मूँदे थे, शिव के आने से फूल उठे। उस समय मैंने शिव को प्रसन्न देखकर बिनती की कि हे सदाशिव! मुझसे कुछ आपकी सेवा हो नहीं सकी, इसको क्षमा करना। फिर काशी की बड़ाई की। शिव ने कहा कि हम तुमसे प्रसन्न हैं। तुम कुछ भय मत करो। तुम किसी प्रकार दण्ड के योग्य नहीं; क्योंकि एक तो ब्राह्मण हो, जिसकी महिमा बहुत है। दूसरे अश्वमेधयज्ञ करने से कोई पाप नहीं रहता। तीसरे तुमने हमारे लिङ्ग काशी में स्थापित किये, इससे तुम्हारे सब पाप नष्ट हो गये। जो मनुष्य काशी में एक लिङ्ग भी स्थापित करे, उसके असंख्य पाप नष्ट हो जाते हैं। इसके सिवा ब्राह्मण से चाहे हज़ारों पाप हों, पर वह दण्ड के योग्य नहीं। जैसा कि वेद कहते हैं, जो ब्राह्मण को दण्ड देते हैं, उनका आनन्द थोड़े ही दिनों में जाता रहता है। इसी प्रकार शिव ने योगिनी, सूर्य और गणों को सांत्वना देकर उनकी लज्जा दूर की। फिर शिव ने विष्णु को देखा, पर जिह्वा से कुछ नहीं कहा। मन में शिव और विष्णु दोनों अति प्रसन्न हुए। उस समय सभी ने शिव की बार-बार स्तुति की। शिव और गिरिजा

बहुत प्रसन्न हो शुभ दृष्टि से सबकी ओर देखने लगे। उस समय गोलोक से पाँच गऊ आकर शिव के सम्मुख खड़ी हुईं जो शिव को अति प्रिय हैं और जिनकी सेवा के लिए विष्णु को गोलोक में बसाया है। उनके नाम सुनने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं, देवता और पितरों को आनन्द प्राप्त होता है। उनके नाम ये हैं——सनन्दा, सुमना, शिवा, सुरभि और कपिला। शिव ने प्रसन्नता से उनकी ओर देख दिया। उनके थनों से दूध टपक कर कुण्डरूप हो गया, जो कपिलाह्रद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसमें स्नान से कोई पाप नहीं रहता। शिव की आज्ञा से सब देवताओं ने उसमें स्नान करके तर्पण किया और शिव से कहा कि यहाँ स्नान करने से हम अति प्रसन्न हुए हैं। आपके धर्म से हमने अति प्रसन्नता प्राप्त की। हमारी इच्छा है कि इस स्थान की महिमा बहुत हो। शिव ने कहा कि हे विष्णु और सब देवता! हम कहते हैं कि यह सबसे बड़ा तीर्थ है। जो मनुष्य इसमें तर्पण, श्राद्ध आदि करेगा, उसको गया से भी अधिक फल प्राप्त होगा। इसको शिव-गया तीर्थ कहेंगे। हमारे वृषभध्वज आदि नाम कहने से एक पाप भी किसी का न रहेगा। दूध, शहद, घी, जल के समान चारों युगों में काशी के भीतर वर्त्तमान रहेंगे। यहाँ हम सब अंशस्वरूप से स्थित होंगे और सबको वर देंगे। यहाँ चाहे कोई किसी दशा में मरेगा, उसकी मुक्ति होगी। शिव काशी को यह वर दे रहे थे कि नन्दीश्वरगण आये और दोनों हाथ जोड़ प्रीति से शिव की स्तुति करने लगे।

अठारहवाँ अध्याय

नन्दीश्वर ने कहा कि हे महाराज शिवशंकर दीनबन्धु! एक कृपा की दृष्टि इधर भी कर दीजिये। मैंने आपकी आज्ञा से आठ बैलों का रथ सजाया है, जिनके गले में घण्टे पड़े हुए हैं और

आठ घोड़े, जिनकी गर्दन में भूषण पहिनाया गया है, रथ में लगे हैं। सूर्य, चन्द्रमा, पवन, गङ्गा, सरस्वती, ब्रह्मा, व्याहृति आदि सब अपने-अपने उचित स्थानों पर अलंकृत हैं, अर्थात् ये सब रथ की सामग्री हैं। ऐसा जो रथ बना हुआ है, उस पर आप सवारी कीजिये। यह कह नन्दीश्वर चुप हो गये। विष्णु मैं और देवता आदि अति प्रसन्न हुए। शिव ने भी प्रसन्न होकर दया की दृष्टि से देख पूर्ण भक्ति हमें दी। फिर शिवजी ने चलने का उद्योग किया। सब लोग इस इच्छा को जान गये। फिर सुरमाताओं ने नीराजन करके शिवजी की स्तुति की। उस समय बड़ा उत्सव हुआ। सब मनुष्यों की जिह्वा से जय-जय शब्द निकला। नाना प्रकार के बाजे बजने लगे। शिवजी को उठते हुए जानकर विष्णु ने अपना हाथ दिया। शिवजी उसे पकड़कर उठ खड़े हुए। गणों ने अपने डमरू बजा दिये, जिससे चारों ओर शब्द पूरित हो गया। तीनों लोकों के निवासी आये, जिनका ब्योरा संक्षेप से वर्णन करते हैं। अर्थात् तेंतीस करोड़ इन्द्र आदि देवता, दो कोटि तुरङ्गगण, एक कोटि भैरवीदल, नवकोटि चामुण्डासमाज तथा वीरभद्र की सेना और दूसरे गण, अष्टकोटि बालक समान बालखिल्या, छियासी हज़ार मुनि ब्रह्मज्ञानी, सप्तकोटि गणेशजी के गण, श्रीगणाधिप के साथ, जिनका स्वरूप श्रीगणेश के समान था, हाथों में फरसा लिये, और असंख्य अन्य गृहस्थ ब्राह्मण, आठ कोटि पातालके निवासीनाग अर्थात् तक्षक आदि, तीनकोटि शिवजी के गण, दो-दो कोटि दनु और दिति की सन्तान अर्थात् दैत्य और दानव आये। आठकोटि गन्धर्व और पचास लाख राक्षस और यक्ष, आठहज़ार पङ्खवाले और बे पर के पर्वत, छः अयुत गरुड़, एक अयुत विद्याधर और साठहज़ार ईश्वर, तीन सौ वंशपति और आठलाख वन की ओषधि आदि शरीर धारण किये आये। सात

समुद्र उत्तमोत्तम रत्न भेंट लिये, तीनहज़ार और पाँच अयुत नदियाँ और आठों दिग्गज उस स्थान पर आये, जहाँ शिव थे और शिव को देखकर अति प्रसन्न हुए। सब मिलकर शिवजी की सेवा करने लगे। कोई हर्ष से खिलखिलाते थे, कोई नाचता था, कोई गाता था, कोई जय-जयकार करता था, कोई ध्यान में लगा था, कोई शिर से पाँव तक शिव के स्वरूप को देखता था, कोई शिवजी पर चँवर डुलाता था, कोई हाथ जोड़ स्तुति करता था, इस प्रकार सबको सेवा करते देख शिवजी ने सबकी ओर कृपा की दृष्टि से देख दिया। सबका आदर करके शिवजी रथ पर चढ़े। गिरिजा को बाईं ओर बैठाया। जब शिव को गिरिजा समेत रथ पर विराजमान देखा तो इन्द्रआदि ने बड़ी स्तुति की। इसी प्रकार विष्णु ने और हम सबने अलग-अलग स्तुति की। शिवजी सबकी ओर कृपा से देखकर काशी के भीतर गये और अपने शरीर काशी को देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए। जय काशी और जय आनन्दवन, इसी प्रकार के बहुत से वचन शिवजी ने श्रीमुख से कहे। प्रेम की अधिकता से शरीर भर गद्गद हो गया, जिह्वा रुकने लगी। उस समय शिवजी के भक्त जैगीषव्य ने गुफा से निकलकर शिवजी के दर्शन किये। शिवजी ने भी उनको निकट बुलाकर दर्शन दे प्रसन्न किया। फिर काशी के निवासी सब ब्राह्मण आये शिवजी उनका भी आदर करके वरणा नदी के निकट पहुँचे। हिमाचल के बनाये हुए दो मन्दिर देखकर प्रसन्न हुए। आगे जाकर अपने भवन की तैयारी के लिए विश्वकर्मा को आज्ञा दी। विश्वकर्मा ने शिवजी की आज्ञा से तुरन्त राजगृह निर्मित किया, जिसमें तीनों लोकों से बढ़कर सामग्री लगाई। शिवजी का मन्दिर अति अद्भुत आश्चर्य-कारक तैयार हुआ। शिवजी ने अति प्रसन्न हो गिरिजा, पुत्रों,

गणों और देवताओं आदि समेत उसमें प्रवेश किया और परम प्रसन्न हुए। संसारी रीति के अनुसार सबको सत्कार करके विदा कर दिया और आप गिरिजा और परिवार समेत वहाँ निवास किया। जो इस चरित्र को सुनेगा अथवा पढ़ेगा, उसको बहुत ही आनन्द प्राप्त होगा। यह शिवजी और काशी का आख्यान किसी पाप को जलाये विना नहीं रहता; सब पाप नष्ट हो जाते हैं। दोनों लोकों में सुख प्राप्त होता है, शिवजी गिरिजा और गणों समेत प्रसन्न होते हैं और तीनों लोकों में कोई वस्तु अलभ्य नहीं रहती।

उन्नीसवाँ अध्याय

इतना सुन नारदजी ने पूछा कि हे पिता! जब शिवजी चले तो वह तुरन्त अपने भवन में स्थित हुए वा मार्ग में कहीं ठहरे जो मनुष्य योगी, ब्राह्मण आदि दर्शनों के निमित्त आये, उनका चरित्र भी विस्तार से वर्णन कीजिये। ब्रह्माजी ने कहा—शिवजी जब काशी में आये तो सबसे पहिले अपने भक्त जैगीषव्य के घर में गये। वह रात-दिन एकान्त में रहा करते और शिवजी के ध्यान में डूबे रहते थे। उनके प्रेम से शिवजी, गिरिजा और सब गण उनके अधीन थे। जब शिव काशी को छोड़ मन्दराचल पर्वत पर जा रहे, तबसे जैगीषव्य मुनि ने यह प्रतिज्ञा की कि मैं उसी समय अन्न और जल ग्रहण करूँगा, जब फिर शिवजी के चरणकमल देखूँगा। सो यही उद्योग कर वह एकान्त में जा छिपे और शिवजी के ध्यान में रात-दिन मगन रहे। उन्होंने अट्ठासी हज़ार वर्ष तक न तो पानी पिया, न भोजन किया। यह बात या तो मुनि ने योगबल से की या उनपर शिवजी की पूर्ण कृपा थी। मुनि की महिमा शिव के सिवा और कौन जान सकता है। इसी कारण शिव ने अपनी काशी के लिए सैकड़ों उपाय किये,

क्योंकि शिव भक्तवत्सल हैं। धर्मात्मा राजा की हानि अपने भक्त के लिए उचित समझी। जैगीषव्य की कुटी में शिवजी के जाने की कथा इस भाँति है कि शिवजी ने नन्दीश्वर गण को आज्ञा दी कि यहाँ एक गढ़ा है, जिसके भीतर एक हमारा भक्त जैगीषव्य रहता है। उसके शरीर में केवल चर्म और अस्थि रह गई हैं। उसने हमारे दर्शन के निमित्त बड़े-बड़े दुःख सहे, अर्थात् जब से हमने काशी छोड़ी, तब से वह अन्न-जल-रहित है। हमको उसे दर्शन दिये बिना आनन्द नहीं। इसलिए तुम हमारा कमल गुफा के भीतर ले जाकर उसी कमल से मुनि के शरीर को स्पर्श करना। वह भलेचंगे हो जायँगे। उस समय तुम तुरन्त उन्हें साथ लेकर आना। नन्दी ने ऐसा ही किया। मुनि ने शिव के दर्शन किये; और अति प्रेम से मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। जब चैतन्य हुए तो तुरन्त स्तुति करने लगे, जो आप उन्होंने बनाई थी। कहा कि मैं तीनों लोकों में आपको सर्वोपरि समझकर आपकी शरण में आया हूँ। ऐसी स्तुति सुन शिव अति प्रसन्न हुए, कहा कि वर माँगो। जो हमारा है वह सब तुम्हारा है। मुनि ने विनय की कि जो आप प्रसन्न हैं तो मेरे शिर पर अपना करकमल रखिये। मेरी इच्छा है कि आपके चरणों से कभी दूर न रहूँ। आपके निकट और आपके प्रेम में डूबा रहूँ। दूसरी यह इच्छा है कि आपका जो लिङ्ग मैंने स्थापित किया है, उसमें आप गणपति और स्कन्द सहित स्थित हों। शिवजी बोले—बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा। बिना तुम्हारे माँगे हम यह वर भी तुमको देते हैं कि तुमको योग सिद्ध प्राप्त हो, जिससे निर्वाण पद मिलेगा। तुम्हीं योगशास्त्र के आचार्य होगे। तुम्हीं सबको उपदेश दोगे और सब संदेहों को दूर करोगे। जैसे हमारे गण भृङ्गी, सोम और नन्दीश्वर हैं, वैसे ही तुम भी हमारे एक गण होगे। हमारे

भक्त जरा और मृत्यु से रहित हैं। तुम मुझे बहुत प्यारे हो। यद्यपि संसार में बड़े-बड़े संयम-नियम और भी हैं, पर तुम्हारे नियम के समान एक भी नहीं है। तुम्हारा नियम है कि बिना हमारे दर्शन किये भोजन नहीं करते, पानी नहीं पीते। वास्तव में जो मनुष्य हमारे दर्शन बिना भोजन करता है, उसके समान दूसरा पापी नहीं है। जो हमारी पूजा बिना जल पीता है, वह तो मानों नरक में प्रवेश करता है। मानों वह बुरी वस्तु का खानेवाला है। उसके समान पापी संसार में दूसरा नहीं। हम तुम्हारे ऐसे नियम से अतिप्रसन्न हैं। तुम हर समय हमारे निकट रहोगे। तुमको जीवन्मुक्ति प्राप्त रहेगी। तुम्हारी समानता किसी भक्त के साथ तीनों लोक में न की जायगी। तुमको कभी कुछ दुःख न होगा। तुमने हमारा जो लिङ्ग स्थापित किया है, वह जैगीषव्येश्वर के नाम से प्रसिद्ध होगा। जो मनुष्य उसकी तीन वर्ष तक सेवा करेगा, वह पूर्णयोग पावेगा। उसके दर्शन से सिद्धि और आनन्द प्राप्त होगा, निन्दा और पाप नष्ट हो जायँगे। जो मनुष्य तुम्हारी गुफा में तुमको प्रणाम, दण्ड-वत् और स्मरण कर जायगा, वह छः महीने में सुगमतापूर्वक योग पाकर सिद्ध हो जायगा। उसके सब पाप नष्ट हो जायँगे। यह हमारी आज्ञा है। इसका नाम ज्येष्ठेश्वर क्षेत्र होगा। इस स्थान पर आने से सब प्रकार की प्रसन्नता प्राप्त होगी। यहाँ पर एक शिवयोगी के भोजन कराने से करोड़ योगियों के खिलाने का फल होगा। जो तुम्हारा स्थापित किया हुआ लिङ्ग है, उसमें हम पूर्ण रूप से सदा स्थित रहेंगे। पर कलियुग में यह लिङ्ग सबकी दृष्टि से छिपा रहेगा। जो योगी योग के साधनेवाले हैं, उनको योग दिया जावेगा। दर्शन से उसके सब पाप मैं नष्ट करूँगा। जो स्तुति तुमने बनाकर पढ़ी, वह सब स्तुतियों की शिरोमणि होगी। इसके पढ़ने से सब मनोरथ पूरे होंगे। बड़े-बड़े पाप जाते

रहेंगे, पुण्य बढ़ेगा, भय दूर होगा। सब योग साधने के लिए अति लाभदायक होगा। हमारी भक्ति बढ़ेगी, हानि न होने पावेगी। इसके पढ़ने-सुनने से लोक में कोई ऐसा कार्य नहीं, जो न हो सकेगा। इसलिए यह तुम्हारी स्तुति युक्ति से पढ़नी और प्रतिदिन सुननी चाहिए। यह सुनकर मुनि शिवजी के चरणों पर गिर पड़े और स्तुति करने लगे। शिवजी ने उनको पृथ्वी पर से उठाकर अपने हृदय से लगा लिया। विष्णु ने और मैंने भी मुनि को गले से लगा लिया। शिवजी की ऐसी दयालुता देख सबको आनन्द प्राप्त हुआ। सबके मन में शिवजी का प्रेम उमड़ पड़ा। सबने शिवजी की स्तुति की। सब शिवजी की सेवा में प्रवृत्त हो जय-जय करने लगे। जब शिवजी ने आगे जाना चाहा, तब सब ब्राह्मण अगवानी को आये।

बीसवाँ अध्याय

नारदजी ने पूछा कि जो वार्त्ता ब्राह्मणों और शिवजी में हुई वह वर्णन कीजिये। वे ब्राह्मण कितने थे। ब्रह्माजी बोले कि जब सदाशिवजी काशी को छोड़ मन्दरगिरि पर चले गये थे, तब काशी के ब्राह्मणों ने अतिदुखी हो सलाह की और अपने घरों का प्रेम छोड़ केवल काशी की प्रीति को दृढ़कर क्षेत्रसन्यास ले लिया। शिवजी की प्रीति में अटल हो काशी में स्थित हुए। वे अपने दण्ड से पृथ्वी खोद वृक्षोंके मूल आदि निकाल खाते थे। उस स्थान का नाम पुष्करिणी हुआ, जिसके दर्शन से सब मनोरथ पूरे होते हैं। उसी स्थान पर उन्होंने शिवलिङ्ग स्थापित किया और सदा-शिव की उपासना करते रहे। उन्होंने युक्तिपूर्वक रुद्राक्ष की माला पहिनकर शरीर में भस्म लगाई। वे प्रतिदिन शतरुद्री का जप-कर शिवलिङ्ग की पूजा किया करते थे, और शिवजी के ध्यान में प्रवृत्त रहकर शिवजी के स्मरण के सिवा और कुछ नहीं

जानते थे। शिवजी के उत्तमोत्तम व्रत रखकर पाप से बचते थे। उन्होंने अपने-अपने स्थान में शिवलिङ्ग स्थापित किये थे। जब उन ब्राह्मणों ने शिवजी का आगमन सुना तो अतिप्रसन्न हो शिवजी के दर्शन को चले। उनकी संख्या नीचे लिखे के अनुसार थी—

उस स्थान का नाम जहाँ से ब्राह्मण आये	संख्या	उस स्थान का नाम जहाँ से ब्राह्मण आये	संख्या
दण्डाघाट	५०००	ध्रुवतीर्थ	६००
मन्दाकिनीतीर्थ	१००००	पितृकुण्ड	१००
हंसक्षेत्र	३००	उर्वशीह्रद	१००
ऋणमोचनतीर्थ	१२०००	पृथूदकतीर्थ	१३००
दुर्वासातीर्थ	१२०००	यक्षिणीह्रद	३१००
कपालमोचन	१६०००	पिशाचमोचनकुण्ड	१६००
ऐरावतह्रद	३००	मानसर	३००
मदनकुण्ड	२००	वासुकिह्रद	१ अयुत
गन्धर्वाप्सरसतीर्थ	६००	सीताह्रद	८००
वृषपतितीर्थ	३६०	गौतमह्रद	६००
वैतरणी	१५०	दुर्गतिहर	११००
गङ्गा के	निकटवर्ति	ब्राह्मण	५५५

ये सब पूर्वोक्त ब्राह्मण शुभ मांगलिक वस्तुएँ हाथ में लिये हुए जय-जय कहते शिवजी के समीप आये, और शिवजी का एक दृष्टि से दर्शन कर कृतार्थ हो गये। उन ब्राह्मणों ने शंकरसूक्त पढ़कर स्तुति की। शिवजी ने प्रसन्न होकर कुशल पूछी। ब्राह्मणों ने कहा——जब आप कृपा करते हैं तो कुशल ही है। दुःख कोई नहीं। कहा——महाराज! जब आपने काशी को छोड़ दिया तो हमारे मन दुःख से भर गये। हम सबने सलाह की कि सब छोड़ काशी में पड़े रहें; क्योंकि काशी को शिवरूप बखाना गया है। यहाँ रहने से कुछ हानि न होगी। हम सब यहाँ रहे और

आपके ध्यान में लग आपको देख बड़ा फल पाया। इससे अधिक और कोई फल वेद ने भी नहीं कहा। धन्य है आपकी काशी, जो तीनों लोकों से निराली है, जहाँ रहने से कोई पाप नहीं रहता। यहाँ रहकर जो आपका ध्यान करे, वह सबसे श्रेष्ठ है। वह धन्य है। फिर ब्राह्मणों ने काशी की बहुत प्रशंसा करके कहा कि काशी और शिवजी एक ही हैं। इतना कह ब्रह्माजी बोले—हे नारद! वास्तव में काशी शिव का स्वरूप और शिव काशी का अङ्ग हैं; यह बात निश्चय करके वेद कहते हैं। जैसे गौरी-शंकर एक ही हैं, वैसे ही काशी और विश्वनाथ एक ही हैं। इनमें कुछ भी अन्तर नहीं। जैसे शब्द और अर्थ में कुछ भिन्न भावना नहीं, वैसे ही इनमें भी भिन्नता नहीं। जो मनुष्य काशी में बसकर शिव का भजन करे, उसके समान कोई भाग्यवान् मनुष्य नहीं। काशी की प्रशंसा के वचन सुन शिवशंकर अति प्रसन्न हुए और श्रीमुख से बोले कि तुम सब धन्य हो। तुम सबने मुझको अपने अधीन कर लिया। तुम्हारी जो काशी पर इतनी भक्ति है तो तुम सब मुक्त हो। जो काशी के भक्त हैं, वे अवश्य मेरे भक्त हैं। जो दोनों के भक्त हैं, उनकी बराबरी कौन कर सकता है? जब तुम दोनों प्रकार से मेरे भक्त हो। तुम्हारे बराबर और कोई हमारा भक्त नहीं है। हर प्रकार से तुम निर्भय हो गये हो। यह काशी हमको अतिप्रिय है। इसका सेवन करनेवाले पापी नहीं हो सकते। यह काशी हमारे सिवा तीनों लोकों से न्यारी है। यहाँ किसी दूसरे की, यमराज की भी आज्ञा नहीं चल सकती है। तुम काशीवासियों से न हम और न काशी दूर है। तुमको जो वर चाहिए, माँग लो। हम प्रसन्नता से देंगे। काशी में क्षेत्रसन्यास लेनेवाले मुझे अतिप्रिय हैं। वे इस भवसागर के पार उतर जायँगे। शिवजी के ऐसे अमृत

वचन सुन वे ब्राह्मण मानों अमृत पीकर जी गये। वे सब बार-बार प्रणाम करके प्रसन्न हुए और अपने दोनों हाथ जोड़ सब ब्राह्मणों ने यह वर माँगा कि आप काशी को कभी न छोड़ें। हमको केवल यही वर दीजिए कि काशी में ब्राह्मणों का शाप किसी पर फल न करे। यहाँ मरने से सायुज्यमुक्ति मिले, आपके चरणों का प्रेम अधिक हो और माया के बन्धन में कोई न फँसे। जो लिङ्ग हम सबने यहाँ स्थापित किये, उनमें आप सदा शक्तिसहित स्थित रहें। शिवजी बोले कि यही होगा। सबकी ओर दया की दृष्टि से देख सबके दुःख दूर कर दिये। फिर श्रीमुख से काशी की महिमा बखान सबको बिदा कर दिया। सब ब्राह्मण बिदा होकर शिवजी की पूजा में प्रवृत्त हुए और शिवजी वहाँ स्थित रहकर अपने भक्तों समेत नाना प्रकार की लीलाएँ करते रहे।

इक्कीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! शिवजी ने काशी में स्थित होकर विश्वकर्मा को बुलाकर आज्ञा दी कि पूर्वकाल के समान शिव-नगरी तुरन्त रचो। सब उत्तमोत्तम शिवालय बनाओ। गणों के रहने के लिए उत्तमोत्तम मन्दिर सजाओ। देवताओं के लिए भी उसी के अनुसार भवन रचो। गिरिजा और उनके पुत्रों के लिए अतिसुन्दर मन्दिर निर्माण करो। फिर विश्वेश्वरजी महाराज का भवन बनाओ। तात्पर्य यह कि हर प्रकार से हमारा मन्दिर अति सुन्दर बना दो, जैसा कि तुमको वर दिया था। यह सुन विश्वकर्मा ने अतिकृतकृत्य हो दण्डप्रणाम के अनन्तर सब मन्दिर बनाये। जहाँ जिसका स्थान था, वहाँ नये सिरे से उसका भवन बनाया। उन भवनों को मणियों, बहुमूल्य वस्तुओं और नाना प्रकार के रंगों से सजाया और अलंकृत किया।

गणपति का मन्दिर बड़ी कारीगरी से बनाया, जिसे देख आश्चर्य होता था। विश्वनाथ का मन्दिर ऐसा निर्मित किया, जिसकी प्रशंसा करने में मैं भी असमर्थ हूँ। वह असंख्य रत्नों से अलंकृत और नाना प्रकार की शिलाओं से सुशोभित था। उसमें तीनों लोकों की सम्पदा लगाई। वह सर्वोपरि मन्दिर बना। इतना सुन नारद ने प्रश्न किया कि आप विश्वनाथजी के मन्दिर का विस्तार से वर्णन कीजिये। ब्रह्माजी बोले कि हे नारदजी! उस सुन्दर मन्दिर की भीतें रत्नों से जड़ी सुवर्ण की थीं, जिनके स्पर्श से शब्द होता था। वे जलती हुई अग्नि और सूर्य के समान चमकती थीं। उनमें बारह सहस्र खम्भे और इक्यासी इक्यासी भूधर थे, जिनको देख चौदहों भुवनों की सुन्दरता लज्जित होती थी। जो शिलाएँ खम्भों की दृढ़ता के लिए नीचे लगी हुई थीं, वे चन्द्रकान्तिमणि की थीं। उनमें पद्मराग और मरकतमणि की पुतलियाँ बनी हुई थीं, जिनके हाथों में रत्नों के दीपक रात-दिन जला करते थे। उत्तम सफ़ेद पत्थर पर रत्नों की बेलें, बूटे और सब देवताओं की मूर्तियाँ सुशोभित थीं। रत्नाकर समुद्र में जितने रत्न थे, वे सब गणों ने इकट्ठे किये थे। जितनी उत्तमोत्तम मणियाँ नागों के कोषों में थीं, वे भी सब गणों ने तुरन्त ला दीं। रावण ने असंख्य सुवर्ण अपने पास से भेजा था। इसी प्रकार और जो शिवभक्त दैत्य थे, उन्होंने नाना प्रकार के रत्न प्रेषित किये। यह जो हमने वर्णन किया, इसको केवल संसार की रीति समझना। नहीं तो, शिव को काहे की चाह है। वह जो चाहें तो असंख्य रत्नों के वृक्ष उत्पन्न कर दें। निदान विश्वनाथ का मंदिर बेजोड़ और अनुपम था। उसकी शोभा एक मनुष्य के मुख से सुन रत्नों की खान हिमाचल भी मुग्ध हो गये। इतना सुन नारद ने आश्चर्यपूर्वक ब्रह्मा से पूछा कि आप इस कथा को विस्तार-

पूर्वक वर्णन कीजिये। ब्रह्मा बोले कि जिस समय शिव काशी में पहुँच मन्दिर की तैयारी करने लगे थे, उन्हीं दिनों गिरिजा की माता मैना ने अति खेद से ठंडी साँस भरकर कहा कि बहुत सा समय बीता, पर गिरिजा का हाल मुझे नहीं मिला। मैं निश्चय-पूर्वक जानती हूँ कि गिरिजा को जो यहाँ सुख था, वह वहाँ न होगा; क्योंकि गिरिजा के पति के पास भस्म और बुड्ढे बैल के सिवा और क्या होगा! यह सुनकर हिमाचल अतिचिन्तित हुए। कहा—जब से गिरिजा गई, मानो हमारे घर से लक्ष्मी चली गई। यह कहकर हिमाचल ने गिरिजा को देखने और उनको धन देने के लिए यात्रा की तैयारी की। अपने साथ दो कोटि तुला मुक्ता, सौ तुला हीरा, ग्यारह लाख तुला पन्ना, षोडश सहस्र तुला इन्द्रनीलमणि, नव कोटि तुला पद्मराग और विद्रुम आदि रत्न साथ लिये। उत्तमोत्तम वस्त्र, भूषण, छत्र और सोने की कुछ गणना नहीं। हिमाचल यह सब सामग्री गिरिजा के देने को लदाकर अति अहङ्कार से मन्दराचल में पहुँचे। जब सुना कि शिव काशी को पधारे तो चलकर काशी में आये। वहाँ देखा कि असंख्य रत्नों से मन्दिर अलंकृत है। कलश सोने के और पताका उत्तमोत्तम मणियों की बनी हुई हैं। बहुत ऊँचा और आश्चर्यकारक विश्वनाथजी का मन्दिर देखकर हिमाचल मन में अति लज्जित हुए। अहंकार-हीन होकर कहा—इससे बढ़कर कोई मन्दिर तीनों लोक में नहीं। जो धन इसमें दिखाई देता है, वह कुबेर के घर और वैकुण्ठ में भी नहीं है। हिमाचल इसी सोच-विचार में थे कि उनको एक काशी का मनुष्य दिखाई दिया। हिमाचल ने पूछा कि यह किसका नगर है? उस भक्त को शिवजी ने विदेशियों की सेवा का काम सौंपा था। वह बोला कि यह शिवपुरी है। अभी उनको मन्दरगिरि से आये छः दिन

बीते हैं। वे अभी ज्येष्ठेश्वर में गिरिजा आदि के साथ रहते हैं। तुम तो कोई मूर्ख जान पड़ते हो, जो उन गिरिजापति को नहीं जानते, जिनकी सेवा तीनों लोक करते हैं। फिर उसने काशी का सब वृत्तान्त कह सुनाया। जो शिव का मन्दिर काशी में बनता था, उसका हाल कहा। हिमाचल इस प्रकार शिवजी को धन से पूर्ण देख अति प्रसन्न हुए और उस पुरुष को बहुत धन दे बिदा किया। फिर अपने मन में सोचने लगे कि शिवजी और गिरिजा महाधनी हैं। मैं उनके सामने तृण के समान भी नहीं। मैं आज तक सत्यमार्ग भूला हुआ था, जो शिवजी को गरीब जानता था। अब मुझे पूर्ण विश्वास हुआ कि शिवजी से बड़ा कोई नहीं है। मैं उनसे भेंट नहीं करूँगा; क्योंकि मेरे पास भेंट करने के योग्य सामग्री नहीं है; बहुत ही न्यून सामग्री है। फिर उन्होंने अपने सेवकों को बुलाकर आज्ञा दी कि रात भर में एक शिवालय बनवाओ, भोर न होने पावे; क्योंकि जो काशी में शिवालय बनाता है, उसके दोनों लोकों का दुःख निवृत्त हो जाता है। रात भर में शिवालय बन गया। हिमाचल ने चन्द्रकान्तमणि का शिवलिङ्ग बनाकर शिवालय में स्थापित किया और उसकी स्थापना में असंख्य धन व्यय किया। एक पाटी, जिसमें उनका नाम और गोत्र आदि सब लिखा था, शिवालय में लगा दी। फिर तुरन्त पञ्चनद में स्नानकर कामराज शिवजी की पूजा में प्रवृत्त हुए। जो कुछ धन शेष रह गया था, वह सब इधर-उधर फेंक दिया। आप साथियों समेत घर पहुँचे। हिमाचल ने जो रत्न फेंक दिये थे, वे अपने आप इकट्ठे होकर शिवलिङ्ग बन गये। ये दोनों लिङ्ग, अर्थात् एक जो हिमाचल ने स्थापित किया और दूसरा जो शेष रत्नों से बन गया, पञ्चनदह्रद और हरत्रता के तट पर प्रकट हुए। यह

आख्यान पढ़ने और सुननेवालों के लिए आनन्ददायक और भक्ति का बढ़ानेवाला है।

बाईसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले—हे नारदजी! जब प्रभात के समय हुण्डन और मुण्डन नामक दो गणों ने उठकर दो नये शिवालय देखे तो अति प्रसन्न हो दौड़कर शिवजी से यह सब वृत्तान्त कहा। बोले—महाराज, किसी बड़े धनवान् भक्त ने आपका शिवालय वरणा नदी के तट पर बनाया है। कल सन्ध्या तक उस स्थान पर हमने कोई मन्दिर नहीं देखा था। इस समय हमने देखा है। शिवजी ने गिरिजा को रथ पर चढ़ा वरणा नदी के निकट पहुँच शिवालय देखा। यद्यपि वह एक रात्रि में बना था, पर ऐसा उत्तम था कि उसके समान दूसरा न था। शिवजी गिरिजा सहित भीतर गये और चन्द्रकान्तमणि का शिवलिङ्ग देख उनको यह इच्छा हुई कि इसके बनानेवाले को जानें। इतने में उनकी दृष्टि पाटी पर पड़ी। उसको पढ़ शिव ने गिरिजा से कहा कि अपने पिता के बनवाये हुए शिवालय को देखो। वह तुम्हें देखने को यहाँ आये थे, पर भेंट का उत्तम अवसर न पाकर लौट गये और हमारा लिङ्ग स्थापित कर गये। तुम्हारे पिता धन्य हैं। अब मुझे वह बहुत प्रिय जान पड़ते हैं। गिरिजा ने यह सुनकर अति प्रसन्नता और प्रेम से कहा कि यह शिवलिङ्ग मेरे पिता ने वरणा के तट पर स्थापित किया है। इसमें आप पूर्णांश से रातदिन स्थित रहें। यह लिङ्ग गिरीश्वर के नाम से प्रसिद्ध हो। इसको पूजनेवाले दोनों लोकों में आनन्द पावें। शिव ने कहा—यही होगा। फिर शिव और गिरिजा ने उस लिङ्ग को और भी बहुत प्रकार के वर दिये और सबसे उस लिङ्ग की पूजा कराई। वहाँ से निकलकर शिव और गिरिजा बाहर आये। इधर-उधर भ्रमण करते जब

धीरे-धीरे कालराज के समीप पहुँचे तो कालराज के उत्तर में एक उत्तम शिवलिङ्ग देखा। गिरिजा बोलीं कि यह लिङ्ग तो इस समय नवीन दिखाई दिया है, जिसके तेज का प्रकाश आकाश तक फैला हुआ है। इसकी उत्पत्ति, स्वरूप और प्रभा वर्णन कीजिए। शिवजी ने उत्तर दिया कि तुम्हारे पिता हिमाचल बहुत रत्न आदि लदवाकर लाये थे। सो हमारा लिङ्ग स्थापित कर जो धन उनके पास बच रहा था, वह यहाँ फेंक गये। उनके पुण्य से इकट्ठा होकर यह लिङ्ग बन गया। इसका नाम रत्नेश्वर होगा। हे गिरिजा! हमारे लिए या तुम्हारे लिए जो कोई मनुष्य भक्ति-पूर्वक धन संकल्प करता है, उसका फल इसी प्रकार का होता है और दोनों लोक में आनन्द मिलता है। यह लिङ्ग रत्नों का है, इससे हम इसका नाम रत्नेश्वर रखते हैं। जो सुवर्ण तुम्हारे पिता डाल गये हैं, उससे तुम इस लिङ्ग का शिवालय बनाओ; क्योंकि शिवालय बनवाने में सब कर्म जो अपूर्ण रह जाते हैं, वे पूर्ण होते हैं और लिङ्ग स्थापित करने से हर वस्तु प्राप्त होती है। इसी प्रकार कलश चढ़ाने से भी वही फल होता है। ध्वजा के स्थापित करने से जितने पर्व ध्वजा के हों, उतने कल्पपर्यन्त वह मनुष्य कैलास में रहता है। वायु के चलने से जितनी बार वह वस्त्र हिले, उतने वर्षों तक वह मनुष्य शिवपुर में रहता है। यह सुन गिरिजा ने गणों को शिवालय बनाने की आज्ञा दी। सोम और नन्दी आदि गणों ने हिमाचल के फेंके हुए सुवर्ण से शिवालय बना दिया, जिसको देख गिरिजा ने बहुत प्रसन्न हो सब गणों को बहुत वर दिये। फिर शिव ने गिरिजा के कहने के अनुसार रत्नेश्वर शिवलिङ्ग को यह वर दिया कि जो कोई इस लिङ्ग की पूजा करेगा, वह मानों सब लिङ्गों की पूजा कर चुका। यह लिङ्ग अनादि सिद्ध होगा। एक नाचनेवाली स्त्री

केवल रत्नेश्वर शिवलिङ्ग में नृत्य कर मुक्त हो गई। यह कथा विस्तारभय से वर्णन नहीं की। फिर शिव और गिरिजा अपने स्थान पर आये और हर प्रकार के आनन्द में लगे रहे। इतना कह श्रीब्रह्माजी बोले कि हे नारद! शिव और गिरिजा परब्रह्म हैं। केवल संसार की भलाई के लिए ऐसे-ऐसे चरित्र और लीला-शरीर धारण करते हैं। इस चरित्र के पढ़ने-सुनने से दोनों लोकों में सुख प्राप्त होता है।

तेईसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! जब तक भवन तैयार नहीं हो चुका, तब तक शिव काशी में भ्रमण करते रहे और बहुत से शिवालयों में पहुँच बड़ी लीला और उत्सव किया किये। विराजेशपीठ, जो प्रसिद्ध स्थल है, वहाँ पर शिवजी और स्थानों से अधिक ठहरे। त्रिलोचन नाम का जो शिवलिङ्ग वहाँ पर है, उसकी महिमा वर्णन की। विष्णु से वह काशी की महिमा और सब शिवलिङ्गों की स्तुति, जो काशी में हैं, और तीर्थादिकों की महिमा वर्णन कर रहे थे। इतने में नन्दीश्वर ने आकर विनय की कि महाराज भवन बन चुका है। मैं रथ सजाकर लाया हूँ; आप कृपा करके चलिये। इन्द्र और ब्रह्मा आदि सब द्वार पर स्थित हैं। अब सबकी यह इच्छा है कि आप वहाँ चलकर सुशोभित हों। शिवजी अति प्रसन्न हो गिरिजा सहित भवन में गये। उस समय बड़ी धूमधाम हुई। बाजे बजने लगे। वेदध्वनि से चारों दिशा गूँज उठी और दान बहुत हुआ। उस समय सब लोकों में आनन्द छा गया। हम सब प्रसन्न हुए। गन्धर्व गाने लगे। अप्सरा नाचने लगीं। उत्तम पवन चली। आकाश से पुष्पों की वृष्टि हुई। निदान सब सामग्री आनन्द की इकट्ठी हुई। उस समय कोई ऐसा मनुष्य न था, जिसके मन में कुछ दुःख

रहा हो। सब मनुष्य आनन्दसागर में डूब गये। फिर मैं, विष्णु और देवताओं ने शिवजी का अभिषेक किया। सब तीर्थों का जल छोड़ा गया। उत्तमोत्तम वस्त्र और भूषण शिवजी और गिरिजा ने पहने। विष्णु और मैं, सबने भेंट दी, आरती उतारी। विष्णु ने एक बार मुख की, चार बार चरणों की, दो बार नाभि की और सात बार सर्वाङ्ग की आरती उतारी। इस तरह चौदह बार आरती उतारी जाती है। फिर मैं, विष्णु और सब देवताओं ने एक एक स्तुति बनाकर पढ़ी और विनय की कि प्रसन्न होकर हमारा पालन करो। यह कह हम सब चुप हो गये।

चौबीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! स्तुति सुन शिवजी प्रसन्न हुए और जिसने जो माँगा, उसे वही वर दिया। फिर विष्णु को और मुझे निकट बैठाकर विष्णु से कहा कि आपके समान हमारा कार्य करनेवाला दूसरा नहीं है। आपकी चतुराई से हमने काशी पाई। जो इच्छा हो, वह वर माँगो। विष्णु ने प्रणाम कर कहा कि हमको अपनी भक्ति दीजिए। शिवजी बोले—यही होगा। फिर शिवजी ने काशी की महिमा वर्णन की। फिर मुक्तिमण्डप की गाथा कह सुनाई, जहाँ पर महानन्द ब्राह्मण ने मुक्ति पाई थी। उसका दूसरा नाम कुकुटमण्डप है। यह बात सुनकर नारदजी ने पूछा कि कब से उस स्थान का नाम कुकुटमण्डप हुआ? और कृपा करके महानन्द की कथा सुनाइए। ब्रह्माजी बोले कि विष्णु ने शिवजी से विनय की कि आप मुझको यह भविष्य कथा सुनाइए। खास करके कुकुटमण्डप की कथा कहिए कि क्योंकर वह तीनों लोकों को सुखदायक होगा? यह सुनकर शिवजी बोले कि हम भविष्य की कथा कहते हैं। अब जो द्वापर आवेगा, उस युग में यहाँ एक महानन्द नाम का ब्राह्मण उपजेगा।

वह ऋग्वेद का बड़ा पण्डित दान आदि न लेगा। वह महाशीलवान्, शुभ कार्य करनेवाला और छल आदि से रहित रहकर हर प्रकार से शुभ कार्य करेगा। कुछ दिन के उपरान्त उसका पिता मर जायगा और जब वह तरुण होगा तब कामदेव के वेग से एक अन्य जाति की स्त्री को बिठाकर अपने प्राचीन मार्ग को छोड़ उसके साथ भोग-विलास करेगा। उसके अधीन होकर मद्य आदि पियेगा, जो वस्तु अभक्ष्य हैं उनको खायगा और धनवान् विष्णुभक्तों को देख आप भी वैष्णव बनकर शिवभक्तों की निन्दा करेगा। इसी प्रकार शैव बनकर वैष्णवों की निन्दा करेगा। निदान इसी प्रकार छली होकर अपने सब धर्म नष्ट कर देगा। मस्तक में तिलक लगाकर, श्वेत वस्त्र पहनकर, बड़ी माला पहने हुए बड़ी धूर्तता करेगा। झूठ बोलने के लिए बड़े-बड़े उपाय करेगा। वह अपने छल से सबको धोखा देगा। प्रकट में निर्मल, पर हृदय में महामलिन। एक पर्वत का निवासी तीर्थ-स्नान के निमित्त आवेगा जो बहुत धन देने को साथ लावेगा। वह चक्रतीर्थ में स्नानकर यह बात कहेगा कि मैं जाति का चाण्डाल हूँ, पर धनवान् हूँ। दान देना चाहता हूँ। पर यहाँ कोई दान लेना अङ्गीकार न करेगा। अंगुली उठा उस धूर्त की ओर सैनकर सब कहेंगे कि यह जो बैठा है, वह तुम्हारा दान लेगा। यह सुनकर वह चाण्डाल उसके पास जाकर दान लेने के लिए विनती करेगा। तब महानन्द कहेगा कि जितना धन तुम लाये हो, वह सब मुझको दो, और किसी को न दो तो मैं लेता हूँ। चाण्डाल कहेगा कि जो द्रव्य मैं लाया हूँ, वह सब शिवजी की प्रसन्नता के निमित्त है। मैं तुमको शिव के समान जान सब तुमको देकर प्रसन्न करूँगा। काशी में जो अति नीच हैं, वे भी शिव के अंश हैं। उनके समान और कोई नहीं। निदान वह

चाण्डाल महानन्द को दान देकर चला जायगा और महानन्द को उसी दिन से सब चाण्डाल मानने लगेंगे । सो महानन्द घर में छिपा रहा करेगा और लज्जा और संकोच के कारण अपनी स्त्री सहित नगर से निकल जायगा। वह काशी छोड़ कीलक देश को जायगा। मार्ग में ठगों का एक झुंड आकर उसको पकड़ वन में ले जायगा। सब धन लेने के अनन्तर वे ठग कहेंगे कि अब हम तुझे मारे डालते हैं। जिसको स्मरण करना हो, कर ले। तब महानन्द को बुद्धि उपजेगी कि जिसके लिए मैंने यह धन लेकर धर्म खो दिया, वह जीवन भी खो दिया और मरने के समय काशी भी छोड़ी। इसी प्रकार वह अपने कुल का स्मरण करेगा। निदान ठग उसको मार डालेंगे। फिर चारों ठग काशी-माहात्म्य सुनकर काशी में आवेंगे और मुक्तमण्डप के समीप स्थित होकर प्रति-दिन गङ्गा-स्नान कर, शिवकथा सुन निर्मल हो जायँगे । तब वे मेरी कृपा से मोक्ष पावेंगे। उस समय से इसका नाम मुक्तिमण्डप हो जायगा।

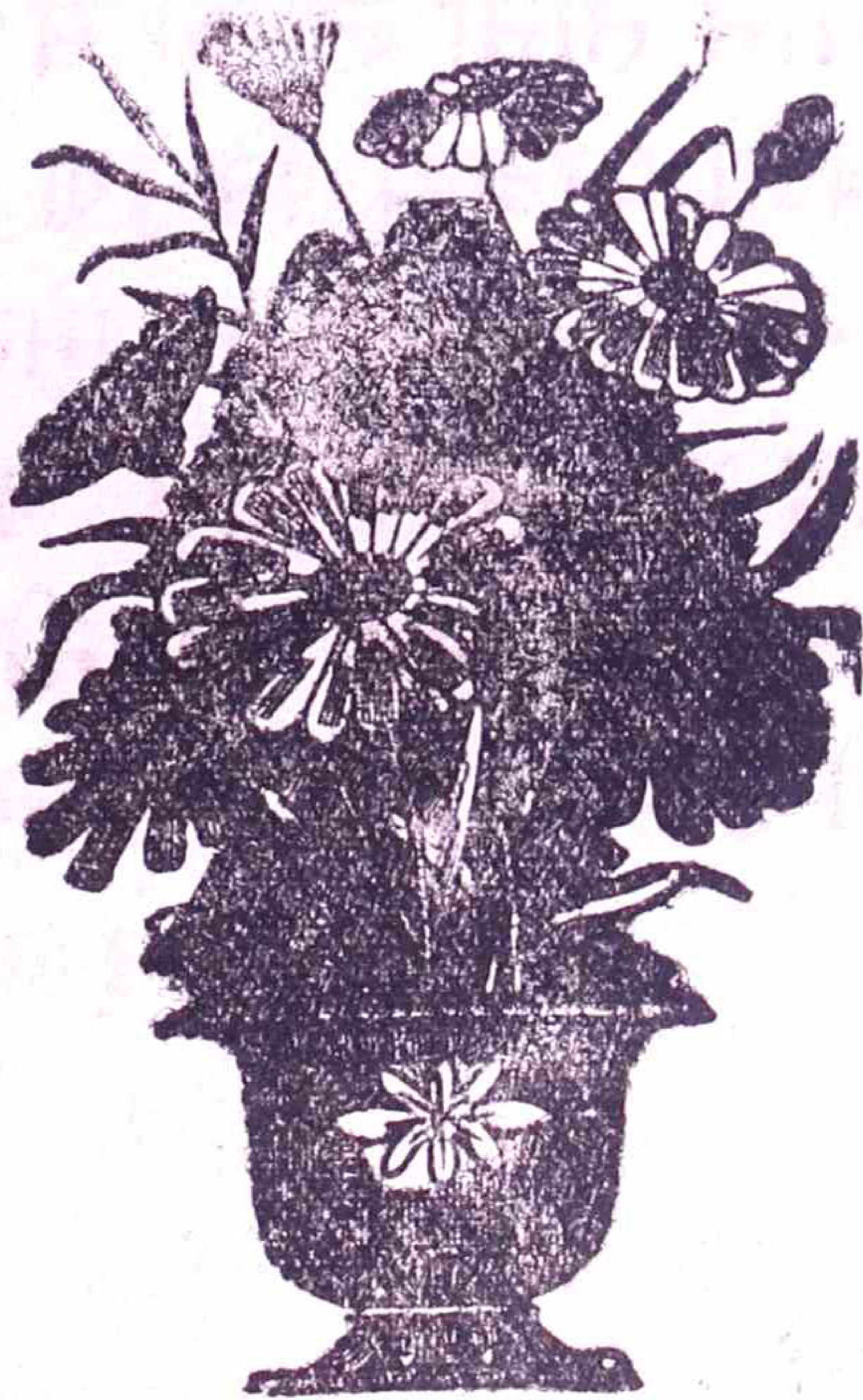
पचीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! शिव से यह कथा सुनकर विष्णु अति प्रसन्न हुए । इतने में बड़े शब्द से घण्टा बजा । शिव ने नन्दी से कहा कि देखो, यह शब्द कहाँ होता है? मुझे वे मनुष्य अतिप्रिय हैं, जो मुझको बहुत प्रिय घण्टा बजाते हैं। नन्दी ने देख आने के बाद विनय की कि महाराज, शृङ्गारमण्डप जो आपका स्थान है, वहाँ यह उत्सव हो रहा है। आपकी पूजा आपके भक्त कर रहे हैं। यह सुन शिव अतिप्रसन्नता से उठ सारी सभा सहित उस स्थान पर गये। उस स्थान का नाम रङ्गमण्डप था, जो शृङ्गारमण्डप के नाम से प्रसिद्ध है। शिव गिरिजा सहित पूर्वमुख बैठ गये। मैं दाहनी ओर और विष्णु

बाईं ओर बैठे। इन्द्र पंखा डुलाने लगे। अन्य देवता चारों ओर स्थित हुए। सब गण पीछे खड़े होकर सेवा में प्रवृत्त हुए। उस समय शिव ने अपना दाहना हाथ उठाकर विष्णु के द्वारा सबसे कहा कि यह हमारा लिङ्ग, जिसका नाम विश्वनाथ है, देखो। यह परम ज्योतिःस्वरूप है और सबको आनन्द देता है। इसका नाम अविमुक्त और मुक्तिद भी है। इसकी सेवा करने से कोई पाप नहीं रह जाता। तीनों लोकों में विश्वेश्वर के समान और कोई हमारा दूसरा लिङ्ग नहीं है। यह पूर्ण सदाशिव है। हमारी परम-ज्योति और सब लिङ्गों से श्रेष्ठ है। तीनों लोकों का सार ये ही तीन हैं---हमारा लिङ्ग विश्वेश्वर, मणिकर्णिका और काशीपुरी। यह कहकर शिव और गिरिजा ने विश्वनाथ का पूजन किया और बड़े उत्सव और आनन्द के उपरान्त स्तुति की। फिर वीरभद्र और गणपति ने पूजन किया। फिर लक्ष्मी सहित विष्णु ने उनको पूजा। फिर मैंने सावित्री सहित पूजा की। निदान सबने क्रमपूर्वक उनको पूजा और बड़ा उत्सव हुआ। नाना प्रकार के बाजे बजे और नाच-गान सब कुछ हुआ। देवताओं की पत्नियाँ भली विधि नृत्य करने लगीं। किन्नर और गन्धर्व उत्तम रीति से गाये। आकाश से फूलों की वर्षा हुई। मुनीश्वरों ने स्तुति की। उस समय वेद और पुराण सब शरीर रखकर आये। उन्होंने शिव और गिरिजा की स्तुति की, जो अति पवित्र और रोचक है। फिर विष्णु और हम सब देवताओं ने स्तुति की। उस समय शिव ने गिरिजा सहित अति प्रसन्न हो कृपा की दृष्टि से सबकी ओर देख दिया, जिससे हम सबके मनोरथ पूरे हो गये। फिर शिव सबके देखते-देखते गिरिजा और पुत्रों सहित अन्तर्धान हो गये और विश्वनाथ के लिङ्ग में समा गये। इस बात को कोई मनुष्य न जान सका। शिव का प्रभाव आश्चर्यजनक है। फिर

अपने लोक में जाकर कैलासवासी हो गये और लिङ्गरूप से काशी में स्थित रहे। यह देख सब अचम्भे में रह गये, स्तुति करके सबने मनमानी मुक्ति पाई। अपने-अपने अंश को काशी में स्थापित करके वे चले गये। शिव का नाम जपकर उनका ध्यान करके प्रसन्न रहे और सदाशिव तथा गिरिजा के चरित्र वर्णन करते रहे, जिनके वर्णन से मन में शिव की प्रीति उत्पन्न होती है। यह शिवचरित्र अति आनन्द देनेवाला है। इसके पढ़ने से शिव अतिप्रसन्न होते हैं।

इति श्रीशिवपुराणे षष्ठखण्डे ब्रह्मनारदसंवादे
काश्युपाख्यानवर्णनं नाम पञ्च-
विंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥



ॐ नमः शिवाय

शिवपुराण भाषा



उत्तरार्द्ध



सातवाँ खण्ड

पहला अध्याय

नारद ने पूछा कि हे ब्रह्माजी! आप शिवजी के सब अवतार वर्णन कीजिये, जिस प्रकार शिवजी ने अवतार लेकर अच्छे-अच्छे चरित्र और लीलाएँ कीं। जो शिवजी के सेवक हैं, वे धन्य हैं। वे मुक्ति को प्राप्त होते हैं और अन्य मनुष्यों को भी पार लगाते हैं। उनके समान तीनों लोकों में कोई नहीं। श्रीब्रह्माजी बोले कि हे पुत्र! शिवजी परब्रह्म, निर्गुण और सगुण स्वरूप वपु-धारी, सत्-चित्-आनन्द, सर्वव्यापक, निरुपाधि, अलख, निरञ्जन ज्योतिस्स्वरूप हैं। वेद भी नेति-नेति कह करके उनका आदि और अन्त नहीं पा सकते। सब अपनी बुद्धि से उनकी स्तुति करते हैं। मुनीश्वर भी उसी प्रकार स्मरण करके ध्यान धरते हैं। वे विना पाँवों के चलते, विना नेत्रों के देखते, विना कान के सुनते, विना मुख के खाते, विना जिह्वा पढ़ते, विना हाथ के सब काम करते, विना नाक के सूँघते, विना गुदा के मल का त्याग करते हैं। जिनके ऐसे कार्य हैं, उनका हम वर्णन नहीं कर सकते। वेद कहते हैं कि ऐसे निर्गुणरूप जो शिवजी हैं, उन्होंने सगुणरूप-रखकर सब चरित्र किये। परमशक्ति और शिवजी ने अवतार ले

कर अपने भक्तों के मनोरथ पूर्ण किये। जिस समय विष्णु ने ब्रह्मा को प्रकट किया, तब शिवजी वरदान देने को आये। विष्णु ने शिवजी से यह वर माँगा कि आप भी अवतार धारण कीजिये। शिवजी ने 'तथास्तु' कहकर कहा कि युक्तिपूर्वक हम भी अवतार लेंगे। हमारा नाम रुद्र होगा। वह देवताओं के दुःख-दारिद्र्य दूर करेगा और तुम्हारे और तुम्हारी शक्ति के कष्ट मिटावेगा। यह कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये। रुद्र मुझसे उत्पन्न हुए। वही कैलास पर्वत पर स्थित हैं और अनेक प्रकार की लीला करके अपने भक्तों को सुख देते हैं। वह अपनी शक्ति के संग विहार करके सब उपाधियों से रहित हैं। उस अवतार ने अपने सन्तों की रक्षा की और सती के संग विवाह कर सब दुःखों का नाश किया। गिरिजा को हिमाचल के यहाँ से ब्याह लाये और संसार में बहुत लीलाएँ कीं। स्कन्द का अवतार लेकर तारकासुर को मार डाला। अन्धक, त्रिपुर और जलन्धर को नष्ट किया, जिससे उनके भक्त सुखी हुए। इसीप्रकार नानाप्रकार के चरित्र किये, जिससे उनके भक्तों के कष्ट दूर हुए और अन्य देवताओं का अहङ्कार जाता रहा। उनके सेवक मैं, विष्णुजी और देवता, मुनि, सिद्ध आदि सब हैं। हम सब रात्रि-दिन उन्हीं का पूजन करते हैं और अपने मनोरथ सिद्ध करा लेते हैं। यह शिवजी का पहला अवतार है; क्योंकि वेद भी कहते हैं कि इस अवतार के स्वरूप, चरित्र और नाम सब परमशिव के जैसे हैं। यही शिवजी अपने भक्तों के निमित्त अवतार धारण करते हैं। अब हम शिवजी के सब अवतार वर्णन करते हैं। हे नारद! तुम मन लगाकर सुनो।

अवतारों का वर्णन

प्रथम पाँच अवतारों का वर्णन—जिस समय मेरी यह अभिलाषा हुई कि सृष्टि उत्पन्न करूँ, तो पहले मैंने श्रीसदा-

शिवजी का ध्यान किया। शिवजी ने दर्शन दिये। उनका नाम सद्योजात था। उनके शरीर का रंग श्वेत और ललाई लिये था। उनके साथ चार शिष्य थे। मैंने उनको पहिचाना और प्रणाम करके स्तुति की। शिवजी ने दयालु होकर मुझको शक्ति दी और कहा कि सृष्टि उपजाओ। फिर वामदेव का अवतार धारण करके अपने चार शिष्यों को साथ लिये दर्शन दिया। उनका शरीर लाल था। फिर तत्पुरुष का अवतार धारण कर पीतवर्ण से सुशोभित चार शिष्यों समेत प्रकट हुए और मुझको सुलभ ज्ञान दिया। फिर श्यामरूप अवतार धारण करके मुझको दर्शन दिये। अन्त में ईशान अवतार हुआ। इस अवतार का वर्ण श्वेत था और चार शिष्यों को संग लिये थे। उन्होंने मुझे योग और ब्रह्मज्ञान की शिक्षा दी। ये पाँचों अवतार अति पवित्र हैं और केवल हमारी ही इच्छानुसार प्रकट हुए थे। दूसरे आठ अवतारों का वर्णन—ये आठों अवतार शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव हैं। ये जल, पृथ्वी, अग्नि, आकाश, यज्ञ, वायु, चन्द्रमा, सूर्य में रहते हैं। ये आठों भी मुख्य श्रीसदाशिवजी के रूप हैं। तीसरा एक अवतार—वाराह कल्प में जो वैवस्वतमन्वन्तर होता है और जो सातवाँ मनु प्रसिद्ध है, वह भी शिवजी का अवतार है। पूर्ण अवतार अर्धनारीश्वर है, जो मेरी रक्षा के निमित्त होता है। चौथे अट्ठाईस अवतार—जो व्यास द्वापर और कलियुग में अवतार लेते हैं, वे शिव के मुख्य अवतार हैं और वे अट्ठाईस हैं। अर्थात् सदाशिवजी व्यास का अवतार लेकर वेद विभाग करते हैं तथा योगशास्त्र और वेदान्त का प्रचार करते हैं। पुराण बनाकर अपने शिष्यों को पढ़ाते हैं। इस प्रकार वेद और पुराण के धर्म को स्थित करते हैं। उन व्यास अवतारों के ये नाम हैं—श्वेत, सुतार, सुहोत्र, कङ्कण, शाख्य,

युगाक्ष, जैगीषव्य, दधिवाहन, ऋषभ, भृङ्ग, तप, अत्रि, बाल, गौतम, वेदशिरा, धेनुकर्ण, गुहबाल, शिखण्डी, जटामाली, अट्टहास, दाहक, लाङ्गली, श्वेतत्रिशूल, दण्डी, मुण्डेश्वर, सोमसुरमा, लङ्केश और सहिष्णु। नन्दीश्वर अवतार—जब शिलाद मुनि ने बड़ा तप किया, तब शिवजी ने उनको दर्शन देकर कहा कि वरदान माँगो। शिलाद ने कहा कि मुझको ऐसा पुत्र दीजिये, जो कभी मृत्यु को न प्राप्त हो। शिवजी ने 'एवमस्तु' कह नन्दी अवतार धारणकर शिलाद की अभिलाषा पूर्ण की। फिर जब मुझसे और विष्णुजी से विवाद हुआ तो सदाशिवजी भैरव अवतार लेकर ज्योतिस्स्वरूप शरीर धारण करके आये और हमारा झगड़ा मिटाया। उस समय मैं श्रीसदाशिवजी को अपना पुत्र विचार कर उनकी निन्दा करने लगा, इसलिए मुझको अहंकारी समझ कर शिवजी ने क्रोध किया। भैरवरूप धारण कर मेरा पाँचवाँ शिर काट डाला। फिर वीरभद्र का अवतार लेकर इस बात को प्रसिद्ध किया कि जो शिवजी के विरुद्ध हैं, उनको स्वप्न में भी सुख नहीं। जो-जो शिवजी के विरोधी थे, उनको दण्ड दिया और सहस्र भुजाओं से नाना प्रकार की लीलाएँ कीं। जब कि विष्णुजी ने नरसिंह अवतार धारण करके हिरण्यकशिपु को मारा, तब नरसिंह अवतार ने बहुत क्रोध और अहंकार किया। वह सब शिवजी के शरण हुए। तब शिवजी ने शरभ रूप धारण करके नरसिंह के मद को नष्ट किया और देवताओं को सुख दिया। उस समय से शिवजी का नाम हर हुआ; क्योंकि शिवजी ने नरसिंह के मद को हर लिया था। फिर जब देवासुर संग्राम हुआ तो देवता जीतकर बहुत अहंकारी हुए सो शिवजी ने यक्षरूप धारण करके अवतार लिया और उनके मद को नष्ट किया। अर्थात् शिवजी ने देवताओं से एक तृण तोड़ने को कहा सो सब देवताओं से वह न टूट सका।

इससे देवता बहुत लज्जित हुए। शिवजी ने दस रूप महाकाल के धारण किये और दसों देवियों के पति हुए। तन्त्रविद्या को प्रकट करके अनेक भक्तों को मुक्ति दी, फिर ग्यारह रुद्रों के रूप रखकर कश्यप के गृह में उत्पन्न हुए और दिति के पुत्रों को मारकर देवताओं को मुक्ति दी। उन्होंने बड़ी-बड़ी लीलाएँ कीं और अत्रि के पुत्र होकर संसार की मर्यादा स्थापित की और ब्रह्मतेज प्रसिद्ध किया। विश्वानर के तप को देखकर उसके यहाँ जन्म लिया और कालविहार को जीता। प्रह्लाद मुनि का अवतार लेकर विष्णुजी के गर्व को तोड़ा। अवधूत बनकर इन्द्र को अहंकार से रहित किया। रामचन्द्रजी के मनोरथ पूर्ण करने के निमित्त कपीश अवतार लेकर हनुमान् के नाम से विख्यात हुए बहुत लीलाएँ करके रामचन्द्रजी के सब कार्य सिद्ध किये और बहुत राक्षसों को मारा। लक्ष्मणजी के प्राण की रक्षा की। जब गिरिजा ने भैरव की कुदृष्टि देख भैरव को शाप दिया और कहा—हे पुत्र! जो तुम मुझको साधारण मनुष्य की सी दृष्टि से देखते हो, इसलिए तुम मनुष्य बनो। तब भैरवजी ने भी शाप दिया कि तुम भी हमारी तरह मनुष्य हो जाओ। वहाँ हम तुम्हारे पुत्र होंगे। इस कारण शिवजी ने पृथ्वी पर अवतार लिया। गिरिजा का तो नाम शारदा हुआ और शिवजी का नाम महेश हुआ। महानन्दा वेश्या ने शिवजी की बहुत भक्ति की। तब शिवजी ने वैश्य का रूप रखकर उसके दुःख को दूर किया। भद्रायुष नाम का एक राजा ऋषभमुनि का शिष्य और शिवजी का बड़ा भक्त था। शिवजी ब्राह्मण बनकर गये और उसको कष्टों से रहित किया। आहुक नाम का एक भील था। उसकी स्त्री का नाम आहुकी था। शिवजी ने रूप रखकर उनको कृतार्थ कर दिया। वे दोनों दूसरे जन्म में नल और दमयन्ती हुए।

शिवजी ने हंस बनकर दोनों को मिला दिया। राजा मनु के छोटे लड़के नाभाग ने अपने भाइयों से भाग न पाया। तब शिवजी ने कृष्णदर्शन नाम अवतार लेकर उसको भाग दिलवाया। जब राजा सत्यरथ लड़ाई में मारा गया तो उसकी रानी, जो गर्भवती थी, वन में भाग गई। वहाँ उसके एक लड़का उपजा। रानी तो मर गई, पर लड़का रोता रह गया। शिवजी उस पर दयालु हुए और भिक्षुक बनकर एक स्त्री को उपदेश दिया कि इसका पालन करो। फिर शिवजी ने उस लड़के को बाप की जगह राजा बना दिया। फिर इन्द्र का अवतार लेकर उपमन्यु ब्राह्मण की परीक्षा ली। जब उसको पापों से शुद्ध पाया तब दोनों लोकों का सुख दिया। गिरिजा ने जब वन में बड़ा तप किया और सब देवता शिवजी की शरण में गये, तब देवताओं को विदा कर जटिल रूप धारण करके गिरिजा की परीक्षा ली। फिर वरदान देकर उनके साथ अपना विवाह किया। नट का रूप रखकर हिमाचल के घर बड़ी-बड़ी लीलाएँ कीं और ब्राह्मण बनकर मैना को बहुत भटकाया। शिवजी द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा हुए। फिर किरात होकर अर्जुन का दुःख दूर कर दिया और उनको वरदान देकर कौरवों को नष्ट किया। गोरख होकर योगशास्त्र को प्रसिद्ध किया और यथायुक्ति योगियों के धर्म को स्थित किया। उनके दो बड़े शिष्य थे, जिनमें से एक गोपीचन्द्र था। जिस समय कि अधर्मियों ने सब प्रकार का शौच त्याग करके भ्रष्ट होना चाहा, जिसमें भक्तों आदि को दुःख प्राप्त हो, तब शिवजी ने ब्राह्मण के घर अवतार लिया और शंकराचार्य कहलाये। उन्होंने अधर्म का नाश किया। शंकरजी ने अद्वैत और संन्यास मत का प्रचार किया। ज्योतिर्लिङ्ग जो सूर्य देवता के स्थापित किये हुए हैं, वे भी शिवजी के अवतार हैं। ये सब भक्तों

को फलदायक और सुखी रखनेवाले हैं। इसी प्रकार शिवजी ने बहुत अवतार लिये हैं। वह अपने भक्तों के सम्मुख बड़े-बड़े चरित्र करते हैं। ये चरित्र तीनों लोक को सुखदायक हैं, जिनके कहने और सुनने से बहुत सुख मिलता है। ये अवतार मैंने संक्षेप में तुमसे कहे। अब जो सुना चाहते हो सो कहो।

दूसरा अध्याय

कैलासवासी शिवजी का वर्णन

नारदजी बोले कि हे ब्रह्माजी! तुम संसार में परमशैव हो। मेरी इच्छा है कि शिवजी के अवतारों का वर्णन विस्तार से सुनूँ। यह सुनकर ब्रह्माजी प्रेम में डूब गये। जब चेते तो कहने लगे कि हम तुमको शिवजी की लीला सुनाते हैं। उन मनुष्यों के धन्य भाग्य हैं, जो इस लोक में शिवजी की भक्ति रखते और उस लोक में कैलासवासी होते हैं। शिवजी निर्गुण, सबसे श्रेष्ठ, निष्पाप हैं। वह ब्रह्मा और विष्णुजी को उत्पन्न करनेवाले हैं। उन्होंने मुझको और विष्णुजी को प्रकृति से उपजाया और कहा—जाओ, संसार को उत्पन्न करके उसका पालन करो। तब मैंने और विष्णुजी ने प्रार्थना की कि तुम भी अवतार लेकर प्रलय किया करो। तब उन्होंने समय पाकर हमारे भवों के बीच अपने अंश से अवतार लिया, महेश कहलाये और कैलास पर्वत पर वास करने लगे। शिवजी और महेश में कोई भेद नहीं। जो उनको भिन्न-भिन्न समझते हैं, वे कष्ट भोगते हैं। महेशजी दुःख-दारिद्रय हरते हैं। वह पापों से रहित और बड़े दयालु हैं। शरीर धारण कर भक्तों के मनोरथ पूर्ण करते हैं। उन्होंने शबरी, शबर और मद्र को मुक्त किया। भद्राक्ष राजा के कष्ट दूर किये। गङ्गाजी को जलने से बचाया। काल को जलाकर भस्मासुर को उसी के हाथ से मरवा डाला। करोड़ों पापी भक्तों को मुक्ति दी। अपने भक्तों

के निमित्त करोड़ों अवतार लिये। ऐसे अवतारों को शिवजी का दूसरा रूप विचारो। उन्होंने हलाहल विष को पीकर देवताओं के प्राण बचाये। एक बड़ा पापी इन्द्रद्युम्न राजा अनजाने ही शिव का नाम लेने से मुक्ति को प्राप्त हुआ। उन्होंने नन्दवैश्य और किरात को मुक्त करके अपना द्वारपाल बनाया। शिवजी ने भिक्षुक का रूप बनाकर दारुकवन में जाकर चरित्र किये। फिर मुनीश्वरों से अपने को शाप दिलाया। उसी समय से शिवलिङ्ग की पूजा लोक में प्रचलित हुई। काशी के राजा की लड़की, जिसका नाम सुन्दरी था, शिवालय में झाड़ू देती थी। इससे वह मुक्त हुई। एक बड़े भारी चोर को तार दिया और रावण को राज्य दिया। जब रावण ने ब्राह्मणों को दुःख कष्ट दिया तो शिवजी ने अधर्म विचार कर अपने तेज को रावण से ले लिया और अपना बाण रामचन्द्रजी को देकर रावण को मार डाला। राजा स्वेत के निमित्त काल का नाश किया। राजा दाशार्ह को उसकी स्त्री सहित तार दिया और पञ्चाक्षर मन्त्र की तीनों लोकों में बड़ाई प्रसिद्ध की। मित्रशठ पर दयालु हुए, जो अपने राज्य को छोड़ बैठा और फिर स्त्री सहित मुक्त हुआ। चन्द्रसेन और श्रीगर्भ, दोनों ने तेरस को प्रदोष का व्रत करके मुक्ति प्राप्तकी। धर्मगुप्त ने भी इसी व्रत से मुक्ति पाई। शिवजी ने राजा चन्द्राङ्गद को तक्षकके भय से मुक्त किया। उसकी स्त्री सीमन्तिनी सोमवार का व्रत रखने से मुक्त हुई। शिव ने इन्द्र ब्राह्मण को तार दिया, पिङ्गल को अपने सदृश बना लिया। सीमन्तिनी की पुत्री पद्मा और पशुपति को भी मुक्त किया। दुर्जन नामक यवनदेश का राजा भस्म लगाने से मुक्ति को प्राप्त हुआ। भद्रसेन का पुत्र सुधर्मा और मन्त्री का पुत्र तारक रुद्राक्ष धारण करके शिवजी की कृपा से पार लग गये। महानन्दा को और उसके कुल को भी जलने से बचाया। देवरथ ब्राह्मण की

पुत्री शारदा को कृतार्थ कर दिया। विडम्ब और उसकी स्त्री वीचिका, जो व्यभिचार के कारण भ्रष्ट हो गये थे, उनको अपना यश सुनाकर कृतार्थ कर दिया। इन्द्र के मद को विचित्र चरित्र करके हरा और जब बृहस्पति की बनाई हुई स्तुति सुनी तो इन्द्र के प्राण छोड़ दिये। जब चन्द्रमा अपनी गुरु की स्त्री को भगा ले गया, तब शिवजी ने उसका अहंकार तोड़कर बृहस्पति को उनकी स्त्री दिला दी। इसी प्रकार शिवजी ने अनन्त चरित्र किये, जो भक्तों को सुख देते हैं। यह शिवजी का पहला अवतार है, जो कैलास पर्वत पर विराजमान है। वह अपने गणों को सङ्ग लिये संसार की भलाई के निमित्त नाना प्रकार की कथाएँ वर्णन करते हैं। सनक, सनन्दन शिवजी की बड़ी सेवा करते हैं। कभी तो शिवजी कैलास पर्वत में बड़ वृक्ष के नीचे बैठते हैं, गूढ़ ध्यान लगाकर अपने को देखते हैं और समाधि करके अहंब्रह्म को प्रकट करते हैं। और कभी महाराजा बनकर आनन्दपूर्वक अपने भवन में बैठकर विहार करते हैं। कभी धर्म की वार्त्ता करते हैं और कभी लड़कों को खिलाते हैं। कभी तपस्वी का रूप धारण करके दिगम्बर हो जाते हैं और कभी मुण्डों की माला पहनकर साँपों की सेली बनाये भस्म धारण करते हैं। कभी संसार त्याग कर भूत-प्रेत उत्पन्न करते हैं। कभी छोटे लड़के की तरह खेलते हैं। कभी परमहंस होकर एकान्त में बैठते हैं। कभी सगुण रूप धारण कर गिरिजा के संग विहार करते हैं। कभी मैं और विष्णुजी उनकी सेवा करते हैं। कभी उनके सामने अप्सराएँ नाचती हैं और रात्रि-दिन स्तुति करती हैं। कभी वह प्रदोषकाल में भस्म धारण करते हैं। गिरिजा सहित बैठकर विष्णुजी को पास बिठा लेते हैं। उस समय सब देवता आरती करते हैं। विष्णुजी मृदङ्ग बजाते हैं। सरस्वती वीणा पर राग अलापती हैं। लक्ष्मीजी राग छेड़ती

हैं। मैं ताल देता हूँ। इन्द्र बाँसुरी बजाते हैं। इसी प्रकार अपने-अपने भजन स्वर सहित गाकर सब शिवजी को प्रसन्न करते हैं। शिवजी भी अपनी शक्ति को लिये सगुण रूप धारण करके नाना प्रकार की लीला और चरित्र करके भक्तों को सुख देते हैं। शिवजी और गिरिजा का यह दूसरा रूप भक्तों को प्रसन्न करनेवाला है। हे नारद! शिवजी अनन्त अवतार लेकर भक्तों की प्रसन्नता के निमित्त अनन्त लीलाएँ करते हैं। चाहे जैसा बुद्धिमान् हो और वह पृथ्वी के कण और आकाश के तारे भी गिन ले, पर शिव के चरित्रों का अन्त पाना असंभव है। शिवजी के करोड़ों नाम, रूप, लीला और चरित्र हैं। करोड़ों युग मुनीश्वरों को शिवजी का वर्णन करने में व्यतीत हुए; परन्तु उन्होंने भी आदि और अन्त न पाया। हे नारद! तुमने, शारदा, शेष और अन्य देवताओं ने शिवजी का यश गाया; पर कुछ भी अन्त न पाया। शिवजी के समान सुख देनेवाला कौन है? जो वह अपने कठिन मार्ग को प्रसिद्ध करें तो कोई मुनि अथवा देवता न समझे। देखो, वह अपने शरीर में तो भस्म धारण करते हैं, पर भक्तों को राग-रङ्ग देते हैं। आप तो दिगम्बर हैं, पर औरों को दुशाला देते हैं। आप हलाहल विष पीते हैं, पर औरों को अमृत देते हैं। आप तो मुण्डों और साँपों की सेली पहनते हैं, पर भक्तों को रत्न देते हैं। आप प्रेतों की सभा में विराजमान हैं, पर औरों को अनेक प्रकार की सेना देते हैं। आप तो श्मशान भूमि में रहते हैं, पर सेवकों को बड़े-बड़े महल देते हैं। आप बैल पर चढ़ते हैं, पर भक्तों को हाथी और घोड़े की सवारी देतेहैं। सब देवता सेवा करने से प्रसन्न होते हैं, पर शिवजी विना सेवा के ही प्रसन्न हो जाते हैं। हे नारद! ऐसे महाराज और स्वामी को त्याग कर मूर्ख मनुष्य इधर-उधर भटकते हैं। यह प्रथम अवतार शिवजी

का परिपूर्ण अवतार है। वेद में लिखा है कि इस अवतार के स्वरूप, चरित्र, लीला और नाम आदि सब शिवजी के समान हैं। वही शिवजी अपने भक्तों के निमित्त सगुण रूप धारण करते हैं और नाना प्रकार की लीला और चरित्र दिखाते हैं। अब हम इन अवतारों का वर्णन करते हैं, जो शिवजी ने धारण किये।

तीसरा अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! हम अब शिवजी के पाँच अवतारों का वर्णन करते हैं, जो वेद में ब्रह्मरूप वर्णन किये गये हैं। उन्होंने प्रथम मुझको सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति दी और फिर ज्ञान दिया। हर कल्प के आदि में उपदेश देते रहे, जिससे मैंने सृष्टि उत्पन्न की। पहला अवतार—जब श्वेतलोहित उन्नीसवाँ कल्प आया तो मैंने विचारा कि सृष्टि उत्पन्न करनी चाहिए। यह विचार कर शिवजी का ध्यान किया। शिवजी बालकरूप रख शिष्यों को संग लिये श्वेतलोहित वर्ण से प्रकट हुए। बड़ी कृपादृष्टि से देखते थे। ऐसा बालक देखकर मुझको उस पर प्रीति उपजी। मैंने यह विचार कर कि यह कौन है, शिवजी का ध्यान किया तो मुझको यह भासित हुआ कि यही तो स्वामी परब्रह्म हैं। फिर मैंने स्तुति की और कहा कि आपके समान कौन है जो मेरे लिए प्रकट हुए। मुझको ऐसी शक्ति दीजिये कि मैं सृष्टि उपजाऊँ, आपकी भक्ति मेरे हृदय से न जाय और सृष्टि के उत्पन्न करने में दोषी न होऊँ। शिवजी ने 'तथास्तु' कहा और बोले कि तुमको हृदय से हमारी प्रीति है, इससे हम प्रकट हुए। क्योंकि हम भक्तों के अधीन हैं। हमारा नाम सद्योजात है। हम योगाभ्यास का प्रचार करके अपने शिष्यों को मुक्त करेंगे। फिर शिवजी के अङ्ग से चार लड़के उपजे। उनका वर्ण श्वेत था। वे शिष्य के नाम से प्रसिद्ध होकर योगशास्त्र की पद्धति को प्रकट

करने के लिए शास्त्रपाठी हुए। उनके नाम ये हैं—सनन्दन, नन्दन, विश्वनन्द, उपनन्दन। इन चारों शिष्यों के द्वारा शिवजी ने योगशास्त्र को सारे संसार में प्रकट किया, जिससे मनुष्य आवागमन से निर्भय हो जाते हैं। वे कल्पभर हमको सुख देते रहे। हमको सृष्टिकर्म में कुछ भी दुःख नहीं हुआ। अपने भक्तों को मुक्ति दी और योगशास्त्र को प्रसिद्ध किया। दूसरा अवतार—जब बीसवाँ रक्तकल्प आया तो उसमें मेरा वर्ण रक्त था। मैंने लाल वस्त्र और लाल ही माला पहनी और सृष्टि उत्पन्न करने की अभिलाषा करके श्रीसदाशिवजी का ध्यान किया। वह बालक का रूप रखकर लाल वस्त्र, लाल नेत्र लाल ही गहने धारण किए प्रकट हुए। मैंने उनका नाम वामदेव जानकर प्रणाम किया, स्तुति की और प्रार्थना की कि आप ऐसी कृपा करें, जिससे मैं सृष्टि रचूँ। शिव ने एवमस्तु कहा और चार लड़के उपजाये, जिनका वर्ण, रूप, वस्त्र आदि सब लाल थे। उनके नाम ये हैं—विरज, विवाह, विशोक, विश्वभावन। शिवजी ने चारों शिष्यों समेत योग को स्थापित करके हमको शिक्षा दी और सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति दी। तीसरा अवतार—जब पीतवासा इक्कीसवाँ कल्प आया तो मैंने सृष्टि उपजाने की शक्ति प्राप्त करने के निमित्त शिवजी का ध्यान किया। शिवजी का रङ्ग और रूप पीला था। भुजा सुडौल और सब अलंकार पीले ही धारण किये मेरे सम्मुख हुए। मैंने ध्यान करके पहचाना। स्तुति की और शिवगायत्री का जप किया। उनका नाम तत्पुरुष हुआ। मैंने प्रार्थना की कि मुझको सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति और अपनी प्रीति दीजिये। शिवजी ने सुनकर चार लड़के, जो पीतवर्ण, पीत ही वस्त्र आदि धारण किये थे, उपजाये। उन्होंने और शिवजी ने संसार भर में योगशास्त्र प्रकट किया। चौथा अवतार—जब एक

दिव्यसहस्र वर्ष पीतवासा कल्प के व्यतीत हुए और परिव्रत कल्प आया तो मैंने सृष्टि उपजाने के निमित्त शिवजी का ध्यान किया। शिवजी बालक बनकर काले वस्त्र, काला यज्ञोपवीत, मुकुट और काली भस्म धारण किये प्रकट हुए। मैंने शिवजी का अघोररूप पहचाना और स्तुति करके शिवजी को दण्डवत् की। कहा कि मुझको सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति दीजिये। शिवजी ने 'तथास्तु' कहा। फिर अघोर अवतार ने कहा कि यह हमारा रूप कष्टों को दूर करेगा और हमारा मन्त्र सब कार्यों को सिद्ध करेगा। यह कहकर अपनी भुजा से चार बालक उत्पन्न किये, जो शिवजी के रूप के समान थे। उन्होंने अघोर योग को प्रसिद्ध किया, जिसमें सब जीव तुल्य वर्णन किये गये हैं। इसके समान कोई वस्तु संसार भर में नहीं। पाँचवाँ अवतार—ईशान इस प्रकार प्रकट हुआ। जब तेईसवाँ कल्प विश्वरूप आया, तब मैंने पुत्र के निमित्त शिवजी का ध्यान किया कि मेरी सृष्टि अतिबुद्धिमान् और विद्वान् हो और शिवजी सर्वदा प्रसन्न रहें। प्रथम विश्वरूपा भवानी प्रकट हुईं। उनकी सब सामग्री, रूप, वस्त्र और भूषण आदि श्वेत थे। फिर वैसे ही वस्त्र आदि से ईशान शिवजी प्रकट हुए। मैंने ध्यान करके पहचाना कि ईशान-रूप हैं। स्तुति करके प्रणाम और दण्डवत् की। फिर प्रार्थना की कि ऐसा यत्न कीजिये, जिससे सृष्टि की वृद्धि तुरन्त हो और मैं आपका प्यारा बना रहूँ। शिवजी ने 'एवमस्तु' कहा और मुझको अच्छी रीति की शिक्षा दी। मैंने सृष्टि उपजाई और ईशान शिवजी ने शक्ति विश्वरूपा सहित चार पुत्र उत्पन्न किये, जिनके वस्त्र आदि श्वेत थे। उनके नाम ये हैं—जटी, मुण्डी, शिखण्डी और अर्धमुण्डी। ईशान शिवजी ने अपने इन लड़कों सहित योगशास्त्र को प्रसिद्ध किया, जिससे देवता, मुनीश्वर और गुरु सब प्रसन्न

हुए। ऐसा धर्म प्रकट किया जिससे मनुष्य आवागमन से छूटकर निर्भय हुए। हे नारदजी! इसी प्रकार पाँचों कल्पों में शिवजी ने पाँच अवतार धारण किये। ये अवतार संसार के मनुष्यों को आनन्द देते हैं। इनकी कथा श्रवण करने से आनन्द प्राप्त होता है।

चौथा अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! अब हम अष्टमूर्ति अर्थात् आठ अवतारों का वर्णन करते हैं, जिनके भीतर सब संसार भासता है। जैसे सूत में रत्न और मणि आदि पिरोये हों, वैसे ही उन अवतारों में संसार है। उन आठों अवतारों के नाम ये हैं—शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव। ये आठों अवतार पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, यज्ञभूमि, सूर्य और चन्द्रमा में रहते हैं। अर्थात् शर्वरूप होकर पृथ्वी का भार अपने ऊपर लिये हैं और संसार भर को प्रसन्न रखते हैं। जब भवरूप धारण करके जल में रहते हैं, तब सब जीवों के क्लेश नष्ट करते हैं। रुद्ररूप होकर अग्नि से प्रकाश करते हैं। उग्ररूप रखकर सब जीवों को जीवित रखते हैं। पशुपतिरूप रखकर क्षेत्रज्ञ हैं, जिससे संसार भर को सुख मिलता है। ईशानरूप धारण करके सूर्य में हैं, जिससे पृथ्वी और आकाश प्रकाशित हैं। महादेवरूप होकर चन्द्रमा में हैं, जो सब जीवों का पालन करते हैं। ये शिवजी के आठों रूप हैं। शिवजी से भिन्न कुछ नहीं। शिवजी सब में प्रकट हैं। जिस प्रकार पृथ्वी पर जल डालने से वृक्ष की वृद्धि होती है, अर्थात् सींचने से जड़, टहनी, फल और फूल आदि दृढ़ होते हैं, उसी प्रकार शिवपूजन से सबका पालन-पोषण हो जाता है। जिस प्रकार लड़के की प्रीति पिता को होती है, उसी प्रकार संसार भर से प्रीति रक्खे, तब श्रीसदाशिवजी उस पर दयालु होते हैं। जो मनुष्य किसी की बुराई

करता है, वह शिवजी से वैर बिसाहता है और कभी मुक्ति नहीं पाता। यह समझकर शिवजी का भजन करना उचित है। किसी से शत्रुता न रक्खे। ये आठों स्वरूप जीव को सुख देते हैं। जो मनुष्य अपनी भलाई चाहे, वह इनकी सेवा करे। उनके चरित्रों के श्रवण और कथन से लाभ प्राप्त होता है। यह कथा अति पवित्र है। यह शिवजी की भक्ति की वृद्धि करती और मुक्ति देती है। इतना कह श्रीब्रह्माजी बोले कि अब मैं अर्धनारीनर के अवतार का वर्णन करता हूँ जब मैं सृष्टि उपजाने लगा तो यद्यपि मैंने माता के सदृश सन्तानों की वृद्धि चाही, तथापि किसी प्रकार सृष्टि की वृद्धि न हुई। इससे मुझको चिन्ता हुई। तब आकाशवाणी हुई कि तुम मैथुनी सृष्टि उत्पन्न करो। यद्यपि हमारी भी अभिलाषा हुई कि ऐसी सृष्टि उपजाऊँ, पर मेरी युक्ति निष्फल हुई। यह देखकर मैंने यह विचारा कि शिवजी की सहायता के बिना मेरा मनोरथ सिद्ध न होगा। इस कारण मैं तप करने लगा। शिवजी प्रसन्न हुए और अर्धांगीरूप धारण करके आये। मैंने स्तुति की। शिवजी ने कहा कि हम तुम पर अति-प्रसन्न हैं और तुमको वही वरदान देते हैं, जिसकी तुमको इच्छा है। यह कह फिर शक्ति को अपने शरीर से अलग किया, जिससे दो स्वरूप अलग-अलग देख पड़े। यह चरित्र देख मैं बहुत प्रसन्न हुआ। आकाशवाणी और सृष्टि की वृद्धि न होने का सब वृत्तान्त वर्णन किया। मैंने शक्ति से कहा कि आप मेरे पुत्र दक्ष के घर अवतार लें और शिवजी भी अवतार लेकर तुम्हारे साथ विवाह करें। यह सुनकर शक्ति ने 'एवमस्तु' कहा और अपनी भौंहों के बीच से अन्य शक्तियाँ उत्पन्न कीं। वह शिवजी को देखने लगीं। शिवजी ने मुसकिराकर कहा कि ब्रह्माजी ने बड़ा तप-जप किया है, इसलिए उसके मनोरथ पूरे करो। शक्ति ने प्रसन्नतापूर्वक

मेरे कार्य पूर्ण किये और फिर शिवजी के शरीर में समा गईं। शिवजी भी वरदान देकर अन्तर्धान हुए। मैंने यह वरदान पाकर मैथुनी सृष्टि उत्पन्न की। यह अवतार अभिलाषा को पूर्ण करता है और कहने-सुननेवाले को सुख देता है।

पाँचवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! जो वाराहकल्प इस समय बीत रहा है, इसमें वैवस्वत नाम मनु हैं। यह मेरे प्रपौत्र हैं। इस कल्प के हर द्वापर युग में व्यास अवतार होता है,जो श्रुति शाखा का विस्तार करता है। फिर व्यासजी संसारी जीवों की मंदबुद्धि देखकर पुराण बनाते हैं कि उनसे उनको लाभ हो। परन्तु संसारी जीव ऐसी युक्तियों से भी मूर्ख रहते हैं। यद्यपि व्यासजी का मत अतिसुगम है, कुछ कठिन नहीं, उनसे वेद का सार प्राप्त होता है और वे वचन अतिमनोहर हैं, तो भी वे मूर्ख लोग उन वचनों को समझ नहीं पाते। उस समय शिवजी संसार की ऐसी मूर्खता देखकर कलियुग में व्यासजी के कहने से अवतार लेते हैं और व्यासजी के मत को प्रसिद्ध करते हैं। वही शिवजी का चरित्र हम विस्तार से वर्णन करते हैं। पहला अवतार—प्रथम द्वापर के पहले मन्वन्तर में मैं व्यास हुआ। वेद को चार भाग अर्थात् ऋक्, यजुः, साम, अथर्वण में बाँटा और उनकी शाखाओं को बढ़ाया। फिर पुराण बनाये; क्योंकि संसारी जीवों की बुद्धि कलियुग के प्रवेश से नष्ट हो गई थी। मैंने युक्तिपूर्वक वेद की रीतियाँ पुराणों में इस प्रकार मिला दीं कि लोग प्रसन्न हों। जैसे कोई किसी रोगी को तीखी कड़ुई औषध न देकर मीठी औषध देकर प्रसन्न करे। यद्यपि मैंने और व्यासजी ने अनेक प्रकार से यत्न किये कि व्यासमत प्रसिद्ध हो, परन्तु यत्न निष्फल हुआ और किसी ने भी पुराणों को न पढ़ा।

तब मैंने चिन्तित होकर शिवजी का ध्यान किया और स्तुति की कि हे महाराजाधिराज! द्वापर व्यतीत हुआ और कलियुग आ गया, पर किसी ने भी पुराणों को नहीं छुआ। मेरा मत प्रसिद्ध नहीं होता। इससे उचित है कि आप दयालु होकर सहायता करें। मेरे धर्म को दृढ़ कीजिये। मेरी प्रार्थना सुनकर शिवजी प्रसन्न हुए और शरीर धारण किया। द्वापर के अन्त और कलियुग के आदि में एक ब्राह्मण के गृह छागलागिरि में, जो हिमालय पर्वत का एक भाग है, जन्म लिया। उनका नाम श्वेत हुआ। उत्पन्न होने के समय जय-जयकार हुआ, नाना प्रकार के बाजे बजे, आकाश से पुष्पों की वर्षा हुई, तीनों लोकों में सब मनुष्य और जीव प्रसन्न होकर वहाँ आये। उन्होंने शिवजी की स्तुति की। शिवजी ने प्रकट होकर अगमयोग प्रकट किया। शिवजी के चार बड़े शिष्य हुए। वे आश्रम धर्म को जाननेवाले, बड़े योगाभ्यासी, निष्पाप थे। उनके नाम ये थे—श्वेत, श्वेतशिष्य, श्वेताश्व, और श्वेतलोहित। शिवजी ने उनको योगाभ्यास सिखाया और योग को संसार भर में प्रकट किया। इससे सब संसारी जीवों ने योग को बड़े-बड़े यत्नों से सीखा, वेद और पुराण से अच्छे-अच्छे धर्म और मत प्रकट किये। शिवजी ने श्वेतरूप धारण करके व्यासजी को प्रसन्न किया। दूसरा अवतार—दूसरे सत्यनाम द्वापर में व्यासजी ने प्रजापति का अवतार लिया और वेद के भाग किये। संसार के लाभ के लिए पुराण बनाये। परन्तु यह सब निष्फल हुआ और किसी ने भी वह मत अङ्गीकार न किया। व्यासजी ने दुखी होकर शिवजी का ध्यान किया। शिवजी ने प्रसन्न होकर पृथ्वी पर अवतार लिया। उनका नाम सुतार हुआ। उन्होंने व्यासजी के मत को प्रसिद्ध किया और योगशास्त्र का प्रचार किया। उनके चार शिष्य थे—दुंदुभि, सत्यरूप, ऋचीक

और केतुमान्। उन्होंने शिष्यों सहित व्यासजी का धर्म प्रकट करके संसारी जीवों को बहुत प्रसन्न किया। तीसरा अवतार—तीसरे द्वापर में शुक्रजी ने व्यासजी का जन्म लिया और वेदों के भाग करके पुराणों को बनाया। सिद्धि न होने के कारण शिवजी का ध्यान किया। तब कलियुग के आदि में शिवजी ने अवतार लिया। उनका नाम दमन था। उनके चार शिष्य थे—विशोक, विकेश, व्यास और सुप्रकाश। शिव के अवतार दमन ने योगाभ्यास की रीतियाँ निकालीं और अपने चेलों सहित संसार में उनका प्रचार किया। पुराणों के मत को स्थित करके मनुष्यों को मुक्ति का मार्ग दिखादिया। चौथा अवतार—चौथे द्वापरमें बृहस्पतिने व्यासजी का अवतार लिया और वेद के भाग करके पुराणों को प्रसिद्ध किया। पर कलियुग के कारण उनकी अभिलाषा पूर्ण न हुई। इसलिए उन्होंने शिवजी का ध्यान किया। शिवजी ने प्रसन्न होकर पृथ्वी पर सुहोत्र अवतार लिया और व्यासजी के मनोरथ पूर्ण किये। उस समय भी शिवजी के चार शिष्य हुए, जिन्होंने व्यासजी के मत को प्रकट करके योगाभ्यास की शिक्षा दी। उनके ये नाम हैं—सुमुख, दुर्मुख, दुर्मद, दुरतिक्रम, पाँचवाँ अवतार—पाँचवें द्वापर में सविता देवता ने व्यासजी का अवतार लेकर वेदों के भाग किये और पुराण बनाये। तब भी शिवजी ने सूर्यदेवता की प्रार्थना से पृथ्वी पर अवतार लिया। उनका नाम कनक था। उनके चार शिष्य थे। उन्होंने व्यासजी के मत का प्रचार किया। उनके नाम ये हैं—सनक, सनातन, सनन्दन सनत्कुमार अथवा प्रभु, विभु, निर्मम और निरहंकृत। छठा अवतार—छठे द्वापर में मनुजी ने व्यास का जन्म लिया और अपना नाम महत् रक्खा। उन्होंने पिछले अन्य व्यासों से भी अच्छे-अच्छे पुराण बनाये और उनकी वृद्धि के निमित्त शिवजी

का ध्यान किया। शिवजी ने प्रसन्न होकर पृथ्वी पर अवतार लिया। उनका नाम लोकाक्ष था। उन्होंने योगशास्त्र और पुराणों को अपने चार शिष्यों सहित प्रकट किया। शिष्यों के नाम ये हैं—सुधामा, विरुज, शङ्ख और अम्बुज। सातवाँ अवतार—सातवें द्वापर में शतक्रतु ने व्यासजी का जन्म लिया और वेद के भाग करके पुराणों को बनाया, जिससे मनुष्य नाना प्रकार के मत और धर्म देखकर आश्चर्य में पड़ गये। पर उनको किसी ने अङ्गीकार न किया। तब व्यासजी ने श्रीसदाशिवजी का स्मरण किया। शिवजी ने जैगीषव्य का अवतार लेकर चार शिष्य उपजाये। उनके नाम हैं—सारस्वत, पराहन, मेघनाद और सुवाहन। शिवजी ने चार शिष्यों के साथ उस मत को फैलाया। फिर जैगीषव्य ने योगशास्त्र को प्रकट किया। यद्यपि वह शिवजी के अवतार थे, पर उन्होंने शिवजी की ऐसी भक्ति की जिससे दासत्वभाव प्रकट हुआ। जैगीषव्य के समान और कोई व्रत करनेवाला नहीं हुआ। जब से शिवजी काशीपुरी को त्याग कर मन्दरगिरि पर गये तब से न तो जैगीषव्य ने जल पिया और न कुछ खाया। उन्होंने यही प्रण किया था कि जब तक शिवजी के दर्शन न होंगे, तब तक पानी पीना अनुचित है। जैगीषव्य की कथा सुनने और पढ़ने से आनन्द प्राप्त होता है।

छठा और सातवाँ अध्याय

इतना सुन नारदजी ने पूछा कि हे पिता! यह बताइये कि क्या कारण था जो शिवजी ने काशी छोड़ी। ब्रह्माजी ने सम्पूर्ण कथा आदि से अन्त तक वर्णन की। जिस तरह काल पड़ा और राजा दिवोदास के वर पाने से काशी देवताओं से रहित हुई, शिवजी भी विन्ध्याचल पर जाकर रहे, फिर शिवजी ने काशी के वियोग से दुखी होकर क्रमशः योगिनीगण, सूर्य, ब्रह्मा

और अपने ३५ गणों को दिवोदास को धर्म से डिगाने के लिए काशी में भेजा। पर वे काशी में रहकर फिर न लौटे। तब गणपति वहाँ गये। फिर जो चरित्र विष्णु और गणेश ने वहाँ किये और विष्णु ने जैसे बौद्धमत के देवता का स्वरूप धारण करके सबका धर्म भ्रष्ट कर डाला, फिर राजा दिवोदास ने विष्णु का आदर करके उनसे अपना वृत्तान्त कहा, उनसे शिक्षा पाई, फिर वह वहाँ सबसे विष्णुरूपी ब्राह्मण का उपदेश कह काशी छोड़ गोमती नदी के तट पर गये और फिर काशी में आकर शिवलिङ्ग स्थापित किया, जिस तरह शिवजी के गण आकर उसको विमान पर चढ़ा काशी ले गये, गरुड़ से यह वृत्तान्त सुन शिवजी काशी में आये और जिस तरह शिवजी ने गणपाति का आदर कर विष्णु को दूसरे सिंहासन पर बिठाया, ब्रह्माजी को दाहनी ओर स्थान दिया, फिर नन्दी के कहने से शिवजी का सजे हुए रथ पर आरूढ़ हो काशी में जाना और तुरन्त जैगीषव्य की गुफा में जाकर दर्शन देना, ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को वहीं पर स्थित रहकर ज्येष्ठेश्वर लिङ्ग का स्थापित होना और ज्येष्ठा नाम देवी का प्रकट होना, फिर वहीं पर नन्दीश्वर को भेजकर जैगीषव्य को गुफा में से बुलाना और यह वर देना कि हम काशी में रहेंगे, यह सम्पूर्ण कथा आदि से अन्त तक कह सुनाई।

आठवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि अब हम शिवजी के अट्ठाइसों अवतारों का वर्णन करते हैं, मन लगाकर सुनो। जब आठवें द्वापर में वशिष्ठ मुनि ने व्यासजी का अवतार लेकर वेद के चार भाग किये और पुराण बनाये तो उनका प्रचार न होने से उन्होंने शिवजी का ध्यान किया। शिवजी ने दधिवाहन नाम अवतार

लिया और कृपादृष्टि से व्यासजी के मत को प्रकट किया। शिवजी के चार लड़कों के नाम ये हैं—कपिल, आसुरि, पञ्चशिख और शाल्वल। नवाँ अवतार—नवें द्वापर में सारस्वत ने व्यासजी का जन्म लेकर वेद के भागकर पुराणों को बनाया, पर सिद्धि न हुई। इस हेतु शिवजी का ध्यान किया। शिवजी ने प्रसन्न होकर ऋषभ का अवतार लिया। उनके चार शिष्य ये थे—पराशर, गर्ग, भार्गव और आंगिरस। इन्होंने योगाभ्यास करके व्यासजी की सहायता दी, उनके मत को प्रकाशित किया और निवृत्तिधर्म को प्रसिद्ध किया। हे नारद! ऋषभजी के चरित्र अति प्रसिद्ध हैं। जो मनुष्य उनको पढ़ता अथवा सुनता है, वह आपही शिवरूप हो जाता है। उन्होंने भद्रायुष को कैसा सुख दिया और उसके क्लेश सब दूर किये। केवल एक दिन की सेवा से मुद्र ब्राह्मण और कङ्काली को मुक्त किया। दसवाँ अवतार—दसवें द्वापर में त्रिधारा नाम व्यासजी ने वेद को चार भागों में किया और पुराणों को बनाया। फिर शिवजी को स्मरण करके उनकी स्तुति की। शिवजी ने हिमालय पर्वत के एक भाग भृगुश्टृङ्ग में अवतार लिया। उनका नाम भृगु था। उनके चार लड़के थे—निरमित्र, जगद्बोधन, गुप्तश्टृङ्ग और तपोधन। शिवजी ने इन्हीं के द्वारा व्यासजी की अभिलाषा पूर्ण की। ग्यारहवाँ अवतार—ग्यारहवें द्वापर में त्रिवृत्त ने व्यासजी का जन्म लेकर वेदों के भाग किये और पुराणों को बनाया। फिर शिवजी का ध्यान करके वरदान माँगा। शिवजी ने कलियुग में गङ्गाजी के द्वारा अवतार लिया। उनका नाम तप था। तप के चार पुत्र उत्पन्न हुए—लम्बोदर, लम्बाक्ष, लम्बकेश और प्रलम्ब। इन्होंने व्यास के मनोरथ को पूर्ण किया। बारहवाँ अवतार—बारहवें द्वापर में भरद्वाज ने व्यास का जन्म लेकर शिवजी का ध्यान किया। शिवजी ने पृथिवी पर

अवतार लिया और हेमकिञ्चक में विराजमान हुए। उनका नाम अत्रि था। उनके चार पुत्र—सरोज, सम्बुद्धि, साधु और शर्व थे, जिन्होंने व्यासजी के मनोरथ सिद्ध किये। तेरहवाँ अवतार—तेरहवें द्वापर में धर्म नारायण ने व्यास का अवतार लेकर वेदों के भाग किये और पुराणों को प्रकट किया। परन्तु सब यत्न निष्फल हुए। शिवजी गन्धमादन पर्वत पर बालखिल्य ऋषि के आश्रम में उत्पन्न हुए। उनका नाम बालि था। उनके चार पुत्र हुए, जिनके नाम ये हैं—सुधामा, कश्यप, वसिष्ठ और विरजी। इन्होंने व्यासजी के मनोरथ पूर्ण किये। चौदहवाँ अवतार—चौदहवें द्वापर में रक्ष, जिनका नाम बभ्रु भी है, उन्होंने व्यासजी का अवतार लेकर वेद और पुराण के मत को प्रसिद्ध करके शिवजी का ध्यान किया। शिवजी आङ्गिरस के कुल में उत्पन्न हुए। उनका नाम गौतम था। उन्होंने व्यास के सब कार्य सिद्ध किये। उनके चार पुत्र उत्पन्न हुए—अत्रि, देवसत्त्व, अबल और सहिष्णु। पन्द्रहवाँ अवतार—पन्द्रहवें द्वापर में त्रय्यारुणि ने वेद के चार भाग किये और पुराणों को प्रकट किया। फिर शिवजी का ध्यान किया। तब शिवशङ्कर गङ्गातट पर हिमालय पर्वत के पीछे जन्मे। उनका नाम वेदस्वर था। उनके चार पुत्र हुए—गुण, गुणवाह, कुशरीर और कुनेत्र। इन्होंने व्यासजी की सहायता की और निवृत्ति-मार्ग को दृढ़ किया। सोलहवाँ अवतार—सोलहवें द्वापर में धनञ्जय ने व्यास का जन्म लिया, यथाविधि वेद के भाग किये और पुराणों को बनाया। अपने मत की वृद्धि न देखकर शिवजी का ध्यान किया। शिवजी ने पृथ्वी पर जन्म लिया। उनका नाम गोकर्ण था। गोकर्ण उस वन का भी नाम था, जहाँ शिवजी ने अवतार लिया। फिर वह वन अघहर क्षेत्र कहलाने लगा, जिसकी सेवा करने

और जिसमें रहने से सब कार्य सिद्ध होते हैं। शिवजी ने अपने चार पुत्रों—कश्यप, उशना, च्यवन और ब्रह्मपति—सहित व्यासजी को सिद्धि दी। सत्रहवाँ अवतार—सत्रहवें द्वापर में कृतञ्जय ने व्यासजी का जन्म लेकर वेदों के चार भाग किये और पुराणों को प्रकट किया। पर असफल होने के कारण शिवजी का ध्यान किया। शिवजी ने हिमालय पर्वत की चोटी पर महालय अवतार लिया। उनका नाम गुफावासी भी था। उन्होंने व्यासजी के मनोरथ पूर्ण किये। उनके चार पुत्र थे—उतथ्य, वामदेव, महायोग और महाबल।

नवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि जब अठारहवें द्वापर में ऋतञ्जय ने व्यास का रूप धारण कर वेदों के भाग किये और पुराणों को प्रकट करके मनोरथ सिद्ध न देखा तो शिवजी का ध्यान किया। शिवजी ने हिमालय के शिखंड नामक एक शिखर में, जिसको सिद्धक्षेत्र भी कहते हैं, वन में अवतार लिया। उनका नाम शिखण्डी था। शिखण्डी के चार पुत्र थे—वाचश्रव, ऋचीक, शावास्य और रजनीश्वर। इन सबने व्यास के कार्य सिद्ध किये। उन्नीसवाँ अवतार—उन्नीसवें द्वापर में भरद्वाज ने व्यास का जन्म लेकर वेदों के भाग किये और पुराणों को प्रकट किया। पर सिद्धि प्राप्त न हुई। इसलिए उन्होंने शिवजी का ध्यान किया। शिवजी ने हिमालय पर्वत पर जटामाली अवतार लिया और चार पुत्र उत्पन्न करके व्यासजी के मनोरथ सिद्ध किये। पुत्रों के नाम ये हैं—रण्य, कौशल्य, लोकाक्षी और युध्म। बीसवाँ अवतार—बीसवें द्वापर में गौतम ने व्यासजी का जन्म लिया। वेदों के भाग किये और पुराणों को निर्मित कर शिवजी का ध्यान किया। शिवजी ने हिमालय पर्वत के पीछे अट्टहास नाम का अवतार लिया। उस

स्थान का नाम भी अट्टहास था। उन्होंने अपने शिष्यों सहित व्यास की कामना पूरी की। शिष्यों के नाम ये हैं—श्रीमन्त, बरबरी बुद्ध, ऋग्बन्धु और किष्किन्धरा। इक्कीसवाँ अवतार—इक्कीसवें द्वापर में व्यास ने अवतार लेकर पूर्वोक्त सब कार्य कर शिवजी का ध्यान किया। शिवजी ने दारुक अवतार लिया। इसी कारण वह दारुक वन कहलाता है। उनके चार पुत्र थे—प्लक्ष, दाल्भ्यायन, केतुभानु और गौतम। बाईसवाँ अवतार—बाईसवें द्वापर में शुष्मालय मुनि ने व्यासजी का जन्म लेकर शिवजी का ध्यान किया और शिवजी ने काशी में अवतार लिया। उनका नाम लाङ्गली था। उनके चार पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके भल्लनि, मधुपुङ्ग, श्वेत और गुप्तकान्त नाम थे। तेईसवाँ अवतार—तेईसवें द्वापर में तृणबिन्दु ने व्यास का नाम लेकर पुराण आदि रचे और शिव का ध्यान किया। शिवजी ने कालञ्जर पर्वत पर महाकायसुत श्वेत नाम का अवतार लिया। वहाँ भी शिवजी ने चार पुत्र उत्पन्न किये—ओषधि, बृहदक्ष, देवल और कव्य। चौबीसवाँ अवतार—चौबीसवें द्वापर में कुक्षि ने, जिनको वाल्मीकि भी कहते हैं, व्यासजी का जन्म धारण कर रामचन्द्रजी की लीला और चरित्रों का बखान किया। फिर वेद के चार भाग कर पुराणों को प्रकट करके शिवजी का ध्यान किया। तब नैमिष वन में शिवजी ने शूली नाम का अवतार लिया और व्यासजी की कामना पूरी की। उनके चार पुत्र थे—शालिहोत्र, सहजहोत्र, युवनाश्व और अहिर्बुध्न। पच्चीसवाँ अवतार—पच्चीसवें द्वापर में ब्रह्मसप्त ने शिवजी का बड़ा तप किया और शिवजी की आज्ञा के अनुसार वेद और पुराणों को बनाया। उनके पुत्र उपमन्यु ने बाल अवस्था से शिवजी की बड़ी भक्ति की। जब उनका मत न फैला, तब व्यास ने निराश होकर शिवजी का ध्यान किया। शिवजी ने दण्डी मुण्डी

का अवतार लिया। उनके ये चार पुत्र हुए—बहुल, कुण्डकर्ण, कुम्भाण्ड और प्रवाहक। छब्बीसवाँ अवतार—छब्बीसवें द्वापर में पराशर व्यास हुए, जो मेरे प्रपौत्र, शक्ति के और वैशम्पायन के पिता थे। वह संसार में सबसे उत्तमोत्तम धर्म के प्रकट करने-वाले हुए। उनके समान शिवजी का भक्त कोई नहीं हुआ। उन्होंने वेद के चार भाग किये और अठारह पुराण बनाये। शिवजी ने दयालु होकर उनके प्रकट करने को अवतार लिया। उनका नाम सहिष्णु था। वह भद्रनाट नगर में विराजमान हुए। वहाँ शिवजी के चार शिष्य हुए—उलूक, विद्युत्, संबल और अश्वलायन। ये सब व्यासजी के सहायक हुए। सत्ताईसवाँ अवतार—सत्ताईसवें द्वापर में ज्ञानकर्ण ने व्यासावतार ले कार्य सिद्ध करके शिवजी का ध्यान किया। शिवजी ने प्रभास क्षेत्र में अवतार लिया। उनका नाम सौम्यकर्म था। उनके चार शिष्यों के ये नाम हैं—अक्षपाद, सुमुनिकुमार, उलूक और वत्स। सौम्य-कर्म अवतार ने योगशास्त्र को प्रकट किया और पुराण के मत को स्थित करके अद्वैत धर्म को दृढ़ किया। मुनीश्वरों को पढ़ाकर उनके द्वारा मत को प्रसिद्ध कर दिया। जो मनुष्य इस मत के विरुद्ध थे, उनको जीत लिया। फिर व्यासजी ऐसी अवस्था देख-कर कि उनके मत के कोई विरुद्ध नहीं, बहुत प्रसन्न हुए और शिवजी की बड़ी स्तुति की। उनके शिष्यों की प्रशंसा संसार भर करने लगा। यह द्वापर के २७ अवतार हमने कहे। अब वह अवतार अर्थात् जो शिवजी ने कलियुग के आदि में लिया कहते हैं, मन लगाकर सुनो।

दसवाँ अध्याय

अट्ठाईसवाँ अवतार—ब्रह्माजी बोले कि अट्ठाईसवें द्वापर में विष्णुजी ने देवताओं की स्तुति सुनकर व्यासजी का अवतार

लिया और वेद के भाग करके पुराणों को प्रकट किया। पर उनके प्रसिद्ध न होने से शिवजी की स्तुति और ध्यान किया। शिवजी ने व्यास की प्रार्थना सुनकर अवतार लिया और उनके सहायक हुए। यह सुनकर नारदजी ने कहा कि हे ब्रह्माजी! मेरी अभिलाषा है कि आप इस कथा को विस्तार से कहें। ब्रह्माजी ने कहा— अच्छा, हम इसको विस्तार से कहते हैं। तुम ध्यान धर कर सुनो, जिससे अति सुख प्राप्त हो और अनेक प्रकार के कष्ट निवृत्त हो जायँ। इस कथा में दोनों ईश्वरों अर्थात् शिवजी और विष्णुजी की लीला और चरित्र हैं। इन दोनों ने मनुष्य-जन्म लेकर बड़े-बड़े चरित्र किये। ये बड़े दीनदयालु और भक्तों के सुखदायक हैं। पूर्वकाल में देवासुरसंग्राम हुआ था। उसमें बहुत दैत्य मारे गये। समय पाकर वह सब दैत्य फिर पृथ्वी पर उत्पन्न हुए और कुसंगति में रहकर कुमार्ग में चलने लगे। युग के प्रभाव से उनकी बुद्धि नष्ट हो गई। सब विपरीत बातें करने लगे और अभिमानी होकर आपको भूल गये। इन्द्रियों के वश हुए। सबमें शत्रुता फैल गई। ये पाँचों देवताओं का पूजन त्यागकर वेद के विरुद्ध चलने लगे। तब देवताओं ने संसार को सत्यमार्ग पर न चलते देखकर विष्णुजी की सेवा में पहुँच रोते हुए अपना दुःख वर्णन किया और उनसे दुःख दूर करने की प्रार्थना की। विष्णु भगवान् ने अङ्गीकार करके पराशर के पुत्र होकर जन्म लिया। उनका नाम द्वैपायन था। उनकी माता का नाम सत्यवती था। उन्होंने वेद के चार भाग करके उनकी शाखाओं को फैलाया और फिर पुराण बनाये। यद्यपि बड़े-बड़े यत्न किये कि वे प्रसिद्ध हों, पर कुछ फल न हुआ। तब द्वैपायनजी देवताओं और मुनीश्वरों सहित विष्णुजी की शरण में गये। विष्णुजी ने कहा कि तुम जाओ, कुछ चिन्ता न करो। हम

अवतार लेंगे। यह सुनकर सब आनन्दपूर्वक अपने-अपने घर आये। विष्णुजी ने यदुवंशी वसुदेव के यहाँ अवतार लिया। वसुदेव के समान दूसरा राजा नहीं हुआ। उनकी स्त्री देवकी के समान कोई स्त्री पतिव्रता नहीं हुई। विष्णुजी का नाम कृष्ण हुआ, जिनके नाम जपने से सब कार्य सिद्ध होते हैं। उनको स्मरण करने-वाला मनुष्य तर जाता है। वसुदेव की दूसरी स्त्री रोहिणी के गर्भ से शेषजी ने अवतार लिया। उनका नाम बलदेव था। उनके सेवक देवता और मुनि आदि सब हैं। कृष्णजी ने व्रज में आकर यशोदा और व्रज के पति नन्द को अपने लीला-विलास से अति प्रसन्न किया। सब गोपियों को कुमारलीला से मोहित किया। पूतना आदि को, जिनको राजा कंस ने भेजा था, मार डाला और गोपियों के संग रासलीला और खेल किये। जो सुख बड़े-बड़े योगियों को बड़े तप से नहीं प्राप्त होता, वह व्रजवासियों ने सहज ही पाया। कृष्ण ने शत्रुओं को मारकर अपने सेवकों और भक्तों को सुख दिया। उन्होंने सबसे उत्तम अपना आचरण सबको दिखाया। अहंकारियों का मद नष्ट किया। ग्यारह वर्ष तक व्रज में विराजमान रहकर बलदेव सहित मथुरा में गये। वहाँ उन्होंने बड़े-बड़े चरित्र किये और कंस का उसके कुल सहित नाश किया। यदुवंशियों को बहुत सुख दिया। बहुत से शत्रुओं को मारकर असंख्य भक्तों के प्राण बचाये। जरासन्ध के बल के अभिमान का नाश किया। कालयवन को नष्ट करके भक्तों को आनन्दपूर्वक रक्खा। फिर बहुत सी राजकन्याओं के साथ विवाह किया। रुक्मिणी आदि जो बड़े-बड़े महाराजों की कन्या थीं, उनसे विहार किया। बड़े-बड़े चमत्कार दिखाये। श्रीकृष्णजी का जो वंश उत्पन्न हुआ, उसकी हम संख्या नहीं कर सकते। कृष्णजी की रानियाँ १६१०८ थीं, जिनसे दस-

दस पुत्र उत्पन्न हुए, जो बड़े वीर थे। श्रीकृष्णजी ने यह चरित्र करके गृहस्थधर्म को दिखलाय और उसकी महिमा बढ़ाई। गोवर्धन पर्वत को अपनी कनिष्ठिका उँगली से उठाकर भक्तों को सुख दिया। पाण्डवों पर दयालु होकर उनको कौरवों से बचाया। सुदामा को गुरु के घर की बातें स्मरण कराके उनको धन और मान से भरपूर किया। द्रौपदी की लाज रख ली और विदुर को अपना भक्त बना लिया। पाण्डवों से राजसूययज्ञ पूर्ण करा दिया। महाभारत में एक पक्षी के अण्डों को बचा दिया। फिर पृथ्वी का भार नाना प्रकार से उतारा। तदनन्तर यदुवंशियों के कुल को अभिमानी देखकर ब्राह्मणों से शाप दिलवाकर उनको नष्ट कर दिया। जब अपने लोक को सिधारे तो प्रथम अपने कुल का नाश कर दिया। अपने मित्र उद्धव को अद्वैत ज्ञान सिखाया। फिर उनको बदरीवन में भेज दिया। व्याध को निर्वाणपद दिया और जो उसने किया था उसका बुरा न माना। फिर श्रीकृष्णजी दारुक सारथी को मुक्ति देकर अपने लोक को गये। यह हमने कृष्ण-चरित्र संक्षेप में कहा है, जिसके सुनने से मुक्ति प्राप्त होती है और पाप दूर हो जाते हैं। कृष्णजी ने धर्म को फिर स्थित किया, पर व्यासजी को कुछ प्रसन्नता न हुई, क्योंकि उनका निवृत्ति-मार्ग प्रसिद्ध न हुआ। उनको रात्रि-दिवस यह सोच था कि किसी प्रकार हमारा मत फैले। तब व्यासजी ने शिव का ध्यान किया और कहा कि हे कृपासिन्धु! मैंने यद्यपि वेद के आशय पुराणों में प्रकट किये, परन्तु कलियुग के प्रभाव से इनको कोई नहीं समझता। प्रवृत्ति मत की तो बढ़ती हो जाती है, पर निवृत्ति की हानि होती है। इससे आप अवतार लेकर मेरे मत की वृद्धि करें और निवृत्ति-मार्ग को दृढ़ करें। शिवजी ने दयालु होकर ब्रह्मचारी का शरीर धारण किया और बड़ी-बड़ी लीलाएँ कीं

और योगमाया से सब संसार को मोहित कर लिया। फिर उस शरीर से एक श्मशान में पहुँचकर देखा कि एक मुर्दा पड़ा हुआ है। बस, योगमाया से उस शव में प्रवेश कर गये और एक पर्वत की कन्दरा में स्थित हुए। मैं और विष्णु दोनों यह वृत्तान्त जानकर उनकी सेवा में गये। उनका नाम लाकुलीश था। जहाँ शिवजी विराजमान हुए, उसे सिद्धक्षेत्र अथवा कायाचत्वर कहते हैं। शिवजी ने चार शिष्य किये और व्यासजी के धर्म को प्रकट किया। शिष्यों के नाम ये हैं—उशिक, गर्ग, मित्र और रुन्ध। इससे तीनों लोकों में आनन्द हुआ और सबका दुःख नष्ट हो गया। ऐसे चरित्र लाकुलीश शिवजी ने किये। हे नारद! हम तुमको सबका सार सुनाते हैं, जिससे तुमको पूरा विश्वास हो कि हर द्वापर के अन्त में विष्णुजी आप अवतार लेकर वेद के भाग करते हैं, हर कलियुग के आदि में शिवजी अवतार लेते हैं और विष्णुजी हर बार चार शिष्य करके वेद, योग और आश्रमों को प्रकट करते हैं, और वह लिङ्ग का पूजन करके भस्म धारण करते हैं। हे नारद! हमने यह कथा विष्णुजी से सुनी है। जो इस कथा को सुनेगा अथवा पढ़ेगा, वह मुक्त होगा। दधिवाहन अवतार से लाकुलीश अवतार तक २८ अवतार हैं। सब अवतार ४२ हैं।

ग्यारहवाँ अध्याय

नन्दिकेश्वर अवतार का वर्णन

श्रीब्रह्माजी बोले—हे नारद! अब हम नन्दिकेश्वर अवतार का वर्णन करते हैं। शिलादमुनि शिव के बड़े भक्त हुए। वे शिव की भक्ति करने से महाधनी और ऐश्वर्यवान् थे। पर उनके कोई पुत्र न होता था। इसलिए शिलाद ने इन्द्र की अति कठिन उपासना की। इन्द्र प्रसन्न होकर वर देने को गये और कहा कि वर माँगो।

शिलादमुनि ने प्रणाम कर हाथ जोड़ विनय की कि मुझको एक पुत्र दीजिये, जो माता के गर्भ से न उपजकर अमर रहे। इन्द्र ने कहा कि तुम ऐसा हठ मत करो। हम ऐसा पुत्र नहीं दे सकते। हम केवल ऐसा पुत्र दे सकते हैं, जो माता के गर्भ से उपजे और मरे भी। तुम भली भाँति विचारो कि संसार में कौन है, जिसको मृत्यु नहीं। ऐसा पुत्र तो विष्णु और ब्रह्मा भी नहीं दे सकते। देखो, ब्रह्मा और विष्णु के लिए भी वेद कहते हैं कि वे शिव से उपजे और वे भी समय पर मरते हैं। यह बात सुनकर शिलाद-मुनि ने इन्द्र से कहा कि हम तो केवल उसी भाँति का पुत्र चाहते हैं, जैसा कि हमने कहा। तब इन्द्र ने शिलादमुनि के हठ को दृढ़ समझकर कहा कि ऐसा पुत्र मृत्युंजय शिवजी दे सकते हैं; क्योंकि शिवजी मृत्यु के वश में नहीं हैं। वे काल को जीते हुए हैं। यह कहकर इन्द्र तो चले गये और शिलाद शिवजी का तप करने लगे। शिलादमुनि को इसी प्रकार दिव्य सहस्र वर्ष तप करते बीत गये। शिलाद का शरीर चींटी, सर्प, बिच्छू आदि कृमिकीटों का घर बन गया। शरीर में केवल अस्थि और चर्म शेष रह गया, रक्त और मांस का चिह्न भी न रहा। शिवजी ने प्रसन्न हो सुन्दर स्वरूप रख शिलाद मुनि के समीप आ उनको अपने हाथ से स्पर्श किया, जिससे शिलादमुनि हृष्टपुष्ट हो आरोग्य हो गये। शिव बोले कि तुम क्या चाहते हो? शिलादमुनि ने बहुत स्तुति के अनन्तर एक ऐसा पुत्र माँगा, जिसको काल न व्यापे और वह अमर होकर माता के गर्भ बिना उत्पन्न हो। शिवजी बोले कि संसार में कौन है, जो उपज कर मृत्यु से बचे? हाँ, हम मृत्युंजय अर्थात् काल के जीतनेवाले और माता के गर्भ बिना उपजे हैं। इससे हम आप तुम्हारे पुत्र होंगे। हमारा नाम नन्दी होगा। पहले

ब्रह्मा ने भी पृथ्वी में हमारे अवतार लेने के लिए तप किया था। हमने उनको वर दिया था कि समय पाकर हम पृथ्वी में अवतार लेंगे। सो ब्रह्मा को हमने जो वर दिया था, वह भी पूरा होगा और तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने से मानो एक पन्थ दो कार्य होंगे। हम संसार के पिता और तुम हमारे पिता हुए। यह कह शिव अन्तर्धान हो गये। शिलादमुनि ने अति प्रसन्न हो यज्ञ करने की इच्छा की। वह सब सामग्री इकट्ठी करने के अनन्तर यज्ञ करने लगे। शिव उसी यज्ञ के बीच में से उपजे, जो प्रलयकाल की अग्नि के समान देदीप्यमान, महासुन्दर, त्रिनेत्र, चार भुजा धारण किये, जिनमें शूल, टङ्क, गदा और असि लिये हुए, जटाओं का मुकुट शिर पर धरे, दोनों कानों में कुण्डल पहने, मेघ सदृश गम्भीर शब्द से शोभित थे। उनके सब अङ्ग बालकों के समान थे। उस समय आकाश से मेघवर्षा करने लगे और किन्नर आदि आकाशचारी गाने-बजाने लगे। देवताओं ने पुष्प-वृष्टि की। सबने शिव का अवतार पहचाना। उस समय बड़ा उत्सव हुआ। चारों ओर जय-जय का शब्द गूँज उठा।

बारहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! शिलादमुनि ने उस बालक से कहा कि तुमने उपजकर हमको अति आनन्दित किया, इससे तुम्हारा नाम नन्दी है। तुम तो शिव हो। मुझको अपनी शक्ति दो। यह कह शिलादमुनि स्तुति करने लगे। सब देवताओं के विदा होने के अनन्तर शिलादमुनि नन्दी को साथ ले अपने स्थान को गये। नन्दी ने मार्ग में यह लीला की कि पहली देह छोड़ मनुष्यों का शरीर धरा। इससे शिलादमुनि ने बड़ा दुःख माना। पर अन्त में निरुपाय हो संसारी रीतियों को पूरा किया। नन्दी मनुष्यों के बालकों के समान खेल किया करते। जब नन्दी की दस वर्ष की

अवस्था हुई तो शिव की आज्ञा से मित्रा और वरुण दो मुनीश्वर शिलादमुनि के समीप आकर कहने लगे कि यह बालक सर्व-विद्यानिधान होगा। पर इसकी आयु अति न्यून होगी। यह कह कर दोनों मुनि चले गये और शिलादमुनि को महादुःख हुआ। इस महाचिन्ता से वह नन्दी को लिपट कर रोने लगे और मूर्च्छित हो धरती पर गिर पड़े। तब नन्दीश्वर मनुष्यों की तरह समझाने लगे कि आप इतना दुःख न करें, हम कोई इसका उपाय करेंगे। हम शिव की सेवा करके काल को जीत लेंगे। यों समझाकर नन्दीश्वर रुद्रजप करने लगे। शिव गिरिजासहित तुरन्त नन्दी के समीप आये और कहा कि तुमको मृत्यु का भय नहीं। तुम हमारे समान शिव हो। हमने दोनों मुनीश्वरों को केवल तुम्हारी परीक्षा के निमित्त भेजा था। तुम तो मृत्युञ्जय हो। तुमको कुछ भय नहीं। यह कह शिव ने अपने शरीर को नन्दी के शरीर से लगा दिया। फिर गिरिजा और सब गणों की ओर देखकर कहा कि यह नन्दीश्वर जरा और मृत्यु से रहित, मेरे समान बलिष्ठ होकर मुझे बहुत प्रिय होगा और मेरे पास रहेगा। यह कह शिव ने अपनी माला नन्दीश्वर के गले में पहना दी। तुरन्त ही नन्दी भी त्रिनेत्र और दशभुजाधारी होकर शिव के तुल्य हो गये। उस समय शिव ने नन्दी का हाथ पकड़ कहा कि तुमको क्या कर दूँ। अपनी जटा के ऊपर से पानी छोड़ा, जिससे नदियाँ बहने लगीं। उनके नाम ये हैं—जटोदक, त्रिस्रोता, वृषध्वनि, स्वर्णोदक, जटक। नन्दीश्वर ने जो शिव का लिङ्ग स्थापित किया था, उसका नाम भुवनेश्वर हुआ। उसके निकट सरमद नाम बड़ा तीर्थ हो गया। जो मनुष्य उन नदियों में स्नान कर भुवनेश्वर की पूजा करेगा वह तीनों लोकों में बड़ा सुख पावेगा और शिव की सायुज्य मुक्ति प्राप्त करेगा। फिर शिव

ने गिरिजा से कहा कि हम नन्दीश्वर का अभिषेक करेंगे और वह सब गणों का एक ही स्वामी बनाया जायगा। गिरिजा ने इस बात को अति प्रसन्नता से मान लिया। फिर शिव ने सब गणों का स्मरण किया। वे सब आये और विनय की कि क्या आज्ञा है ? क्या समुद्र को सुखावें या मृत्यु को नष्ट कर दें अथवा यमराज को उनके दूतों समेत बाँध लावें अथवा ब्रह्मा को पकड़ लावें या इन्द्र को देवताओं सहित पकड़ें अथवा दानवों और दैत्यों को जला दें या अग्नि ही को पकड़ लावें अथवा इनके सिवा और कोई आपका वैरी हो उसका वध करें या आप किसी पर प्रसन्न हुए हैं ? शिव बोले कि यह नन्दीश्वर हमारा पुत्र, सबका स्वामी और मुझको प्यारा है। यह तुम सबका अधिपति और स्वामी है। तुम सब मिलकर इसका अभिषेक करो। सबने मानकर जय जय शब्द किया। ब्रह्मा, विष्णु और सब देवता आदि ने इकट्ठे होकर नन्दीश्वर का अभिषेक किया। ब्रह्मा ने शिव की इच्छा जानकर मरुत की कन्या सुयशा के साथ नन्दी का विवाह करा दिया। उस समय बड़ा उत्सव हुआ। नन्दीश्वर स्त्री सहित सिंहासन पर बैठे। लक्ष्मी ने मुकुट आदि भूषण नन्दी को दिये। गिरिजा ने गले का हार कृपा किया और विष्णु ने अपने रथ की ध्वजा कृपा करके दिया। मैंने कनकहार दिया। फिर शिव नन्दी को नाना प्रकार की वस्तुएँ दे उनको सब कुल-परिवार-सहित अपनी पुरी को ले गये, जहाँ नन्दी गिरिजा सहित शिव का ध्यान किया करते हैं। वह कैलास में पहुँचकर शिव की नाना प्रकार की सेवा में लगे रहे। हे नारद! शिव की महिमा देखो कि उन्होंने एक भक्त के लिए आप बालक का अवतार लिया। जो इस चरित्र को पढ़ेगा या मन लगाकर सुनेगा, वह इस लोक में धन, स्त्री, पुत्र और आनन्दसे भरपूर रहकर परलोक में मुक्ति पावेगा। तेंतालीसवाँ अवतार पूर्ण हुआ।

तेरहवाँ अध्याय

भैरव अवतार का वर्णन

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद ! अब हम भैरव अवतार का वर्णन करते हैं। एक दिन स्कन्दजी के पास कुम्भज जाकर कहने लगे कि आप मुझे भैरव चरित्र सुनाइये। मैंने बहुत मनुष्यों से भैरवजी के अनेक चरित्र सुने हैं। यह भी श्रवण किया है कि वे काशी के कोतवाल हैं। उनसे सब संसार, बरन् काल तक डरता है। एक तो भैरव भूतों में भी हैं, जिनके अधीन सब योगिनीगण हैं। और जो सब संसार को भयानक देख पड़े, उसका नाम भी भैरव है। इन्हीं भैरव में वे भी हैं या और कोई ? भैरव कब और किस कार्य के निमित्त उपजे थे, यह सब वृत्तान्त आप मुझे सुनावें। यह बात कुम्भज मुनि से सुनकर स्कन्द मुनि बोले कि भैरव सदाशिवजी के पूर्णरूप हैं। न तो वह भूतों में हैं और न भयानक। वह तो आप ही सदाशिव हैं, जिनको मूर्ख लोग नहीं जानते। किन्तु ब्रह्मा और विष्णु भी इनकी महिमा नहीं जान सकते। न नारद, शारदा और देवता, मुनि आदि उनका पार पा सकते हैं। यह कुछ अचरज की बात नहीं है। शिवजी की माया को कोई नहीं जान सकता। पर हाँ, जिनके ऊपर शिव कृपा करें, उनके सामने माया नहीं आ सकती। एक समय सब देवता, मुनि आदि इकट्ठे बैठकर विचार करने लगे कि सृष्टि में कौन प्रभु है? यद्यपि बहुत विचार किया, पर कुछ न जाना। तब तो सब चिन्तित होकर कहने लगे कि चलो, मेरुपर्वत पर चलकर ब्रह्मा से पूछें। वे मूल बात बतावेंगे। निदान ऐसा ही किया। स्तुति के अनन्तर मुझसे पूछा—महाराज आप बतावें कि सबका स्वामी कौन है ? कौन दोषों से रहित अविनाशी, सबके मन की जाननेवाला, निर्गुण, सगुण, सब संसार

का स्वामी, विश्वम्भर है ? प्रलयकाल के बाद जिनकी आज्ञा से आप भी प्रजा को रचते हैं, विष्णु जिनकी आज्ञा से पालन करते हैं, हर प्रलय करते हैं और जिनके भय से शेष पृथ्वी को धरे हुए हैं, जिनके अनुशासन से सूर्य प्रकाश किये रहते हैं, जिनकी आज्ञा से चन्द्रमा तारागण समेत आकाश में प्रकट होते हैं, उनको बताइये। इतना सुन मैंने कहा कि हे देवताओ ! वह मैं ही हूँ। मेरे नामों को सुनकर तुम आप ही समझ लो कि परब्रह्म मैं ही हूँ और कोई नहीं। मेरे नाम ब्रह्मा, स्वयम्भू, धाता, अज, परमेष्ठरी आदि हैं। यह कह स्कन्दजी बोले—देखो, ब्रह्माजी शिव की माया से क्योंकर मोह कर अपने को परब्रह्म वर्णन करने लगे। शंकरजी की माया अति बलवती है। यह वार्ता हो रही थी कि विष्णुजी उत्तमोत्तम चतुर्भुज स्वरूप धारण किये, पीताम्बर ओढ़े, क्रोध से नेत्र लाल किये प्रकट हुए। उन्होंने देवताओं से कहा कि देखो ब्रह्मा की मूर्खता ! यह ऐसे मूर्खता के वचन क्यों कहते हैं ? हे ब्रह्मा ! तुम वेद-पुराण के विरुद्ध ऐसी बात क्यों कहते हो ? तुम हमारी नाभि के कमल से उपजे हो। तुम्हारी महिमा हमारे अधीन है। तुम हमारी आज्ञा से सृष्टि रचते हो। हम तुम्हारे सब कामों में सहायता करते हैं। तुम सब सृष्टि को उपजा कर उसकी रक्षा में प्रवृत्त रहते हो। हम पृथ्वी का भार उतारते हैं। हम परम ज्योति और परब्रह्म हैं। हम परमात्मा, निर्गुण, निर्दोष और हर प्राणी में प्रकट हो रहे हैं। मेरे विरुद्ध होना मानो अपने जीवन से हाथ धोना है। हम यज्ञपुरुष हैं। हमसे बड़ा कोई संसार में नहीं। वेद ने आप हमको ब्रह्म करके बखाना है। तुम अपने नाम पर गर्व मत करो। सत्य-सत्य कहो। निदान इसी प्रकार ब्रह्मा और विष्णु ने बहुत विवाद किया और शिवजी को किसी ने कुछ न जानकर आप ही अपने को ब्रह्म ठहराया।

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! अन्त को यह बात ठहरी कि वेद जिसको परब्रह्म कह दें, वही परब्रह्म माना जाय और वेदों का निर्णय ठीक समझा जाय । इसी प्रयोजन से ब्रह्मा और विष्णु ने वेदों को बुलाकर अति नम्रता से कहा कि हे वेदो ! संसार में तुम्हारे वचन पर सबको पूर्ण विश्वास है । तुम यह बतला दो कि परब्रह्म कौन है ? यह सुन वेद बोले—जो तुमने हम पर इस बात को रक्खा तो हम सत्य ही सत्य कहेंगे, जिससे तुम्हारे मनों का संशय दूर हो जायगा । पहले ऋग्वेद ने कहा कि जहाँ सब जीवधारी स्थित रहते हैं और करोड़ों ब्रह्माण्ड दिखाई पड़ते हैं, जिनको वेद परम तत्त्व करके वर्णन करते हैं और जिनको सन्तों ने सबसे श्रेष्ठ ठहराया है, वे सदाशिव ही हैं । वह प्रलय में भी नष्ट नहीं होते । यह कह ऋग्वेद चुप हो रहा । यजुर्वेद बोला जिसको सब जीव यज्ञ करके सेवन करते हैं, जो परमानन्द स्वरूप है, जिसका ध्यान योगी मन में करते हैं और बिना उसकी इच्छा के दर्शन प्राप्त नहीं कर सकते और जिसका हम नेति-नेति कहकर वर्णन करते हैं, वह शुद्ध सदाशिव हैं । फिर सामवेद ने कहा कि जिससे तीन लोक प्रकट होते हैं, जिसको योगी अति विचार से समझते हैं, जिसके अंश से उत्पत्ति करनेवाले ब्रह्मा, पालन करनेवाले विष्णु और प्रलय करनेवाले हर प्रकट हैं, वह केवल सदाशिव हैं । फिर अथर्वणवेद बोले कि जिनको सन्त परब्रह्म वर्णन करते हैं, जिनकी भक्ति करके जिनका यश गाते रहते हैं, जो केवल आप ही मुक्ति के देनेवाले हैं, वह सदा-शिव हैं । वेदों के ये वचन सुनकर दोनों देवता हँसने लगे । शिव की माया से मोहित होकर वे कहने लगे कि योगियों का पति, कुरूप, जटा धारण करनेवाला, विष खानेवाला, नग्न-शरीर, बैल

पर चढ़नेवाला, जिसके भूषण सर्प हैं, जो श्मशान की भस्म शरीर में मलकर भूतों की संगति में रहता है, जिसकी संगति से सबको ग्लानि है, वह परब्रह्म क्यों कर हो सकता है? यह कहकर दोनों हास्य करने लगे। तब प्रणव ने कहा कि हे सृष्टि के उपजानेवाले ब्रह्मा! और हे पालनेवाले विष्णु! हमारी बात मन लगाकर सुनो। तुम अपने मुख से ऐसी उल्टी बात मत कहो। तुम तीनों लोकों के उपदेशक और विश्वासपात्र हो। वेद के मत का खण्डन मत करो। वेदों ने सत्य ही कहा है कि परम शिवकी कुछ रूपरेखा नहीं है। पर वे तीनों लोकों में नाना प्रकार की लीला करते हैं। तुम्हारे लिए उन्होंने स्वरूप धारण किया है। वे तीनों लोकों के अन्तर्यामी हैं। वे तुम्हारी विनय के अनुसार ब्रह्मा के भ्रूमध्य से उपजे हैं। शिव के बहुत लीलाधारी रूप हैं, जिन्होंने अपने भक्तों के लिए बड़े-बड़े चरित्र किये हैं। हम शिव के चरित्रों के मूल वर्णन करते हैं, जिससे तुम्हारी मति परब्रह्म के विरुद्ध न हो और तुमको अटल बुद्धि प्राप्त हो। जब कोई जीव न था, वरन् संसार, निर्गुण, प्रकृति, पुरुष, ब्रह्मा, विष्णु, वर्ण, सृष्टि आदि कुछ भी न था, तब केवल अद्वितीय, निर्गुण, माया से परे, ज्योतिमात्र सदाशिव थे। जिनको वेद नेति-नेति करके बखानते और अहर्निश वर्णन करके फिर भी उनके भेद को नहीं जानते हैं, ऐसे निर्गुण स्वरूप शिव के नाम से विराजमान हैं। वही अलख निरञ्जन-स्वरूप शिव तीनों गुणों से श्रेष्ठ हैं, जिनके अंश से तुम तीनों देवता उपजे हो। उसमें शिवजी के पूर्ण अंश से हर हैं। तुम दोनों को उनकी सेवा करनी उचित है। जो और शिवजी शिवलोक में रहते हैं, वही हर, रुद्र और अविनाशी हैं। जो शक्ति-सहित अवतार लेते हैं, वही शिव कैलास में स्थित हैं और शक्ति-रहित, मृत्यु को जीते हुए दिखाई

देते हैं। वह सब प्रकार की लीला करके स्वाधीन रहते हैं। उनके चरित्र कोई जानने नहीं पाया। जो उनकी इच्छा होती है, वही करते हैं। वे मायाजाल से परे हैं। जिनके सब देवता और मुनि दास हैं, जिनके चरित्रों को वेद-पुराण और धर्मशास्त्र नहीं जानते, उनकी माया से भूलकर तुम पशुओं के समान भटकते फिरते हो। वही शिव लीलाधारी अपनी इच्छा के अनुसार बहुत से रूप धारण करते हैं। कभी शरीर धरते हैं, कभी शरीर रहित रहते हैं। कभी योगी और कभी भोगी, कभी भूतों की संगति में और कभी नग्न शरीर में भस्म लगाये, सेली के भूषण पहिने जटा रखाये हुए, कभी परमहंसी गति को दिखलाते, कभी अपने में आप ही को देखकर अपना ध्यान करते हैं। कभी चक्रवर्ती राजाओं के समान नाना प्रकार के भोग भोगते हैं और शक्ति समेत सिंहासन पर बैठकर राज्य करके प्रजा पालन करते हैं। सब देवता और दैत्य उनको प्रसन्न करके अपना-अपना मनोरथ पाते हैं। उनका यश लक्ष्मीजी गाती हैं, विष्णु मृदङ्ग बजाते हैं, ब्रह्मा ताल देते हैं, सरस्वती वीणा धारण करती हैं, इन्द्र बाँसुरी बजाते हैं। वे शिव ऐसे हैं। यद्यपि ये सब बातें प्रणव ने सुनाईं, पर उन दोनों के मन में कुछ न आया। कारण यह था कि शिवजी की माया से वे इस बात को नहीं मानते थे। इतने में शिवजी ने इच्छा की कि इनका मोह दूर करना चाहिए।

पन्द्रहवाँ अध्याय

स्कन्दजी बोले कि हे कुम्भज! इतने में दोनों के बीच एक ज्योति प्रकट हुई, जिसके प्रकाश से सब पृथ्वी और आकाश पूर्ण हो गया। उसमें से एक सुन्दर आकार उपजा, जिसको देख ब्रह्मा ने पाँचवें मुख से यह कहा कि हे विष्णु! हमारे और तुम्हारे बीच में यह कैसी आश्चर्यजनक ज्योति प्रकट हुई है, जिसमें

किसी मनुष्य का आकार दिखाई देता है? यह कह ही रहे थे कि ब्रह्मा को इस प्रकार का स्वरूप भासित हुआ कि एक मनुष्य नीललोहितवर्ण, चन्द्रभाल, त्रिशूल हाथ में लिये, सर्पों के भूषण पहने खड़ा हुआ है। ब्रह्माजी ने कहा कि तुम तो वही हो, जो हमारी भौंहों के मध्य से उपजे थे। तुम्हारे रोने के कारण हमने तुम्हारा नाम रुद्र रक्खा था। और भी बहुत से नाम रक्खे थे। तुमको उचित है कि हमारी शरण में आओ। हम तुम्हारी रक्षा करेंगे। जब ब्रह्माजी ने मोहवश ढिठाई से यह कहा तो ब्रह्मा का ऐसा गर्व देख शिवजी ने महाकोप किया और एक मनुष्य को उपजाया, जो भक्तों को आनन्द देनेवाला और शत्रुओं के लिए अति भयंकर था। उसके भाल में चन्द्रमा, तीनों नेत्र लाल, शरीर में सर्प लिपटे हुए थे। निदान हर प्रकार अपने समान अपनी लीला के लिए उसे प्रकट किया। उस उपजे हुए मनुष्य ने हाथ बाँध शिवजी से बिनती की कि मेरा नाम रख दीजिए और जो मुझे काम करना है, वह बताइए। शिवजी बोले कि तुम काल के समान भासित होते हो, इससे तुम्हारा नाम कालराज हुआ। और तुम विश्व के भरण की शक्ति रखते हो, इससे तुम्हारा नाम भैरव भी है। तुमसे काल को भी भय होगा, इससे तुम्हारा नाम कालभैरव भी है। तुम गणों के दुःख मिटानेवाले हो, इससे अमरादिक भी तुम्हें कहेंगे। तुम भक्तों के पाप खा डालोगे, इससे तुम्हारा पाप-भक्षण भी नाम है। इसी तरह और भी तुम्हारे नाम होंगे और सब भक्तों के मनोरथ तुमसे पूर्ण होंगे। अब अपना काम सुनो। पद्मसुत जो ब्रह्मा है यह महाशत्रु है। इसको भलीभाँति शिक्षा दो। इसके सिवा और भी जो संसार में इस विधि मेरे विरोधी हैं, उनको दण्ड दो। मेरी मुक्तिनगरी अर्थात् काशी मुझको प्राण के समान प्रिय है। उसका

स्वामी मैंने तुमको किया। तुम सदा के लिए वह स्थान अपना समझो, अर्थात् तुम काशी के कोतवाल होकर सबको शिक्षा दोगे। काशी में तुम्हारी दुहाई फिरेगी। तुम वहाँ राज्य करोगे। जो मनुष्य काशी में पाप करें, उनको उपदेश करो। तुम्हारा तेज तीन लोकों में कोई न सह सकेगा। जो कोई काशी में शुभ या अशुभ कर्म करते हैं, उनको चित्रगुप्त नहीं लिख सकते। वहाँ यमराज की आज्ञा नहीं चलती। यह सुन कालभैरव प्रसन्न हुए और मन में सोचने लगे कि ब्रह्मा को क्या दण्ड देना चाहिए? फिर विचार किया कि ब्रह्मा ने पाँचवें मुख से शिवजी की निन्दा कर उनको पुत्र बनाया है, इसलिए उचित है कि उनका वही पाँचवाँ सिर काट डालूँ। इस इच्छा से भैरव क्रोधित हुए। पहले उनका स्वरूप महाभयानक हो गया। सो बाईं अंगुली के नख से ब्रह्मा का पाँचवाँ सिर उन्होंने काट लिया। उस समय बड़ा हाहाकार मच गया। देवता और मुनि आदि सब काँपने लगे। विष्णु भी हाथ जोड़ स्तुति करने लगे। ब्रह्माजी भी काँपकर महा दुखी हुए। वह शतरुद्री का जप करने लगे और शिवजी की शरण में गये। शिवजी ने कहा कि हे विष्णु और ब्रह्मा! कुछ भय मत करो। तुम दोनों सृष्टि के उपजानेवाले और पालनकर्ता हो और मैं प्रलय करनेवाला हूँ। तुम मुझको अपने समान प्रिय हो। हम तुम तीनों देवताओं में कुछ भेद नहीं है। पर जिस मुख से ब्रह्मा ने निन्दा की, केवल उसे हमने कृपा करके दण्ड दिया। हमने यह चरित्र कर तुम्हारा मोह दूर कर दिया। जब तुमने वेद और पुराणोंकी आज्ञाओंको न समझा तो मुझको तुम्हारी भलाईके लिए प्रकट होना पड़ा। इसके बाद भैरव से शिवजी ने कहा कि हे भरण-कर्ता भैरव! जो काम करना, वहसमझ-बूझकर करना। ब्राह्मण चाहे कैसा ही भ्रष्ट हो गया हो, पर उसका वध करना महापाप है।

तुमको ब्रह्मा का पाँचवाँ शिर काट डालने के कारण दोष लग गया है; उसको दूर करो और कापाल व्रत धारण करो। यद्यपि तुमको पुण्य-पाप कुछ नहीं है, पर वेद के अनुसार सब करना चाहिए, जिसमें अन्य मनुष्य भी ऐसा करें। तुम शिर को हाथ में लिए हुए भिक्षाटन करते सब लोकों की परिक्रमा करो। यह कहकर शिवजी ने एक स्त्री प्रकट की, जिसका शरीर बहुत बड़ा था। उसका नाम ब्रह्महत्या रक्खा। वह महाभयंकर और महाभय देनेवाली थी। उसका रूप भयदायक था। वह रक्त शरीर, रक्त ही वस्त्र पहने, सब शरीर में रुधिर लगाये थी। उसके बड़े भयानक दाँत थे। उसकी जिह्वा मुख से निकली हुई थी। वह आकाश तक शिर उठाये, हाथ में खप्पर लिये थी, जिसमें से रक्त पीती थी। उस प्रलयकाल के मेघ समान महाभयंकर ब्रह्महत्या को शिवजी ने प्रकट करके उससे कहा कि काशी हमारी नगरी है। वहाँ जब तक भैरव लौट न आवें, तब तक उनको न छोड़ना चाहे कोई करोड़ों उपाय करे। काशी के सिवा तुम्हारी तीनों लोकों में गति होगी। यह रहस्य कहकर शिव अन्तर्धान हो गये। भैरव ने भी शिवजी की आज्ञा स्वीकार की और ब्रह्मा का शिर लिये हुए भिक्षा माँगते फिरे। वह ऊँचे शब्द से सबको अपना पाप जो लगा था, सुनाते थे। यद्यपि भैरव शुद्ध थे, पर संसारी मनुष्यों की शिक्षा के निमित्त उन्होंने ऐसा किया।

सोलहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! ब्रह्महत्या भैरव के पीछे-पीछे बड़ा शब्द करती हुई चली। जहाँ भैरव जाते, वहाँ वह भी जाती। भैरव संसार भर में भ्रमण करते फिरे। सातों द्वीपों में जो-जो तीर्थ थे, वे सब भैरव ने अकेले किये। साथ में वही स्त्री ब्रह्महत्या थी, और कोई नहीं था। यहाँ तक वह पाताल लोक तक गये,

पर वह स्त्री न छूटी। निदान उन्होंने ऊपर के लोकों में भी भ्रमण किया। परन्तु वह न हटी। इसी प्रकार भैरव ब्रह्मलोक पर्यन्त फिरे। जहाँ भैरव ब्रह्मा का शिर लेकर जाते थे, वहाँ के निवासी अन्न धन से परिपूर्ण हो जाते थे। निदान महादुखी हो भैरव नारायणलोक को इस इच्छा से चले कि वहाँ जाने से पाप से छूटेंगे। विष्णु ने भैरव को देख लक्ष्मी से कहा—देखो, परब्रह्म शिव आते हैं। यह धरती धन्य है और हम तुम सब कृतार्थ हैं। यह तो पूर्ण स्वरूप से सदाशिव हैं। जिनके नाम लेने और दर्शन करने से फिर मनुष्य का शरीर नहीं मिलता, वही कृपा करके यहाँ आते हैं। जब भैरव निकट आये तो विष्णु ने सारी सभा सहित उठकर भैरव की स्तुति की और कहा कि तुम तो सब पापों के दूर करनेवाले, भक्तों के आनन्ददायक और अविनाशी हो। तुम यह क्या चरित्र और लीला कर रहे हो? हमसे वर्णन करो। और जो तुम हाथ में सिर लिये हुए भ्रमण कर रहे हो, इसका क्या कारण है? तुम तो संसार के महाराजाधिराज हो। यह तुम्हारा भीख माँगना आश्चर्य की बात है। भैरव बोले कि हम ब्रह्मा का शिर काटकर पापी हुए। उस पाप से छूटने के लिए सारी सृष्टि में फिरते हैं। विष्णु ने कहा कि मुझसे तीनों लोकों को मोहनेवाली अपनी माया को दूर रखिये। तुम सृष्टि भरके स्वामी हो। जो तुम्हारी इच्छा होती है, वही सब करते हो। वह सब तुमको शोभा देता है। तुम तो संसार से भिन्न हो। तुमको पुण्य या पाप से कुछ प्रयोजन नहीं। तुम्हारे नाम जपने से सब पाप भाग जाते हैं। जब तुम प्रलय में सब देवता, दैत्य, मुनीश्वर और वर्णाश्रम आदि को नष्ट करते हो, तब तुमको क्यों पाप नहीं लगता? उस समय ब्रह्मा का तो अभाव ही कर देते हो। अब केवल तुमको एकही शिर के काटने से कैसे पाप लग सकता है?

अन्य कल्पों के ब्रह्माओं के शिर तुम्हारे गले में पड़े हुए हैं। उनकी ब्रह्महत्या तुमको क्यों नहीं लगती ? अब अपने को पापी ठहराते हो। तुम्हारी लीला विचित्र है। देवता और मुनि कोई उसको नहीं जानता। जिस भाँति सूर्य का उदय होने से अँधियारा जाता रहता है, उसी भाँति तुम्हारे भक्त के, चाहे वह कैसा ही पापी हो, सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य एक बार तुम्हारा ध्यान करता है, उसके दुःख और ब्रह्महत्या आदि पाप दूर हो जाते हैं। तुम्हारे नाम लेने से पापों का पर्वत नष्ट हो जाता है। चाहे कोई शत्रु भी तुम्हारे शिव, शंकर, शशिशेखर आदि नाम ले, वह भी आवागमन से छूटता और सदा कैलास में रहता है। तुम्हारा नाम शुभ है। तुमको यह शिर हाथ में लेकर भ्रमण करना उचित नहीं। हमारे बड़े भाग्य हैं कि जिनको योगी योग करके नहीं पाते, वह हमारे लोक में आज विराजमान हुए। हम धन्य हैं और हमारा लोक धन्य है, जो आप जैसे स्वामी को आज देखते हैं। आपकी दृष्टि अमृत का सा गुण रखती है, जिसको देखकर फिर आवागमन का भय नहीं रहता। जो अच्छे लोग तुम्हारा भजन करते हैं, वे स्वर्ग और मोक्ष को तृण के समान जानते हैं। विष्णु यह कह रहे थे कि भैरव ने भीख माँगी। लक्ष्मी ने भिक्षा देकर प्रणाम किया और भैरव आगे चले। पीछे-पीछे ब्रह्महत्या चली।

सत्रहवाँ अध्याय

स्कन्दजी बोले कि हे कुम्भज! विष्णु ने ब्रह्महत्या को भैरव के पीछे जाते देखकर कहा कि भैरव का पीछा छोड़कर जो तुझे वर चाहिए, वह हमसे माँग ले। ब्रह्महत्या ने हँसकर कहा कि मैं शिवजी की आज्ञा से भैरव के पीछे फिरकर अपने को शुद्ध करती फिरती हूँ। भैरव को कुछ दुःख नहीं देती हूँ। जो

कोई भैरव का नाम लेता है, मैं तुरन्त उसका घर छोड़ भाग जाती हूँ। भैरव पर मेरा अधिकार केवल इतना ही है कि यह बात केवल शिवजी की आज्ञा से हुई है। उस आज्ञा को कौन अन्यथा कर सकता है? यह कहकर ब्रह्महत्या उसी प्रकार भैरव के पीछे चली। भैरव ने विष्णु के ऐसे विश्वास को देखकर कहा कि जो इच्छा हो, वह हमसे वर माँग लो। हमको यह चाण्डाली हत्या कुछ दुःख नहीं दे सकती। हम यह आप ही संसार के लिए चरित्र कर रहे हैं। विष्णु बोले कि हमको यही बड़ा वर मिला कि आप हमारे लोक में आये। हम यह चाहते हैं कि हम प्रतिदिन आपके चरणकमलों का ध्यान किया करें और हमको प्रतिदिन आपके दर्शन मिलें। भैरव ने कहा---अच्छा, यही वर हमने तुमको दिया। तुम भी देवता और मुनीश्वरों को वर दिया करो और तीनों लोक के स्वामी होकर आनन्दपूर्वक बैठे रहो। यह कहा और सब देशों की परिक्रमा कर काशी की ओर चले। वह काशी, जिसके बराबर तीनों लोकों में कोई क्षेत्र नहीं और जहाँ सबको परममुक्ति प्राप्त होती है। जब भैरव काशी के समीप पहुँचे, तब ब्रह्महत्या अति भयभीत हो चिल्लाने लगी। जब भैरव बैठ गये तो वह हाहाकार करके पृथ्वी के नीचे चली गई। भैरव के हाथ से ब्रह्मा का सिर धरती पर गिर पड़ा। भैरव अति प्रसन्न हुए। सब देवताओं और मुनीश्वरों ने जय-जय उच्चारण किया। भैरव नाचने लगे। हे कुम्भज मुनि! काशी की महिमा देखो, वह सबसे श्रेष्ठ है। यह काशी शिवजी को ऐसी प्यारी है कि भैरव का जो पाप और किसी स्थान में नहीं छूटा था, वह काशी के भीतर जाते ही छूट गया। हम उसकी महिमा कहाँ तक कहें। वह तीनों लोकों से निराली और मोक्ष देनेवाली पुरी है। वह सबसे श्रेष्ठ कपालमोचन तीर्थ है, जिसके दर्शन ही से

सब पाप नष्ट हो जाते हैं। उसके स्मरण से भी बड़े-बड़े पाप छूट जाते हैं और मुक्ति मिलती है। वहाँ देवताओं और पितरों का तर्पण करने से ब्रह्महत्या आदि पाप छूट जाते हैं। इसके समान दूसरा तीर्थ नहीं है, जैसा कि वेद और पुराण आदि कहते हैं। मार्गशीर्ष की कृष्णअष्टमी को भैरव का अवतार हुआ था। उस दिन जो कोई व्रत करे, उसके जन्म भर के पाप दूर हो जायँ। उस दिन जागरण का भी यही फल है। जो कदाचित् भैरव के निकट जाकर काशी में इस व्रत को करे तो जो पाप किये हुए हों वे सब दूर हो जायँ। कोई भी दोष न रहे। जो उस दिन भैरव का पूजन करे तो एक वर्ष के बड़े-बड़े सब पाप मिट जाते हैं। जो कोई अष्टमी, चतुर्दशी और रविवार को भैरव की यात्रा करेगा, उसके सब पाप छूट जायँगे। जो कोई भैरव की आठ परिक्रमा करे तो उसको तीनों प्रकार के पाप न लगेंगे। यह भैरव का व्रत सब व्रतों का राजा और चारों फल देनेवाला है। जो मनुष्य दोनों लोकों में सुख प्राप्त करने की इच्छा रखता हो, वह इस व्रत को निश्चयपूर्वक करे। इस व्रत के करने से भैरव अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। इस भैरव-चरित्र के सुनने से मुक्ति होती है और बड़ा आनन्द मिलता है। चवालिसवें अवतार का चरित्र पूर्ण हुआ।

अठारहवाँ अध्याय

वीरभद्र अवतार का वर्णन

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! इससे पहले हम वीरभद्र अवतार का विस्तार से वर्णन कर चुके हैं। अब संक्षेप में कहते हैं। हमारे पुत्र दक्षप्रजापति ने बुद्धि की हीनता से शिव के साथ वैर बढ़ाया और उनकी निन्दा की। पर शिवशङ्कर ने ऐसे वचनों का कुछ

विचार न किया। इतने में वह यज्ञ करने लगा। सब देवता और मैं भी अपने परिवारों सहित उस यज्ञ में गये। यद्यपि बड़ी धूमधाम थी, पर शिवजी के विना कुछ शोभा न थी। दधीचि मुनि ने सबको समझाया कि तुम सब जाकर शिवजी को यहाँ लाओ। पर यह बात किसी को न भाई। यहाँ तक कि विष्णु ने और मैंने भी शिवजी को भुला दिया। अन्त को दधीचि मुनि यह कहकर कि यह यज्ञ पूर्ण न होगा, बाहर चले गये। इस बात को दक्षप्रजापति उत्तम समझकर हम सबकी सहायता से यज्ञ करने लगा। संयोग से सती अपने पिता के घर यज्ञ का होना सुनकर अति प्रसन्न हुईं और शिवजी से हठ करके आज्ञा पा दक्ष के यहाँ गईं। वहाँ शिवजी की अति अप्रतिष्ठा देख क्रोधित हुईं और कहा कि हे दक्ष, ब्रह्मा, विष्णु, सब देवता और मुनि आदि! तुम सबकी शुद्ध बुद्धि जाती रही है। तुम सबने शिव विना यज्ञ करना चाहा है, इसका फल तुम सबको मिलेगा। फिर योगधारण कर सती जल गईं। तब हाहाकार मच गया और सब विकल हुए। सती का मरना सुन बीस हज़ार गणों ने अपनी प्रसन्नता से अपने प्राण छोड़ दिये। और शेषगणों को, जिन्होंने उपद्रव किया, उन सबका भृगु मुनि ने मन्त्र के बल से उच्चाटन कर दिया। उन सबने भागकर शिवजी के पास पहुँच सब वृत्तान्त वर्णन कर दिया। हे नारद! शिवजी ने तुमसे सब वृत्तान्त पूछा। फिर तुम्हारा वर्णन सुन शिवजी ने अति कुपित हो अपनी एक जटा उखाड़कर शिला पर दे मारी। उस समय पर्वतों और नदियों समेत तीनों लोक काँप उठे। उस जटा के प्रथम भाग से एक मनुष्य चतुर्भुज स्वरूप, त्रिनेत्र, हाथ में महाभयानक त्रिशूल लिये वीरभद्र नाम का उपजा। वह शिवजी के सामने आ खड़ा हुआ। उसने अपने रोमों से अपने समान

असंख्य गण उपजाये। वे सब अट्टहास करते थे। जटा के दूसरे भाग से श्रीमहाकाली महाभयानक स्वरूप धारे, अपने साथ करोड़ों योगिनियों को लिये हुए, बड़ा शब्द करती प्रकट हुईं। फिर वीरभद्र और काली ने हाथ जोड़कर शिवजी से अपना काम पूछा। तब शिवजी ने बड़े कोप से आज्ञा दी कि तुम दक्ष के यहाँ पहुँच उसके यज्ञ का विध्वंस कर सबको दण्ड दो। यह आज्ञा पाकर वह सब सेना चली। उसके चलने से चारों ओर शब्द भर गया। वीरभद्र के चलने से पृथ्वी काँप उठी और प्रचण्ड वायु चलने लगी। वीरभद्र के रथ में बीस अयुत सिंह लगे हुए थे और रथ बीस कोस लम्बा था। उसमें असंख्य छत्र लगे थे। वे गण, जो वीरभद्र से उपजे थे, चौंसठ करोड़ थे। वे भी वीरभद्र के साथ चले। इनके सिवा और बहुत से शिवगण विमान पर चढ़कर चले। वे अति प्रसिद्ध गण थे। इस सब सेना की संख्या, जो गणों के साथ चली, चौंसठ करोड़ थी। सहस्र कोटि भूतों की सेना थी। क्षेत्रपाल भी अपनी सेना समेत चले। भैरव भी असंख्य सेना लेकर साथ हुए। इस प्रकार इतनी सेना लेकर वीरभद्र चले, जिसकी गणना नहीं हो सकती। यह वृत्तान्त दक्ष की स्त्री बीरनी ने जाना, जिसने सती का आदर किया था। उसने सबसे समझाकर कहा कि अब कुशल नहीं है। शिवजी महाकुपित हुए हैं। बीरनी यह बात सबसे कह ही रही थी कि शिव की सेना पहुँच गई। जहाँ हिमालय पर्वत के सुवर्ण के शिखर हैं और मायापुरी के निकट जहाँ गङ्गा बह रही हैं, उस देश का नाम कनखल है। वहीं पर दक्ष यज्ञ कर रहे थे। निदान वीरभद्र ने पहुँचकर प्रलय की अग्नि के समान होकर उच्च स्वर से कहा कि हम शिवजी की आज्ञा से आये हैं। तुममें से किसी को वध किये बिना न छोड़ेंगे।

उन्नीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले--हे नारद ! वीरभद्र ने यह कह यज्ञस्थान को जला दिया और सब गणों को आज्ञा दी कि अकाल-प्रलय करो। यह सुन गणों ने महाक्रोध कर यज्ञ में विद्यमान देवताओं और मनुष्यों के दाढ़ी, मूँछ, केश आदि सब उखाड़ डाले। सबको शस्त्रों से मारा। ऐसी मार देख दिक्पालों ने कुछ सामना किया; पर वे सब वीरभद्र से परास्त हो गये। इन्द्र की भुजा उठ न सकी। वह त्रिशूल के प्रहार से विकल हो गये। अनल की शक्ति को काटकर उन्हें त्रिशूल से घायल कर दिया। यमराज का कालदण्ड काटकर उन्हें मूर्च्छित कर दिया। निर्ऋति का खड्ग तोड़कर उनके हृदय में त्रिशूल मारा। वरुण का पाश काट उनको अपने बाण से घायल किया। पवन की ध्वजा नष्ट कर उन्हें फरसे से मारा। कुबेर की गदा तोड़ उन्हें अपने त्रिशूल से घायल किया। चन्द्रमा को लात से मारा। आठों वसुओं का मुशल काट उन्हें पीड़ित किया। इनके सिवा और जो युद्ध के लिये खड़े थे उन सबको अपने शस्त्रों से मारा। यह दशा देख सब देवता भाग खड़े हुए और उनका कोई उपाय न चला। गणों ने महाभयंकर अट्टहास किया और यज्ञ को नष्ट करने लगे। इससे अत्रिमुनि भागकर विष्णु के चरणों पर गिर पड़े और कहा कि हमारी रक्षा करो। हम आपकी शरण में आये हैं। आप यज्ञरूप और यज्ञ की रक्षा करनेवाले हैं। हम देवताओं और मुनि आदि के दुःख को कहाँ तक वर्णन करें। ये जो शिव के गण आये हैं, इनको निवारण करो। दक्षप्रजापति भी विष्णु से यह विनती करके चरणों पर गिर पड़े और बड़ी भारी स्तुति की। कहा कि ऐसी कृपा कीजिये, जिससे ये गण निवृत्त हों। कदाचित् गणों ने हमारा यज्ञ नष्ट कर डाला तो हमारी

बड़ाई में अन्तर पड़ जायगा। ऐसी विनय कर दक्ष हाथ जोड़ विष्णु के आगे खड़ा हुआ। देवताओं और दक्ष की विनती सुनकर विष्णु गणों पर क्रोधित हुए और लड़ने के लिए खड़े हुए। विष्णु के स्मरण करने से सब शस्त्र आये। विष्णु रथ पर सवार हो युद्ध के निमित्त चले। वह गणों के सामने खड़े होकर ज्वलित अग्नि के समान दिखाई दिये। उन्होंने गणों को अपने बाणों से विकल करके युद्धस्थान से भगा दिया। तब श्रीमहा-काली महाकुपित होकर बड़ा शब्द करती हुई विष्णु के सम्मुख चलीं। काली की सेना भी विष्णु के ऊपर चढ़ धाई और विष्णु को चारों ओर से घेर लिया। क्षेत्रपाल भी अपनी सेना लेकर विष्णु से लड़ने को चले। भैरव भी विष्णु के सामने चढ़ धाये। इन तीनों ने विष्णु से बड़ा युद्ध किया। विष्णु की बहुत सेना मर गई। निदान विष्णु ने सबको परास्त कर अपना तेज ऐसा बढ़ाया कि कोई उनसे भिड़ न सका। अन्त को भैरव, काली और क्षेत्रपाल विष्णु की सेना के भीतर पैठे, जिस तरह राहु चन्द्रमा को घेर लेता है। तब तो विष्णु ने अपना धनुष हाथ में लेकर सौ बाण चलाये और उसके साथ ही अपना शंख बजा दिया। उस समय जो देवता वीरभद्र के भय से भाग गये थे, वे सब विष्णु के समीप आ गये। दोनों ओर से महासंग्राम हुआ। श्रीमहाकाली ने हँसकर अपना मुख पृथ्वी से आकाश तक फैला दिया। बहुत सी सेना अपने मुख के भीतर डाली। कइयों का शिर तोड़कर खा लिया। क्षेत्रपाल ने सौ बाण चलाकर बहुत सेना मार डाली। भैरव ने भी अपने त्रिशूल से असंख्य सेना का वध किया। इस प्रकार काली, भैरव, क्षेत्रपाल ने देवताओं और विष्णु की बहुत सी सेना मार डाली। विष्णु ने भी सब बाणों को, जो चलानेवाले थे, छोड़ दिया। योगमाया

से सब बाणों को अभिमन्त्रित कर चलाया। फिर योगमाया से शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए अपने समान बहुत से पार्षद प्रकट किये, जिन्होंने गणों को मारकर बड़ा भय दिया। विष्णु की ऐसी योगमाया देखकर वीरभद्र ने अति क्रोधित हो अपना त्रिशूल चलाया, जिससे विष्णु की सब योगमाया नष्ट होकर अकेले विष्णुजी रह गये। वीरभद्र ने अपनी गदा विष्णुजी के मस्तक में मारी। उसे न सहकर विष्णु पृथ्वी पर गिर पड़े। दोनों सेनाओं में हाहाकार मच गया। विष्णु ने फिर उठकर अपना चक्र हाथ में लिया, जो प्रलयकाल के असंख्य सूर्यों के समान प्रकाशमान था। उसकी अग्नि चारों ओर फैल गई। आकाश और पृथ्वी जलने लगे। उसको देख सब गण आश्चर्य में हो विष्णु के सामने ठहर न सके। वीरभद्र ने शिव का ध्यान किया, जिससे उनको चक्र के रोक देने की शक्ति प्राप्त हुई, जिसके बल से वीरभद्र ने चक्र न चलने दिया।

बीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! विष्णुजी के हाथ से चक्र न चल सका, जिसके चलने से प्रलय हो जाता है और विष्णु भी पर्वत के समान खड़े रह गये। विष्णु ने मन्त्र पढ़ा, जिससे शरीर तो डोल सका, पर चक्र को कुछ भी चलने की शक्ति न हुई। उस समय मैंने आकर विष्णु को समझाया कि जो होना है, वही होगा, आप वृथा ही हठ करते हैं। क्या दधीचि मुनि का वचन अन्यथा हो सकता है? अब आप इसको शिव की इच्छा जान इस विषय में परिश्रम न करें। आप अपने वैकुण्ठ को चलें। सो विष्णु अपने धाम को चले गये। तब वीरभद्र नाना प्रकार के उपद्रव करते हुए यज्ञ के पास पहुँचे। पहले तो यज्ञ के स्थान को फूँक दिया। किसी गण ने यज्ञ करानेवाले की दाढ़ी उखाड़

डाली और जो शिव के विरुद्ध मुनीश्वर थे, उनको मार डाला। कई गणों ने यज्ञ का स्थान और किसी ने यज्ञ का सामान भ्रष्ट कर डाला। जितने यज्ञ के पात्र थे, वे गङ्गाजी में फेंक दिये और जल डाल सब यज्ञकुण्ड बुझा दिये। उस समय यज्ञ हरिण का रूप रख भाग चला। वीरभद्र इस बात को जानकर उसे आकाश से पकड़ लाये और उसका सिर तुरन्त काट डाला। धर्मराज, दक्षप्रजापति और कश्यप के सिर पर लात मारी। इसके सिवा कृष्टनेमि, कृशाश्व और अङ्गिरस मुनीश्वरों के सिरों पर लात मारी। सरस्वती की नाक काट डाली, जो देवताओं की माता थी। नख से भग के नेत्र निकाल लिये। भृगु मुनि की मूछें उखाड़ डालीं। मुष्टिका के प्रहार से पूषा के दाँत तोड़ डाले। ऐसी बातों से भी संतोष न रखकर दक्ष को पकड़ उसका सिर काटने लगे। पर जब सिर न कटा तो वीरभद्र ने शिव का ध्यान कर शिवजी की आज्ञा के अनुकूल उसका सिर मरोड़कर आग में डाल दिया। इसी प्रकार बहुत से उपद्रव कर यथाशक्ति सब को प्रतिफल दिया। उसी चिताभूमि में प्रलय करनेवाले रुद्र के समान विराजमान हुए। उस समय में, ब्रह्मा और विष्णु आदि ने शिव के निकट जा विनय की कि आपके गण वीरभद्र ने यज्ञ का विध्वंस कर सबको विकल कर दिया है। दक्षप्रजापति ने वास्तव में बहुत ही निर्बुद्धिता का काम किया कि आपको अवधूत समझ यज्ञ में न बुलाया। आपने जो दण्ड सबको दिया, वे सब उसके योग्य थे। पर हमारे अपराधों पर दृष्टि न करके दया कीजिये। अब सबको यह शुभ मति उपजी है कि आप सर्वोपरि हैं। आप कृपा करके यज्ञ पूर्ण करें और वह उपाय करें, जिसमें दक्ष जी उठे। इस प्रकार सबको आनन्द दीजिए; क्योंकि सबने निश्चय करके यह बात ठहराई है कि आपके भाग बिना यज्ञ न

होगा। जो आप सब प्रकार दण्ड न देते तो धर्म नष्ट होकर पाप फैल जाता। आपकी महिमा भुलाने से मनुष्य वेदहीन हो जाते। अब हम सब आपकी शरण में आये हैं। तब शिवजी प्रसन्न हुए और वीरभद्र की ओर दया की दृष्टि से देख दिया। वीरभद्र शिव के चरणों पर गिर पड़े और विनती की कि जो आज्ञा मुझे मिले, उसका पालन करूँ। शिवजी ने कहा कि अब तुम सब गण क्रोध दूर करो; क्योंकि सब अपना-अपना दण्ड पा चुके हैं। यह कह सब गणों को बिदा किया और सबकी ओर कृपा की दृष्टि से देख दिया, जिससे सबके अङ्ग पहले जैसे हो गये। जो मर गये थे, वे सजीव मनुष्यों के समान उठ खड़े हुए। भृगु के बकरे की दाढ़ी जमाई। दक्ष के शरीर पर बकरे का सिर रखकर उसको जिला दिया। दक्ष ने विचित्र बकरे के स्वर से शिव की स्तुति की। शिवजी ने यज्ञ के पूर्ण करने के लिए आज्ञा दी। यज्ञ पूर्ण हुआ। सबको यज्ञभाग देकर शिव-जी को भी पूर्ण भाग दिया। इस प्रकार श्रीशिवशङ्कर यज्ञ पूर्ण कर अपने गणों सहित कैलासपर्वत को लौट आये। विष्णु, मैं और सब देवता आदि अपने-अपने लोक को चले गये। मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार वीरभद्रावतार का चरित्र कह सुनाया। जो इस चरित्र को पढ़े या सुनेगा, वह इस लोक में प्रसन्न रहकर अन्त में शिवपद पावेगा। इस अवतार की कथा बड़ी आनन्द देनेवाली है।

इक्कीसवाँ अध्याय

शरभ अवतार का वर्णन

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! अब हम शरभ अवतार का वर्णन करते हैं। पूर्वकाल में दिति के दो पुत्र, कनककशिपु बड़ा और कनकाक्ष छोटा उत्पन्न हुए, जो देवताओं के

बड़े शत्रु थे। उनके अधीन सब संसार था। संसार भर में केवल उन्हीं की आज्ञा चलती थी। उन्होंने देवताओं को बड़ा दुःख दिया। दोनों ने मिलकर संसार भर का धर्म भ्रष्ट कर डाला। अधिक पापों के कारण संसार में बड़े उपद्रव उठने लगे। उनमें से जो छोटा भाई कनकाक्ष था, उसको तो विष्णु ने वाराह अवतार लेकर मार डाला। कनककशिपु के चार पुत्र उपजे। उन चारों में प्रह्लाद सबसे छोटा था। वह बड़ा सत्यवादी, तपस्वी, धर्मनिष्ठ, आत्मज्ञानी और विष्णु का बड़ा भक्त हुआ। उसने उपजते ही विष्णु की पूजा की। विष्णु के सिवा उसने संसार में और कुछ किसी वस्तु को न देखा। वह विष्णुजी के अष्टाक्षर मन्त्र को प्रतिदिन आनन्द से जपता था। एक दिन कनककशिपु ने प्रह्लाद को गुरु के पास विद्याध्ययन के लिए सौंपा। वह गुरु के यहाँ भी वही विष्णु का अष्टाक्षर मन्त्र जपा करता था। गुरु जो राजनीति आदि पढ़ाता, वह प्रह्लाद न पढ़ते। एक दिन कनककशिपु ने प्रह्लाद को परीक्षा लेने के लिए अपने पास बुलाकर पढ़ने का हाल पूछा और कहा कि हे पुत्र! जो गुरु से पढ़ा हो, वह सुनाओ। प्रह्लाद ने उत्तर दिया कि हमने विष्णु का नाम पढ़ा है। जिनकी सेवा से दोनों लोकों में आनन्द प्राप्त होता है, उन वैकुण्ठवासी विष्णु के समान संसार में और कोई नहीं है। यह सुनकर कनककशिपु ने प्रह्लाद को अपनी गोद से फेंक दिया और कहा कि विष्णु कौन है, जिसके चरणों की प्रीति तुमको उपजी है? तुम विष्णु, ब्रह्मा और शिव आदि देवताओं को छोड़कर मेरी सेवा किया करो। मुझसे बड़ा संसार में और कौन है? मुझसे देवता और दैत्य सब डरते हैं। ऐसे वचन पिता के सुनकर प्रह्लाद ने कुछ भय न किया और ऊँचे शब्द से फिर विष्णु का नाम लेकर कहा कि मुझ पर उपकार करने-

वाला वही है। यह कह विष्णु के चरणों में और भी भक्ति बढ़ाकर अन्य बालकों से भी भक्ति कराने लगा। हे नारद ! यह धर्म बड़ा आनन्द देनेवाला है कि अपने स्वामी के चरणों की सेवा न छोड़े। निदान कनककशिपु ने अपने पुत्र प्रह्लाद की ऐसी बुद्धि देखकर दैत्यों को बुलाकर आज्ञा दी कि इसको मार डालो। यह बालक हमारा शत्रु होकर हमारे विरोधियों की सेवा करता है। यह आज्ञा सुनकर दैत्यों ने प्रह्लाद को कितना ही मारा, पर प्रह्लाद के शरीर में एक घाव तक भी न लगा; क्योंकि विष्णु ने प्रह्लाद की रक्षा की। कनककशिपु ने प्रह्लाद का न मरना सुनकर क्रोध करके प्रह्लाद को अपने पास बैठाया और कहा कि हे पुत्र ! तेरा स्वामी कहाँ है, मुझको बतला दे। मैं तेरा वध करता हूँ, वह तुझे बचा ले। यह कहकर खड्ग लेकर वह प्रह्लाद का सिर काटने को तैयार हो गया। पर प्रह्लाद को कुछ भी भय न हुआ। उसने उत्तर दिया कि वह हमारा स्वामी सब जगह वर्तमान है और सबमें विद्यमान है। उसके सिवा और कौन मारनेवाला है ? वही स्वामी भक्त का रक्षक है। यह सुनकर कनककशिपु ने कहा कि फिर वह तेरा स्वामी उस खम्भे में क्यों नहीं दिखाई देता ? यह कहकर उसने खम्भे में तलवार चलाई। उसमें से महाभयङ्कर शब्द निकला। फिर भक्त के पालनेवाले विष्णु नरहरिरूप होकर उसी खम्भे से निकल आये और ब्रह्मा का वर स्थिर रखकर कनककशिपु का उदर विदीर्ण कर मार डाला। फिर सिंह का सा घोर शब्द कर दैत्यों को भी मारा और महाक्रोधित होकर बड़ा भयानक रूप बनाया, जैसे प्रलय की अग्नि हो। फिर नरहरि ने बड़ा शब्द किया, जो तीनों लोकों में छा गया। तीनों लोक उससे भयभीत हुए। पृथ्वी काँप उठी, पर्वत जलने लगे, दिग्गज स्थिर न रह सके। तब नरहरि ने अपना स्वरूप

और भी अधिक भयानक कर सहस्र चरण और सहस्र ही नेत्र धारण किये । तीनों अग्नि और सूर्य प्रकट होकर तीनों भुवनों को जलाने लगे । नरहरि का ऐसा स्वरूप देखकर देवता वहाँ ठहर न सके, बरन् कुछ दूर भाग गये । विष्णु, मैं और बड़े-बड़े देवता दूर ही से स्तुति करने लगे । मैंने प्रह्लाद से कहा कि तुम नरहरि को शान्त करके सब लोगों के दुःख दूर करो । प्रह्लाद इस बात को मान नरहरि के पास गये । पर तो भी उनका क्रोध न गया, बरन् वह और चिल्लाने लगे । तब तो इन्द्र आदि सब देवता वहाँ से भागकर शिवजी की शरण में गये । मैं, इन्द्र और दिक्पति आदि देवताओं ने शिवजी की स्तुति की और विनय की कि हम सब आपकी शरण में आये हैं । ऐसा उपाय कीजिये, जिसमें नरहरि का क्रोध शान्त हो । इसी प्रकार का क्रोध वीरभद्र ने दक्ष की यज्ञ के बिगाड़ने के पीछे किया था, जिसको आप ही ने दूर किया था । हमको इस क्रोधाग्नि का बुझानेवाला दूसरा दिखाई नहीं देता ।

बाईसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा——हे नारदजी ! ऐसी स्तुति सुनकर शिवजी ने प्रसन्न हो इस इच्छा से कि नरहरि का क्रोध दूर करें, अपने गण वीरभद्र का स्मरण किया । वीरभद्र अट्टहास करते नरहरि के समान करोड़ों गणों को साथ लिये हुए आये । वह महाभयङ्कर रूप था । उन्होंने हाथ जोड़ शिवजी से कहा कि मुझे क्या आज्ञा होती है ? शिवजी बोले——तुम जाकर नरहरि का क्रोध शान्त करो । तुम उनको नम्रतापूर्वक समझाना । कदाचित् उनके क्रोध की अग्नि तुम्हारे समझाने से दूर न हो तो हमारा भावबल करके दिखा देना और केवल वचनों ही से उनका गर्व नष्ट कर डालना । उनका संकोच मानकर उनको दण्ड न देना । अधिक तेज

को अधिक ही से दूर करना और न्यून का न्यून से निवारण करना। इसी प्रकार नरहरि के शरीर को अपने में मिलाकर हमारे पास लाना। यह सुन वीरभद्र शान्तरूप बन गये और नरहरि के पास जाकर, जैसे पिता अपने पुत्र से उपदेश के वचन कहे वैसे कहने लगे कि हे विष्णु ! तुमने नरहरि अवतार संसार की रक्षा के निमित्त लिया है। तुम प्रलय होने का उपाय मत करो। तुम तीनों लोकों के पालन के निमित्त हो। अब शिवजी की आज्ञा मान अन्तर्धान होकर सबको आनन्द दो और दूसरे अवतारों की चाल चलो। यही शिवजी की आज्ञा है। तुमको शिवजी ने प्रलय करने को अपना तेज नहीं दिया। तुम्हारे समान तीनों लोकों में दूसरा शिवभक्त नहीं। तुमने उत्तम रीति से वेद का धर्म स्थापित कर दैत्यों को नष्ट कर दिया। जिस कार्य के लिए तुमने यह अवतार लिया है, वह कार्य सुगमता से पूर्ण हो गया। अब तुम क्यों अपना भयानक स्वरूप बनाये हुए हो? इसलिए उचित है कि इस रूप को निवृत्त करो। यह वीरभद्र के वचन सुन नरहरि ने अग्नि के समान हो अति कोप से उत्तर दिया कि तुम अपने घर चले जाओ, जहाँ से आये हो। मेरी इच्छा के विरुद्ध ये वचन कहकर क्यों मेरा क्रोध बढ़ाते हो ? इस समय मैं यही जानता हूँ कि मुझको कौन निवृत्त करनेवाला है। तीनों लोक मेरे अधीन हैं। संसार में मुझे सिखानेवाला कौन है ? मैं सबका स्वामी हूँ। सब संसार मेरी कृपा से स्थित है। मेरे तेज से सब संसार है। मेरे नाभिकमल से ब्रह्मा उपजे हैं। मुझको वेद सत्-चित्-आनन्द कहते हैं। मैं सबका स्वामी, स्वाधीन, सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता और प्रलय का भी करनेवाला हूँ और सब संसार का राजा हूँ। वह कौन है जो मुझको सिखाता है और किसने अपना भारी प्रभाव तुम पर प्रकट करके तुमको मेरे

पास भेजा है? मैं काल को नष्ट करनेवाला और संसार को नष्ट करनेवाला, भूत का भूत हूँ। देवता मेरी कृपा से जीते हैं। वीरभद्र ने कहा कि तुम उसको चलकर क्यों नहीं देखते, जो प्रलय का करनेवाला है, जिसके हाथ में पिनाक और त्रिशूल है। ये तुम्हारे वचन बहुत ही अनुचित हैं। तुमको निश्चय करके दुःख प्राप्त होगा। यह रीति है कि मरने के समय सबकी बुद्धि विपरीत हो जाती है। तुम्हारे जितने अवतार हुए, उनकी जो दशा हुई है, वही तुम्हारी भी होगी, अर्थात् शिव क्रोध कर तुम्हारा यह शरीर नष्ट कर देंगे। तुम शिव की महिमा और प्रताप नहीं जानते। उनको अन्य देवताओं के समान जानकर ऐसा गर्व करते हो। तुम प्रकृति हो और शिव पुरुष हैं, जिन्होंने तुम्हारे शरीर में वीर्य स्थित किया और तुम्हारी नाभि से कमल पुष्प उत्पन्न हुआ, जिसमें से पञ्चमुखी ब्रह्मा उपजे। ब्रह्मा की भ्रकुटि से शिव उत्पन्न हुए और उन्होंने सबके ऊपर अपना रूप दिखाया। उन्हीं शिव ने मुझको तुम्हारा अहंकार दूर करने के लिए भेजा है। तुम केवल एक दैत्य का वध कर इतना अहंकार करते हो। अब वृथा मत चिल्लाओ। यह बात तुम्हारे लिए बहुत बुरी है। जब मैं क्रोध करूँगा तो तुम लज्जित होगे और अपनी निर्बलता देखकर अपना क्रोध शान्त करोगे। संसार में जो मनुष्य बुरे हैं, उनके साथ उपकार करना अपने ही को हानिकारक होता है, जैसे सर्प को दूध पिलाने से उसके विष की ही वृद्धि होती है। जो तुम शिव को अपना बनाया हुआ और अपना अधीन कहते हो तो मुझे निश्चय हुआ कि तुम संसार को उत्पन्न और पालन करनेवाले नहीं हो, और न स्वाधीन और मुक्ति देनेवाले हो। शिवकी की आज्ञा से अवतार लेते हो। जब तुमने कमठ अवतार लिया तो तुम क्या नहीं जानते कि शिव ने तुम्हारे सिर को जलाकर अपने

हार में पिरो लिया। जब तुमने वाराह अवतार लिया तो शिवजी ने तुम्हारे दाँत उखाड़कर अपना त्रिशूल तुम्हारे शरीर में मार तुम्हारा अहंकार दूर किया। शिव ने भैरव अवतार लेकर तुम्हारे पुत्र ब्रह्मा का सिर काटा, जिससे अब तक ब्रह्मा के पाँचवाँ सिर नहीं है। क्या यह बात तुम भूल गये ? तुम दक्षप्रजापति के यज्ञ का स्मरण करो। मैंने क्षणभर में तुम्हारा सिर काट डाला। जब तुमने दधीचि मुनि के साथ युद्ध किया था तब क्या शिवजी का प्रताप नहीं देखा था, जिसके कारण तुम देवताओं समेत मुनि की शरण में गये थे। जिस चक्र के बल पर तुम इतना अहंकार करते हो, वह तुमको किसने दिया था ? क्या तुमको सहस्र कमल पुष्प की पूजा भूल गई, जिससे तुमको यह चक्र मिला था। शिवजी की माया से बुद्धि नष्ट होने के कारण तुम क्षीरसागर में अकेले पड़े रहते हो। तुम क्योंकर सतोगुणी और निर्दोष हो सकते हो ? मैं और तुमसे लेकर तृणपर्यन्त सब शिवजी की शक्ति के अधीन हैं। तुम्हारा यह सब प्रताप और बल शिवजी की कृपा से है। वही शिवजी निष्पाप और तीनों लोकों के उपजाने-वाले हैं। तुम वृथा ही इतना गर्व करते हो। अब भी समझ जाओ। तुम और ब्रह्मा शिवजी से बलवान् नहीं हो। उनका प्रताप सर्वोपरि है। तुम काल हो और शिवजी महाकाल हैं। और महेश कालों के काल हैं। वही शिवजी संसार के सिखाने-वाले हैं। तुम और ब्रह्मा नहीं। जो शिव क्रोधित होंगे तो तुम्हें बचानेवाला कोई न होगा। तुम्हारे लिए सिवा मृत्यु के और क्या होगा। यह सुनकर नृसिंह ने कुपित हो चाहा कि वीरभद्र को पकड़ लें, पर वीरभद्र ने अपना शरीर आकाश में छिपा लिया। उनका तेज जलती हुई अग्नि के समान प्रतीत हुआ, जिसकी उपमा सूर्य, वह्नि और बिजली से भी नहीं दे सकते। वह तेज

चारों ओर फैल गया। उस समय सब तेज शिवजी के तेज में आकर मिल गये। आकाश दिखाई न देता था, जिससे देवता और मुनि आश्चर्य में हुए। पर शिवजी की लीला किसी ने न जानी। इतने में शिवजी ऐसे अद्‌भुत स्वरूप से प्रकट हुए कि उनका आधा शरीर सिंह का, दो पंख और चोंच, सहस्र भुजा से सुशोभित, शीश में जटा, मस्तक में चन्द्रमा विराजमान महा-भयङ्कर दाँत और नख वज्र के समान थे। वे ही मानो उनके शस्त्र थे। एक कण्ठ, आठ चरण थे। उनके नेत्र क्रोध से भरे हुए सूर्य के समान चमकते थे। सिवा हुंकार के और कोई शब्द सुनाई न देता था। वे दाँतों से ओठ काट रहे थे। ऐसा भयानक स्वरूप देखकर विष्णु का अहंकार दूर हो गया और वह अति निस्तेज हो गये। जैसे सूर्य के उदय से खद्योत या सिंह के सामने सिंह का बच्चा हो जाता है, वैसे ही शरभ अवतार के प्रादुर्भूत होने से विष्णुजी की दशा हो गई। शरभजी ने बल करके अपना शरीर हिलाया और अपनी दो भुजाओं से नरहरि की दोनों भुजाएँ पकड़ दो भुजाओं से नरहरि का हृदय और पूँछ से नरहरि के चरण पकड़ तुरन्त उनको जकड़ लिया और आकाश की ओर ले उड़े। फिर आकाश से पृथ्वी पर डालकर फिर पृथ्वी में उतरकर पकड़ा। इसी प्रकार बारम्बार उड़कर नरहरि को निर्बल कर दिया। उस समय देवता और मुनीश्वर सब स्तुति करने लगे और नरहरि का सब अहंकार दूर हो गया। वह महादीन हो गये। उन्होंने शिवजी के एक सौ आठ नाम वर्णन कर स्तुति की और कहा कि हे शरभेश्वर! जब मुझे क्रोध उपजे तो आप इसी प्रकार मेरा अहंकार दूर किया कीजिये। यह कह और अपना शरीर छोड़कर अन्तर्धान हो गये। उस समय मैंने देवताओं और मुनीश्वरों समेत शरभेश्वर

महाराज की बड़ी सेवा करके स्तुति की। तब शरभेश्वर शिवजी ने कहा कि यह बात भली भाँति समझ लो कि मैं और विष्णु कुछ भिन्न नहीं हैं, वरन् एक ही रूप हैं। ऐसे चरित्र करके हम परस्पर लीला करते हैं। हम और विष्णु समान हैं, कुछ भी न्यूनता नहीं। जो विष्णु के विरुद्ध है वह मेरा भी विरोधी है, और मुझे छोड़ विष्णु की भक्ति नहीं हो सकती। यह कह शिवजी ने नरहरि का शिर और चर्म उठा लिया। सिर को तो अपनी माला का सुमेरु बनाया और चर्म ओढ़ लिया। सबके देखते-देखते शिव अन्तर्धान हो गये। देवता आदि भी अपने मनोरथ पाकर अपने-अपने धाम को गये। हे नारद! इस चरित्र के पढ़ने-सुनने से दोनों लोकों में बहुत आनन्द मिलता है। छियालीसवाँ अवतार पूर्ण हुआ।

तेईसवाँ अध्याय

यक्षावतार का वर्णन

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! अब हम यक्षावतार का वर्णन करते हैं, जिसने तुरन्त ही सब देवताओं का मद हरा। जब देवता और दैत्य समुद्र मथने के समय लड़े और दैत्य देवताओं से परास्त हो गये तो देवता मारे अहंकार के शिवजी को भूल आप अपने को पृथ्वी, आकाश, पाताल का स्वामी समझने लगे। वे इकट्ठे होकर गर्व की बातें करने लगे। पहले विष्णु ने कहा कि हमने शत्रुओं को परास्त किया। हमने कालनेमि का वध किया। तब इन्द्र बोले कि हमने बहुत दैत्यों को सहज ही मार लिया और प्लक्ष आदि दैत्यों को हमने हराया। इसी प्रकार सब देवता अहंकार से अपनी-अपनी वीरता का बखान और सराहना करने लगे। शिव ने देवताओं का ऐसा अहंकार जान विचित्र चरित्र किया, अर्थात् यक्षरूप से देवताओं के पास जाकर

सबसे कुशल पूछी। किसी ने न जाना कि यह शिव हैं। फिर कहा कि तुम सब इस स्थान पर बैठे हुए क्या करते हो? जान पड़ता है कि तुम अहंकार से भरे हुए हो। क्या कारण है कि तुम सब बैठे हो। देवताओं ने कहा कि क्या तुमने नहीं सुना कि यहाँ देवासुर संग्राम हुआ था। हमने दैत्यों को नष्ट कर डाला। जो बचे, वे भाग गये। यक्षरूपी शिवजी बोले कि हे विष्णु आदि देवताओ! ऐसा न कहो। तुम्हारे ऊपर भी और कोई है। तुम इतनी अहंकार की बात मत कहो। कोई बड़ा पुरुष तुम पर है। वह सबसे अति बलिष्ठ और तेजस्वी है। जो वह चाहता है, वही करता है। जो तुमको इस बात का विश्वास न हो तो तुम सब मिलकर इस एक तृण को काट तो डालो। इतना कह शिवजी ने एक तृण देवताओं के ऊपर फेंक दिया। सब देवताओं ने अपने-अपने शस्त्र उस पर चलाये, पर वह तनिक हिला भी नहीं, जैसे पड़ा था, पड़ा रह गया। तब इन्द्र ने अति कोप कर अपना वज्र उस तृण पर चलाया। पर वह निष्फल हुआ। उस समय विष्णु ने क्रोधित होकर अपना चक्र मारा। पर वह भी निरर्थक हुआ। तब सब देवता लज्जित हुए और अति विकल हुए। इतने में आकाशवाणी हुई कि हे देवताओ! तुम कुछ अपने मन में संशय मत करो। तुम सबने अहंकारी होकर अपने स्वामी को नहीं पहचाना, जो तुम सबसे श्रेष्ठ हैं। उसको तुमने मार गर्व के भुला दिया। वह तुम्हारे मद को देखकर यक्षरूप से प्रकटे और उन्होंने तुम्हारा अहंकार दूर कर दिया। अब भी तुम गर्व दूर कर अपने स्वामी के चरण पकड़ो। शिव की शरण में जाकर फिर कभी ऐसा अहंकार न करना। यह, जो तुम्हारे सामने खड़े हैं, यक्षरूपी सदाशिव हैं। यह सुनकर सब देवता यक्षेश्वर महादेव के चरणों पर गिर पड़े और बहुत प्रकार से प्रणाम कर

अहंकार से रहित हुए। सबने निश्चय किया कि संसार में जो बल शिवजी के है, वह और किसी के नहीं है। फिर देवता आदि सब शिवजी की स्तुति करने लगे। बोले कि हम सब आपकी शरण हैं। हमारा अहंकार दूर हो गया। अब आपसे प्रार्थना करते हैं कि फिर हमको अहंकार न उपजे। शिव ने प्रसन्न होकर ॐकार का उच्चारण किया। फिर सब अपने घरों को चले गये। सैंतालीसवाँ यक्षेश्वर अवतार पूर्ण हुआ। इतना कह ब्रह्माजी बोले—हे नारद! यह यक्षेश्वर शिवजी का चरित्र अति पवित्र है। इसके पढ़ने-सुनने से बड़ा सुख प्राप्त होता है। अब हम शिवजी के दस महाकाल अवतारों का वर्णन करते हैं। शक्तिसहित शिव के दस अवतारों का वर्णन—शिवजी का पहला रूप महाकाल है, जिनके स्मरण से अति सुख प्राप्त होता है। महाकाली नाम की इस अवतार की शक्ति हैं, जिनकी सखियाँ आनन्द में रहती हैं। दूसरा तार नाम अवतार है, जिनकी शक्ति का नाम तारा है। तीसरा बालि, जिनकी शक्ति का नाम भुवनेश्वरी है। चौथा विघ्नेश, जो सोलह क्लेश दूर करते हैं। उनकी शक्ति का नाम विद्या है। पाँचवाँ भैरव, जिनकी शक्ति को भैरवी कहते हैं। छठा छिन्नमस्तक, जिनकी शक्ति का नाम छिन्नमस्ता है, जो अति तेजोमयी हैं। सातवाँ धूमावत, जिनकी शक्ति को धूमावती कहते हैं। आठवाँ बगलामुख, जिनकी शक्ति का नाम बगलामुखी है। नवाँ मातङ्ग, जिनकी शक्ति को मातङ्गी कहते हैं। दसवाँ कमल, जिनकी शक्ति को कमला कहते हैं। इन दसों अवतारों का पूजन और दसों शक्तियों की सेवा से सब मनोरथ पूर्ण होते हैं। ये अपने भक्त को कृतार्थ कर देते हैं। ५७ अवतार पूर्ण हुए।

चौबीसवाँ अध्याय
ग्यारह रुद्रावतारों का वर्णन

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! अब हम ग्यारहों रुद्रों का, जो शिवजी के अवतार हैं, वर्णन करते हैं। वे अति बलवान् और सुख के देनेवाले हैं। दैत्यों को नष्ट करते हैं। उनकी उत्पत्ति कि कैसे ये उपजे, हम कहते हैं। इनके चरित्र सुनने से वीरता और सुख बढ़ता है। पूर्वकाल में दैत्यों ने महाबलिष्ठ हो देवताओं को बड़ा दुःख दिया। यद्यपि देवता दैत्यों से बहुत लड़े, पर उनके बल से परास्त हो गये। दैत्यों का सामना न कर पाने के कारण देवता इधर-उधर भाग गये। सब देवता मिलकर कश्यप के पास पहुँचे। अपने पिता कश्यप के सामने हाथ जोड़कर अपना दुःख कहा। कश्यप ने शिव का स्मरण कर सब देवताओं से कहा कि शिव की इच्छा शुभ है। वह धन्य हैं। शिव शीघ्र तुम्हारा दुःख दूर करेंगे। कुछ दिन तक ठहर जाओ, वह तुम पर अवश्य अनुग्रह करेंगे। तुम अपने-अपने घरों में जाकर शिव का ध्यान किया करो। हम भी तुम्हारे लिए स्त्री सहित शिव का तप करेंगे। कश्यप ने देवताओं को बिदा करने के अनन्तर शिव का बड़ा कठिन तप किया। कश्यप का ऐसा कठिन तप देखकर शिव प्रसन्न हुए और कश्यप के समीप प्रकट होकर खड़े हो गये। कश्यप स्तुति करने लगे और बारम्बार अपनी स्त्री सहित शिव के चरणों में प्रणाम करके कहा—यद्यपि जो वर मैं माँगना चाहता हूँ वह अनुचित है; पर मैं ढिठाई से माँगता हूँ। आप मेरे घर अवतार लें और मेरे पुत्र हों। देवताओं के साथ मित्रता करके दैत्यों का विनाश करें। देवताओं को उनका राज्य दिला दें और सदा देवताओं की सहायता करें। आप सब देवताओं के स्वामी हैं। यह कह कश्यप चुप हो गये। शिव यह कहकर कि "अच्छा यही होगा," अन्त-

र्धान हुए। उन्होंने कश्यप के हृदय में वास किया। कश्यप ने शिवजी का अनुग्रह जान अपना तेज अपनी स्त्री सुरभी में स्थित कर दिया जिससे सुरभी महा प्रकाशित हुई। सब देवताओं ने कश्यप के स्थान में आकर, जो गर्भ में स्थित थे, शिवजी की स्तुति की और फिर अपने २ स्थानों को लौट गये। शिव समय पाकर ग्यारह रूप धारण करके सुरभी से उपजे। सुरभी को कुछ प्रसव की पीड़ा न हुई। उस समय सब देवताओं को आनन्द प्राप्त हुआ। पृथ्वी शोभायमान हो गई। देवता और मुनीश्वरों के सब दुःख दूर हो गये। विष्णु और मैंने देवताओं समेत आकर एकादश रुद्र के दर्शन किये और प्रीतिपूर्वक स्तुति की। हमने कहा कि आप दैत्यों को जीत हम सबको हर्ष दें। फिर हमने कश्यप से उनका जातकर्म कराया। उनके ये नाम रक्खे—कपाली, पिंगल, भीम, नीललोहित, शस्त्रभृत्, अभय, अजपाद, अहिर्बुध्न, शम्भु, भव और विरूपाक्ष। तब बड़ा उत्सव हुआ। ये ग्यारहों रुद्र उपजते ही बड़े बलिष्ठ भाषित हुए। हे नारद! यह कुछ आश्चर्य नहीं; क्योंकि वे तो शिव के रूप थे। सो माता-पिता की आज्ञा पाकर देवताओं के साथ चले। देवताओं की सेना इकट्ठी करने के उपरान्त उन्होंने दैत्यों पर आक्रमण किया। बड़ा युद्ध हुआ। दैत्यों के सामने देवता न ठहर सके। भागकर ग्यारहों रुद्रों के सामने आये। रुद्रों ने कहा कि तुम कुछ भय मत करो। हम एक पल में दैत्यों को नाश कर देंगे। हमारे प्रताप के सामने वे नहीं ठहर सकेंगे। यह कह रुद्रों ने दैत्यों का सामना किया। दैत्य रुद्र के तेज के आगे ठहर न सके। बड़े-बड़े वीर दैत्य बहुत युद्ध करने के उपरान्त युद्धस्थल से भाग चले और अपने लोक में जाकर छिप गये। विजय पाने से देवताओं को बड़ा आनन्द हुआ। वे अपने पुराने लोक को रुद्रों की कृपा से

पाकर महा प्रसन्न हुए। ग्यारहों रुद्र सदा देवताओं के साथ रहकर इसी भाँति की सहायता करते रहे। यह हमने रुद्रचरित्र वर्णन किया, जिसके सुनने से बड़ा पापी मनुष्य भी शुद्ध हो जाता है।

पच्चीसवाँ अध्याय

दुर्वासा अवतार का वर्णन

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! जिस प्रकार शिवजी ने अत्रि मुनि के पुत्र होकर अवतार लिया, वह कथा हम तुमको सुनाते हैं। हमारे पुत्र अत्रि हमारी आज्ञा से अपनी स्त्री सहित ऋष्यमूक गिरि पर जाकर विन्ध्या के तट पर बैठे। उन्होंने सौ वर्ष तक इस इच्छा से कि हमको शिव अपने समान एक पुत्र कृपा कर देंगे। ऐसा कठिन तप किया कि केवल वायु भक्षणकर एक चरण से खड़े रहे। ऐसे कठिन तप से एक जलती हुई अग्नि उपजकर संसार भर को जलाने लगी। तीनों देवता मुनीश्वरों सहित अत्रि के पास आये। अत्रि ने सबको अपने सामने अपने मुख्य वाहनों समेत मुसकराते खड़े हुए देखा। तब दण्डवत् कर विनय की कि तुम तीनों देवता रजोगुणी, सतोगुणी, तमोगुणी, उत्पन्न-कर्ता, पालनकर्ता, संहर्ता .एक साथ मेरे पास आये हो। अब मैं किसकी सेवा करूँ? मैंने तो एक ही देवता की, अर्थात् वह जो सबका स्वामी है उसकी पूजा की थी। फिर क्या तुम तीनों देवता एक ही साथ आये? इससे मुझे अतिचिन्ता उपजी है। इसका कारण कहिये। फिर वर दीजिये। यह सुन तीनों देवता बोले कि तुमने अपने मन में जिस तरह संकल्प किया था, वही तुम्हारे सामने आया। तुमने ईश्वर का तप किया और प्रकट है कि हम तीनों एक ही रूप हैं। तीनों में कुछ किसी प्रकार का भेद नहीं। हम तीनों इससे प्रकट हैं कि तुम्हारे तीन पुत्र हम तीनों के अंश से

उपजेंगे, जो तुम्हारे यश को बढ़ाकर तीनों लोक में प्रसिद्ध होंगे। यह वर अत्रि को देकर तीनों देवता अपने-अपने स्थान को चले गये। अत्रि भी इस आशा पर कि हमारे तीन पुत्र होंगे, प्रसन्नचित्त हो अपने घर सिधारे। समय पाकर तीनों देवताओं के अंश से अत्रि के तीन पुत्र उपजे, अर्थात् ब्रह्मा के अंश से चंद्रमा, विष्णु के अंश से दत्त और शिव के अंश से दुर्वासा। यहाँ पर हम दुर्वासा का चरित्र वर्णन करते हैं। शिव ने दुर्वासा का शरीर धारणकर बहुत चरित्र किये। उन्होंने ब्रह्मतेज धारणकर सबका आदर किया और बहुतों के धर्म की परीक्षा ली। असंख्य मनुष्यों को धर्म की शिक्षा दी। उनका पहला चरित्र यह है कि सूर्यवंशी राजा अम्बरीष विष्णु का बड़ा भक्त और दृढ़व्रत था। वह विष्णु की आज्ञा भलीभाँति मानकर सतोगुण धारण किये राज्य करता था। सदा एकादशी व्रत रखकर द्वादशी में पारण किया करता था। एक दिन उसने एकादशी का व्रत करके चाहा कि द्वादशी में पारण करे। उसी समय दुर्वासा पहुँचे। उनको केवल परीक्षा लेने की इच्छा थी। अम्बरीष ने उनका अति आदर-सत्कार कर भोजन करने का निमन्त्रण दिया। सो दुर्वासा मानकर शिष्यों सहित नदी किनारे स्नान के निमित्त गये। वहाँ इतना विलम्ब किया कि अम्बरीष की परीक्षा लें। राजा अम्बरीष दुर्वासा की बाट देखते रहे। इतने में द्वादशी समाप्त होने लगी। उस समय राजा अम्बरीष ने पारण में विघ्न देख महाखेदयुक्त हो ब्राह्मणों से पूछा तो ब्राह्मणों ने वेद के अनुसार उनको आज्ञा दी कि आप पारण करें। उन्होंने व्रत का पारण कर लिया। दुर्वासा राजा अम्बरीष के व्रतपारण करने का हाल जानकर अति क्रोधित हुए और राजा के पास आकर चाहा कि राजा की भक्ति की परीक्षा लें। फिर सुदर्शन चक्र के भय से भागकर वर्ष भर तीनों लोकों

में भागते फिरे। अन्त को राजा की शरण में आकर चक्र को अपने पीछे लगाये हुए पहुँचे। जो राजा वास्तव में ब्रह्मभक्त होगा तो मन में लज्जित होकर मेरा दुःख दूर करेगा। कदाचित् वह विष्णु की पूरी भक्ति नहीं रखता तो अपना व्रत छोड़ देगा। यह विचार महाकोप से राजा को शाप देने लगे। विष्णु के चक्र ने दुर्वासा के मन की इच्छा जान ली और अपना तेज बढ़ाकर दुर्वासा की ओर चला। दुर्वासा भागने लगे। सब देशों और सब देवताओं के लोकों में फिरकर लौटकर राजा के पास आये और कहा कि हे राजन्! हम तुम्हारी शरण में आये हैं। जो मूर्ख हैं, वे इस चरित्र को क्या जानें। वे इस चरित्र को और ही तरह समझते हैं। यह नहीं जानते कि दुर्वासा तो आप शिव का अवतार हैं। उनको कहाँ दुःख कष्ट हो सकता है। निदान राजा ने दुर्वासा को देखकर लज्जापूर्वक चक्र से कहा कि तुम दूर हो जाओ। अब ब्राह्मण को छोड़ दो। यह सुनकर चक्र हट गया और राजा ने दुर्वासा को भोजन कराकर आपभी भोजन किया। दुर्वासाने अतितृप्त और प्रसन्न होकर राजा को आशीर्वाद दिया और कहा कि तुम कुछ चिन्ता न करना। हमने तुम्हारी परीक्षा के निमित्त यह चरित्र किया है। तुमको धन्य है। तुम शुभ हो, जो हमारे ऐसे क्रोध को तुमने सहा। तुमको विष्णु की बड़ी भक्ति प्राप्त होगी। यह कह दुर्वासा अति प्रसन्न हो चले गये। जब विष्णुजी दशरथ के पुत्र रामचन्द्र हुए, तब भी दुर्वासा ने ऐसा ही चरित्र किया। इसी प्रकार श्रीकृष्णजी की परीक्षा लेकर उनको रानी सहित अपने रथ का खींचनेवाला बनाया। श्रीकृष्णजी की ऐसी ब्रह्मभक्ति देख उनको वज्राङ्ग कर दिया। द्रौपदी की परीक्षा लेकर पाण्डवों को भरपूर किया। हंस और डिम्भक दो भाई जो बड़े उपद्रवी थे, उनके पास जाकर अपना अपमान कराया और फिर उनको शाप

देकर नष्ट कर डाला। शिव ने दुर्वासा का अवतार लेकर इस प्रकार के बहुत चरित्र किये हैं और बहुत प्रकार से संन्यास मत फैलाया और बहुतों को ज्ञान देकर मुक्त किया।

छब्बीसवाँ अध्याय

इतना सुन नारदजी बोले कि हे पिता! यह कथा मैंने संक्षेप में सुनी। पर मेरी इच्छा है कि जिस तरह दुर्वासा ने रामचन्द्र और कृष्ण आदि की परीक्षा लेकर उनको वर दिया, वह कथा आप विस्तार से सुनाइये। ब्रह्माजी बोले कि जब रामचन्द्र ने देवताओं के काम पूरे करने के लिए दशरथ के घर अवतार लिया और देवताओं के लिए असंख्य चरित्र कर बहुत समय तक राज्य किया, तब मैंने मृत्यु के हाथ उनके समीप संदेश भेजा कि आप अपने लोक में आकर हम वियोगियों को आनन्द दें। सो काल एक मुनि के स्वरूप से रामचन्द्र के पास आकर बैठा रहा और समय पाकर विनय की कि महाराज मुझे आपसे कुछ गुप्त वृत्तान्त कहना है, जिसको दूसरा मनुष्य न जाने। हमारी तुम्हारी वार्ता में जो कोई आ जाय वह चाहे कोई भी हो, आपको उसका परित्याग करना होगा। रामचन्द्र ने मान लिया और लक्ष्मण से कहा कि तुम द्वार पर खड़े रहो। कोई यहाँ न आने पावे। फिर काल से कहा कि तुम कौन हो, कहाँ से आये हो, क्या आज्ञा देते हो? काल ने कहा कि ब्रह्मा ने हमारे हाथ आपको संदेश दिया है कि अपने लोक में आओ। यह वार्त्ता हो ही रही थी कि दुर्वासा परीक्षा के निमित्त आये और लक्ष्मण से कहा कि रामचन्द्र को तुरन्त ही हमारे आने का समाचार दो। तब लक्ष्मणजी अति चिन्तित हुए। जो रामचन्द्र के पास भीतर जाते हैं तो वह उनका त्याग कर देंगे, और जो नहीं जाते तो दुर्वासा का कोप सहना पड़ेगा। यह तीखे

ब्राह्मण अपनी क्रोधाग्नि से उन्हें जला देंगे। ऐसी दशा में उनको यह बात सूझी कि दुर्वासा को कुपित करना अच्छा नहीं, क्योंकि यह बात वेद के विरुद्ध है कि ब्राह्मण की आज्ञा न मानी जाय। यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी का वियोग मेरे लिए दुःखदायक है; पर दुर्वासा की आज्ञा मानना बहुत उत्तम है। यह मन में सोचकर लक्ष्मण ने रामचन्द्र के समीप जाकर दुर्वासा का सन्देशा कहा। काल लक्ष्मण को देखते ही अन्तर्धान हो गया। रामचन्द्र ने अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण कर लक्ष्मण से कहा कि हे प्राणप्यारे लक्ष्मण! इस समय हमारे साथ बड़ा छल हो गया, अर्थात् काल मुनीश्वर के स्वरूप से आकर ऐसी युक्ति करके मुझको दुखी कर गया। वह वचन जो उसने मुझसे लिया था, तुम जानते हो, उसे तुम सत्य करो। यह कह रामचन्द्र ऊँचे स्वर से रोने लगे। लक्ष्मण भी मूर्च्छित हो गये। तब दुर्वासा ने भीतर जाकर सबको समझाया। ऐसी लीला कर दुर्वासा बिदा हो अपने स्थान को चले गये। लक्ष्मण ने भी रामचन्द्र से बिदा हो सरयू के तट पर योगमार्ग से अपना शरीर छोड़ दिया और अपना पूर्वरूप धारण किया। कुछ दिन पीछे रामचन्द्र भी अपनी सब अयोध्या नगरी समेत वैकुण्ठ में विराजमान हुए। अब हम कृष्णचन्द्रजी का चरित्र वर्णन करते हैं, जिस तरह दुर्वासा ने उनकी परीक्षा ली। श्रीकृष्णजी प्रसिद्ध बड़े ब्रह्मभक्त हुए। वह देवताओं के सब कार्य पूर्ण कर अपने नगर में स्थित हो ब्रह्मभक्तिपूर्वक रहने लगे। ऐसे ब्रह्मभक्त श्रीकृष्णजी की परीक्षा के निमित्त दुर्वासा आये। कृष्ण ने अति नम्रता, आदर, मान और शील से दुर्वासा को लिया। उत्तमोत्तम भोजन कराये। तब दुर्वासा ने कहा कि हम रथ पर चढ़ा चाहते हैं। तुम और तुम्हारी रानी रुक्मिणी उसको खींचकर चलाओ। ऐसा करने

से जो तुम्हारी इच्छा होगी, वही मैं तुमको वर दूँगा। कृष्ण ने अति प्रसन्नता से इस बात को स्वीकार कर दुर्वासा की इच्छा पूर्ण की। दुर्वासा ने प्रसन्न होकर कहा कि हमारी आज्ञा से पायस लो और नग्न होकर सारे शरीर में उसे लगा लो, तुम्हारा कोई अङ्ग खुला न रहे। कृष्ण ने यह भी किया। तब दुर्वासा ने प्रसन्न होकर यह वर दिया कि जहाँ-जहाँ तुम्हारे शरीर में पायस लगी है, वहाँ-वहाँ तुम्हारे कोई शस्त्र बेध न करेगा। तुमको किसी कार्य के करने का पाप भी न होगा। कृष्ण ने यह वर पाकर दुर्वासा के आने को शुभ समझा और बड़ी स्तुति की। दुर्वासा तो अन्तर्धान हुए और कृष्ण अति प्रसन्न हो पापों से रहित हुए। हे नारद! अब द्रौपदी का चरित्र सुनो। एक दिन द्रौपदी अपनी सखियों समेत गङ्गास्नान को गईं और स्नान करने लगीं। उनके पूर्व ओर कुछ दूरी पर दुर्वासा भी स्नान करते थे। जब सब अङ्ग मल-कर धोने लगे तो दुर्वासा की कोपीन नदी में छूट गई। लज्जा से दुर्वासा जल से बाहर नहीं निकल सकते थे। यह वृत्तान्त द्रौपदी ने जानकर अपना अञ्चल फाड़कर दुर्वासा की ओर बहा दिया। उसको पहन दुर्वासा पानी से बाहर आये और प्रसन्न होकर द्रौपदी से कहा कि हमारी लज्जा जो तुमने रक्खी है, उसका फल तुमको मिले। इस बात के सब देवता साक्षी हैं कि तुम्हारी लज्जा सदा रहेगी। तुम पर जो कष्ट पड़े, वह नष्ट हो जाय। यह बात कहकर दुर्वासा अन्तर्धान हो गये। पर किसी ने न जाना कि यह कौन थे। दुर्वासा का एक और चरित्र सुनो। एक दिन दुर्वासा सरोवर में स्नान करने को गये और अपना स्वरूप ऐसा मैला-कुचैला बनाया, जैसा कभी किसी ने न देखा था। उस समय संयोग से गन्धर्वों की तीन पुत्रियाँ भी स्नान के निमित्त

गई थीं। उनके ये नाम थे। पहली का नाम रत्नाढ्या, दूसरी का रत्नचूड़ा और तीसरी घृतपर्णी के नाम से प्रसिद्ध थी। उन्होंने दुर्वासा को देखकर बहुत से दुर्वचन कहे और कहा कि हमारे ऊपर ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर सुन्दर उत्तम पति हमारे लिए भेजा है। यह सुनकर दुर्वासा ने उनको शाप दिया और सबको अपना ब्रह्मतेज दिखाकर कहा कि तुम चाण्डाली होकर बड़ा कष्ट पाओगी। पर जब तीनों शरणागत हुईं तो कहा कि तुम मलमास व्रत करके फिर पहले के समान हो जाओगी। यह कहकर दुर्वासा अन्तर्धान हो गये। इसी प्रकार के और बहुत से चरित्र दुर्वासा ने किये हैं, जिनके स्मरण करने से सब कष्ट दूर हो जाते हैं। उनहत्तरवाँ अवतार पूर्ण हुआ।

सत्ताईसवाँ अध्याय

ग्रहपति के अवतार का वर्णन

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद ! अब हम ग्रहपति अवतार के चरित्र सुनाते हैं। नर्मदा नदी के तट पर नर्मपुरनगर में विश्वामित्र मुनि ब्रह्मचारी शिवजी के बड़े भक्त थे, जो सदा यज्ञ करते रहते थे। वे शार्दूल गोत्र में उपजे, अपने क्रियाकर्म में अतिदृढ़, शिवजी की भक्ति में बहुत स्थिर और सर्वविद्यानिधान और बड़े बुद्धिमान् थे। उन्होंने गृहस्थाश्रम को सबसे श्रेष्ठ जान चक्षुष्मती के साथ अपना विवाह किया। वह गृहस्थाश्रम में स्थित रहकर अपनी स्त्रीसहित षट्कर्म करते थे। स्त्रीसहित नित्यप्रति शिव पूजन करते और प्रतिदिन पाँचों यज्ञ कर बलि-वैश्वदेव में प्रवृत्त रहा करते थे। पर समय बीत गया, कोई उनके पुत्र न उपजा। तब एक दिन स्त्री ने हाथ जोड़ विनय की कि मैंने आपके साथ आठों प्रकार के भोग कर सदा निश्चिन्त विहार किया है। पर मुझे एक इच्छा है, जिसकी अभिलाषा

गृहस्थ करते हैं। विश्वामित्र ने कहा कि हम शिवजी के अनुग्रह से सब कुछ दे सकते हैं। जो तुम्हारी इच्छा हो, वह वर हमसे ले लो। स्त्री ने कहा—जो आप प्रसन्न हैं तो मुझे शिवजी के समान एक पुत्र दीजिये। विश्वामित्र ने शिवजी का ध्यान करके कहा कि तेरी इच्छा पूरी होगी। शिवजी में सब तरह की शक्ति है। यह बात कुछ कठिन नहीं। यह कह विश्वामित्र तप के निमित्त काशी में आये, मणिकर्णिका में स्नान कर विश्वनाथ की पूजा की और सबको यथाविधि पूजा। फिर अपने मन में विचार किया कि काशी में कौन ऐसा शिवलिङ्ग है, जो शीघ्र ही सिद्धि देता है। सो वीरेश्वर को शीघ्र ही सन्तानदाता जानकर चन्द्रकूप के जल से स्नान किया और दृढ़तापूर्वक स्नान करने लगे। प्रतिदिवस वीरेश्वर के ध्यान में प्रवृत्त रहे। द्वादश मास पर्यन्त इस प्रकार व्रत किया कि एक मास केवल एक वस्तु खाकर दूसरे मास में केवल दूध पिया। इसी प्रकार एक मास में केवल एक तरकारी खाकर; एक मास में तिल चबाकर, एक मास में पानी पीकर, एक मास में केवल पञ्चगव्य में कालक्षेप कर, एक मास में चान्द्रायण किया। फिर एक महीने में केवल कुश की जड़ें खाईं। इसी प्रकार द्वादश मास बिता दिये। वह त्रिकाल वीरेश्वर महादेव की पूजा करते थे। जब तेरहवें महीने स्नान कर प्रातःकाल वीरेश्वर के निकट गये तो वीरेश्वर के बीच में से एक आठ वर्ष का अति सुन्दर बालक प्रकट हुआ। उसका महासुन्दर गौर शरीर, सफ़ेद भस्म रमाये, सुन्दर केश, जो जटा के समान लटके थे, धारण किये निकला। निदान सब अङ्ग सहित अति उत्तम वेद पढ़ते हुए और विश्वामित्र की ओर देखते खड़ा हो गया। विश्वामित्र ने दोनों हाथ जोड़ स्तुति की। तब बालक ने कहा कि वर माँगो। विश्वामित्र बोले—हे शिवजी! तुमसे कौन

बात छिपी हुई है ? तुम तो सब जानते हो। मैं केवल इतनी विनती करता हूँ कि मेरी जो इच्छा है, उसको पूरा करो। शिवजी सुनकर बोले—अच्छा, तुम्हारी इच्छा शीघ्र ही पूर्ण होगी और तुम फिर नये सिर से युवावस्था को प्राप्त होगे। यह कह वह बालक अन्तर्धान हो गया। विश्वामित्र ने प्रसन्नतापूर्वक घर में लौट आकर अपनी स्त्री से सब वृत्तान्त कह सुनाया। अर्थात् उन्होंने शिवजी से जो वर पाया था, वह प्रकट किया। यह सुनकर संसारी मनुष्य विश्वामित्र के स्थान पर गये और विश्वामित्र की स्तुति करने लगे। सबने चक्षुष्मती के भाग्य की बड़ाई की और अपने-अपने स्थान को लौट गये। विश्वामित्र अपनी स्त्री सहित शिव का तप करते रहे।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि शिव के वरदान से अच्छे समय में चक्षुष्मती के गर्भ रहा। विश्वामित्र ने गर्भ की रक्षा, आरोग्य और पालन के निमित्त पाँचवें, आठवें मास में बहुत दान किया। दसवें मास में शुभलग्न में पुत्र उपजा। दोनों ने मिलकर बड़ा उत्सव किया। यहाँ तक कि तीनों देवता भी बहुत प्रसन्न हुए। आकाश से फूलों की वर्षा हुई। मन्दिर भर में सुगन्ध फैली। देवताओं ने दुन्दुभी बजाई। चारों ओर मोर शोर करने लगे। गन्धर्व और देवपत्नियाँ नाना प्रकार से नृत्य करने लगीं। सब ओर धन्य-धन्य का शब्द पूरित हुआ। मैं देवताओं समेत वहाँ गया और विष्णु भी लक्ष्मी सहित पधारे। गौरी को साथ ले अपने गणों समेत शिवजी सुशोभित हुए। इन्द्र, सनकादि, आठों वसु, देवता और नाग आदि उस उत्सव में पहुँचे। सब रुद्र गङ्गा सहित रत्न-भेंट लेकर आये। सबने विश्वामित्र और चक्षुष्मती को प्रणाम किया और उस बालक को शिव का अवतार वर्णन

कर सबने स्तुति की। उस समय शिवजी की आज्ञा पाकर मैंने उस बालक के जातकर्म किये। मुनीश्वर वेद पढ़ने लगे। मैंने विचारकर उसका ग्रहपति नाम रक्खा। इसके पीछे सब अपने-अपने स्थानों को सिधारे। विश्वामित्र ने चौथे मास निष्क्रमण की रीति की और छठे महीने अन्नप्राशन किया। बारहवें मास चूड़ाकर्म हुआ। फिर कान छेदे गये। पाँचवें वर्ष दीक्षा हुई। फिर वह बालक वेद पढ़ने लगा। फिर गुरु से मन्त्र दिलवाकर सब विद्या सिखाईं। हे नारद! तुम नवें वर्ष वहाँ गये और विश्वामित्र ने तुम्हारी बड़ी सेवा की। फिर तुम बालक का हाथ देख कहने लगे कि हे विश्वामित्र! तुम्हारे पुत्र के सब अङ्ग अति शुभ हैं। पर एक कुलक्षण है, अर्थात् बारहवें वर्ष अरिष्ट है। उसकी रक्षा करना तुमको उचित है। तम तो यह कहकर चले गये और ग्रहपति के माता-पिता अति दुखी हो रोने लगे। माता-पिता की यह दशा देखकर ग्रहपति ने कहा कि तुम इतना क्यों रोते हो? तुम्हारे प्रभाव से मुझे मारने की शक्ति काल भी नहीं रखता। मेरे रक्षक सदाशिव हैं, जिनको वेद काल का भी काल कहते हैं, जिन्होंने कालकूट को खा लिया। मैं मृत्युंजय की सेवा करके मृत्यु को जीत लूँगा। इस बात को सत्य जानो। यह अमृत समान वचन सुन माता-पिता को कुछ आनन्द हुआ। कहने लगे कि फिर इस बात को कहो, फिर कहो, जिससे मृत्यु निकट नहीं आती। हे पुत्र! तुम जाकर शिवजी की सेवा करो और हमारी सहायता करो। शिव की सेवा करके बहुत मनुष्यों ने मृत्यु को जीत लिया है। शिव भक्तों का भय हरनेवाले हैं। शिव के समान अपने भक्तों को आनन्द देनेवाला और कोई नहीं। शिव और शक्ति, दोनों भक्त की बड़ी रक्षा करनेवाले हैं। इसलिए तुम जाकर शिव की शरण पकड़ो। माता-पिता की

यह आज्ञा पाकर ग्रहपति ने काशी में जाकर मणिकर्णिका में स्नान किया और विश्वनाथ की पूजाकर अपने को धन्य समझा। फिर शिव का लिङ्ग स्थापित कर तप में प्रवृत्त हुआ। वह गङ्गा से आठ सौ घड़े पानी लाकर शिव को स्नान कराता और नित्य प्रति एक सौ आठ श्वेत कमलों की माला शिव को पहिनाता एक पक्ष केवल वृक्षों के मूल खाकर बिताया। छः मास पर्यन्त यही नियम निबाहा। दूसरा नियम न बदला। फिर पानी, फिर केवल एक बूँद पानी पीकर दो वर्ष इस तरह से काटे। उसके जन्म के बारहवें वर्ष शिव ने बालक की परीक्षा ली, अर्थात् वज्र बाँध ग्रहपति के समीप आकर कहा कि हम इन्द्र हैं। तुमसे बहुत प्रसन्न हुए। वर माँगो। ग्रहपति ने मधुर वाणी से कहा कि मुझको आपसे कुछ माँगने की इच्छा नहीं है। मैं शिव को अपना वर देनेवाला जानता हूँ। इन्द्र ने हँसकर कहा कि शिव कुछ हमसे भिन्न नहीं हैं। हम सब देवताओं के स्वामी हैं। ग्रहपति ने कहा कि तुम यहाँ से दूर हो जाओ। मुझको वर देनेवाले केवल शिव हैं। तुम किस योग्य हो। मुझको तुम क्या वर दे सकते हो? मुझको इच्छा नहीं है कि और किसी देवता से वर माँगूँ। मुझको सब प्रकार से आनन्द देनेवाले शिव हैं। यह सुन इन्द्र ने वज्र उठाकर ग्रहपति को बहुत डराया। ग्रहपति वज्र की ज्वाला देख मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा और तुरन्त शिव का स्मरण किया। शिव तुरन्त प्रकट हुए और उसको अपने हाथ से उठाकर बिठाया। कहा उठो ग्रहपति! अब कुछ दुःख न होगा। तुम्हारा कल्याण होगा। यह सुनकर ग्रहपति ने उठकर देखा कि शिव खड़े हैं, जिनके वाम भाग में श्री-भवानी सकल सृष्टि की माता विराजमान हैं। शिव महागौर स्वरूप, शरीर भर में भस्म लगाये हैं। ऐसे शिव के परिपूर्ण लक्षण देख वह प्रीतिसागर में मग्न हुआ। यह दशा देख शिव हँसकर बोले

कि हे ग्रहपति! तुम इन्द्र से बहुत डरे। तुम मत डरो। हमने आप इन्द्र होकर यह चरित्र किया है। हमारे भक्त को काल भी दुःख नहीं दे सकता। और कौन है, जो ऐसी कठोरता करे। हम तुमको वर देते हैं कि तुम देवताओं में पवित्र होकर तीनों लोक में भ्रमण किया करो और सबकी मानसीगति को जानकर तीनों रूप से संसार के कार्य करो। तुम धर्मराज और इन्द्र के मध्य अपना राज्य स्थापित करो। तुमने जो हमारे लिङ्ग की स्थापना की है, उसके सेवक को कदापि दुःख न होगा। यह कह शिव ने ग्रहपति के माता-पिता को बुलाकर उन सबको दिक्पति कर दिया। फिर सबके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये और उसी लिङ्ग में, जो ग्रहपति ने स्थापित किया था, समा गये। ग्रहपति की पुरी का नाम चक्षुष्मती हुआ, जो तेज से पूर्ण है। वहाँ के सब निवासी नित्य बलिवैश्वदेव करते हैं। ग्रहपति दूसरे दिक्पाल हैं जो महातेजयुक्त और मस्तक में चन्द्रमा धारण किये हैं। उनके गण भी बड़े धीर वीर हैं। ग्रहपति अपने गणों सहित सदा अपनी पुरी में रहा करते हैं और माता-पिता और कुल परिवार-सहित उसी देश में भ्रमण करते हैं। वहाँ सबको अप्रमेय सुख प्राप्त है। किसी को कुछ भी दुःख नहीं होता। जो जीव अग्नि में प्रवेश करते हैं और जो अग्नि की पूजा आदि करते हैं, वे उसी देश में जाकर विहार करते हैं। जो मनुष्य अपने या दूसरे के लिए अग्नि की पूजा करते हैं, जो काष्ठ आदि देकर किसी का शीत छुड़ा देते हैं, वे सब उसी लोक में जाकर बड़ा आनन्द पाते हैं। ग्रहपति सबकी सेवा के योग्य हैं। यह शिव का अवतार बड़ा तेज और शीघ्र वर देनेवाला है। अग्नि ही से सब पाक सिद्ध होते हैं, जिनको देवता भोजन करते हैं। इससे उचित है कि अग्नि की बड़ी पूजा की जाय। वह अग्नि

शिव का तेज है, जो विश्वामित्र का पुत्र हुआ। इस अँधेरे संसार में अग्नि के सिवा और कोई वस्तु चमकनेवाली और प्रकाश की नहीं है। इसके विना तीनों लोकों का निर्वाह नहीं। तीनों लोकों का आनन्द इसी पर निर्भर है। जो इस ग्रहपति के चरित्र को पढ़े-सुनेगा, वह दोनों लोक में बड़ा आनन्द पावेगा। सत्तरवाँ अवतार पूर्ण हुआ।

उन्तीसवाँ अध्याय

वृषेश्वर अवतार का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा कि हे नारद ! अब हम वृषेश्वर शिवजी के अवतार का वर्णन करते हैं। एक समय देवताओं और दैत्यों ने मिलकर समुद्र-मथन किया और विष्णु सहित बड़ी युक्ति कर सब रत्न समुद्र से निकाल लिये। लक्ष्मी, कौस्तुभमणि, शार्ङ्ग-नामी धनुष विष्णु ने लिये। सूर्य ने उच्चैःश्रवा घोड़ा पाया। मद्य दैत्यों ने लिया। इन्द्र ने कल्पवृक्ष और ऐरावत हाथी लिया। कामधेनु गौ मुनीश्वरों को दी। शिव ने कालकूट विष और चन्द्रमा लिया। फिर धन्वन्तरि हाथ में अमृत लिये हुए निकले। सो अमृत दैत्यों ने छीन लिया। देवताओं ने विष्णु से पुकार की। विष्णु ने स्त्री होकर माया की और देवताओं को अमृत पिला दिया। धन्वन्तरि वैद्य आरोग्य की रक्षा करने और वैद्यक विद्या में बड़े प्रवीण हुए। जो स्त्री रत्न थी उसको दैत्यों ने उसकी लड़कियों समेत ले जाकर पाताल में ठहराया और फिर निकलकर देवताओं से भली भाँति लड़े। फिर उनसे परास्त हो उनके भय से पाताल में जाकर रहने लगे। पर विष्णु पीछा करते हुए उनके लोक में गये और वहाँ की स्त्रियों को देखकर मोहित हो गये। उन्हीं के साथ विहार करके वहाँ रह गये। वहाँ विष्णु के बहुत लड़के उत्पन्न हुए। वे लड़के विष्णु के समान

बड़े बलिष्ठ हुए। वे बालक पाताल से निकल सब देवता आदि को दुःख देने लगे। यहाँ तक कि इन्द्र आदि देवताओं का संकोच छोड़ नाना प्रकार के उत्पात करने लगे। तब देवताओं के कहने से मैंने देवताओं को साथ लेकर शिवजी के समीप जाकर स्तुति-पूर्वक विनय की कि विष्णु ने पाताल में जाकर बहुत स्त्रियों से विहार कर बहुत लड़के उपजाये हैं। विष्णु अपने लोक को लौट नहीं आते। विष्णु के वे लड़के बड़े बलिष्ठ होकर बड़े उपद्रव मचाते हैं। शिवजी ने ऐसी करुण पुकार सुनकर अपना स्वरूप बैल का बनाकर बड़ा नाद किया और तुरन्त ही जहाँ विष्णु थे, वहाँ पहुँचे। महाघोर शब्द किया जिससे वह नगर भर काँप उठा। विष्णु ने क्रोधित होकर अपने लड़कों को लड़ाई के लिए आज्ञा दी। वे लड़के जब शिव अवतार के सम्मुख आये तो वृषेश्वर अवतार ने अपने सींगों से सबको मार डाला। यह सुन विष्णु ने कुपित होकर वृषेश्वर का सामना किया और अच्छे-अच्छे शस्त्र चलाये। तब तो वृषेश्वर ने कुपित होकर भयानक शब्द कर अपने नख और सींगों से विष्णु को विकल कर दिया। विष्णु ने अहङ्कार छोड़ वृषरूप शिव को पहचान स्तुति की और कहा कि हमारा अपराध क्षमा करो। शिवजी बोले कि तुम ऐसे कामी हो गये कि तुमने अपने लोक को भुला दिया। अब वेग ही इन स्त्रियों को छोड़ अपने लोक को चले जाओ। फिर ऐसा न करना। यह सुन विष्णु ने अति लज्जा से कहा कि हमारा यहाँ पर चक्र रक्खा है। शिवजी ने कहा कि उस चक्र को यहीं रहने दो। हम तुम्हारे लिए दूसरा चक्र देंगे। सो शिवजी ने दूसरा चक्र बनाकर विष्णु को दिया, और कहा—इसी समय चले जाओ। विष्णु ने सब देवताओं से अलग जाकर कहा कि यहाँ जो स्त्रियाँ अमृत से उपजकर स्थित हैं, वे हर प्रकार

आनन्द देनेवाली हैं। जो इनसे भोग करता है, वही इनका स्वामी है। देवताओं ने उन स्त्रियों के पास जाने की इच्छा की; पर शिवजी ने उनकी इच्छा जान तुरन्त यह शाप दिया कि जो इस स्थान पर शान्त मुनीश्वरों और मद्यप दैत्यों के सिवा आवेगा, वह तुरन्त मर जायगा। यह सुनकर सब देवता भयभीत हो अपने घरों को चले गये। शिवजी, विष्णु और सब देवता अपने लोकों को गये। जो इस चरित्र को सुनेगा, वह आनन्द पावेगा। बहत्तरवाँ अवतार पूर्ण हुआ।

तीसवाँ अध्याय

पिप्पलाद अवतार का वर्णन

ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद! अब हम पिप्पलाद अवतार का वर्णन करते हैं। दधीचि मुनि, जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने युद्ध स्थान में इन्द्र को परास्त किया, विष्णु और सब देवताओं को शाप दिया और उनकी स्त्री सुवर्चा ने सब देवताओं को शाप देने में भी कुछ संकोच न किया, उन्हीं के एक पिप्पलाद नाम का बालक उपजा, जिसको शिवजी का अवतार कहते हैं। इतना सुन नारद ने कहा कि हे पिता! पहले सुवर्चा के देवताओं को शाप देने का वृत्तान्त सुनाइये। फिर पिप्पलाद के अवतार का वर्णन कीजिये। ब्रह्मा बोले—जब इन्द्र वृत्रासुर से हारकर देवताओं समेत हमारी शरण में आये तब हमने देवताओं से कहा कि तुम सब दधीचि के घर में जाकर उनके अस्थि माँगो और उनसे एक वज्र बनाओ। उसी वज्र से वृत्रासुर का वध करो। तुम्हारी सहायता शिवजी करेंगे। यह सुनकर देवताओं ने दधीचि के पास जाकर उनकी हड्डियाँ माँगीं। तुरन्त ही दधीचि ने अपनी हड्डियाँ दे दीं और आप शिवलोक सिधारे। देवताओं ने उन्हीं हड्डियों से विश्वकर्मा के द्वारा वज्र

बनवाया। इन्द्र ने उससे वृत्रासुर को मार डाला। संसार भर में आनन्द फैला। जब यह हाल दधीचि की स्त्री सुवर्चा को मालूम हुआ तो अति चिंतित हो उसने अपने पातिव्रत का तेज दिखाया, अर्थात् देवताओं को यह शाप दिया कि आज से सब देवता पुत्रहीन हों। यह कहकर चाहा कि सती हो जायँ; पर आकाशवाणी ने निषेध किया। तब सुवर्चा ने पीपल की जड़ में बैठकर अपने को ढाढ़स दिया। इतने में एक बालक उसी वृक्ष के नीचे से उपजा, जो शिवजी का अवतार था। उस बालक का चारों ओर यश छा गया। सुवर्चा ने अपने लड़के को देख सब दुःख भुला दिये। उसने पुत्र को शिवजी का अवतार जान स्तुति की और कहा कि मेरी मूर्खता दूर करो। पीपल के वृक्ष के नीचे अपना स्थान करो और सदा प्रसन्न बैठे रहो, और मुझको यह आज्ञा दो कि मैं भी अपने पति के लोक को जाऊँ और वहाँ पति समेत रहकर तुम्हारा ध्यान किया करूँ। तुम शिव हो, यह मुझे भली भाँति विदित हुआ है। यह कहकर बड़ी प्रसन्नता से सुवर्चा सती हो गई और शिवलोक में जाकर दधीचि सहित सदाशिव की सेवा में लगी रही। सब देवता, मुनि, विष्णु और मैं आकर उस बालक को शिव का अवतार समझ बड़ा उत्सव करने लगे। शिवजी पीपल के वृक्ष के नीचे उपजे, इससे मैंने उनका नाम पिप्पलाद रख दिया। सब मिलकर पिप्पलाद की स्तुति करने लगे। फिर पिप्पलाद की आज्ञा पाकर हम सब अपने-अपने लोक को गये। पिप्पलाद उसी पीपल की जड़ में बैठकर तप करते रहे। एक दिन पिप्पलाद मुनि पुष्पभद्रा नदी के तट पर चले जाते थे। मार्ग में एक स्त्री को देखा। चाहा कि उसके साथ अपना विवाह कर गृहस्थाश्रम ग्रहण करें। सो इस इच्छा से वह उस स्त्री के माता-पिता के घर

संसारी रीति से गये। वह अनरण्य की लड़की थी। अनरण्य ने पिप्पलाद का बड़ा सम्मान और पूजन किया। पिप्पलाद ने उनसे उस कन्या को माँगा। राजा पिप्पलाद को निर्बल देख चुप रहा। तब पिप्पलाद ने कहा कि जो तुम अपनी कन्या नहीं देते तो मैं तुमको इसी समय भस्म किये देता हूँ। जब राजा ने पिप्पलाद का तेज देखा तो रोते-पीटते अपनी लड़की पिप्पलाद को ब्याह दी। पिप्पलाद स्त्री साथ लेकर अपने स्थान को लौट आये। राजा की कन्या ने पातिव्रत धर्म भली भाँति निबाहा। शिव के अंश से तो पिप्पलाद और गिरिजा के अंश से पद्मा अर्थात् राजा की पुत्री थी। दोनों ने भली भाँति भोग-विलास किया। एक दिन पिप्पलाद की स्त्री ने अपने को भली भाँति शृंगार किया और पिप्पलाद की आज्ञा लेने के उपरान्त गङ्गा-स्नान के निमित्त चली। मार्ग में धर्मराज ने राजा का स्वरूप रख उसकी परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने पद्मा से कहा कि तुम्हारा पति तो बूढ़ा, कुरूप और अशुभ है। तुम उसको छोड़ हमारे पास आकर विहार करो। मुनि की स्त्री होकर क्या आनन्द पाओगी। यह कहकर चाहा कि पद्मा के हाथ पकड़ लें। पर पद्मा ने अति क्रोधित होकर कहा—हे दुष्ट ! दूर हो, दूर हो। मुझे स्पर्श न करना। मुझे तू कुदृष्टि से देखता है। तेरा तेज नष्ट हो जाय। यह शाप सुनकर धर्मराज मुरझा गये और राजा का शरीर छोड़ असली रूप रख विनय की कि हे माता ! मैं धर्मराज हूँ। परीक्षा लेने के लिए मैंने यह बात कही थी। अच्छा किया, जो मुझे दण्ड दिया। अब कृपा करो, क्योंकि तुम जगन्माता हो। पद्मा ने धर्मराज को पहचान कर कहा कि सत्ययुग में तुम पूर्णरूप रहो। तुमको कोई कष्ट न हो। पर त्रेता में एक पैर, द्वापर में दो पैर और कलियुग में तीसरा और चौथा पाँव तुम्हारे कट जायँ, क्योंकि

मेरा वचन वृथा नहीं होता। यह पद्मा का शाप सुन धर्मराज ने प्रसन्न होकर कहा कि तुमने मुझको बड़े नरक से बचा लिया। तुम मेरी माता हो। अब मैं बहुत प्रसन्न होकर तुमको वर देता हूँ। तुम्हारा पति युवा होकर अति सुन्दर हो जाय। वह अति कला-कुशल, विद्वान्, बड़े अद्भुत चरित्र करनेवाला हो। इसी प्रकार तुम भी अति सुन्दरी होकर युवावस्था में सदा स्थित रहो। तुम्हारे दस पुत्र बड़े विद्वान् उपजें। तुमको किसी प्रकार का दुःख न हो। यह कह धर्मराज अपने लोक को चले गये। पद्मा भी अपने स्थान को लौट आई। पिप्पलाद अवतार ने बहुतेरों को संसारसागर से डूबते हुए निकाला, और जब संसारी मनुष्यों को शनैश्चर की दशा और दृष्टि से दुखी देखा तो वर दिया कि आज से शिवभक्तों को जन्म से सोलह वर्ष तक शनैश्चर कुछ दुःख न देगा। उसी समय से शनैश्चर सोलह वर्ष तक बालकों का कुछ नहीं कर सकता। शनैश्चर का अशुभ फल पिप्पलाद के नाम के स्मरण से नष्ट हो जाता है। अर्थात् पिप्पलाद, कौशिक, गाधि मुनि के स्मरण से शनैश्चर का अशुभ फल नहीं होता। हे नारद ! पिप्पलाद संसार भर को आनन्द देनेवाले हैं और पद्मा भी गिरिजा का अवतार हैं। उनके स्मरण से सन्तान की वृद्धि होती है। दधीचि बड़े उदार हुए। उनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता। यह पिप्पलाद का आख्यान अति पवित्र है। जो हमने वर्णन किया, इसके पढ़ने-सुननेवालों को दोनों लोकों में सब कुछ मिलता है। तिहत्तरवाँ अवतार पूर्ण हुआ।

इकतीसवाँ अध्याय

महेश अवतार का वर्णन

ब्रह्माजी ने कहा कि एक दिन शिव और गिरिजा, दोनों ने भोग के निमित्त संसारी जीवों के समान सम्मति कर भैरव को

द्वार पर बैठाया और आप अन्तःपुर को गये। दोनों बहुत समय तक मनुष्यों के समान विहार में प्रवृत्त रहे। एक दिन गिरिजा मतवालों की तरह घर से बाहर निकलीं। भैरव ने गिरिजा को कुदृष्टि से देखा और बाहर जाने से रोक लिया। गिरिजा ने बड़ा क्रोध कर शिवजी की इच्छा पर भैरव को यह शाप दिया कि तूने मेरा पुत्र होकर मुझको कुदृष्टि से देखा और माता-पुत्र का भाव छोड़ मनुष्यों के समान कुमार्गी होना चाहता है, इसलिए तू मृत्युलोक में जाकर मनुष्य-शरीर धरेगा। तब तू ऐसे पाप से छूटेगा। यह सुन भैरव अति दुखी हुए। भैरव भी लीला करना चाहते थे। उन्होंने भी श्रीगिरिजा महारानी को यह शाप दिया कि जो दशा हमारी हो वही अवस्था तुम्हारी भी हो। यह सुन शिवजी बाहर निकल आये और हँसकर दोनों को समझाया। भैरव ने विनय की कि पृथ्वी पर भी मैं आपका पुत्र होकर उपजूँ। इसी से शिवजी के साथ उनके सब पुत्रों को भी अवतार लेना पड़ा। शिवजी का नाम महेश और गिरिजा का नाम शारदा हुआ। चौहत्तरवाँ अवतार पूर्ण हुआ।

बत्तीसवाँ अध्याय

अवधूतपति अवतार का वर्णन

ब्रह्माजी बोले—अब हम अवधूतपति अवतार की कथा कहते हैं, जिन्होंने इन्द्र के अहंकार का नाश किया। एक दिन इन्द्र ने सदाशिवजी के दर्शन की इच्छा से तुरन्त सब देवताओं को बुलाया और यह कहकर कि हम सब देशों के महाराजा हैं, हमको बहुत सामग्री सहित शिवजी की भेंट करनी चाहिए। हर प्रकार की सामग्री इकट्ठी की। ग्यारहों रुद्र, बारहों सूर्य, आठों वसु, तेरहों विश्वेदेवा, सब मरुद्गण, सब दिक्पति, देवता और मुनीश्वर भली भाँति सजसजाकर बड़ी धूमधाम से इकट्ठे

हुए। सब बृहस्पति को साथ लेकर चले। सब प्रेम में मग्न थे। कोई गाता, कोई बजाता, कोई हँसता चला। नाना प्रकार के बाजे बजते थे। अप्सरा नाचती हुई चली जाती थीं। इन्द्र हर प्रकार के देवताओं का जुदा-जुदा समूह बनाकर सबको साथ लिये हुए चले। जब कैलास पर्वत के समीप इन्द्र पहुँचे तो शिवजी ने यह इन्द्र का गर्व जानकर लीला के निमित्त अपना भयंकर रूप धरा। नेत्र जलते हुए, भयानक साज सजे, अर्थात् अवधूत रूप था। इन्द्र ने अवधूत को देखकर प्रणाम किया और पूछा कि आप कौन हैं ? कहाँ से आते हैं ? जान पड़ता है कि आप इसी समय शिवजी के पास से आते हैं। कृपा करके कहिये कि शिवजी कहाँ हैं, क्या करते हैं ? कहीं चले तो नहीं गये ? अवधूत ने कुछ उत्तर न दिया। फिर इन्द्र ने कहा कि शिवजी कहाँ हैं, बतला दो। इसी प्रकार इन्द्र ने कई बार पूछा, पर कुछ उत्तर न पाया। तब तो इन्द्र ने क्रोधित होकर अपना वज्र उठाया और कहा—हे दुष्ट अवधूत ! तू हमको उत्तर नहीं देता। क्या मद्य पिये हुए है ? मैं तुझको वज्र से मारता हूँ। तेरा कौन रक्षक है। यह कहकर अवधूत पर वज्र चलाया। वज्र उनकी गर्दन में लगा, जिससे श्याम रङ्ग का चिह्न पड़ गया और वज्र जलकर भस्म हो गया। देवताओं की सेना में हाहाकार मच गया। शिवजी में क्रोध की इतनी ज्वाला बढ़ी कि सब देवता जलने लगे। इन्द्र ऐसी लीला देख काँप उठे और अपने गुरु का स्मरण किया। बृहस्पति ने शिवजी का ध्यान किया और शिवजी को जान स्तुति कर इन्द्र से कहा कि यह अवधूत नहीं, वरन् आप सदाशिवजी हैं। इतना कह बृहस्पति ने आदर कर स्तुति की और कहा कि ये सबके स्वामी हैं। फिर इन्द्र आदि सब देवताओं ने प्रीतिपूर्वक शिव की स्तुति की। वह स्तुति सुनकर शिव प्रसन्न

हुए और कहा कि यह स्तुति सुनकर हम प्रसन्न हुए; वर माँगो। यह सुन बृहस्पति अति प्रसन्न हुए और यह वर माँगा कि इन्द्र आपका सेवक है, इसकी रक्षा अवश्य कीजिए। इन्द्र ने आपका तेज नहीं जाना। इस पर अनुग्रह करना उचित है। अपनी क्रोधाग्नि को शान्त करो। यह सुन शिव बोले कि सर्प अपनी केंचुली को दूर करके फिर ग्रहण नहीं करता। तो भी हम कृपा करके इस ज्वाला को इतनी दूर फेंक देंगे कि इन्द्र पर उसका कुछ प्रभाव न होगा और तुमने इन्द्र को जो जीव-दान दिया, इससे तुम्हारा जीव नाम होगा। यह कह उस क्रोध की ज्वाला को शिवने गंगा में फेंक दिया, जिससे जालन्धर दैत्य उपजा। उसका वृत्तान्त हम वर्णन कर चुके हैं। यह चरित्र कर अवधूत शिव अन्तर्धान हो गये। देवताओं को बड़ा आनन्द मिला। सब अपने-अपने स्थान को लौट गये। जो मनुष्य इस अवधूतेश्वर अवतार के चरित्र को पढ़ेगा या सुनेगा, वह दोनों लोकों में आनन्द पावेगा। पचहत्तरवाँ अवतार पूर्ण हुआ।

तेंतीसवाँ अध्याय

श्रीहनुमान्‌जी के अवतार का वर्णन

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! अब हम हनुमान् नाम के शिव के अवतार का वर्णन करते हैं, जिन्होंने रामचन्द्र की सहायता कर दैत्यों का वध कर डाला। उन्होंने वानर जाति में देह धारण कर रामचन्द्र से बड़ा प्रेम किया और शिव की आज्ञा पाकर रामचन्द्र की सेवा करते रहे। यह कपिनाथ महावीर हनुमान् शिव का अवतार हैं। इनकी कथा इस तरह है कि जब शिव ने मोहिनी-रूप को देखा तो केवल रामचन्द्र के कार्य के निमित्त इस प्रकार लीला की कि शिव मोहित होकर मोहिनी रूप से लिपट गये। शिव का मद अर्थात् वीर्य धरती पर गिर पड़ा, जिसके

नग मुनि ने शिव की सैन से रख लिया। इस इच्छा से कि उसके द्वारा रामचन्द्र के कार्य बनावेंगे। अञ्जनी से हनुमान् उपजे। उनके कपि अवतार लेने का यह कारण था कि चार मास तक रामचन्द्र ने वन में शिव का बड़ा तप किया। निदान शिवजी ने परीक्षा लेने के उपरांत अपने गणों सहित अवतार लिया और अपना धनुष रामचन्द्र को दिया, जिसे सदाशिव प्रलय के समय हाथ में लेते हैं। शिव की आज्ञा पाकर सब देवतों ने बन्दर और रीछ की देह धारण की। रामचन्द्र ने जब रावण को अति बलिष्ठ समझकर शिवजी की बड़ी स्तुति की तो अञ्जनी के गर्भ से शिवजी ने भी अवतार लिया और विष्णु अर्थात् रामचन्द्र का दुःख दूर किया। उन्होंने उपजते ही सूर्य को लील लिया। तब देवताओं ने जाना कि यह शिवजी का अवतार हैं। उन्होंने रामचन्द्र के बड़े-बड़े कार्य किये। रामचन्द्र का संदेश सीता के पास पहुँचाया, रावण की अशोक-वाटिका को उजाड़ा, लङ्का को जला दिया, समुद्र में सेतु तैयार किया। जब लक्ष्मण शक्ति से मूर्च्छित हुए और रामचन्द्र अति दुखी हुए तो हनुमान् ने औषध लाकर लक्ष्मण को जिला दिया और रामचन्द्र का दुःख दूर किया। रामचन्द्र को कीर्ति देकर आप रावण का वध किया। दैत्यों को मारकर देवताओं को हर्ष दिया। उन्होंने भक्तिभाव की रीति को अङ्गीकार कर भक्ति को संसार में प्रसिद्ध किया, इससे रामदूत के नाम से प्रसिद्ध हुए। रामचन्द्र के कार्य पूर्ण करने को शिव ने हनुमान् का अवतार लिया। फिर रावण की भुजा उखाड़कर राम और लक्ष्मण को बड़ा हर्ष दिया। उनकी उपासना से असंख्य पापियों ने मुक्ति पाई है। हे नारद! इस बात को निश्चय जानो कि सदाशिव अपने भक्तों के निमित्त असंख्य तनु धारण करने में अपनी महिमा का

कुछ विचार नहीं करते। यही दशा विष्णु की भी है। उन्होंने अर्जुन पाण्डव के सारथी होकर उनका रथ हाँका। नारद के पूछने के अनुसार ब्रह्मा ने कहा कि सनकादिक हमारे चार पुत्र परम शैव हैं। सदाशिव की मूर्ति हृदय में रख वे तीनों लोकों में भ्रमण करते हैं। एक दिन वे विष्णुलोक में गये और वैकुण्ठ को देख अति प्रसन्नता से चाहा कि विष्णु के दर्शन करें। सो छः ड्योढ़ियों तक तो वे भीतर चले गये, परन्तु सातवीं ड्योढ़ी पर जय और विजय नाम के विष्णु के गणों ने रोका और किसी प्रकार भीतर जाने न दिया। सनकादिक ने क्रोधित हो शिव की प्रेरणा से यह शाप दिया कि तुम दोनों यहाँ न रहोगे। तुमने हमको विष्णु के मन्दिर में जाने से रोका, यह तुम्हारा राक्षसों के समान कर्म है। इससे तुम दोनों राक्षस हुए। तुरन्त यहाँ से गिरकर पृथ्वी पर जाओ। यह शाप सुनकर दोनों पार्षद सनकादिक के चरणों पर गिर पड़े और उनको प्रसन्न किया। इतने में विष्णु भी भीतर से निकल आये। उन्होंने उनकी बड़ी स्तुति की। वे विष्णुजी को प्रसन्न कर आज्ञा पाकर हमारे लोक को चले आये। वे दोनों पार्षद दिति के पुत्र होकर कनककशिपु और कनकाक्ष के नाम से प्रसिद्ध हुए। वे ऐसे बलवान् हुए कि उन्होंने तुरन्त ही तीनों लोकों को जीत लिया और स्वाधीन होकर तीनों भुवनों का राज्य करते रहे। निदान देवताओं की इच्छा के अनुसार कनकाक्ष को विष्णु ने वराहरूप रखकर मारा और नरसिंह अवतार लेकर कनककशिपु का उदर विदीर्ण किया। उन दोनों को तीन जन्म तक राक्षस होने का शाप था, इससे फिर उन दोनों ने कुम्भकर्ण और रावण होकर शिव की बड़ी भक्ति की। इससे रावण ने देवताओं को परास्त कर तीनों लोकों का राज्य किया। फिर रावण ने तुम्हारे उपदेश से मोहित हो कैलास को जड़ से उखाड़ लिया,

इससे शिवजी ने बड़ा भारी शाप दिया। यह कहा कि हमारे समान ही कोई मनुष्य तुम्हारा अहंकार नष्ट करेगा। शाप के कारण दोनों राक्षसों ने कुमार्ग पकड़ा और संसार में बड़े-बड़े उपद्रव मचाये। देवता आदि दुखी हो विष्णु के समीप गये और रावण का सब वृत्तान्त वर्णन किया। विष्णु बोले कि रावण शिवजी का भक्त है। वह किसी से जीता नहीं जा सकता। पर हम शिवजी की अनुमति लेकर नरतनु धारण करेंगे और शिवजी की उपासना कर उन्हीं से बाण लेकर रावण को मारेंगे। यह कह देवताओं को बिदा करने के उपरान्त विष्णु ने चाहा कि मनुष्य होकर चार रूप धारण करें। अयोध्यापति दशरथ के यहाँ उन्होंने इस तरह अवतार लिया—कौशल्या से रामचन्द्र, कैकेयी से भरत और सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न उपजे। ये चारों एक ही विष्णु के स्वरूप हैं, जिन्होंने अलग अलग चार अवतार लिये। राजा जनक की कन्या सीता के साथ रामचन्द्र का विवाह हुआ। निदान रामचन्द्र दशरथ की आज्ञा से राज्य छोड़ देवताओं के कार्य करने के निमित्त वन में गये। जहाँ सीता को रावण हर ले गया और हर तरह से रामचन्द्र को दुःख दिया। रामचन्द्र ने अगस्त्य से उपदेश पाकर शिव की आराधना की। शिवजी ने प्रसन्न होकर रावण के वध की आज्ञा देकर अपना धनुषबाण दिया। रामचन्द्र ने रावण का सेना सहित वध करके सीता को पाया।

चौंतीसवाँ अध्याय

नारद ने कहा कि आपने यह रामचन्द्र का चरित्र अति संक्षेप से कहा है। हे ब्रह्माजी! इसका विस्तार से वर्णन कीजिये। ब्रह्माजी बोले कि रामचन्द्र के चरित्र अति पवित्र यश, कीर्ति, आरोग्य और मुक्ति के देनेवाले हैं। विष्णु ने यह अवतार देव-

ताओं के लिए पूर्णांश से धारण किया है। उन्होंने बहुत से बाल-चरित्र किये, जिनसे माता-पिता रात-दिन बड़े प्रसन्न रहे। फिर जाकर विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की और सुबाहु को सेना सहित मार डाला। मारीच के प्राण बच गये। फिर विश्वामित्र के साथ जनकपुर में जाकर राजा जनक की इच्छा पूरी की। वहाँ चारों भाइयों का विवाह हो गया। जब राजा दशरथ अपने लड़कों और बहुओं समेत अयोध्या को लौट आये, उस समय का आनन्द कौन कह सकता है। निदान देवताओं ने अपने कार्य के निमित्त बड़े-बड़े उपाय करके भरत की माता को निन्दा दिलाई, अर्थात् कैकेयी ने रामचन्द्र को दशरथ से वनवास दिलाया। पहले रामचन्द्र चित्रकूट को गये और कई दिन तक लक्ष्मण और सीता सहित वहीं ठहरे रहे। वहाँ मत्तगयन्द शिव की पूजा की। इस मूर्त्ति को मैंने स्थापित किया था। वही शिवजी चित्रकूट के रक्षक हैं। यात्रा करनेवालों के पाप भक्षण कर जाते हैं। जो मनुष्य चित्रकूट में जाकर उनकी पूजा न करे, उसको जाने का कुछ फल नहीं मिलता। रामचन्द्र ने भी उनसे वरदान पाया। भरत अवधवासियों सहित वहाँ गये और हाथ जोड़ बड़ी भक्ति से लौटने के लिए बिनती की। पर रामचन्द्र ने न माना और अपनी पादुका देकर भरत को बिदा किया। फिर चित्रकूट को छोड़ दण्डक वन को गये जहाँ मुनीश्वर रहते हैं। सीता को बीच में कर बुरे वन के होने के कारण चले। मार्ग में विराध को, जो सीता को उठाकर आकाश में उड़ा था, मार डाला। फिर कुम्भज मुनि के स्थान में गये। अगस्त्य के उपदेश से पञ्चवटी को गये, जहाँ कामदेव की सताई हुई शूर्पणखा ने आकर रामचन्द्र से विवाह की इच्छा प्रकट की। रामचन्द्र और लक्ष्मण ने जब न माना तब शूर्पणखा यह कहकर कि अपने किये का फल

पाओगे, सीता को डराने लगी। उसने अपने नाम के समान अपना भयानक शरीर प्रकट किया, जिससे लक्ष्मण ने जाना कि यह राक्षसी है। उन्होंने तुरन्त उसकी नाक काट ली। वह रोती-पीटती अपने भाई दूषण के पास गई और सब वृत्तान्त कह सुनाया। खर और दूषण शूर्पणखा को आगे कर युद्ध के निमित्त चले। रामचन्द्र ने लक्ष्मण को सीता सौंप जितने राक्षस लड़ने आये थे उतने अपने रूप बनाकर शूर्पणखा के सिवा सबका वध किया। वह रोती हुई रावण के समीप गई और रामचन्द्र का सब वृत्तान्त कहा। रावण ने रामचन्द्र को बड़ा बलिष्ठ जान मारीच से सीता को हर लाने के लिए कहा। उसने न माना। रावण भयभीत हुआ। फिर दोनों इस कार्य के निमित्त चले। रावण का मामा मारीच विचित्र हरिण बन सीता के सामने फिरने लगा। रामचन्द्र छल में आकर हरिण के वध के निमित्त चले। पीछे से लक्ष्मण भी चले। राम और लक्ष्मण के पीछे रावण आकर सीता को उठा ले गया। मार्ग में सीता को रोते देख जटायु ने रावण से युद्ध किया। उसके पंख रावण ने काट डाले। जब रामचन्द्र और लक्ष्मण ने लौटकर सीता को न देखा तो अति खेद कर पृथ्वी पर गिर पड़े और रोते हुए सब वन में ढूँढ़ने लगे। आगे जटायु से सब हाल सुना। जटायु ने रामचन्द्र का यह हाल सुनकर अपने शरीर का त्याग किया। रामचन्द्र ने आप उसका दाहकर्म किया। पिता के समान जटायु का शोक मनाकर वे फिर सीता को ढूँढ़ने लगे। इतना खेद रामचन्द्र का देख अगस्त्यजी आये।

पैंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि अगस्त्यमुनि को देखकर लक्ष्मण ने प्रणाम किया और दोनों हाथ जोड़कर सिर नवाया। मुनि ने राम को

अति दुखी देख उनसे कहा कि हम वेद का मत सुनाते हैं कि तुम्हारा यह अथाह दुःख दूर हो जाय। तुम स्त्री के निमित्त ऐसा दुःख क्यों करते हो? स्त्री किसकी होती है? तुम वेदमार्ग छोड़कर हाय-हाय करते और रोते हो। यह शरीर पाँच तत्त्वों से बना हुआ और जड़ है। उस पर इतनी प्रीति क्या करते हो। केवल जीव सब इन्द्रियों से परे है। वह सच्चिदानन्द, सबसे भिन्न, जन्म-मरण से रहित है। वह स्त्री, पुरुष, नपुंसक, कुछ नहीं है। उसका कोई आकार नहीं। पर वह सबमें विद्यमान है। वह अनादि, निरञ्जन, अलख, ब्रह्म, माया से परे, निर्भय, नामरूप-रहित है। स्त्री अति भ्रष्ट है और उसका शरीर मलमूत्र से परिपूर्ण है। बताओ, सिवा चर्म के उसके शरीर में क्या है? इस बात को न समझ बुद्धि के विरुद्ध सब कार्य कर रहे हो। तुमको उचित है कि ज्ञान धारण करके ऐसी चिन्ता मत करो और यह समझ लो कि केवल शरीर ही मरता है, आत्मा नहीं मरता। ब्रह्म एक ही है, दो नहीं। कौन स्त्री और कौन पुरुष है? यह सुन सीता के वियोग का दुःख दूर करो। तुम वृथा ही मोह के वश में पड़ गये हो। शिवशंभु का स्मरण कर खेद को भूलो। यह बात सुन रामचन्द्र बोले कि आप जो कहते हैं कि तनु जड़ है, उसको क्या दुःख हो सकता है। और आत्मा को तनु से भिन्न बताते हैं। फिर किसको दुःख होता है? उसको बतला दीजिये। मुझे सीता के वियोग का दाह है। वह शरीर को जलाता है। जो बात हम शरीर में प्रतिदिन देखते हैं; उसके लिए आप क्या कहते हैं। मैं आपसे पूछता हूँ कि दुःख-सुख का भोगनेवाला कोई है या नहीं? यह सुन अगस्त्यजी बोले कि शिवजी की माया जानने के योग्य नहीं। तीनों लोक उसी में मोहित हैं। उसका नाम प्रकृति है। उसीसे सम्पूर्ण संसार को उपजा हुआ समझो। उस प्रकृति का

स्वामी शिवजी को समझो, जो अनादि और पवित्र हैं। उन्हीं से ये तीनों लोक प्रकट दिखाई देते हैं; क्योंकि सबके आत्मा वही हैं। जिस तरह लकड़ी अग्नि के योग से प्रज्वलित होती है, इसी तरह शिवजी से सब जीव अपने-अपने कर्मों में बँधे हुए प्रकट होते हैं। वही पुरानी वासना संसार का क्षेत्रज्ञ है। अन्तःकरण चार प्रकार का है। उससे उसी का प्रकाश है। वही जीव अपने कर्मों के फल पाता है। वही कर्मफल को भोगता है। सब दुःख-सुख अपने कर्मों के अनुसार होते हैं। माया की फाँसी से दुःख-सुख है। जो माया से भिन्न हैं, वे संसार पर प्रबल हैं। मूर्ख लोग संकल्प-विकल्प से संसार में संसार देखते हैं। रामचन्द्र ने कहा कि जो तुमने कहा, वह सब ठीक है। पर हमारा दुःख दूर नहीं होता। जिस तरह मद्य बड़े-बड़े बुद्धिमानों को मतवाला कर डालता है, उसी प्रकार भाग्य के भोग महादुःखदायक हैं। उसी भाग्य के अधीन सब हैं। उससे किसी का वश नहीं चलता। उसी से सब दुःख-सुख होता है। हमने भाग्य को सर्वोपरि, शिवजी के समान समझ लिया है। वह मुझे दुःख देता है। अब मैं यह चाहता हूँ कि जिसने मेरी स्त्री का हरण किया है, उसको मार डालूँ। मैं सूर्यवंशी दशरथ का पुत्र हूँ। जो शीघ्र ही उसे न मारूँगा तो मेरे जीने से क्या लाभ। मुझको इस समय तत्त्वबोध से कुछ प्रयोजन नहीं। मेरा मन सीता के वियोग से दुखी है। काम और क्रोध को अग्नि के समान शत्रु कहा गया है। मेरा शरीर उनसे जल रहा है। किसी प्रकार वह अग्नि नहीं बुझती। यह अहंकार का भरा हुआ वचन सुन अगस्त्य ने जाना कि उनका उपदेश लाभदायक न हुआ। तब उन्होंने मन में कुछ क्रोध करके कहा कि हे राम, तुम्हारा कुछ अपराध नहीं है। यह शिवजी की माया है, जिसके अधीन होकर सब देवता, मुनि

आदि भी भटककर दुःख-सुख प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य काम और क्रोध के अधीन हैं, वे उपदेश से शुद्ध मार्ग को नहीं ग्रहण करते। उनको उपदेश के वचन उसी तरह अच्छे नहीं लगते, जिस तरह मरनेवाले रोगी को औषध और चिकित्सा नहीं भाती। तुम अपनी स्त्री की प्राप्ति के निमित्त रावण का वध किया चाहते हो। पर रावण बड़े भारी वीर दैत्यों का स्वामी है। तुम लङ्का में कैसे जाकर सीता को प्राप्त करोगे ? जिसके यहाँ देवता सब कार्य और सेवा करते हैं। देवताओं की स्त्रियाँ रावण के पङ्खा डुलाती हैं। वह शिवजी की कृपा से संसार भर का राजा है। यद्यपि उसने कुमार्ग ग्रहण किया है, तो भी उसको दुःख नहीं मिलता। तुम अपने को और शत्रु की शक्ति को नहीं देखते। मेघनाद के समान जिसका पुत्र है और शिवजी ने जिसको वर दिया है, जिसने इन्द्र को जीतकर सब देवताओं को अपने सामने से भगा दिया कुम्भकर्ण के समान जिसका लघु भ्राता है वह रावण अजय है। उसका दूसरा भाई विभीषण अमर है। रावण का सब गढ़ सुवर्ण से बना हुआ है। देवता और दैत्य कोई उसको नहीं जीत सकता। वहाँ किसी को कुछ भय नहीं। उसके पास करोड़ों चतुराङ्गिणी सेना विद्यमान है। उसको तुम जीता चाहते हो ? जैसे बालक चन्द्रमा को अपने हाथ से पकड़ना चाहे, वही तुम्हारी भी दशा जान पड़ती है। यह कह अगस्त्य चुप हो गये।

छत्तीसवाँ अध्याय

इतना कह ब्रह्माजी बोले कि रामचन्द्र ने जब अगस्त्यजी के ये वचन सुने तो ठंडी साँस भरकर अगस्त्य के चरणों पर गिर पड़े और हाय-हाय करके चिल्लाकर रोने लगे और कहा कि हे मुनि ! हम दुःखसागर में डूबते हैं। हमको डूबने से बचा लो।

यह सहायता का समय है; उपदेश, ज्ञान, बुद्धि का समय नहीं। क्योंकि इस समय हम वियोग की अग्नि से जलते हैं। वह उपाय बताइये, जिससे सीता मिलें। फिर आप जो ज्ञान हमको सिखावें, वह मैं मानूँगा। मुझे अपना सेवक जानकर क्रोध न कीजिये। मैं क्षत्रिय, मूर्ख और अहंकारी हूँ। मैं वियोगाग्नि से जला हुआ हूँ। आपका वचन, जो अमृत के समान है, मेरे मन में नहीं ठहर सकता। मैं आपसे बढ़कर दूसरा शिक्षा देनेवाला गुरु नहीं देखता। आप वह बात सिखावें, जिससे सीता मिलें। यह सुन अगस्त्य ने शिव-लीला की बड़ी स्तुति की और कहा कि जो तुम यही चाहते हो तो शिवजी की शरण में जाओ, उनका कठिन तप करो, शिवजी के नाम वेद के अनुसार जपो और मनुष्यत्व छोड़ तेज का भरा हुआ रूप धारण कर रावण का वध करो। तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा। तुम्हारे सामने कोई ठहर न सकेगा। तुम सुगमता से सीता को पाओगे। शिवजी तुम्हारी ओर होंगे, रावण का पक्ष न लेंगे। यह सुन राम ने अति प्रसन्न हो कहा कि हे अगस्त्यजी ! आप समुद्र के मथनेवाले और इल्वल के शत्रु संसार में प्रसिद्ध हैं। आप जो मुझ पर प्रसन्न हुए तो मेरे सब मनोरथ पूरे होंगे। अब तुरन्त शिवजी के मन्त्र की दीक्षा देकर शिवजी की पूजा की युक्ति बता दो जिससे शिवजी की सेवा में प्रवृत्त हो जाऊँ और शिवजी मुझ पर बहुत ही प्रसन्न हों। अगस्त्यजी ने कहा कि पहले हम शिव-पूजा की तिथि और वार वर्णन करते हैं, जिनमें शिवजी की पूजा का आरम्भ करे। अष्टमी या चतुर्दशी, जो शिवजी की तिथि प्रसिद्ध है, या एकादशी जो विष्णु की तिथि कहलाती है, उनके शुक्लपक्ष में शुभ मास पर शिवजी की पूजा का आरम्भ करे। विधि यह है कि पहले मुहूर्त भर रात्रि रहे उठ स्नान और नित्यकर्म से निश्चिन्त हो जाय।

फिर संकल्प करे। अपना सब शरीर श्वेत वस्त्रों से भूषित करके युक्तिपूर्वक भस्म लगावे। उत्तम भस्म धारण करना परम आवश्यक है। क्योंकि भस्म लगाने से सिद्धि प्राप्त होती है। फिर रुद्राक्ष जहाँ-जहाँ जिस-जिस अङ्ग में चाहिए, युक्ति से धारण करे। हे रामचन्द्र! भस्म बिना शिव प्रसन्न नहीं होते, न सिद्धि प्राप्त होती है। फिर व्रत कर प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार ध्यान करे—जो परब्रह्म सदाशिव ब्रह्मा और विष्णु को उपजानेवाले, सबके स्वामी कैलासवासी हैं, उनके स्वरूप का मैं ध्यान करता हूँ—गौर शरीर, भस्म रमाये, वामभाग में गिरिजा विराजमान, पाँच मुख, तीन नेत्र, चार भुजा, लाल रंग का जटाजूट धारे, सब भूषणों को पहने हुए, साँपों को जनेऊ के बदले लपेटे हुए, हाथों में त्रिशूल, डमरू, वर और अभय धारण किये, बाघम्बर ओढ़े, कोटि सूर्य के समान महाप्रकाशमान और कोटि चन्द्रमा के सदृश शीतल शिव को प्रणाम है। यह ध्यान कर शिवजी की पूजा करे। फिर शिवजी के सहस्रनाम का पाठ करो। यह कह अगस्त्य ने रामचन्द्र को वेद का लिखा हुआ सहस्रनाम बताया, जिसके जप से शिवजी तुरन्त प्रसन्न होते हैं और सब कष्ट नष्ट करते हैं। फिर कहा—हे रामचन्द्र! तुम इस सहस्रनाम को रात-दिन जपो। जो कोई भय उपजे तो तुम कुछ न डरना। शिव तुम्हारी रक्षा करेंगे और तुमको पाशुपतास्त्र देंगे। जिसको पाकर तुम शत्रु का वध करने के अनन्तर सीता को पाओगे। वह धनुष, जो तुमको सदाशिवजी देंगे, उसके चढ़ाने से समुद्र तक सूख जायँगे। उसी से शिव प्रलय करते हैं। वह धनुष शिव को अति प्रिय है। और कोई युक्ति हम नहीं जानते। शिवजी के शरणागत होने से हर प्रकार का आनन्द मिलता है। सब कार्य तुरन्त सिद्ध हो जाते हैं। फिर अगस्त्य ने उन लोगों का वृत्तान्त संक्षेप में सुनाया, जो शिवजी

की सेवा से अपने-अपने मनोरथ पा चुके हैं। फिर अगस्त्य अपने आश्रम को चले गये।

सैंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि रामचन्द्र ने रामगिरि पर जाकर गोदावरी के तट पर शिवलिङ्ग की स्थापना कर भस्म और रुद्राक्ष धारण किया। शिवलिङ्ग को गौतमी नदी के जल से, जो समुद्र से उपजी है, पूजकर नाना प्रकार के वन के पुष्पों और फलों को चढ़ाया। फिर सिंह के चर्म पर आसन जमाया और सदाशिव का ध्यान किया। सदाशिव की इस प्रकार की मूर्ति अपने हृदय-कमल में स्थापित की। ध्यान जो रामचन्द्र ने किया—कोटि सूर्य के समान जिनकी सुन्दर कान्ति है, जिनमें कोटि चन्द्रमा के समान शीतलता है, जो भोग और कामना के हेतु सब प्रकार के भूषणों और वस्त्रों से अलंकृत हैं, उन शिव को प्रणाम है। पाँच मुख, तीन नेत्र ललाई लिये, प्रकाशमान जटा, डमरू, त्रिशूल, वर, अभय धारण किये, चार भुजाओं से सुशोभित, भाल में चन्द्रमा, बाघम्बर ओढ़े, सर्प का जनेऊ पहने, सिर में जटा के बीच गङ्गा की छटा, मस्तक में त्रिवेद, कण्ठ में हलाहल की श्यामता, कानों में कुण्डल के बदले दो सर्प लटकते हुए, दोनों चरण कमल के समान विराजमान, गौर शरीर, भस्म रमाये, अति दयावान्, अनादि, अप्रमेय, अविनाशी, अद्वितीय, विद्या, हर्ष, सत्य और धर्म के स्वरूप शिव को प्रणाम है। इसी प्रकार का ध्यान करके रामचन्द्र शिवसहस्रनाम का जप करने लगे। वन के पुष्प और जड़ें और वायु आदि खाकर चार मास बिताये। शिवजी ने चाहा कि रामचन्द्र की परीक्षा लें, सो अकस्मात् समुद्र में बड़े वेग से भयानक शब्द हुआ और जिस तरह प्रलय में समुद्र अपनी मर्यादा को छोड़ देता है, वैसे ही समुद्र मर्यादा से बढ़ गया। रामचन्द्र ने चारों ओर देखा, पर

शब्द के सिवा और कुछ दिखाई न दिया। इतने में अग्नि की ज्वाला चारों ओर इतनी फैली कि चारों ओर से उस ज्वाला से बचना कठिन हो गया। रामचन्द्र ने नेत्र मूँद लिये। उस समय उनको यह विचार हुआ कि यह किसी दैत्य की माया है। वह तुरन्त धनुर्बाण हाथ में लेकर बाणों से उस ज्वाला को मारने लगे। जितने और शस्त्र थे, सब उस ज्वाला की ओर फेंक दिये। पर किसी शस्त्र ने काम न दिया। इसके सिवा रामचन्द्र के हाथ से धनुष धरती पर गिरकर भस्म हो गया। बाण, तरकस और अन्य अस्त्र-शस्त्रों की भी यही दशा हुई। यह देखकर रामचन्द्र मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। यही दशा लक्ष्मण की भी हुई। निदान रामचन्द्र ने शिवजी का ध्यान किया। तब तो रामचन्द्र के नेत्र खुल गये। उनका सब दुःख दूर हुआ। उन्होंने देखा कि एक महातेजस्वी पुरुष, जो अति प्रकाश-युत भाल में अर्धचन्द्र धारण किये, नन्दी पर सवार अपने मुख्य लक्षण प्रकट किये श्रीसदाशिवजी विद्यमान थे। कोई लक्षण बाकी न रह गया, जो उनमें न था। वामभाग में गिरिजा विराजमान थीं। ऐसे स्वरूप को देखकर रामचन्द्र अति प्रसन्न हुए। फिर विष्णु को लक्ष्मी सहित गरुड़ पर चढ़े आते देखा, जो रुद्राध्याय जपते हुए चले आते थे। फिर मुझे हंस पर आरूढ़ रुद्रसूक्त जपते अपनी ओर आते देखा। फिर रामचन्द्र ने उसी ज्वाला से मुनीश्वरों का समूह अर्थात् ब्रह्मा को अथर्व शिर से शिव की स्तुति करते निकलते देखा। फिर देखा कि दिक्पाल अपने मुख्य लक्षणों और स्त्रियों सहित हाथ जोड़े सामश्रुति पढ़ते चले आते हैं। फिर गङ्गा को प्रसिद्ध नदियों सहित और समुद्र को वेद का मन्त्र पढ़ते हुए अपनी ओर आते देखा। इसी प्रकार शेष आदि को स्त्रियों सहित नन्दीगण और गणेश को मूषक पर चढ़े, षण्मुख को मोर पर

आरूढ़ देखा, जिनके दायें-बायें ब्रह्मा और काल थे। चण्डीश और भृङ्गी गणनाथ को असंख्य गणों समेत आते देखा। फिर कन्दवमुनि को त्र्यम्बक मन्त्र जपते और शिव का यश गाते देखा। चित्ररथ गन्धर्व आदि को अप्सराओं और हंस को अपने गणों सहित, उत्तमोत्तम ग्रहों को सूर्य चन्द्रमा समेत और अच्छे-अच्छे शिवभक्तों को देखा। इसी प्रकार सब को अपनी ओर आते देखा। शिवकी ऐसी देवसभा देख जो आनन्द रामचन्द्र को प्राप्त हुआ, वह कहने में नहीं आता। रामचन्द्र ने शिव को ऐसे स्वरूप और सभा के साथ प्रणाम करके बड़ी स्तुति की।

अड़तीसवाँ अध्याय

रामचन्द्र ने असंख्य प्रणाम करने के उपरान्त कहा कि हे सदाशिव! तुम्हारे चरणों में प्रणाम है। इसी से मेरा सब काम पूरा होगा। यह कह फिर सदाशिव का नाम जपने लगे। तब शिव ने यह लीला की कि एक सोने का रथ प्रकट हुआ, जो परिपूर्ण रत्नों और मोतियों से अलंकृत था। शिव वृषभ से उतर रथ पर आरूढ़ हुए। उस समय चारों ओर से जय-जय का शब्द हुआ और देवपत्नियाँ स्तुति करने लगीं। विष्णु और मैं भी स्तुति में प्रवृत्त हुए। हर प्रकार का उत्सव हुआ। ऐसे समय में शिव ने रामचन्द्र की ओर देखा और रामचन्द्र को शिर झुकाये देख तुरन्त रथ से उतर रामचन्द्र को रथ पर बैठा लिया। वह धनुष जिसको हर हाथ में लेकर प्रलय करते हैं, रामचन्द्र को दिया। ब्रह्मा ने पाशुपत अस्त्र और कृपा करके अपना तेज भी दिया। फिर अक्षय तूणीर देकर रामचन्द्र के सब दुःख नष्ट कर दिये। शिव ने कहा कि यह बाण प्रलय करनेवाला है। इसको किसी ऐसे ही बड़े कार्य पर छोड़ना। जब प्राणों का संदेह हो, तब

चलाना। कदाचित् इसके विरुद्ध और किसी समय इसको छोड़ोगे तो जानना कि प्रलय ही हो जायगा। तुम्हारा बड़ा आदर करके हमने तुमको यह बाण दिया है। यह बाण सब शस्त्रों से श्रेष्ठ है। फिर शिव ने सब देवताओं से कहा कि तुम सब अपने शस्त्र रामचन्द्र को दो; क्योंकि रामचन्द्र मेरे सबसे बड़े सेवक हैं। रावण बड़ा बलवान् है इसलिए तुम हमारी आज्ञा से वानर और रीछ आदि होकर रामचन्द्र की सहायता करो। इस बात में तुम लोगों का बड़ा लाभ है। शिव की यह आज्ञा सबने मानी। विष्णु ने नारायणशर, ब्रह्मा ने बधदण्ड और इन्द्र ने अग्निबाण दिया। इसी प्रकार सबने अपने-अपने शस्त्र रामचन्द्र को दिये। फिर रामचन्द्र ने शिव की स्तुति की और कहा कि समुद्र के पार मनुष्य का जाना कठिन है; क्योंकि उसकी चार सौ कोस की चौड़ान है। कदाचित् पार लाँघ भी जाय तो लङ्का का जीतना अति कठिन है। इसके सिवा दैत्य बड़े बलवान् हैं। उनको जीतना बड़े आश्चर्य की बात है। विशेष करके जब ये सब आपके सेवक हैं। फिर हम केवल दो मनुष्य हैं और वे असंख्य। क्योंकर हम जय पावेंगे? शिव ने कहा कि हम आप तुम्हारी सहायता करेंगे। उनके मरने का समय निकट ही है। तुम कुछ संशय न करो; क्योंकि वे धर्म के विरुद्ध हो गये हैं। यही उनके शीघ्र ही मरने का हेतु है। वे तुम्हारी सीता को उठा ले गये हैं। ब्राह्मणों को नाना प्रकार के दुःख दिये। हमने उनका पक्ष छोड़ दिया है। सब देवता, जो किष्किन्धा नगरी में बन्दर का रूप रखकर उपजे हैं, उनकी सहायता से तुम समुद्र में सेतु बाँधना और वेग ही समुद्र के पार जा रावण का बध कर सीता को लाना। रामचन्द्र ने विनय की कि यह सब कार्य तो आपके अनुग्रह से हो जायँगे, पर मेरी इच्छा है कि जो आप भी अपने

अंश से किसी को उत्पन्न करके साथ भेजें तो मेरा सब कार्य सहज में पूर्ण होगा और मुझको अपनी सिद्धि पर पूरा विश्वास होगा । शिवजी ने मान लिया और कहा कि रुद्र के अंश से हनुमान् का अवतार हो चुका है । वे हर तरह तुम्हारा काम पूरा करेंगे । तुमको कुछ श्रम न होगा । वही सब कार्य कर लेंगे । अधिक कहने से कुछ लाभ नहीं है । हम हर तरह तुम्हारा काम पूरा करेंगे । हमने अभी से सब राक्षसों को मार रक्खा है । तुमको केवल यश और कीर्ति दिलाना बाकी है ।

उन्तालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारदजी ! फिर शिवजी ने रामचन्द्र को अपनी गीता का ज्ञान दिया और आप अन्तर्धान हो गये । रामचन्द्र ने अगस्त्य के समीप जाकर यह सब वृत्तान्त कहा । अगस्त्यजी अति प्रसन्न हुए और कहा कि तुम्हारा सब कार्य सिद्ध हुआ । वास्तव में जिस पर शिवजी प्रसन्न हैं, उसका दुःख दूर होना क्या कठिन है । तुम संसार में पालन के निमित्त उनका दूसरा शरीर हो । और जो कि अब तुमने शिवजी से वरदान लिया तो अब तुम तुरन्त जाकर ऋष्यमूक पर्वत पर लक्ष्मी सहित स्थित हो जाओ । थोड़े दिन वहाँ कालक्षेप करो । वहाँ शिवजी वानर के स्वरूप से आकर तुमसे मिलेंगे । उन्हीं के द्वारा तुम्हारे सब कार्य पूरे होंगे । रामचन्द्र ने अङ्गीकार किया । ऋष्यमूक पर्वत पर जाने से हनुमान् से भेंट हुई । उन्होंने रामचन्द्र के सब कार्य किये । यहाँ तक कि रावण मारा गया और सीता को रामचन्द्र ने पाया । इतना सुन नारदजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! मेरी इच्छा है कि हनुमान्जी का वृत्तान्त जन्म से बालक्रीड़ा और अन्य चरित्रों सहित सुनूँ । और यह भी कि हनुमान् ने रामचन्द्र की क्योंकर सहायता की । ब्रह्माजी बोले कि अगले कल्प में

शिवजी ने संसार को पवित्र करनेवाली लीला करने का वानरों के कुल में अवतार लिया। इस तरह कि पहला द्वीप जम्बू के नाम से प्रसिद्ध है। उसके नव खण्ड हैं। उनमें से जिस खण्ड का नाम किम्पुरुष है, वहाँ केसरी नाम के वानरों के राजा रहते थे। वे शिवजी के बड़े भक्त, सत्यवादी और निष्पाप थे। उनकी स्त्री महासुन्दरी पतिव्रता अञ्जनी षोडश वर्ष की आयु को प्राप्त थी। एक दिन अञ्जनी सोलहों शृङ्गार किये और नाना प्रकार के उत्तम भूषण पहने पर्वत के एक शृङ्ग पर खड़ी हुई थी। उस समय एक पवन का देवता समीर, जिसका नाम प्रभञ्जन भी था, अञ्जनी को देखकर मोहित हुआ और काम की दृष्टि से अवलोकन कर अधीर हुआ। सो अपना स्वरूप छिपा अञ्जनी के शरीर में प्रवेश कर गया। अञ्जनी ने अपना शरीर कुछ भारी देखा, पर इसका कारण न जान उसने केवल यह जाना कि मानो सिवा मेरे पति के और कोई दूसरा मनुष्य मेरे शरीर को स्पर्श कर रहा है। यह जानकर कहा कि तुम कौन हो, जो मेरे शरीर को स्पर्श करते हो? हे देवता! मुझको मत छुओ। पाप छोड़ प्रकट हो अपना स्वरूप मुझे दिखाओ। यद्यपि तुम काम से भरे हुए हो, पर हमारा पतिव्रतधर्म मत छुड़ाओ। जो तुम न मानोगे तो तुरन्त ही जलकर भस्म हो जाओगे। यह अञ्जनी का वाक्य सुन प्रभञ्जन भयभीत हो अपना असल रूप धारण कर सामने आ खड़ा हुआ और कहा कि हम भली भाँति जानते हैं कि तुम पतिव्रतधर्म में दृढ़ और पापरहित हो। अच्छे चरित्र की हो। हम इन्द्र के भाई प्रभञ्जन नामक देवता संसार का उपकार करते हैं। हम संसार भर में भीतर और बाहर सब जगह जाकर पवित्र रहते हैं। हमारे स्पर्श से किसी को कुछ पाप नहीं होता। हमने सच्चिदानन्द ब्रह्म के समान तमको

आकर दर्शन दिये हैं। तुम कुछ संशय मत करो। सदाशिवजी के भजने में प्रवृत्त रहो। उनकी इच्छा बड़ी बलवती है। उसका कोई वर्णन नहीं कर सकता। यद्यपि हम कामवश तुम्हारे शरीर के भीतर प्रवेश कर गये, पर तुम मन-वच-कर्म से हम पर क्रोध मत करो। हम तुम्हारी विनती करते हैं। तुमको कुछ पाप न होगा। यह बात प्रकट है कि देवताओं की इच्छा फल दिये विना नहीं रहती। इससे तुम्हारे शङ्कर के अंश से एक बड़ा बलवान् पुत्र उत्पन्न होगा, जो शिव के समान बड़ा तेजस्वी होगा। वह हमारे समान वेगशाली और शत्रुओं के वध में बड़ा चतुर होगा। तुम्हारे कुल का कोई कपि तुम पर व्यभिचार का दोष न रक्खेगा। वह रामचन्द्र और सीता का सेवक होगा और तुमको अति आनन्द देगा। तुम्हारे तीनों प्रकार के ताप नष्ट हो जायँगे। तुम उस बालक को शिव का अवतार जानना। वह रामचन्द्र के कार्य पूर्ण करेगा। यह सब शिवजी की लीला जानना। यह कह पवन देवता अन्तर्धान हुए। उसके थोड़े दिनों के पीछे अञ्जनी गर्भवती हुई और पवन के आशीर्वाद से शिवजी अपने सर्वांश से अञ्जनी के गर्भ में आकर स्थित हुए। अञ्जनी अपने गर्भ में शिव के अंश को समझकर अति प्रसन्न हुई। दस मास के उपरान्त अञ्जनी के पुत्र उपजा, जो महा सुन्दर और तेजस्वी था। तब सब देवताओं ने आकाश में आकर दुन्दुभी बजाई। अप्सराओं ने नाचा। गन्धर्वों ने मङ्गल गीत गाये। तीनों लोकों में बालक के जन्म का आनन्द छा गया और संसार के सब कष्ट नष्ट हुए।

चालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! उस समय एक बड़ा उपद्रव हुआ। जब अञ्जनी ने देखा कि पवन के वचन के अनुसार पवन-

पुत्र में कोई शिव का मुख्य लक्षण नहीं है और उसका स्वरूप वानर के समान है, तब उसने अति दुखी होकर उसको पर्वत के एक शिखर से नीचे डाल दिया। इससे बड़ा शब्द हुआ और पर्वत खण्ड-खण्ड हो नीचे धँस गया, धरती काँपने लगी, समुद्र सूख गया और तीनों लोक विकल हो उठे। हनुमान् ने पृथ्वी पर गिरकर आकाश की ओर देखा। सूर्य के निकलने को देखकर जाना कि कोई पका हुआ फल है सो उसके निगलने की इच्छा की। उसी समय उस स्थान पर राहु आकर हनुमान् को देखकर क्रोधित हुआ। परन्तु हनुमान् ने सूर्य के रथ को चलने से रोक लिया और राहु को तृणवत् समझ उसकी ओर भी मुख फैला कर दौड़े। राहु तुरन्त भाग गया और हनुमान् ने बड़ा भयानक शब्द किया, जिससे देवताओं के लोक में हाहाकार मच गया। देवता बड़े आश्चर्य में हुए। इन्द्र ऐरावत हाथी पर चढ़कर वज्र हाथ में लिये उनकी ओर चले। इतने में हनुमान् ने अपना स्वरूप काल के समान धारण कर सूर्य के पकड़ने को अपना मुख फैलाया। पर जब इन्द्र को भी अपनी ओर आते देखा तो मुख फैला इन्द्र के पकड़ने को चले। इन्द्र ने क्रोधित होकर अपने वज्र से हनुमान् को घायल किया और हनुमान् धरती पर गिर पड़े। हे नारद! यह चरित्र शिव ने इसलिए किया कि वज्र की सिद्धि जाती न रहे। समीर अपने पुत्र को मरा हुआ जान रोने लगे। शिव का स्मरण कर वह अति दुःख से मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े और शिव की स्तुति करने लगे। उस समय सदाशिव ने आकाशवाणी में यह कहा कि तुम इतने दुखी मत हो। यह बालक हमारे अंश से उपजा है। इसको मारनेवाला तीनों भुवन में कोई नहीं है। तुम भी आठ वसुओं में से एक और हमारा अंश हो। तुमको उचित है कि

अपनी श्वास खींचकर सब ओर से अपने अंश अर्थात् वायु को खींच लो। सब देवता अपने आप दुखी हो जायँगे। तुम भली भाँति जानते हो कि भय बिना प्रीति नहीं होती। यह आज्ञा पाकर पवन प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने अंशों को खींच लिया। फिर शिव के पास आनन्द से बैठ गये। वायु के इकट्ठे होने से सब देवताओं के उदर फूल गये। संसार भर विकल हुआ। देवता, मुनि आदि ने आकर इस अकस्मात् दुःख का वर्णन किया। मैं सबको साथ लेकर क्षीरसागर में गया और विष्णु से सब वृत्तान्त कहा। विष्णु ने शिव का ध्यानकर हम सबसे कहा कि इन्द्र ने बहुत बुरा कर्म किया है, जिसके कारण पवन ने शिव की प्रेरणा से ऐसा उपद्रव मचाया है। देखो, इन्द्र ने शिव पर वज्र चलाया है। उचित है कि हम सब अब तुरन्त चलकर शिव की शरण में जायँ। यह कहा और हमारे और देवताओं के साथ शिव के पास गये। स्तुति और प्रणाम के उपरान्त कुछ लज्जा के साथ देवताओं का उपद्रव सुनाया। शिव ने हँसकर कहा कि बहुत कारणों और बहुत कार्यों के लिए हनुमान् उपजे हैं। वे हमारे अंश और पवन के पुत्र हैं। उनको इन्द्र ने मूर्खता से मारा है। उत्तम है कि पहले पवन को प्रसन्न करो। फिर हनुमान् के पास चलकर उनको आशीर्वाद दो। ऐसा ही किया गया। हनुमान् शिव की कृपादृष्टि के पड़ते ही उठ खड़े हुए। उनको देखकर सब देवता और मुनि आदि और सबसे अधिक पवन प्रसन्न हुए। शिव की आज्ञा को स्मरणकर सब देवता आदि हनुमान् को वर देने लगे।

इकतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! सबसे पहले विष्णु ने पवन की ओर देख हनुमान् को यह वर दिया कि तुम्हारा बालक

अमित बलशाली होकर इन्द्र आदि सकल देवताओं के कार्य के निमित्त हमारे दुःखों के समूह को दूर करे। उसके ऊपर सुदर्शन चक्र भी निष्फल हो। मैंने कहा—हे पवन! तुम्हारे पुत्र को कोई हमारी फाँसी से भी न बाँध सकेगा। वह तीनों लोकों में निर्भय रहकर सबके दण्ड से बचा रहे। सूर्य ने कहा कि हमसे भी अधिक इसका तेज और बल हो। हम इसको शिव का अवतार समझ सब विद्या पढ़ा देंगे। इन्द्र ने कहा कि इसके शरीर पर वज्र भी अपना प्रभाव न दिखा सकेगा। यह कुलिश अर्थात् वज्र से घायल हुआ है, इससे इसका नाम हनुमान् हो। अग्नि ने कहा कि इसकी देह में अग्नि अपना प्रभाव न करे। यमराज बोले कि हमारा दण्ड भी इस पर निष्फल होगा। वरुण बोले कि यह जल में कभी न डूबेगा। निर्ऋति बोले कि इस पर हमारा शस्त्र कुछ काम न करे। पवन ने कहा कि यह हमारा पुत्र हमसे भी अधिक हो। कुबेर बोले कि इसके सब कार्य पूर्ण हों। ईश अर्थात् रुद्र बोले कि यह सबसे अधिक बलवान् होगा। चन्द्रमा ने कहा कि इसको तीनों लोकों में अधिक आनन्द प्राप्त होगा। शेष आदि जो नागों में सबसे बड़े हैं, उन्होंने कहा कि इस पर कोई विष असर न करेगा। अन्य देवता बोले कि इसको हमारे शस्त्रों से कुछ भय न होगा। मुनीश्वर बोले कि यह बालक ऊर्ध्वरेता हो। लोहे के समान इसका शरीर अति दृढ़ हो। किसी के हाथ से यह न मरेगा। यह शिव का अवतार है। रामचन्द्र के कार्यों को पूरा कर उनके दूत के नाम से प्रसिद्ध होगा और उनके दुःख दूर करेगा। यह सुनकर विष्णु और मैं, सबों ने हनुमान् को अपने हृदय से लगा लिया। सबने पवन की ऐसा बालक पाने के कारण बड़ी प्रशंसा की। फिर सबने हनुमान्‌जी की स्तुति की। तब शिव ने कहा कि राम अवतार के

लिए हमने कपि का अवतार लिया है । सो रामचन्द्र के कार्य कर उनका प्रेम हम सबको दिखा देंगे कि रामचन्द्र हमको कितने प्यारे हैं। हमारे इस प्रकार के अवतार धारण करने से चाहे हमको कोई हँसे या कुछ कहे, पर हमको अपने भक्तों के कार्य अवश्य करने हैं। फिर शिव ने पवन से कहा कि हम प्रतिदिन तुम्हारे पुत्र की रक्षा करेंगे। उसको कुछ कष्ट न होगा । हमारे त्रिशूल से भी उसकी मृत्यु न होगी। यह लीला कर शिव और सब देवता अन्तर्धान हो गये।

बयालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद ! सब देवताओं के अन्तर्धान होने के अनन्तर पवन हनुमान् को गोद में लेकर अञ्जनी के पास गये और हनुमान् को अञ्जनी की गोद में देकर सब कथा कह अन्तर्धान हुए। अञ्जनी ने हनुमान् को अपने स्तनों से दूध पिलाया और केसरी ने भी हनुमान् को देखकर बहुत आनन्द मनाया। हनुमान् के खेल-कूद को देखकर दोनों प्रतिदिन प्रसन्न रहा करते। थोड़े दिनों में हनुमान् इतने बलिष्ठ हुए कि पृथ्वी से उड़कर, आकाश में जाकर फिर धरती में कूद पड़ते थे । कभी पवन और कभी सूर्य के पास जाकर खेल करते थे। सितारों को खिलौना समझ पकड़ लेते थे। तब पवन मना करता। वह चन्द्रमा को चटुवा के समान चाटते और नट के समान आकाश में नाचते। कभी गङ्गा, जो आकाश में हैं, उसमें स्नानकर अपनी पूँछ फटकारते और वह धरती तक आ जाती। पर्वतों के तृण उड़ जाते थे। हनुमान् के ऐसे चरित्र देखकर देवता और मुनि अति आश्चर्य में होते थे। एक दिन हनुमान् मुनियों के यहाँ गये, पर किसी ने उनको न पहचाना। उनके पराक्रम के खेल देख सब कहने लगे कि यह कौन और किसका पुत्र है? अभी तो यह

दशा है, आगे न जानिये क्या करेगा। इससे उचित है कि इसको सब मिल शाप दें कि इसका भय जाता रहे। ऐसा विपरीत विचार मन में लाकर मुनियों ने हनुमान् को यह शाप दिया कि हे वानरबालक, मूर्ख ! तुझे अपने बल पर इतना घमंड है कि उचित-अनुचित का विचार नहीं करता। तू प्रेतों और भूतों के समान कार्य करता है। हमारे स्थानों में आकर उपद्रव करता है। तेरी बुद्धि जाती रही। अब तुझको तेरा बल भूल जायगा। यह शाप हनुमान् ने सुना और कुछ विचार न किया। इतने में आकाश-वाणी हुई कि हे मुनियो ! जो शाप तुमने हनुमान् को दिया, यह तुमने अच्छा नहीं किया। यह हनुमान् शिव का अवतार हैं; तुम अपने तप का अहंकार करके भूल गये। यह रामचन्द्र के निमित्त अवतार हुआ है। अब विष्णु के कार्य कौन करेगा ? इससे तुम अपने शाप का खण्डन करो। यह सुन सब मुनीश्वरों ने शिव का अवतार पहचाना और कहा—हे शिव के अवतार हनुमान् ! हमारे अपराध क्षमा करो। अब हम अपना शाप इस तरह खण्डन करते हैं कि जब तक तुमको रामचन्द्र न मिलेंगे, तब तक तुम इस अपने बल को भूले रहोगे। यह कहा और फिर बोले कि अब तुम सूर्य के पास जाकर विद्या सीखो। हनुमान् ने माता-पिता के समीप जा यह सब चरित्र कहा और माता-पिता की आज्ञा ले सूर्य के पास जा विद्या पढ़ने लगे। थोड़े दिनों में सब विद्या सीख गये। फिर सूर्य से कहा कि जो उचित हो, वह हमसे गुरुदक्षिणा माँग लो। सूर्य ने हनुमान् को शिव का अवतार जान स्तुति के अनन्तर कहा कि हे हनुमान् ! हम तुम्हारा मुख्य वृत्तान्त जानते हैं। तुम शिव के अवतार हो। तुमने रामचन्द्र के लिए अवतार धारण किया है। तुम पम्पापुर में जाकर बालि और सुग्रीव जो दोनों भाई हैं, उनके पास रहो। सुग्रीव हमारा पुत्र है,

उसका पक्ष लेना। वहीं तुमको रामचन्द्र आकर मिलेंगे। हमको यही गुरुदक्षिणा चाहिए। यह सुन हनुमान् ने माता-पिता के पास आकर यह सब वृत्तान्त कहा। वह सुन प्रसन्न हुए और कहा कि तुम शिवअवतार होकर हमारे घर उपजे। हमारे धन्य भाग्य हैं। हम पर ऐसी कृपा रखना कि हम पर माया अपना बल न दिखा सके। अब तुम जाकर अपने गुरु की आज्ञा का पालन करो; क्योंकि जिस कार्य को उपजे हो, उसे पूर्ण करना उचित है। यह आज्ञा माता-पिता से पाकर हनुमान् अतिप्रसन्न हुए।

तेंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हनुमान् माता-पिता की आज्ञा पा उनको प्रणाम कर पम्पापुर को गये। चलने में कुछ दुःख न हुआ। गङ्गा को सुगमतापूर्वक उल्लंघन कर, चित्रकूट को प्रणाम कर, रेवा और नर्मदा से पार हो, अगस्त्य मुनि के समीप जा, उनकी संगति की। उन्हीं से रामचन्द्र की भक्ति की आज्ञा पाकर पम्पापुर पहुँचे। घर के विवाद से सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वत पर चले गये, जहाँ हनुमान् को भी जाना पड़ा। जब रामचन्द्र और लक्ष्मण सीता के वियोग में दुखी होकर उनके निकट पहुँचे तो हनुमान् अगवानी कर उनको ऋष्यमूक में लाये और सुग्रीव के साथ मित्रता कराकर हर प्रकार से रामचन्द्र को प्रसन्न किया। रामचन्द्र के हाथ से बालि का वध कराया। सीता को ढूँढ़ने लगे। समुद्र के पार उतर लङ्का में पहुँचे। बड़ी लीला कर रामचन्द्र को सीता का हाल सुनाकर धैर्य दिया और सीता से बिदा होकर रावण की पुष्पवाटिका को उजाड़ डाला। सब दैत्यों को मार अक्षयकुमार का भी वध किया और अति सुगमता से लङ्का को जलाया, जिसमें विष्णु के भक्तों के घर बच गये। रावण के गर्व को तोड़ समुद्र से उतर वानरों के यूथों से सब वृत्तान्त वर्णन

किया। मार्ग में उद्यानों को उजाड़ते रामचन्द्र के समीप पहुँचे और उन्हें सीता की चूड़ामणि दी। रामचन्द्र ने यह दशा देख कहा कि हे हनुमान् ! तुम शिव के अवतार और हर प्रकार हमारे हितैषी हो। हमारे अधीन हो तुमने दुःख दूर किये। खेद है कि हमने अज्ञान अवस्था में तुमको अपना दूत बनाया। यह अपराध क्षमा करना। यह दशा देख सबको ज्ञान हुआ और सबने हनुमान् को प्रणाम किया। हनुमान् ने जाना कि यह सब हमको शिव का अवतार समझ लेंगे, फिर आज्ञा देने में ढील करेंगे तो कोई कार्य न होगा। रघुवीर का कार्य क्योंकर पूरा होगा। तब ऐसी माया की कि सबको यह बात भूल गई। उनको इतना स्मरण रहा कि यह बड़े बलिष्ठ हैं। फिर रामचन्द्र ने हनुमान् को अपने अङ्ग से लगा लिया और लङ्का जाने की तैयारी की। समुद्र के तट पर पहुँचे। समुद्र को देख आश्चर्य में हुए, पर किसी को श्रम करना न पड़ा। महावीर ने सेतु बाँध दिया। उसी स्थान पर रामचन्द्र ने शिव का लिङ्ग स्थापित किया और उसका नाम रामेश्वर रक्खा। उसी सेतु के मार्ग से श्रीरामजी ने अपनी सेना सहित सागर नाँघकर रावण पर चढ़ाई की। दोनों ओर बड़ा युद्ध हुआ। हनुमान् ने अकेले बहुतसी दैत्यसेना मार रामचन्द्रकी सेना को बचाया। जब लक्ष्मण शक्ति से घायल हुए, तब रामचन्द्र भी शोक से दुखी हुए। रात बीतने पर लक्ष्मण के जीने में सन्देह था सो तुरन्त हनुमान् जाकर दैत्यों को जीत ओषधियों का पर्वत उठा लाये और लक्ष्मण को जिला दिया। उन्होंने इतनी रामचन्द्र की सहायता की कि रावण का सब तेज नष्ट हो गया और उसके कुल-परिवार-पुत्र-कलत्रों सहित रावण का वध किया। जब युद्धस्थल से महिरावण राम और लक्ष्मण को पकड़ ले गया, तब रामचन्द्र ने हनुमान् का स्मरण किया।

हनुमान् ने जाकर महिरावण की भुजा उखाड़ी। फिर सबको जीत रामचन्द्र सीता को ले अयोध्या में आये। इसी प्रकार महावीरजी ने बहुत से चरित्र कर दैत्यों का वध किया। यह चरित्र जो कोई सुने-सुनावेगा, वह लोक-परलोक में बड़ा आनन्द पावेगा।

चवालीसवाँ अध्याय

वेश्यानाथ अवतार का वर्णन

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! अब हम वेश्यानाथ अवतार का बखान करते हैं। नन्दीग्राम जो संसार में प्रसिद्ध है, वहाँ नन्दा नाम की वेश्या, जो अप्सराओं से भी अधिक सुन्दरी तथा गान-विद्या में अति प्रवीण शिव की भक्ति में अति चतुर थी, प्रति दिन भस्म लगाती और भूषणों के बदले रुद्राक्ष पहनती और शिव का यश गाती थी। उसके घर में एक बन्दर और एक कुत्ता था। उसने उनके शरीर में भी रुद्राक्ष पहनाया। दोनों को शिव के मन्दिर में नचाती, आप ताल देकर गाती। इसी प्रकार वह नित्य प्रति उत्सव रचती थी। जब कुछ समय बीता तो शिव प्रसन्न हुए और वेश्यानाथ का तनु धार उसकी परीक्षा के निमित्त त्रिपुण्ड्र मस्तक में धारा, रुद्राक्ष भूषणों के बदले पहने। निदान हर प्रकार शिव के वस्त्राभूषणों से अपने को सजाया और शिव-शिव कहते हाथ में कङ्कण पहनकर महानन्दा के घर आये। ऐसे वस्त्र देख महानन्दा ने बड़े आदर से वेश्यानाथ को ठहराया। हाथ में जड़ाऊ कङ्कण देख उन्हें लेने की इच्छा की और महा-लोभ से कहने लगी कि तुम्हारे हाथ के कङ्कण को देखकर हमारी बुद्धि जाती रही है। यह तुम्हारा कङ्कण स्त्रियों के योग्य है। वेश्यानाथ ने कहा कि तम इसका मोल क्या दोगी? महानन्दा ने कहा कि हमारे कुल में व्यभिचार पाप नहीं है, बरन् यही कुलधर्म है। जो तुम ये कङ्कण मुझको दोगे तो मैं तीन रात तक

तुम्हारी स्त्री होकर बिहरूँगी। यह सुन वेश्यानाथ बहुत हँसकर बोले कि जो तुमने कहा, उसको हमने ठीक समझा। यह कङ्कण लो। तुम तीन दिन तक हमारी स्त्री हो चुकीं। हमारा हृदय तीन बार छुओ कि तुम्हारी प्रतिज्ञा पक्की समझी जाय। महानन्दा ने माना और तुरन्त वह कङ्कण दे दिया। फिर वेश्यानाथ ने बड़ा आनन्द मान अपना सुवर्ण का लिङ्ग, जो रत्नों से जड़ा था, महानन्दा को अपनी स्त्री समझ सौंपा और कहा कि इसको रक्षा-पूर्वक रखना। मुझको यह प्राण से भी अधिक प्रिय है। इसके न होने से जीने की आशा नहीं है। महानन्दा ने वह लिङ्ग ले लिया और शिवमन्दिर के भीतर उसको स्थापित कर दिया। फिर अपने घर में वेश्यानाथ के साथ शृङ्गारकर आधीरात तक बातें करती रही। फिर शिव ने यह चरित्र किया कि अकस्मात् अग्नि उपजकर शिवमन्दिर में लग गई। वायु वेग से चली और वह लिङ्ग की मूर्ति, जो वेश्यानाथ ने सौंपी थी, जल गई, पर कुत्ता और बन्दर दोनों बचे रहे। यह दशा देख महानन्दा और वेश्या-नाथ दोनों अति दुखी हुए। महानन्दा कुछ भेद न जानकर रोने लगी। वेश्यानाथ ने भी रोकर कहा कि हे वेश्या! अब मैं जीवित न रहूँगा, क्योंकि मैं पहले ही कह चुका हूँ कि जब यह मूर्ति न रहेगी तो मैं न जीऊँगा। मेरा स्वामी जब जल गया तो मेरे जीने को धिक्कार है। मेरे लिए चिता बनाओ। जो ब्रह्मा और विष्णु भी आकर हमको मना करेंगे तो भी हम न मानेंगे। ऐसे हठ को देख महानन्दा ने अति लज्जापूर्वक रोते-पीटते चिता बनाई और वेश्यानाथ सबके देखते-देखते उस चिता में आग जलाकर उसमें बैठ गये। तब महानन्दा ने सबको बुलाकर कहा कि मैं कङ्कण लेकर तीन दिन के निमित्त इसकी स्त्री हुई थी। इस समय मेरा यह पति जला जाता है। मैं भी अपने धर्म में स्थिर

रहने के लिए इसके साथ सती हूँगी। यह सुन उसके बन्धुओं ने मना किया, पर उसने कुछ न सुना। अपना धन ब्राह्मणों को दे शिव का ध्यान कर तीन परिक्रमा करने के अनन्तर चाहा कि चिता में प्रवेश करूँ। तब दीनदयालु शिवजी अपने असली रूप से प्रकट हुए। उसे रोका और अपनी कृपादृष्टि से उसकी ओर देख उसके पाप नष्ट कर दिये। यह रूप देख महानन्दा आश्चर्य में हुई। शिव हँसे और हाथ पकड़ कहा कि तुम कुछ आश्चर्य मत करो। हमने तुम्हारी परीक्षा के निमित्त यह लीला की है। तुम्हारा ऐसा भाव देख हम प्रसन्न हैं। जो इच्छा हो, वह वर लो। महानन्दा बोली——मुझे तीनों लोकों के आनन्द से कुछ काम नहीं। केवल अपने चरणों की भक्ति कृपा कर कुल परिवार सहित मोक्ष दे अपने लोक में स्थान दीजिये कि आवागमन से छूटूँ। यह सुन शिव ने गणों को स्मरण किया। वे विमान ले आये। शिव ने अपने सामने सबके साथ महानन्दा को विमान पर आरूढ़ कराया और बड़े उत्सव से अपने लोक में भेज दिया। वहाँ वे सब गिरिजा की सेवा करने लगे। यह पवित्र कथा सब पापों को दूर करनेवाली और दोनों लोकों में आनन्द देनेवाली है। यह हर प्रकार की चिन्ता दूर कर अति आनन्द देती है।

पैंतालीसवाँ अध्याय

द्विजेश अवतार का वर्णन

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद ! अब हम द्विजेश अवतार का वर्णन करते हैं। राजा भद्रायुष के लिए शिव ने ऋषभ का अवतार लेकर उसकी रक्षा और पालन किया, यह वर्णन हम कर चुके हैं। उसी भद्रायुष के धर्म की परीक्षा के निमित्त दूसरी बार शिव ने द्विजेश अवतार धारण किया। शिव अहंकार को नष्ट

करते और भक्तों को मुक्ति देते हैं। वह नाना प्रकार के रूप धारणकर भक्तों को पालते और शत्रुओं के वध का कारण होते हैं। शिव के समान तीनों लोकों में और कोई स्वामी नहीं है। सब वेद और पुराण उनको सबसे श्रेष्ठ कहते हैं। उन्हीं के अधीन तीनों लोक, देवता और दैत्य आदि सब हैं। हे नारद! राजा भद्रायुष अति प्रतापवान् होकर शिव की पूजा में अति विख्यात हुआ। उसने अपने को बन्दि से छुड़ा लिया और ऋषभ से वर पाकर सब शत्रुओं को जीत आप राज्य करने लगा। राजा चन्द्राङ्गद की कन्या कीर्तिमालिनी के साथ उसका विवाह हुआ। एक दिन भद्रायुष अहेर के लिए रानी सहित वन में गये और वसन्त ऋतुभर वहाँ रुचिपूर्वक विहार किया। ऐसे समय में शिव ने चाहा कि राजा की परीक्षा लें। तब शिव ने स्त्री सहित ब्राह्मण का स्वरूप रख एक माया का सिंह रचा, जो ब्राह्मण और ब्राह्मणी पर लपका। वे दोनों भयभीत होकर भागे। राजा भद्रायुष को सुनाकर जोर से रोने लगे। भद्रायुष के पास गिरते-पड़ते आकर कहा कि हे राजन्! हमको बचा लो। हम तुम्हारी शरण में आये हैं। यह सिंह जो चला आता है, हमारे भोजन की इच्छा रखता है। इससे हमको बचाओ। यह हमको खाने न पावे। यह सुन राजा भद्रायुष ने अपना धनुष उठा लिया। अभी तीर चलाया भी न था कि सिंह ने ब्राह्मण की स्त्री को पकड़ लिया। स्त्री हाय-हाय करके बहुत रोई। सिंह ने निर्भय होकर उसको खा डाला। यद्यपि राजा ने अपने बहुत से बाण उस पर मारे, पर उसे कुछ दुःख न हुआ। वह वहाँ से निकल वन को गया। ब्राह्मण ने संसारी रीति के अनुसार बड़ा खेद किया और देर तक रोता रहा। फिर राजा भद्रायुष से कहा कि हे राजन्! तेरे सब बाण और शस्त्र निष्फल हुए। तुझे धिक्कार है। बारह सहस्र हाथियों का

बल क्या हुआ ? तेरा तेज जलकर भस्म हो गया। वह तेरा खड्ग, शंख और कपाल कहाँ चला गया; तेरा भीष्म प्रभाव क्या हुआ ? तेरा विद्याबल कहाँ गया ? क्या उनमें से कुछ भी नहीं है ? न कुछ तेरे पास उपाय है ? क्या कोई भी युक्ति तेरे पास सिंह के निवारण की न थी ? वेदों में लिखा है कि क्षत्रिय ब्राह्मणों की रक्षा करें। जब अपना कुल-धर्म न रहा तो वह मनुष्य क्या जीता है ? यह सुन राजा बहुत पछताया और बहुत सोच-विचार कर दीन हो गया। कहा—वास्तव में मेरा सब बल नष्ट हो गया। मेरे भाग्य लौट गये। मुझे बड़ा पाप हुआ। मेरा कुलधर्म भी जाता रहा। मैं जानता हूँ कि मेरा राज्य नष्ट हो गया। इससे उचित है कि इस ब्राह्मण को प्रसन्न करूँ, चाहे इस इच्छा में प्राण भी जायँ। यह विचार राजा ने ब्राह्मण के चरण पकड़ कहा कि अब तुम दुःख मत करो। मुझ पर अनुग्रह कर जो इच्छा हो, मुझसे ले लो। मैं अपना सब राज्य, स्त्री तुमको अर्पण करता हूँ और मैं भी सेवा के निमित्त उद्यत हूँ। ब्राह्मण ने कहा कि अन्ध को दर्पण, भीख माँगनेवाले को घर, मूर्ख को पुस्तक और स्त्री-रहित पुरुष को धन से क्या प्रयोजन है ? जब मेरी स्त्री नहीं है तो मुझे राज्य से क्या प्रयोजन ? मुझको अपनी स्त्री दो, और कुछ नहीं चाहता हूँ। भद्रायुष ने कहा कि यह कौन धर्म है ? तुमने इसको कहाँ से सीखा ? क्या तुम्हारे गुरु ने यही धर्म तुम्हें बताया ? तुम नहीं जानते कि परस्त्री की संगति दोनों लोक में तीनों ताप देती है। संसार में सब वस्तुओं के दाता हैं। कइयों ने अपने शरीर के देने में भी शङ्का नहीं की। पर स्त्री के देनेवाले को नहीं देखा, क्योंकि परस्त्री के साथ भोग करने से जो पाप होता है, वह किसी उपाय से नहीं जाता। ब्राह्मण ने कहा कि हम ब्राह्मण के वध से जो पाप होता है, उसको भी दूर कर

सकते हैं, परस्त्री के साथ भोग करना क्या ऐसा बड़ा पाप है। इससे जो तुमको नरक से बचने की इच्छा हो तो अपनी स्त्री हमको दो। यह वचन सुन राजा ने मन में अति भय से विचार किया कि रक्षा न करने के बराबर राजा के लिए दूसरा बड़ा पाप नहीं है। इसलिए स्त्री के दान से दूसरे बड़े पाप से बचना उचित है। स्त्री के दान के उपरान्त मैं भी अग्नि में जल जाऊँगा। यह सोच तुरन्त ही अपनी स्त्री ब्राह्मण को दे दी और आप शुद्ध होकर देवताओं को प्रणाम किया। फिर शिवजी को स्मरण कर शिवजी का नाम जपा और अग्नि की प्रदक्षिणा कर चाहा कि उसके भीतर गिरूँ तो तुरन्त ही शिवजी अपने मुख्य लक्षणों के साथ प्रकट हुए, जिनको देख भद्रायुष अति प्रसन्न हुआ। आकाश से पुष्पों की वर्षा हुई। बिष्णु मैं देवताओं सहित वहाँ पहुँचे। राजा ने स्तुति की। शिवजी ने प्रसन्न होकर कहा कि वर माँगो। हमने तुम्हारी परीक्षा के निमित्त ब्राह्मण का रूप रखा था। वह स्त्री, जिसको सिंह ने खाया, गिरिजा हैं। हमने माया का सिंह रचा था। अब तुम कुछ सन्देह मत करो। तुम हमारे परमभक्त हो। भद्रायुष बोले कि हमको तो यही बड़ा वर मिला है कि आपने प्रकट हो दर्शन दिये। पर यह वर माँगता हूँ कि मुझको अपने कुल सहित अपना गण बना लो जिसमें आपकी सेवा में प्रवृत्त रहूँ। इसी शरीर से मैं आपके लोक को चलूँ। रानी ने कहा कि मेरी यह इच्छा है कि मेरे माता-पिता भी आपकी सेवा में पहुँचें। शिवजी ने माना। फिर यह वर दे शिव अन्तर्धान हुए। राजा भद्रायुष बहुत दिनों तक राज्य कर उसी शरीर से अपनी स्त्री, माता-पिता और पुत्र सहित शिवलोक में पहुँचा। इसी प्रकार यही गति राजा चन्द्राङ्गदको स्त्री सहित प्राप्त हुई। जो इस चरित्र को पढ़े व सुनेगा, वह शिव के लोक में पहुँचेगा। अठहत्तरवाँ अवतार पूर्ण हुआ।

छियालीसवाँ अध्याय

जितनाथ अवतार का वर्णन

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! अब हम जितनाथ अवतार का वर्णन करते हैं। अर्बुदाचल पर्वत में एक भील अपनी स्त्री सहित रहता था। वह शिवजी का बड़ा भक्त था। एक दिन वह भील जीविका के निमित्त कहीं बाहर चला गया। स्त्री को घर में छोड़ा। शिवजी ने परीक्षा के निमित्त यती का रूप धरा और संध्या को भील के घर में गये। तब भील भी आया। वह यती को देख प्रसन्न हुआ और प्रणाम के उपरान्त पूजा की। तब यती ने कहा कि हे भील! कोई अच्छा स्थान हमारे रहने को दो। हम केवल रात भर रहकर चले जावेंगे। भील ने कहा कि हमारा घर बहुत छोटा है। सिवा दो मनुष्यों के तीसरा नहीं रह सकता। यह सुन यती चलने लगे। भील की स्त्री ने भील से कहा कि यती के ठहरने के लिए स्थान दो, नहीं तो बड़ा अधर्म होगा। तुम दोनों घर के भीतर जाकर रहो। मैं बाहर रहूँगी। तब भील ने कहा कि स्त्री का बाहर रहना और यती का फिर जाना, दोनों बुरी बातें हैं। उचित यह है कि मेरी स्त्री और यती घर के भीतर रहें; मैं बाहर अपना निर्वाह कर लूँगा। सो भील ने ऐसा ही किया कि दोनों को घर में रख आप बाहर रहा। वह शस्त्र बाँध रात भर घर के चारों ओर पहरा देता रहा। उस रात्रि को एक महाभयानक सिंह ने अपने और सिंहों समेत आकर भील को घेर लिया। भील ने उनके साथ युद्ध कर बहुतेरों को मार डाला। निदान सिंहों ने भील को मार उसका सब मांस खा लिया। केवल हड्डियाँ पड़ी रह गईं, जिनको देख यती ने बड़ा खेद किया। भीलनी ने कहा कि तुम कुछ चिन्ता मत करो। वह बहुत धन्य है, जिसने ऐसी मृत्यु पाई। शिवजी अति प्रसन्न

होंगे। मैं भी चिता लगाकर सती हूँगी; क्योंकि स्त्रियों का यही धर्म है। भीलनी चिता बना अपने पति की हड्डियों के साथ अग्नि में बैठ गई। तब सब देवता वहाँ आये। यती ने भी अपना स्वरूप अपने मुख्य लक्षणों समेत बदला और कहा कि तुम धन्य हो। हम प्रसन्न हैं। जो चाहो, वर लो। भील की स्त्री प्रसन्नता से मूर्च्छित हो गई। उसकी जिह्वा से कुछ न निकला। तब शिवजी बोले कि हे भीलनी! वर माँग ले। फिर कहा कि हमारा यती का स्वरूप हंस होकर तुम दोनों की भेंट करा देगा। तुम दोनों दूसरा शरीर धारण कर बड़ा आनन्द पाओगे। यह इस तरह कि तुम्हारा पति मगधदेश में राजा वीरसेन का पुत्र हो नल के नाम से प्रसिद्ध होगा। वह पृथ्वी भर का स्वामी होगा। तुम राजा भीम, जो विदर्भदेश का स्वामी है, उसकी पुत्री होकर दमयन्ती के नाम से विख्यात होगी। तुम दोनों परस्पर विवाह कर संसारी भोग भोगकर अन्त में मुक्ति पाओगे। यह कह शिवजी तुरन्त अन्तर्धान हो गये। भील राजा नल होकर तीनों लोकों में प्रसिद्ध हुआ और भीलनी दमयन्ती हुई। उसी यती के रूप हंस ने शरीर रख नल का विवाह दमयन्ती से करा दिया। उनके समान किसी ने राज्य नहीं किया। दोनों बड़े शिवभक्त हुए। उनसे इन्द्रसेन राजा हुआ। इन्द्रसेन से चन्द्राङ्गद, जो शिव का बड़ा भक्त था। उसकी स्त्री का नाम सीमन्तिनी था। वह अपने पति से भी अधिक शिव की भक्ति करती, सोमवार को व्रत रख शिव को पूजती और ब्राह्मणों को स्त्री सहित शिव और पार्वती जान बहुत प्रेम से उनकी सेवा करती थी। यह कथा प्रसिद्ध है। यह यती का अवतार अति पवित्र है और हंस अवतार का चरित्र भी बड़ा शुद्ध है। जो इन दोनों अवतारों की कथा सुनेगा अथवा पढ़ेगा, उसको दोनों

लोकों में आनन्द मिलेगा और मुक्ति होगी। उन्नासीवाँ अवतार पूर्ण हुआ।

सैंतालीसवाँ अध्याय

कृष्णदर्शन अवतार का वर्णन

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! अब हम कृष्णदर्शन अवतार का वर्णन करते हैं। सूर्य के पुत्र मनु के इक्ष्वाकु आदि दस पुत्र उपजे। मनु का नवाँ पुत्र, जिसका नाम वाह्लीक था, विद्या पढ़ने को गुरु के यहाँ गया। वह बहुत समय तक गुरु के यहाँ रह विद्या पढ़ता रहा। इतने में वाह्लीक के न होने पर घर में इक्ष्वाकु आदि सब भाइयों ने जुदा होकर अपते पिता के धन को बाँट लिया। पर वाह्लीक का कुछ भाग न लगाया। जब वाह्लीक घर आया और सबको अपना-अपना भाग लिये देखा तो उनसे पूछा कि हमारे भाग में क्या आया है? क्योंकि हम भी भाग पाने के योग्य हैं। भाइयों ने उत्तर दिया कि बाँटने के समय तुम्हारा भाग हम सब भूल गये। अब भाग नहीं मिल सकता। हमने पिता को तुम्हारे भाग में दिया। उन्हीं को ले लो। यह सुनकर वाह्लीक ने अति आश्चर्यपूर्वक अपने पिता से कहा कि भाइयों ने हमें भाग नहीं दिया, कहा कि अपने पिता को अपने भाग में लो। इससे मैं आपके पास आया हूँ। यह सुन मनु अचम्भा कर चुप हो रहे और अपने पुत्र को धर्म में दृढ़ समझ शिवजी का ध्यान कर कहा कि उनके वचन दुःखदायक हैं। उनको तुम मत मानो। मैं कोई ऐसी वस्तु नहीं हूँ, जिससे तुमको आनन्द हो या तुम्हारे खाने-पीने में आऊँ। उन्होंने तुमसे बड़ा छल किया, जो मुझे तुम्हारे हिस्से में दिया। पर जो उन्होंने मुझे तुम्हारे भाग में दिया तो बहुत अच्छा, मैं सदाशिवजी का ध्यानकर तुमको उपाय बताता हूँ। अङ्गिरस मुनि एक बड़ा भारी यज्ञ कर रहे हैं, उनको

छः दिन से यज्ञ की युक्ति भूल गई है, जिससे यज्ञ पूरा नहीं होता। इसलिए तुम वहाँ जाकर उनको उपदेश करो। वे तुम्हारे उपदेश से यज्ञ पूर्ण कर जो धन यज्ञ से शेष रहेगा, वह सब तुमको देंगे। सो वाह्लीकने ऐसा ही किया और अङ्गिरसमुनि का यज्ञ दो सूक्त पढ़कर पूर्ण कराया। अङ्गिरस शेष धन वाह्लीक को दे आप वैकुण्ठ को चले गये। पर जब वाह्लीक उस धन को लेने लगे तो शिवजी ने यह चरित्र किया कि अति उत्तम सुन्दर-स्वरूप रख कृष्णादर्शन के नाम से प्रसिद्ध हो परीक्षा के निमित्त वाह्लीक के पास आकर कहा कि तुम कौन बुद्धिहीन मनुष्य हो, जो हमारा धन लेते हो? तुमको किसने भेजा है? सच सच कहो। वाह्लीक बोले कि अपने पिता की आज्ञा से हम यहाँ आये हैं। वैकुण्ठ जाते समय अङ्गिरस ने शेष धन हमको दिया है। यह सुन कृष्णादर्शन ने बड़ा झगड़ा किया। कहा कि तुम्हारा पिता अति धर्मवान् है। तुम उसके पास जाकर पूछो, जो वह कहेगा, हम मानेंगे। वाह्लीक ने फिर मुनि के पास जाकर कहा कि हमको ब्राह्मण-धन देकर आप वैकुण्ठवासी हुए। पर एक मनुष्य उत्तर से आकर वह धन हमको लेने नहीं देता। वह कहता है कि यह धन मेरा है। तुझे किसने दिया है? जब मैंने आपका नाम बताया तो कहा कि उनके पास जाकर पूछो। जो कहेंगे सो मानूँगा। तब मुनि ने आश्चर्य कर शिव का ध्यान किया और शिवजी की लीला वाह्लीक को बताई। फिर वाह्लीक से कहा कि वह सदाशिवजी हैं। जब यज्ञ की शेष सामग्री रह जाती है तो वह सदाशिवजी की कही जाती है। वे रूप रख तुम पर अनुग्रह करने को आये हैं। तुम जाकर तुरन्त उनकी सेवा कर उनको प्रसन्न करो। वे सबके स्वामी हैं, जिनका ब्रह्मा, विष्णु भी ध्यान करते और सब देवता, मुनि और सिद्ध चारण सेवा से मनोरथ पाते

हैं। यह कह मुनि अपने पुत्र वाह्लीक सहित तुरन्त वहाँ गये। वाह्लीक ने हाथ जोड़ विनती की कि हमारे पिता ने तुमको जान लिया कि तुम सदाशिव हो। तीनों लोक सब तुम्हारे अधीन हैं। मैंने आपको नहीं जाना और तकरार की। मेरे अपराध क्षमा करो और मुझ पर प्रसन्न होकर सब धन ले लो। फिर वाह्लीक के पिता श्राद्धदेव मनु ने हाथ जोड़ बहुत स्तुति की। इतने में विष्णु ने हम और सब देवताओं समेत आकर शिवजी की स्तुति की और ऐसे स्वरूप को देख सबने बड़ा आनन्द मान बड़ा उत्सव किया। फिर उसी शिव के अवतार कृष्णादर्शन ने वाह्लीक से कहा कि हम तुम्हारी सत्यता देखकर बहुत प्रसन्न हुए। हमने सब धन तुमको दे दिया। तुम इसको लो। तुम अपने पिता सहित मुक्ति पाओगे। तुमको बड़ा ज्ञान प्राप्त होगा। यह कह अन्तर्धान हुए। सब देवता आदि भी अपने-अपने स्थानों को चले गये। श्राद्धदेव मनु वाह्लीक सहित अपने स्थान में पहुँचे। वाह्लीक चक्रवर्ती राजा हुआ। उसने शिवजी का बड़ा ही तप किया और संसार में सब प्रकार के भोग भोगकर अन्त में शिवपुरी को पहुँचा। वह गणों में गिना जाकर शिवजी की सेवा में प्रवृत्त रहा। जो इस चरित्र को सुनेगा या पढ़ेगा, वह दोनों लोकोंमें प्रसन्न रहेगा।

अड़तालीसवाँ अध्याय

भिक्षुनाथ अवतार का वर्णन

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! अब हम भिक्षुनाथ अवतार का वर्णन करते हैं। पूर्व में सत्यरथ नाम एक राजा शिवजी का बड़ा भक्त हुआ। वह विदर्भ देश में राज्य करता था। एक समय तक वह विदर्भ देश में न्याय के साथ राज्य करता रहा। एक दिन समय पाकर राजा शाल्व ने सत्यरथ पर धावा करके उसके देश को घेर लिया। दोनों राजों में बड़ा युद्ध हुआ। बहुत युद्ध

करने के उपरान्त सत्यरथ परास्त हुआ और मारा गया। रात्रि के समय उसकी रानी युक्ति कर घर से बाहर भाग गई और पूर्व की ओर शिव और गिरिजा का ध्यान कर चली। वह गर्भवती थी। बहुत मार्ग चलने से थककर तालाब के पास जा एक वृक्ष के नीचे बैठ गई। भाग्य से शुभ लग्न में उसी दिन उसके पुत्र उपजा। रानी बहुत प्यासी होकर उस तालाब में पानी पीने गई। अभी पानी न पिया था कि एक ग्राह ने उसको पकड़ लिया। नया उपजा हुआ बालक भूख-प्यास से रोने लगा। शिवजी को उस बालक पर बड़ी दया उपजी। उन्होंने ऐसी कृपा की कि तुरन्त एक ब्राह्मण की स्त्री बालक के समीप पहुँची। उसके साथ भी एक वर्ष की आयु का एक बालक था। वह विधवा निर्धन स्त्री भिक्षाटन कर कालक्षेप करती। उसने आकर लड़का पड़ा हुआ देखा और बड़ा अचरज कर कहा कि यह किसका बालक है, कौन डाल गया है ? कोई स्त्री या पुरुष यहाँ दिखाई नहीं देता, जिससे इस बालक का हाल पूछूँ। उचित है कि मैं इस बालक को उठाकर अपने पुत्र के समान पालूँ। पर इसके कुल के हाल पूछे विना इसको उठाना उचित नहीं। ब्राह्मणी को ऐसी चिन्ता में देख शिवजी प्रसन्न हुए और आप भिक्षुकरूप से प्रकट हो स्त्री से कहा कि तुम कुछ संशय मत करो। इस बालक का पालन करो। इसके पालने से तुमको शीघ्र ही सब प्रकार का आनन्द और भोग प्राप्त होगा। स्त्री ने प्रसन्न होकर कहा——तुम्हारी आज्ञा से मैं इसे पालती हूँ। पर प्रार्थना करती हूँ कि आप इसके जन्म और कर्म आदि का वृत्तान्त सुना दीजिये। मैं जानती हूँ कि आप निस्सन्देह शिव हैं। यह बालक पूर्वजन्म में आपका भक्त रहा है। कोई कर्म इससे करते नहीं बना, इससे इसकी यह गति हुई। यह सुन शिव स्त्री पर अति प्रसन्न हुए और उसको

अपना भक्त जान कहा कि यह विदर्भ देश के राजा सत्यरथ का पुत्र है। पूर्वजन्म के कर्म से इसने ऐसा दुःख पाया है। राजा शाल्व ने इसके पिता को मार डाला। तब इसकी माता वन में भाग आई। इस बालक के उत्पन्न होने के उपरान्त ग्राह ने पानी पीते समय उसे खा डाला। स्त्री ने आश्चर्य कर शिवजी से पूछा कि इस बालक के पूर्वजन्म का वृत्तान्त वर्णन करो। क्यों इसको ऐसा दुःख प्राप्त हुआ? मेरा यह बालक और मैं दरिद्र अवस्था में हूँ। शिवरूपी ब्राह्मण बोले कि पूर्वजन्म में इसका पिता माण्डव्यदेश में, जो दक्षिण में प्रसिद्ध है, वहाँ का राजा हुआ। वह प्रजा-पालन और नीति-धर्म में प्रसिद्ध हुआ। वह शिवजी का बड़ा भक्त था। सदा प्रदोष व्रत करता था। एक दिन राजा प्रदोष का व्रत किये हुए शिवपूजन कर रहा था। इतने में नगर के बीच बड़ा कोलाहल हुआ। राजा तुरन्त सदाशिवजी का पूजन छोड़ चले। मन्त्री वहाँ से लौटा आता था। जिस शत्रु ने नगर में उपद्रव मचाया था, उसको भी पकड़े हुए साथ लाया था। मन्त्री ने सब वृत्तान्त कहा। राजा ने शत्रु को देखा और बहुत क्रोध कर उसका शिर काट डाला। उस अशुद्ध अवस्था में फिर भी शिवजी की पूजा छोड़ भोजन कर लिया। उसके पुत्र ने भी यही अधर्म किया और धर्म को भूल ही गया। राजा इस जन्म में विदर्भ देश का राजा होकर शाल्व के हाथ से मारा गया। यह उसी का पुत्र है, जो तुम्हारे सम्मुख खड़ा है। रानी, जिसको ग्राह ने खा लिया, उसका वृत्तान्त यह है कि वह पूर्वजन्म में भी राजा सत्यरथ की रानी थी। उसने अपनी सौत को धोखा देकर मार डाला। उसका फल उसको यह मिला कि उसको ग्राह ने खाया। तुम्हारे पुत्र का यह वृत्तान्त है कि यह पूर्वजन्म में ब्राह्मण था। इसने अपना जन्म दान लेने में बिताया। अब तुमको उचित है कि इन दोनों बालकों से

भलीभाँति शिव की पूजा कराओ। यह कह शिव ने उस स्त्री को अपने मुख्य चिह्नों समेत दर्शन दिये, जिससे स्त्री ने अतिप्रसन्न हो गद्गद वाणी से स्तुति की। फिर शिव अन्तर्धान हो गये। स्त्री ने तुरन्त उस बालक को उठा लिया और अपने बालक सहित घर में आई। एक गाँव में, जिसका नाम चक्र है, वह रहने लगी। दोनों बालक शाण्डिल्यमुनि से शिक्षा ले शिव की भक्ति करने लगे। वे दोनों प्रदोष व्रत रखते थे। इस तरह चार मास बीते। एक दिन दोनों मिलकर महानदी में स्नानकर शिव का बाना किये हुए घर को लौटे आते थे कि शिव ने दोनों को अपना भक्त जान कृपापूर्वक यह लीला रची कि मार्ग में उन्होंने धन का भरा एक घट पाया। घर में आकर अपनी माता से यह हाल कहा। ब्राह्मणी ने शिव का अति धन्यवाद किया। फिर दोनों शिव का व्रत करते रहे। जब एक वर्ष बीत गया तो शिव ने यह चरित्र किया कि एक दिन दोनों ने वन में गन्धर्व की कन्या देखी। ब्राह्मण के पुत्र ने उसके पास जाने से निषेध किया। पर राजा के पुत्र ने निकट जा वार्ता करने के उपरान्त उसके साथ अपना विवाह कर लिया। फिर शिव ने ऐसी कृपा की कि उसने अपने कुल के राज्य को प्राप्त करके राजकाज किया। वही ब्राह्मणी राजा की माता होकर आनन्द से समय बिताने लगी। राजा का नाम धर्मगुप्त हुआ। ब्राह्मण के पुत्र का नाम शुचिव्रत था। दोनों ने शिव की बड़ी भक्ति की और सदा प्रसन्न रहे। यह शिव अवतार का चरित्र अति पवित्र है। दोनों लोकों में आनन्ददायक है। भिक्षुनाथ शिव अवतार के स्मरण से सब कष्ट नष्ट हो जाते हैं। बयासीवाँ अवतार पूर्ण हुआ।

उनचासवाँ अध्याय

निर्जरेश्वर अवतार का वर्णन

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! अब हम निर्जरेश्वर अवतार का

वर्णन करते हैं, जिसने उपमन्यु ब्राह्मण का दुःख दूर किया। व्याघ्रपाद मुनि, जो तप में प्रसिद्ध हैं, उनके एक पुत्र उपजा, जिसका नाम उपमन्यु रक्खा गया। वह सदा अपने मामा के घर माता सहित रहता था। भाग्यवश दरिद्रता ने आ घेरा। संयोग से एक दिन उपमन्यु ने दूध पिया। उसके पीने से और अधिक दूध पीने की इच्छा हुई। उसने हठ कर बार-बार अपनी माता से दूध माँगा। दरिद्रता के कारण दूध का ठिकाना कहाँ था? माता ने जव कूट पानी में घोल दूध के बहाने उपमन्यु को पिला दिया। उपमन्यु ने उसे पीकर कहा कि यह तो दूध नहीं है। यह कहकर वह रोने लगा। वह बार-बार अपनी माता से दूध माँगता था। निदान उसने दुखी हो उपमन्यु से कहा कि मैं तो अपने भाग्य से महाधनहीन हूँ। मैंने पूर्वजन्म में शिव के निमित्त कुछ दान नहीं दिया। जो देती तो इस जन्म में धनवान् होती। हम वन में रहते हैं। भोजन भी भली भाँति नहीं मिलता। धन-द्रव्य कहाँ हो। धन बिना शिव की कृपा नहीं मिलता। शिवपूजा बिना सिवा दुःख के आनन्द कभी प्राप्त नहीं होता। यह सुन उपमन्यु को पूर्वजन्म के संस्कार से बुद्धि उपजी। उसने अपनी माता से कहा कि अब तुम कुछ खेद मत करो। मैं शिव का तप करता हूँ और शिव को प्रसन्न कर क्षीरसागर वर में माँग लूँगा। यह कह और माता की आज्ञा ले हिमगिरि में जा बड़ा तप कर वनफलों से शिव का पूजन किया। पञ्चाक्षर मन्त्र जपा। जब उपमन्यु को तप करते बहुत सा समय बीता और शिव प्रसन्न न हुए और वर देने के निमित्त न आये। जब तीनों लोक उपमन्यु के तप से जलने लगे तब देवताओं की विनती के अनुसार मैं सबको लेकर शिव के पास गया और स्तुति के उपरान्त सब वृत्तान्त कहा। शिव हँसकर बोले कि तुम कुछ संशय मत करो।

उपमन्यु दुग्ध के निमित्त तप कर रहा है। सो अब हम उसको वर देंगे। तुम सब अपने स्थानों को चले जाओ। देवताओं के चले जाने के उपरान्त शिवजी ने उपमन्यु की परीक्षा लेने के निमित्त आप तो इन्द्ररूप, गिरिजा को शची, गणों को देवताओं का स्वरूप और नन्दी का ऐरावत रूप रच उपमन्यु के समीप जाकर कहा कि वर माँगो। उपमन्यु ने कहा कि हे इन्द्र! तुमको हमारा प्रणाम है। हमको शिव के भजने की शक्ति कृपा कर दो। हम केवल शिव से वर माँगेंगे, और किसी से वर माँगने की इच्छा नहीं। इन्द्र ने कहा कि हे मुनिपुत्र! क्या तू हमको नहीं जानता और अन्य देवताओं के समान हमको समझता है। मैं सब देवताओं का राजा हूँ। मुझको अप्रसन्न कर कभी किसी को आनन्द नहीं मिलता। मेरी पूजा कर। जो मन में आवे, वह ले ले। शिव निर्गुण देवताओं की गणना में नहीं। वह दीन और निर्बल हैं। वह तो दक्षप्रजापति के शाप से भूत हो गये हैं और महा अशुभ हैं। इससे उनका वचन सत्य नहीं होता। बरन् उस समय से कोई शिवजी को नहीं पूजता। ऐसे देवता से क्योंकर तुम्हारा काम निकलेगा? उपमन्यु ने सुनकर बड़े क्रोध से उत्तर दिया कि हे इन्द्र! तुम देवताओं के राजा होकर शिवजी की निन्दा मुख पर लाये! तुमको क्या हो गया है, जो तुमने शिवजी को नहीं पहचाना। शिवजी वह हैं, जिनकी ब्रह्मा, विष्णु और सब देवता सेवा करते हैं। उनको वेद भी नेति-नेति कर वर्णन करते हैं। वेदान्ती उनको ब्रह्म के नाम से प्रसिद्ध करते हैं। सन्त विवाद छोड़ उनका भजन करते हैं। वे तीनों गुणों से परे शुद्ध, पवित्र, परमात्मा, निर्गुण, सगुण और सबके स्वामी हैं। हे मूर्ख इन्द्र! तू उनको नहीं जानता, जिनके समान दूसरा कोई नहीं है। मैंने तेरी जिह्वा से शिवजी की निन्दा सुनी, इसका मुझ पर बड़ा पाप होगा। इस-

लिए मैं तुझे भी नष्ट करूँगा और आप भी मर जाऊँगा। यह कह और भस्म लेकर मन्त्र पढ़ इन्द्र पर चलाई और आप भी सब तरह से पवित्र हो चाहा कि अपने को मार डालूँ। यह देखकर शिवजी अति प्रसन्न हुए। नन्दी ने शिवजी की सैन समझ तुरन्त भस्मास्त्र पकड़ लिया, जिससे अग्नि दूर हो गई। शिवजी ने पूर्व के समान अपना रूप प्रकट किया। इन्द्र के वे सब लक्षण गुप्त हो गये। जिस रूप का उपमन्यु ध्यान करते थे, वही रूप सामने खड़ा हो गया। उस समय सब देवता उस स्थान पर आकर शिवजी की स्तुति करने लगे। आकाश से पुष्पों की वर्षा हुई। हर प्रकार से आनन्द-मङ्गल हुआ। उपमन्यु ने शिवजी को प्रणाम किया। शिवजी ने उपमन्यु को निकट बुलाकर स्कन्द के समान अपने समीप बैठाया और अपना हाथ उपमन्यु के शरीर पर फेर दिया। फिर कृपादृष्टि से उपमन्यु को अवलोकन कर कहा कि तुम हमारे दृढ़भक्त हो। हम तुमसे अति प्रसन्न हुए। गिरिजा तुम्हारी माता और हम तुम्हारे पिता हैं। तुम सदा युवा रहोगे। कोई तुमसे पाप न होगा। तुम पर मृत्यु का वश न चलेगा। तुमको दूध, दही, घी और शहद के बहुत से समुद्र मिलेंगे। तुमको सदा आनन्द रहेगा। तुम सदा बलवान् रहकर प्रसन्न रहोगे। हमारे भक्तों के शिरोमणि होगे। तुम्हारा कुल और गोत्र सब आनन्द में रहेगा। स्त्री, पुत्र, सब हमारी भक्ति में लगे रहेंगे। पशुपति व्रत को पाओगे। तुम्हारा वचन अति स्पष्ट होगा और तुम बड़े वाचाल होगे। हम सदा तुम्हारे पास रहेंगे। तुमको सब कुछ मिलेगा। यह कह शिवजी अन्तर्धान हुए और उपमन्यु भी अपने आश्रम को चले आये। जो यह चरित्र पढ़े और सुनेगा, वह आनन्द में रहेगा। तिरासीवाँ अवतार पूर्ण हुआ।

पचासवाँ अध्याय

जटाधारी अवतार का वर्णन

ब्रह्माजी बोले कि अब हम जटाधारी अवतार का वर्णन करते हैं, जिस तरह शिव ने गिरिजा को धोखा दिया। इस अवतार का वर्णन शिव के विवाह में विस्तार से हो चुका है। यहाँ केवल संक्षेप से इसका वर्णन होता है। जब गिरिजा तप के निमित्त माता-पिता की आज्ञा ले इस इच्छा से कि हमारे पति सदाशिव हों, वन में गईं तब गिरिजा के कठिन तप के कारण कई बार शिव ने मुनीश्वरों को गिरिजा की परीक्षा के निमित्त भेजा। पर गिरिजा ने मुनीश्वरों से धोखा न खाया, अपने तप में दृढ़ रहीं। निदान शिव को भी गिरिजा के देखने की इच्छा उपजी। शिवजी जटाधारी ब्राह्मण का स्वरूप बना गिरिजा के पास गये। बहुत वार्त्ता और विवाद के उपरांत जब कुछ न चली तो शिवजी ने प्रसन्न होकर अपना मुख्य स्वरूप गिरिजा को दिखाया, और कहा—हे गिरिजा! तुम मुझे बहुत प्यारी हो और मेरी प्राचीन शक्ति हो। मैंने परीक्षा के निमित्त सब काम किये हैं। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। वर माँगो। उत्तम होगा कि तुम हमारे साथ चलो और कैलास पर्वत को अपने चरणों से सुशोभित करो। गिरिजा ने लज्जा से शिर झुका और विचार कर कहा कि जो तुम प्रसन्न हो तो हमारे पति होकर हमारा विवाह अपने साथ करो। शिव ने कहा—अच्छा यही होगा और अन्तर्धान हुए। चौरासीवें अवतार का चरित्र पूर्ण हुआ।

इक्यावनवाँ अध्याय

नर्तकनट अवतार का वर्णन

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! अब हम नर्तकनट अवतार का वर्णन करते हैं, जैसे शिवजी ने नर्तकनट अर्थात् नाचने-गानेवाले

का रूप धारण करके मैना और हिमाचल को धोखा दिया। वर देने के अनन्तर एक दिन शिवजी नाचने और गानेवाले का रूप धर मैना और हिमाचल के घर गये और उनको प्रसन्न कर भिक्षा के बदले गिरिजा को माँगा। पहले तो क्रोध कर निकाले गये, पर जब हिमाचल और मैना ने जाना कि यह तो सदाशिव हैं तो गिरिजा का देना मान लिया। शिव ने बड़ी-बड़ी लीला कर गिरिजा को ब्याहा। पचासीवाँ अवतार पूर्ण हुआ।

द्विजावतार का वर्णन

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! जब मैना ने शिव को जाना कि यह सबसे श्रेष्ठ सर्वोपरि हैं, इनको कन्या देना उचित है, तब सब देवताओं ने परस्पर यह सम्मति की कि यह मैना और हिमाचल की बुद्धि दूर करनी चाहिए। इस विचार से पहले वे मेरे पास, फिर मेरी आज्ञा से सदाशिव के पास गये और कहा—जो हिमाचल तुमको सदाशिव समझ गिरिजा को देगा तो इसी शरीर से तुम्हारे लोक में चला जायगा। फिर रत्न और अन्य अद्भुत वस्तुएँ कहाँ से मिलेंगी ? देवताओं को ऐसे जीने से मरना उत्तम जान पड़ता है। आप कोई ऐसा उपाय करें, जिससे उनकी वह दिव्य बुद्धि कि हम शिवको अपना जामाता बनाते हैं, जाती रहे। शिव ब्राह्मण बन वैष्णव स्वरूप धार हिमाचल के समीप गये और कहा कि तुम ऐसे राजा होकर अपनी कन्या साधु अवधूत को देते हो ! यह बात तुमको उचित नहीं। यह साधु का वचन हिमाचल को इतना लगा कि उन्होंने विवाह से नटना उत्तम समझा। फिर शिव ने यह चरित्र कर कैलास में पहुँचकर सप्तऋषियों का स्मरण किया। वे आये तो उनको हिमाचल के पास समझाने-बुझाने को भेजा। कहा कि वे दोनों फिर हमारे विवाह करने के विचार को नहीं मानते। तुम ऐसी

यक्ति करो कि विवाह हो जाय। सप्तऋषियों ने हिमाचल और मैना को बहुत समझा-बुझाकर शिव का विवाह करा दिया। हे नारद! शिव ने ब्राह्मण का अवतार रखकर ऐसी लीला की है। जो इस कथा को पढ़े-सुनेगा, वह दोनों लोकों में प्रसन्न रहेगा। छियासीवें अवतार का चरित्र पूर्ण हुआ।

बावनवाँ अध्याय

अश्वत्थामा अवतार का वर्णन

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! द्रोणाचार्य, जो ब्राह्मणों में बड़े विद्वान् थे, उनको कौरवों ने अपना गुरु बनाया, जिनसे उनको धनुर्विद्या प्राप्त हुई। फिर उन्होंने उन्हीं के लिए कठिन तप कर शिवजी को प्रसन्न किया। शिव ने द्रोणाचार्य के पास आकर कहा कि तुम्हारी बनाई हुई स्तुति सुनकर हम अति प्रसन्न हुए। जो चाहो, वर लो। द्रोणाचार्य ने कहा कि मुझको अपने अंश से एक पुत्र दीजिए, जो मुझको कौरवों सहित आनन्द दे। वह सबको जीते, बड़ा बलवान् हो, मौत उसके सामने न आवे। शिवजी ने यही वर दिया और अन्तर्धान हुए। द्रोणाचार्य ने अति प्रसन्नता से यह वृत्तान्त अपनी स्त्री को सुनाया। वे दोनों शिव की भक्ति में दृढ़ रहे। निदान समय पाकर शिव ने उनका पुत्र होकर अवतार लिया, जिसका नाम अश्वत्थामा रक्खा गया। उसने द्रोणाचार्य की आज्ञा पाकर कौरवों का पक्ष लिया। उसके भय से पाण्डव कुछ न कर सके। तब विष्णु की प्रेरणा से अर्जुन ने शिव का तप किया और शिव से पाशुपत अस्त्र पाया, जिससे अर्जुन कौरवों पर प्रबल हुए। पर फिर भी अश्वत्थामा ने अपना इतना तेज दिखाया कि कोई कुछ न कर सका। उसने सुगमता से पाण्डवों के पुत्रों का वध किया। निदान अर्जुन ने रथ पर चढ़ अश्वत्थामा का पीछा किया। अश्वत्थामा

कुछ न डरा, मार्ग में खड़ा हो गया और ब्रह्मास्त्र अर्जुन पर छोड़ा। तब अर्जुन ने अति दुखी हो कृष्ण से कहा कि हे विष्णु! यह क्या होता है? एक ज्वाला सबको जलाती हुई हमारे सामने चली आती है। इसको आप दूर करें। हम आपकी शरण में हैं। कृष्ण ने शिव का ध्यान कर जाना कि यह ब्रह्मास्त्र है तो अर्जुन से कहा कि यह ब्रह्मास्त्र है, तुम्हें नष्ट करने को अश्वत्थामा ने चलाया है। इसको कोई निवारण नहीं कर सकता। अब तुम तुरन्त शिव का ध्यान करो। जो अपना शस्त्र शिव ने प्रसन्न होकर तुमको दिया है, उससे इसको दूर करो। और कोई युक्ति नहीं है। यह सुनकर अर्जुन ने शिव का ध्यान कर तुरन्त पाशुपत अस्त्र छोड़ा। उससे ब्रह्मास्त्र दूर हो गया। अर्जुन को अतिआनन्द प्राप्त हुआ। यह देख अश्वत्थामा ने इस इच्छा स कि संसार में पाण्डवों का वंश न रहे, और जो अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु की स्त्री उत्तरा के गर्भ था, उसके वध के निमित्त फिर अपना अस्त्र छोड़ा। उत्तरा अति विकल हो कृष्णजी की शरण में गई। कृष्ण ने ध्यान कर यह चरित्र जान सदाशिव की आज्ञापूर्वक अपना चक्र चलाया और उत्तरा के गर्भ की रक्षा की। कृष्ण सब पाण्डवों को लेकर अश्वत्थामा की शरण में गये। पाण्डवों और अश्वत्थामा में मित्रता और प्रीति करा दी, जिससे उपद्रव शान्त हो गया। सब लोग आनन्द से रहने लगे। अश्वत्थामा ने पाण्डवों पर प्रसन्न हो बहुत वर दिये। यह शिव के अवतार अश्वत्थामा का चरित्र अति पवित्र है और संसार में आनन्द देता है। वे सदा गङ्गा किनारे रहते हैं और सबकी दृष्टि से छिपे हैं। यह शिव अवतार की कथा अति शुद्ध, निर्मल, सुनने और पढ़ने वालों को बड़ा फल देती है। इसके सुनने से सब काम पूरे होते हैं। सत्तासीवें अवतार का चरित्र समाप्त हुआ।

तिरपनवाँ अध्याय

किरातेश्वर शिव अवतार का वर्णन

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद ! अब हम किरातेश्वर अवतार का वर्णन करते हैं अर्थात् जिस तरह शिवजी ने किरात का अवतार धारण किया और अर्जुन को पाशुपत अस्त्र बहुत वरदानों समेत दिया। यह भी वर दिया कि तुमको कोई जीत न सकेगा। महाभारत के युद्ध में अर्जुन को जय दिलाई। इतना सुन नारद बोले कि हे पिता ! आप कुछ विस्तार से अर्जुन का वृत्तान्त और किरातेश्वर शिवजी का वर्णन सुनावें। ब्रह्माजी बोले कि पूर्वकाल में सोमवंशी कुल में राजा ययाति हुए, जिनके पाँच पुत्र उपजे। उनमें सबसे छोटा लड़का पुरु, जो रानी शर्मिष्ठा से उपजा, राज्य पाकर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करता रहा। उसके कुल में राजा शन्तनु हुआ, जिसके समान दूसरा राजा न हुआ। उसकी दो स्त्री, गङ्गा और सत्यवती, थीं। गङ्गा से जो पुत्र उपजा, उसका नाम भीष्म था। वह बड़ा तपस्वी, जितेन्द्रिय था। दूसरी रानी सत्यवती से चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य उपजे। चित्राङ्गद को उसी नाम के गन्धर्व ने मार डाला। इससे विचित्रवीर्य को राज्य मिला। उसकी दो रानियाँ थीं। राजा उन्हीं के साथ रात-दिन भोगविलास करता था, जिससे राजा को राजयक्ष्मा का रोग हो गया। यद्यपि सब उपाय किये गये, पर राजा मर गया। निदान राजा शन्तनु का वंश नष्ट हो गया। यह देख रानी सत्यवती ने व्यासजी का स्मरण किया और व्यासजी के द्वारा दोनों रानियों से सन्तान उपजाये। बड़ी रानी से धृतराष्ट्र उपजे, जो अन्धे थे। छोटी रानी से पाण्डु हुए। तीसरी बार राजा की दासी व्यास के समीप गई। उससे विदुर नामक विष्णु के बड़े भक्त उपजे। सत्यवती तीनों पुत्रों को देख

भीष्म समेत अति प्रसन्न हुई। वे तीनों पुत्र बड़े प्रतापवान् हुए, जिन्होंने संसार में बहुत धर्म चलाये। राजा सुबल की कन्या गान्धारी के साथ धृतराष्ट्र का विवाह हुआ। राजा शूरसेन की लड़की कुन्ती पाण्डु को ब्याही गई जो वसुदेव की बहन थी। पाण्डु की दूसरी रानी माद्री मद्रदेश के राजा की पुत्री थी। धृतराष्ट्र के दुर्योधन आदि सौ पुत्र उपजे। पाण्डु के पाँच पुत्र हुए। उनके नाम ये हैं—युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तो कुन्ती से और नकुल और सहदेव माद्री से। विदुर के साथ राजा देवक की कन्या पारशवी ब्याही गई, जिससे बड़े धर्मवान् पुत्र उपजे। ये सब लड़के एक साथ खेलते। पर भीम अथाह बल के कारण उपद्रव मचाता। यह बात दुर्योधन को भली न लगती। वह इस घात में रहा करता था कि भीम को किसी प्रकार मारें। पर दुर्योधन की कोई युक्ति न चली। कौरवों पाण्डवों में बड़ा वैर हो गया। मन्त्री के उपदेश से धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को वारणावत में लाक्षाभवन के भीतर जलाने को भेज दिया। वे शिवजी की कृपा और विदुर की सम्मति से बचे रहे। दक्षिण देश में जाकर मार्ग में भीम ने हिडम्ब दैत्य को मारा। व्यास के उपदेश से पाण्डव चक्रपुर में स्थित हुए, जहाँ भीम ने एक दानव को मार कर एक ब्राह्मण का काज सँवारा। इसी स्थान पर द्रौपदी का स्वयंवर सुन पाण्डव कुन्ती सहित वहाँ गये। अर्जुन के मत्स्य वेधने के उपरान्त पाण्डवों ने द्रौपदी से विवाह किया। वहाँ कृष्ण से भी भेंट हुई। पाण्डवों का यह चरित्र सुन धृतराष्ट्र ने फिर उनको अति प्रीति प्रकट कर बुला लिया। आधा राज्य पाण्डवों को दे खाण्डवप्रस्थ में रहने की आज्ञा दी, जिसमें कुछ विवाद और झगड़ा न हो। पाण्डव खाण्डवप्रस्थ में रहे। राजा युधिष्ठिर ने और बहुत देश जीते और धृतराष्ट्र की सहमति से प्रजा-पालन कर राजसूय

यज्ञ किया। फिर अर्जुन तीर्थाटन के लिए संसार भर में भ्रमण कर द्वारका में गये। कृष्ण की अनुमति से सुभद्रा को भगा लाये और अपने साथ ब्याह किया, जिनसे अभिमन्यु उपजे। अब दूसरे प्रकार हम अर्जुन के बल का बखान करते हैं। पूर्व समय में श्वेतकी नाम महाराजा शिवजी का बड़ा भक्त हुआ। शिवजी ने दुर्वासा से कहा कि तुम जाकर श्वेतकी को यज्ञ करा दो। दुर्वासा ने यज्ञ कराया। बारह वर्ष तक बराबर घृत की धारा यज्ञ की अग्नि में पड़ती रही, इससे अग्नि अति तृप्त हो अजीर्ण से निस्तेज हो गये। अग्नि ने मेरे पास आकर कहा कि मैं अति विकल हूँ। अर्जुन और कृष्ण ने मेरी आज्ञा से अग्नि को शरण में ले उनको खाण्डववन भली भाँति जलाने दिया। उस समय मयदानव को, जो उसी वन में रहता था, कृष्ण की आज्ञा से अर्जुन ने भाग जाने दिया। मयासुर ने एक सभा पाण्डवों को ऐसी बना दी, जिसमें जल-थल का भेद कुछ न भासता था। उस स्थान पर दुर्योधन की बुद्धि ने कुछ काम न किया। सब लोगों के हँसने से दुर्योधन अतिलज्जित हो गया। उसने पुराने वैर को फिर उठा जुएँ के द्वारा पाण्डवों से सब धन और राज्य ले लिया। फिर द्रौपदी को भी जुएँ में जीत लिया। दुर्योधन के भाई दुश्शासन ने द्रौपदी के पट खींचे, पर दुर्वासा के आशीर्वाद और कृष्ण के प्रभाव से इतने वस्त्र बढ़ गये कि दुश्शासन दीन होकर खड़ा रह गया और द्रौपदी की लाज रह गई। निदान पाण्डवों को बारह वर्ष के लिए राज्य से च्युत होकर अपने राज्य से निकल जाना पड़ा। सूर्य ने एक बर्तन पाण्डवों को दिया था, उसी से मिलनेवाले से वे काल-क्षेप करते रहे। इसीप्रकार पाण्डव द्रौपदी सहित देशाटन करते रहे।

चौवनवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि पाण्डवों ने द्वैतवन में जाकर नाना प्रकार

की आपदाएँ उठाईं। उनके भोजन के निमित्त वही सूर्य का दिया हुआ पात्र था। उसमें यह गुण था कि जब तक द्रौपदी भोजन न कर लें, तब तक उसके भीतर का भोजन कम न होता। इसी प्रकार समय बीत गया। दुर्योधन ने इस वृत्तान्त को न जाना। उसकी यह इच्छा हुई कि पाण्डवों को किसी मुनि आदि से शाप दिलाना चाहिए। उसने दुर्वासा की बड़ी सेवा कर वर लेने की आज्ञा पाई। तब कहा कि मैं पाण्डवों का नाश चाहता हूँ। दुर्वासा ने उसको बहुत धिक्कार दिये और कहा कि यह बात कभी न हो सकेगी। उनकी रक्षा करनेवाले आप शिवजी हैं। विष्णु ने जो अवतार लिया है वे कृष्ण शिवजी की आज्ञा से रात-दिन उनकी रक्षा करते हैं। पर अच्छा, हम तुमसे प्रसन्न हैं, कुछ उपाय करेंगे। यह कह दुर्वासा पाण्डवों के समीप गये। उनके साथ दसहज़ार शिष्य थे। दुर्योधन की प्रार्थना के अनुसार दुर्वासा उस समय गये, जब द्रौपदी भोजन कर चुकी थीं। दुर्वासा ने पूजन पाकर भोजन माँगा और अपने शिष्यों समेत स्नान करने को गये। तब पाण्डवों को अति चिन्ता उपजी। चाहा कि हम सब मर जायें, क्योंकि जब दुर्वासा लौटकर भोजन न पावेंगे तो हम सबको बड़ा घोर शाप देंगे। यह विचार कर ही रहे थे, इतने में आकाशवाणी हुई कि तुम कुछ सोच न करो, कृष्णजी का स्मरण करो। यह सुन द्रौपदी सहित सबने कृष्ण का स्मरण किया। कृष्ण ने तुरन्त आकर सूर्य का दिया हुआ वही बर्तन माँगा और एक साग की पत्ती बर्तन में चिपकी देखकर उसको खाया। उसके खाते ही दुर्वासा, सब मुनि और सब शिष्य तृप्त हो गये। वे अपने स्थान को ऊपर ही ऊपर चले गये। यह सुनकर पाण्डव अति प्रसन्न हो कृष्ण की स्तुति करने लगे। कृष्ण ने कहा कि हम मथुरा को छोड़ द्वारका को गये और वहाँ सबको बसाया। शत्रुओं पर

विजय पाने के लिये उपमन्यु के समीप गये। उनके उपदेश से बदरिकाश्रम में जाकर सात मास पर्यन्त शिवजी का तप किया। शिवजी ने प्रसन्न हो हमको वर दिया, जिससे द्वारका पहुँच हमने शत्रुओं को जीता। इससे तुमको भी हम कहते हैं कि तुम शिवजी की सेवा करो। शिव बिना तुम्हारा काम न निकलेगा। यह कह अन्तर्यामी श्रीकृष्ण भगवान् अन्तर्धान हुए। पाण्डवों ने एक भील दुर्योधन के पास, उसके आचरण की परीक्षा के निमित्त, भेजा, जिसने वहाँ का सब हाल देखकर पाण्डवों से कहा। पाण्डव दुर्योधन का प्रताप और वैभव देख दुखी हुए। इतने में व्यासजी आये। वह मस्तक में त्रिपुण्ड्र लगाये, भस्म रमाये, रुद्राक्ष धारण किये, जटाजूट रखाये, मुख से शिव-शिव कहते थे। व्यास का ऐसा रूप देख पाण्डवों ने उठकर प्रणाम किया और आदर सहित बैठाकर हर प्रकार उनकी पूजा की। फिर कहा कि हमने वन में आकर बड़ा दुःख पाया। आप हमको भूल गये थे क्या? यह आपने बड़ा अनुग्रह किया कि हमको दर्शन दिये। अब हमारे कष्ट निवृत्त हो जावेंगे। हमको आप उबार लें। हम फिर राज्य पावें, ऐसा ही उपदेश आप हमको दें। व्यासजी बोले कि तुम धन्य हो, जो ऐसे समय में भी सत्य और धर्म को नहीं छोड़ते। यद्यपि यह बात हमको उचित है कि तुम दोनों पाण्डवों और कौरवों को एक सा समझें, पर क्योंकि कौरव बहुत अधर्मी और तुम धर्मिष्ठ हो, इसलिए हम तुम्हारे पक्ष में हैं। तुम पर शिवजी अति प्रसन्न होंगे। वह हर प्रकार तुम्हारा कष्ट नष्ट करेंगे। वे सबके स्वामी हैं और सब देवता और मुनि उन्हीं की सेवा करते हैं। वे अपने भक्तों का दुःख नहीं देख सकते। वेद और पुराण का यह वचन है कि शिवजी शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं। इससे हम तुमको यह उपदेश देते हैं कि शिवजी की सेवा करो। वे तुमको अवश्य जय

देंगे। पाण्डवों ने कहा कि हम सब मिलकर शिवजी की पूजा करें या हममें से एक मनुष्य करे? तब व्यासजी ने शिवजी का ध्यान कर सोचकर कहा कि नहीं, केवल अर्जुन पूजा किया करें। फिर व्यासजी ने शिवार्चन की सब विधि उनको बता दी और कहा कि क्षत्रिय को पहले इन्द्र की सेवा करनी चाहिए। इससे तुम पहले इन्द्र को प्रसन्न कर फिर शिवजी के मन्त्र को धारण करो। तुम इन्द्रकील, जो गङ्गा के तट पर है, वहाँ जाकर तप करो। क्षत्रिय धर्म के अनुकूल अपने शस्त्र अपने साथ लेते जाओ जिसमें जो कोई शत्रु आवे तो उसका वध कर सको। यह कहा और इन्द्र का मन्त्र अर्जुन को दिया। फिर पार्थिव-पूजा की विधि सिखाई। और भी शिवपूजा की रीतियाँ बताईं और दृष्टिबन्ध होने की विद्या की शिक्षा दी। फिर अपना हाथ अर्जुन के शरीर पर फेर दिया और बहुत आशीर्वाद दिये। तब अर्जुन के सब अङ्गों में भस्म लगा दी। ऐसी कृपा कर व्यास अन्तर्धान हो गये। पाण्डव, कुन्ती माता और द्रौपदी सहित शिवजी के प्रेम में डूब गये।

पचपनवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि व्यासजी के जाने के बाद सब भाइयों ने अर्जुन को अति तेजस्वी देखा। सबको निश्चय हुआ कि हमारे संकट कट जायँगे। फिर सब मनुष्यों ने आशिष देकर अर्जुन को तप के लिए भेजा। अर्जुन सबको प्रणाम करके शुभ नक्षत्र देखते हुए चले। इन्द्रकील के निकट, जहाँ गङ्गाजी बहती हैं, पहुँचकर अशोकवन में विराजमान हुए। वहाँ देवी बना तेज स्वरूप धरकर पहले गुरु की स्तुति की। उसके बाद आसन पर विराजमान हो पञ्चसूत्र पार्थिव विधिपूर्वक बनाने लगे। फिर पार्थिवपूजन के मन्त्र का जप किया। इसी प्रकार तीनों समय अर्थात् प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल पार्थिवपूजन करते थे। पहले

दिन उन्होंने इसालिए इन्द्र की पूजा की कि शिवजी के पूजन में कुछ विघ्न न पड़े। फिर शिवजी का ऐसा ध्यान किया कि अर्जुन के सिर से अग्नि निकली, जिससे सब वन प्रकाशित हो गया। उस वन में इन्द्र के बहुत सेवक रहते थे। उन्होंने इन्द्र से जाकर प्रार्थना की कि नहीं मालूम कौन-सा मनुष्य अर्थात् तपस्वी तप कर रहा है, जिसके कारण हम सब जलने से बच गये। इन्द्र ने ध्यान करके यह विचारा कि यह हमारे पुत्र अर्जुन का यह कार्य है। यह विचारकर इन्द्र को बड़ा दुःख हुआ। वह बूढ़े ब्राह्मण का रूप रखकर, हाथ में लाठी लेकर अर्जुन के निकट गये और खड़े हो गये। अर्जुन ने ब्राह्मण को देखकर उसकी हर प्रकार से पूजा और सेवा की। ब्राह्मण ने पूछा कि तुम यह तप किस निमित्त करते हो? अर्जुन ने सब वृत्तान्त कह सुनाया। इन्द्र ने कहा कि तुम ऐसा तप व्यर्थ करते हो। तुमको ऐसा उचित नहीं; क्योंकि संसार के सुख थोड़े दिन रहते हैं। केवल मुक्ति का विचार रखना चाहिए। सो मुक्ति देना इन्द्र के हाथ में नहीं है, इस कारण यह तुम्हारा तप वृथा है। जो देवता मुक्ति देनेवाला है, उसी की सेवा करो। अर्जुन ने कहा कि हे ब्राह्मण! आप अपने घर सिधारिये। आपको इन बातों से क्या प्रयोजन है? हम व्यासजी की आज्ञा के अनुसार सब कार्य करेंगे। अर्जुन की ऐसी दृढ़ता देखकर इन्द्र को पुत्र पर अति प्रीति उपजी। उन्होंने अपने यथार्थ रूप को धारण करके अर्जुन को दर्शन दिये और कहा कि हमने ब्राह्मण बनकर तुम्हारी परीक्षा ली। अब तुमको कुछ खेद न होगा! दुर्योधन जो तुम्हारा शत्रु है, वह निस्सन्देह अजेय है; क्योंकि उसके सहायक भीष्म, द्रोण और कर्ण आदि हैं, जिनको हम नहीं जीत सकते। उनको तीनों लोकों में कोई नहीं जीत सकता। तीनों लोकों में उनके समान कोई बलवान् नहीं। इस

कारण तुमको उचित है कि शिवपूजन करो। वह भुक्ति-मुक्ति सब देते हैं। उन्हीं की प्रसन्नता से हम विष्णुजी और ब्रह्माजी के जैसे पदों को प्राप्त हुए हैं। आज से हमारे मन्त्र का त्याग करके शिवजी के मन्त्र को जपो और पार्थिव पूजन करके शिवजी का ध्यान धरो। तुम्हारी पूजा में कोई विघ्न न उत्पन्न होगा। शिवजी वरदान देकर तुमको सुख देंगे। यह कहकर और आशीर्वाद देकर उन्होंने अर्जुन के शरीर को छुआ और अपने लोक को चले गये। अर्जुन ने स्नान और अंगन्यास करके शिवजी का ध्यान किया। फिर पार्थिवपूजन करके एक पाँव से सूर्य के सम्मुख खड़े होकर शिवमन्त्र जपा। और जिस प्रकार व्यासजी ने उपदेश किया था, उसी प्रकार किया, जिससे सब मुनीश्वर आश्चर्य करने लगे। फिर मुनीश्वरों ने कैलास पर्वत पर जाकर श्रीसदाशिवजी से प्रार्थना की कि अर्जुन आपकी आराधना कर रहा है। हमारी अभिलाषा है कि आप वहाँ जाकर अर्जुन को वर दें। यह श्रवण कर शिवजी प्रसन्न हुए और मुसकराकर कहा कि तुम सब अपने-अपने स्थान को जाओ। हम अर्जुन का कार्य सिद्ध करेंगे। यह सुनकर सब देवता अपने-अपने स्थान को सिधारे।

छप्पनवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि शिवजी ने सब देवताओं और मुनीश्वरों को बिदा करके इच्छा की कि अर्जुन के निकट जाकर वर दें; परन्तु उस समय यह चरित्र हुआ कि दुर्योधन ने सुना कि अर्जुन राज्य की वृद्धि के निमित्त तप कर रहे हैं। तब मूक नाम के दैत्य को अर्जुन के मार डालने के लिए भेजा। दैत्य भैंसे का शरीर रखकर तप के स्थल में आया। अर्जुन ने दूर ही से उसको देखा। वह अनेक प्रकार के उपद्रव करता उन्हीं की ओर चला आ रहा था। उसने बिचारा कि यह निश्चय ही मेरा शत्रु है। इसे

दुर्योधन ने भेजा होगा। जिसको देखकर अपने हृदय में बुराई आवे, उसे वैरी जानना चाहिए और जिसके देखने से अपने मन में प्रसन्नता उत्पन्न हो, उसे अपना मित्र जानना चाहिए। यह बुद्धिमानों ने शत्रु और मित्र की पहचान रक्खी है। यह विचार कर अर्जुन ने अपना धनुष और बाण लिया। उसी समय शिवजी भी भीलपति का रूप धारण करके अपने गणों समेत अर्जुन की परीक्षा लेने और वरदान देने चले। कंधे पर बाणों से भरा हुआ तरकस था। हाथों में धनुष-बाण लिये हुए थे और लुङ्ग और केश बाँधे हुए थे। वह सब शस्त्र वीरों के धारण किये थे। दैत्य ने यह अभिलाषा की थी कि वह अर्जुन के सम्मुख हो; पर भील-रूप शिव ने अपना बाण उसकी पूँछ पर मारा, जो दैत्य के मुख से बाहर निकल गया। वह दैत्य मर गया। अर्जुन ने भी अपना बाण चलाया। इसलिए जब दैत्य को पृथ्वी पर गिरते देखा तो विचारा कि वह मेरे ही बाण से मरा है। इसलिए अपने बाण को लेने के निमित्त अर्जुन शिव-शिव कहते आये। उधर से शिव का गण अपने स्वामी का बाण लेने आया। अर्जुन ने कहा कि हमने मारा है, हमारा यह बाण है, और गण ने कहा कि नहीं, हमारे स्वामी भीलपति ने राक्षस को मारा है। इस पर बड़ा विवाद हुआ। अर्जुन ने तुरन्त ही बाण उठा लिया। गण ने कहा कि तुम क्यों ऐसा लोभ करते हो? यह बाण तुम्हारा नहीं है। तुम क्यों तपस्वियों का रूप धरकर ऐसा छल करते हो? अर्जुन ने कहा कि रे मूर्ख! तू क्या बकता है? यह मेरा बाण मेरे मुख्य चिह्नों सहित है, देख ले। तब गण ने कहा कि हे मूर्ख, तू तपस्वी नहीं है; क्योंकि जो तप करता है, वह असत्य नहीं बोलता। तू मुझको अकेला न जानना। मेरे साथ बहुत से गण हैं। हमारा स्वामी महाबलवान् राजा है और उसी का यह बाण है। यह तेरे पास

न रहेगा। जो मनुष्य चोर, झूठा, अहंकारी, छली और कपटी होता है, उससे तप नहीं हो सकता। इससे हमारा बाण दे दो। क्यों पराया दोष अपने शिर पर लेते हो? हमारे स्वामी ने तुम्हारे प्राण बचाने के लिए तुम्हारे शत्रु को मार डाला। और तुम उनकी भलाई को भूलकर उनका बाण नहीं देते। जो तुम्हारी यही अभिलाषा है कि यह बाण मुझे मिल जाय तो चलकर हमारे स्वामी से माँग लो। वह ऐसे बाण दे दिया करते हैं। अर्जुन ने ऐसे कठोर वचन सुनकर शिवजी का ध्यान किया और क्रोध करके कहा कि हे मूर्ख! तू अहंकारी है। तू ऐसे कठोर वचन हमें कहता है! जैसे तेरी जाति और कुल है, उसी के अनुसार तू बात करता है। हम राजा हैं और तू चोर है। ऐसा ही तेरा स्वामी भी होगा। हम क्यों तुझसे या तेरे स्वामी से बाण माँगें? उचित है कि तू या तेरा स्वामी हमसे माँगे या युद्ध कर ले। जो जीतेगा, उसी का बाण होगा। तुम यहाँ क्यों ठहरे हो? तुरन्त जाओ और अपने स्वामी को बुला लाओ। हम शिवजी के आश्रय पर बैठे हैं। हम निर्भय हैं। वह गण आश्चर्यचकित शिवजी के निकट आया। उसने कहा कि एक तपस्वी बाण लेकर ऐसी-ऐसी बातें कहता है। शिवजी की इच्छा हुई कि अर्जुन के तेज और शक्ति को देखें, इसलिए वह अपने गणों समेत अर्जुन के निकट आये।

सत्तावनवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! अर्जुन शिवजी की अनन्त सेना देखकर कुछ भी न डरे। अपना धनुर्बाण लेकर उनके सम्मुख हुए। किरातरूप शंकर ने संसारी मनुष्यों के सदृश पहले अर्जुन के निकट दूत भेजा और कहा कि तपस्वी से कहो, हमारी सेना अपनी आँखों से देखे और परिणाम सोचकर हमारा बाण दे दे।

तुरन्त ही यहाँ से चला जाय, वरन् वह मारा जायगा। उसकी स्त्री रोती फिरेगी। यह समाचार सुनकर अर्जुन ने कुछ भी भय न किया और कहा कि हे दूत! अपने स्वामी से जाकर कह दे कि जो हम डर कर अपना बाण तुम्हें दे दें तो हमारे कुल में बट्टा लग जायगा। चाहे स्त्री अथवा भाई सब दुखी हो जायँ, पर हम बाण न देंगे। क्या शेर सियार को देखकर डर जाते हैं? या राजा वन के मनुष्यों को देखकर भयाकुल हो जाते हैं? यह सुनकर दूत ने वहाँ से चलकर किरात के पास आ उससे सब वृत्तान्त कहा। किरात अपनी सेनासहित युद्ध करने को उद्यत हुआ और अर्जुन के निकट पहुँचकर अपना शङ्ख बजाया। अर्जुन शिवजी का ध्यान कर उनके साथ लड़ाई करने लगे। गणों ने अपने स्वामी की आज्ञा के अनुसार इतने बाणों की वर्षा की कि अर्जुन महादुखी हो श्रीसदाशिवजी का ध्यान करने लगे। उन्होंने सब बाण काटकर अपने इतने बाण किरात की सेना में बरसाये कि वे सब भाग गये। केवल किरात अवतार शिव खड़े रहे। दोनों ने भली भाँति हर प्रकार का युद्ध किया। दोनों ने उत्तमोत्तम बाण चलाये। किरात तो दया करके बाण मारते थे, पर अर्जुन शिबजी को न जानने के कारण कठोर तीर चलाते थे। किरात अवतार ने अर्जुन के सब अस्त्र शस्त्र काट डाले। अन्त में दोनों मल्लयुद्ध करने लगे, जिससे सारी सृष्टि में हाहाकार मच गया। सब देवता दुखी हुए, पृथ्वी काँप उठी। किरात अर्जुन को पकड़-कर आकाश की ओर ले गये। अर्जुन वहाँ भी न हारे, बहुत लड़े। और किरात के दोनों पाँव पकड़कर उनको चारों ओर घुमाया। निदान किरातनाथ ने मुस्कराकर अपने भक्त के वश हो अपना उत्तमोत्तम असली स्वरूप रख उनको दर्शन दिया, जिसके देखने से अर्जुन को प्रसन्नता हुई। जिस रूप का अर्जुन नित्य

ध्यान करते थे, वही रूप आगे खड़ा देखा । तब लज्जित होकर पश्चात्ताप किया । फिर प्रणाम करके स्तुति की और कहा कि मेरे सब पाप क्षमा कीजिये। वह शिवजी के चरणों पर गिर पड़े। शिवजी ने अर्जुन को पृथ्वी पर से उठाया और कहा कि तुम कुछ चिन्ता न करो। तुम हमारे बड़े भक्त हो। हमने तुम्हारी परीक्षा करने के निमित्त ऐसा चरित्र किया और तुमसे युद्ध करके तुम्हारी शक्ति देखी। इस युद्ध से तुम्हारा बड़ा नाम होगा। अब जो कुछ चाहते हो, वह हमसे माँगो। अर्जुन ने शिवजी की बड़ी स्तुति की और कहा कि हम क्या माँगें। आप तो अन्तर्यामी हैं, सब कुछ जानते हैं। पर आपकी आज्ञा के अनुसार यह माँगता हूँ कि मुझे दोनों लोकों की ऋद्धि-सिद्धि कृपा करके दीजिये। यह कहकर अर्जुन हाथ जोड़कर खड़े हो गये । शिवजी ने अपना पाशुपत अस्त्र अर्जुन को दिया और कहा—अब तुमको कुछ खेद न होगा। हमने तुमको अपना भक्त जानकर यह शस्त्र दिया है। तुम किसी से न हारोगे और सब शत्रुओं को जीतोगे । हम कृष्णजी से कह देंगे। वे तुम्हारी रक्षा करेंगे। वे हमारे अंश और बड़े भक्त हैं। तुम अपने भाइयों सहित राज्य करो। यह कहकर उन्होंने अर्जुन के शरीर पर अपना हाथ फेर दिया और कहा कि जब तुमको क्लेश होगा, तब हमारा स्मरण करना। हम सब संकट काट देंगे । फिर शिवजी अन्तर्धान हुए और अर्जुन भी प्रसन्नतापूर्वक पाशुपत अस्त्र लेकर अपने स्थान में आये और भाइयों से सब वृत्तान्त कहकर सुख दिया । यह सुनकर श्रीकृष्णजी वहाँ आये और कहा कि जैसा हम पहले कहते थे, वैसा ही अब भी कहते हैं कि शिवजी की सेवा किया करो। यह कहकर श्रीकृष्णजी द्वारका को सिधारे और पाण्डव सुखी रहे। जब बारह वर्ष पूरे हुए, तब पाण्डवों ने अपने नगर में जाकर

शत्रुओं को जीत लिया। कौरव मारे गये। युधिष्ठिर राजा हुए। जो मनुष्य इस किरातेश्वर शिव अवतार का चरित्र पढ़े या सुनेगा, वह अपना मनोरथ पाकर शिवलोक में जायगा।

अट्ठावनवाँ अध्याय

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों का वर्णन

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! अब हम द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों का वर्णन करते हैं, अर्थात् वे शिवजी के बारह अवतार, जो लीला कर फिर ज्योतिर्लिङ्ग हो गये। वे अपने भक्तों को बड़ा सुख देनेवाले हैं। उनके दर्शन करने और पूजने से मनुष्य निष्पाप हो जाता है। प्रातःकाल उनके नाम लेने से सुख प्राप्त होता है और कोई पाप नहीं रहने पाता। ये अवतार भक्तों के निमित्त पृथ्वी पर हुए थे। फिर उन अवतारों का नाम ज्योतिर्लिङ्ग हुआ। सोमनाथ, मल्लिकार्जुन, महाकाल, ॐकारनाथ, केदारनाथ, भीमशङ्कर, विश्वेश्वर, त्र्यम्बक, बैजनाथ, नागेश, रामेश्वर, घुश्मेश्वर, इन बारहों अवतारों की अनन्त महिमा है। हम इन बारहों अवतारों की कथा वर्णन करते हैं। प्रथम सोमनाथ सौराष्ट्रनगर में रहते हैं। उनको चन्द्रमा ने, दक्षप्रजापति से शाप पाकर जब उनका प्रकाश जाता रहा था, स्थापित किया था। शिवजी लिङ्गरूप धारण कर उस स्थान पर स्थित हुए। उनकी सेवा से दुःख और शोक स्वप्न में भी नहीं आते। वहाँ पर चन्द्रकुण्ड है, जो सब पापों को नष्ट कर देता है। दूसरा मल्लिकार्जुन श्रीनगर में विराजमान है। वहाँ शिवजी अपने पुत्र स्कन्द के लिए गये और उस स्थान पर ज्योतिर्लिङ्ग होकर स्थित हुए। उनके देखने, पूजने और सेवन करने से नाना प्रकार के सुख मिलते हैं और मुक्ति प्राप्त होती है। तीसरे महाकाल उज्जयिनी में विराजमान हैं। उन्होंने दूषण दैत्य को जलाकर अपने भक्तों का पालन किया और उसी स्थान

पर ज्योतिर्लिङ्ग होकर स्थित हुए। उनके दर्शन करने से दोनों लोकों में मनुष्य आनन्द से रहता है। उसको कभी शोक नहीं होता। चौथे ॐकारनाथ विन्ध्याचल पर्वत पर विराजमान हैं, जिन्होंने विन्ध्य का दुःख नष्ट किया और दो रूप धारणकर उसी पर्वत पर स्थित हुए। वह भुक्ति, मुक्ति दोनों देते हैं। उनके दर्शन से बड़े-बड़े दोष नष्ट हो जाते हैं। उन दोनों अवतारों को प्रणव-स्थल, प्रणवेश, पार्थिव और परमेश्वर भी कहते हैं। ये ज्योतिर्लिङ्ग भक्त के कार्य पूर्ण करने में प्रसिद्ध हैं। पाँचवें केदारेश्वर, जो नरनारायण हैं और भक्तों के कार्य सिद्ध करते हैं, हिमालय पर्वत पर केदार स्थान में स्थित हैं, जिनके दर्शन से अपवित्र भी पवित्र हो जाते हैं। यह भरतखण्ड के स्वामी हैं। उनकी सेवा से संसारी मनुष्यों को सुख मिलता है। छठे भीमशङ्कर हैं, जिन्होंने भक्त के निमित्त भीम को मार डाला और ज्योतिर्लिङ्ग होकर स्थित हुए। सातवें विश्वेश्वर काशी में विराजमान हैं और भुक्ति, मुक्ति, सब कुछ देते हैं। जो उनकी भक्ति करते हैं, वे सुखी रहते हैं। उनको पूजने और देखने से परमपद प्राप्त होता है। आठवें त्र्यम्बक हैं, जिन्होंने गौतम के लिए अवतार लिया और गौतम के पाप नष्ट करने के निमित्त गौतमी नदी के किनारे ज्योतिर्लिङ्ग होकर विराजमान हुए। उनके दर्शन से सब पाप नष्ट हो जाते हैं, तीनों लोकों में सुख प्राप्त होता है। नवें वैद्यनाथ अथवा बैजनाथ चिताभूमि में विराजमान हैं। उनकी अनन्त महिमा है। उनके दर्शन करने से सब पाप भाग जाते हैं। यह अवतार रावण के लिए हुआ था। दसवें अवतार नागेश दारुक वन में विराजमान हैं। वे अपने भक्तों का पालन करके दुष्टों को दण्ड देते हैं। ग्यारहवें रामेश्वर सेतुबन्ध में विराजमान हैं, जिन्होंने रामचन्द्र को सुख दिया था और प्रीति के कारण वहीं रहे। जो कोई इनको

गङ्गाजल से स्नान करावे, उसके सब पाप नष्ट होकर इस लोक में सुख और परलोक में कैलास मिलता है। बारहवाँ घुश्मेश्वर इस प्रकार हुआ कि दक्षिण दिशा में देवगिरि के निकट एक ग्राम में सुधर्मा नाम एक ब्राह्मण रहता था। उसकी दो स्त्रियाँ थीं। घुश्मा ब्राह्मण की दूसरी स्त्री थी। शिवजी की सेवा करने से उसके पुत्र उपजा। पर पहली स्त्री ने उस लड़के को मार डाला। शिवजी उस स्थान पर प्रकट हुए और उस मरे हुए लड़के को जिला दिया। घुश्मा को बड़ा आनन्द हुआ। शिवजी ज्योतिर्लिङ्ग होकर उस स्थान पर स्थित हुए। उनका नाम घुश्मेश्वर हुआ। जो इस ज्योतिर्लिङ्ग के दर्शन या पूजन करे, वह दोनों लोकों में बड़ा सुख पावे। हे नारदजी ! ज्योतिर्लिङ्गों की सेवा से मनुष्य अनेक प्रकार के मनोरथ पाते हैं। इन द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों को लिङ्गराज भी कहते हैं। उनके दर्शन करने और पूजने से दोनों लोकों में आनन्द प्राप्त होता है। इस चरित्र के सुनने और पढ़ने से सुख मिलता है, सब पाप नष्ट हो जाते हैं। यह हमने शतरुद्र खण्ड वर्णन किया। इसका श्रवण और वर्णन करने से मनुष्य सब मनोरथ और सुख पाता है और उसे दूसरे लोक में निर्वाण-पद मिलता है। हे नारद ! अब किस कथा के सुनने की अभिलाषा है, वह कहो। शिवजी के १०० अवतारों की कथा पूर्ण हुई।

इति श्रीशिवपुराणे सप्तमखण्डे ब्रह्मनारदसंवादे-
ऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

ॐ नमः शिवाय

शिवपुराण भाषा

आठवाँ खण्ड

पहला अध्याय

सूतजी बोले—हे शौनक! फिर नारदजी ने ब्रह्मा से कहा कि यद्यपि आपने शिव के गुण वर्णन किये हैं, पर मुझे तृप्ति नहीं होती। इसलिए मैं चाहता हूँ कि अब आप लिङ्गों की महिमा का बखान करें। अर्थात् पृथ्वी पर जितने शिव के लिङ्ग हैं, उनका विस्तार से कि कौन लिङ्ग किस तीर्थ में है, वर्णन करें। यह भी बतावें कि किस स्थान में कितने शिवजी के लिङ्ग हैं। उनका हाल भी कहिये। ब्रह्माजी ने कहा कि लिङ्गों की कोई संख्या नहीं है। पृथ्वी भर में लिङ्ग ही लिङ्ग समझो। जितने तीर्थ हैं और जो कुछ कि विशेष तीर्थ हैं, वे सब लिङ्ग ही हैं। लिङ्ग से भिन्न कोई वस्तु नहीं है। जो वस्तु जिस प्रकार देखी-सुनी जाय, उस वस्तु को शिव का स्वरूप जानो। पर तो भी अपनी बुद्धि के अनुसार, जहाँ तक कि विष्णु से मुझको मालूम हुआ है वहाँ तक, मैं लिङ्गों का वर्णन करता हूँ। अंतरिक्ष आकाश, पृथ्वी देवता, दैत्य और मनुष्यों को, जहाँ जहाँ शिवने उनके स्मरण करने से उनको दर्शन दिया है, उस उस स्थान पर शंकर अतिप्रसन्नता से स्थित हो गये हैं। उनकी पूजा से मनुष्यों के मनोरथ पूरे होते हैं। धरती में शिवजी के असंख्य लिङ्ग हैं, पर उनमें जो अतिप्रसिद्ध और वर्णन के योग्य हैं, उन्हीं का हम बखान करते हैं। उन सबसे बड़े और श्रेष्ठ ज्योतिर्लिङ्ग हैं, जो पूर्णांश से

विराजमान हैं। पहला सोमनाथ, जो सौराष्ट्र में गिरिजा सहित है। दूसरा मल्लिकार्जुन, जो श्रीशैल में है। तीसरा महाकाल, जो उज्जयिनी में है। चौथा अमरनाथ, जो हिमालय पर्वत में स्थित है। पाँचवाँ गणनाथ, छठा भीमशंकर, जो डाकिनी तीर्थस्थल पर है। सातवाँ विश्वनाथ, जो काशी में प्रसिद्ध है। आठवाँ त्र्यम्बक, जो गौतमी के तट पर है। नवाँ वैद्यनाथ, जो चिताभूमि में है। दसवाँ नागेश, जो दारुकवन में विख्यात है। ग्यारहवाँ रामेश्वर, जो सेतु के ऊपर है। द्युतिमान, जो शिवगृह में विराजमान है। मनुष्य प्रभात के समय पवित्र हो बारहों ज्योतिर्लिङ्गों के नाम जिस मनोरथ से पढ़े, वह उसका कार्य पूर्ण हो जाता है। उसको संसार में आनन्द और परलोक में मुक्ति मिलती है। इन ज्योतिर्लिङ्गों का प्रभाव अप्रमेय है। उसका कौन वर्णन कर सकता है। इन बारहों ज्योतिर्लिङ्गों में से एक लिङ्ग की भी जो छः मास तक बराबर पूजा करे तो उस मनुष्य के सब मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। वह मनुष्य फिर आवागमन के चक्कर में नहीं पड़ता। तीनों लोकों में आदर पाने के योग्य हो जाता है। जो नीच जाति का मनुष्य भी इनमें से किसी एक के दर्शन करे तो वह उच्च जाति में उपजे और बड़ा धनवान् सुखी हो; क्योंकि शिव के भक्त, वेदपाठी, ध्यानी, ज्ञानी, इन्हीं की भाग्य में मोक्ष है। जन्म से नपुंसक और अन्य पापी मनुष्य भी उनके दर्शन से ब्राह्मण का जन्म और फिर मुक्ति प्राप्त करते हैं। इससे ज्योतिर्लिङ्गों का दर्शन और पूजन अवश्य करना चाहिए। हम अब अलग-अलग एक-एक ज्योतिर्लिङ्ग का वर्णन विस्तार से करते हैं। उनकी अप्रमेय महिमा है। उनके दर्शन से दुःख दूर होते हैं। पहले अन्तकेश सोमेश्वर उस स्थान पर है, जहाँ महासागर नाम का समुद्र मिलता है। दूसरा रुद्र नाम भृगुकच्छ में है। तीसरा दुग्धेश,

चौथा कर्दमेश, पाँचवाँ भूमीश, छठा भीमेश्वर, सातवाँ लोकनाथ, आठवाँ त्र्यम्बक अर्थात् त्रिनयन, नवाँ बैजनाथ, दसवाँ भूतेश्वर, ग्यारहवाँ गुप्तेश्वर, बारहवाँ व्याघ्रेश, इन बारहों उपलिङ्गों के दर्शन से अति आनन्द प्राप्त होता है।

उन लिङ्गों का वर्णन, जो पूर्व में हैं

प्रयाग, जो तीर्थराज कहा जाता है, वहाँ ब्रह्मा के स्थापित किये हुए ब्रह्मेश्वरलिङ्ग सर्वोपरि हैं। सोमेश्वर नाम का लिङ्ग दशाश्वमेध तीर्थ पर स्थित है, जो सब उपद्रवों को दूर करके आनन्द देता है। भारद्वाजेश्वर और माधवेश शिवटङ्क में हैं। नागेश्वर संकटेश्वर नगर में है। अविमुक्तेश्वर काशी में और वृद्धबाल, कृतबालेश्वर, तिलभाण्डेश्वर, दशाश्वमेधेश्वर, मणिकृतेश्वर, तारेश्वर, गोधूमेश्वर, महाभूतेश्वर, केदारेश्वर, रामेश्वर, वटुकेश्वर, पूरेश्वर, सिद्धनागेश्वर विराजते हैं। पत्तन में दूरेश्वर और मृगेश्वर विराजमान हैं। बैजनाथ, जिनकी महिमा वेद ने बखानी है, नागेश्वर, सिद्धेश्वर, कामेश्वर, विमलेश्वर, व्यासेश्वर, भाण्डेश्वर, हुंकारेश्वर, कुमारेश्वर, शुक्रेश्वर, वटेश्वर, सूर्येश्वर, भीमेश्वर, भूतेश्वर, ज्ञानेश्वर, पूरेश्वर, कोटेश्वर, स्वप्नेश्वर, कर्दमेश्वर और अचलेश्वर भी हैं। पुरुषोत्तमपुरी में भुवनेश्वर हैं, जो सब मनोरथों के देनेवाले हैं। वहाँ गुरु जगन्नाथ के बदले स्थित होकर दर्शन करनेवाले के सब कष्ट नष्ट कर देते हैं। ये सब पूर्व के लिङ्ग हैं। अब हम दक्षिण के लिङ्गों का वर्णन करते हैं।

दूसरा अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! अब हम मत्तगयन्दलिङ्ग का वर्णन करते हैं, जिनको हमने यज्ञ की वेदी में स्थित किया। एक समय कलियुग के प्रारम्भ में हमने इच्छा की कि एक ऐसा यज्ञ करना चाहिए, जिससे धर्म अधिक हो और सब पाप नष्ट

हो जायँ। यह विचार हमने विष्णु के समीप जा अपना मनोरथ कहा। यह भी कहा कि हमारी इच्छा यज्ञ करने की है। आप कोई स्थान बता दें, जो अति शुद्ध हो। यह सुन विष्णु ने कहा कि चित्रकूट एक प्रसिद्ध पर्वत है। उसकी ओर देखने से ही पापी मनुष्य पापरहित हो जाता है। वहाँ मन्दाकिनी नदी बह रही है, जिसमें स्नान करने से कोई पाप नहीं रहता। वह नदी और पर्वत के बीच धनुष के समान है। वह स्थान मुझे बहुत प्रिय है। वहाँ जाकर तुम एक पुरी बसाओ और शिवलिङ्ग भी वहाँ स्थापित करो। हम भी वहाँ बारह अंगुल भर की प्रतिमा मूर्ति से प्रकट होंगे और तुम्हारे यज्ञ की वेदी में स्थित होंगे। जो मनुष्य हमारी मूर्ति के दर्शन करेगा, उसके दुःखों को दूर कर देंगे। त्रेता और द्वापर युग में अवतार लेकर संसार को आनन्द देंगे। हम एक रूप से चार रूप होकर दशरथ के घर अवतार लेंगे, जहाँ हम चारों के नाम राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न होंगे। दशरथ की आज्ञा से लक्ष्मण और सीतासहित उसी स्थान में आकर हम रहेंगे। फिर वहाँ से दण्डकवन में जाकर रामेश्वर लिङ्ग स्थापित करेंगे और उनकी सेवा कर वर पाकर रावण का कुल-परिवार समेत वध करेंगे। हे ब्रह्मन्! शिवजी की सेवा विना कोई काम पूरा नहीं होता। यह बात हम तुमसे सत्य-सत्य कहते हैं। इसलिए तुमको उचित है कि पहले शिवलिङ्ग को स्थापित कर फिर यज्ञ करो। जो हमारे लिए पुरी बसाना, उसके लिए राजा भी बनाना। हम राम अवतार लेकर उनकी वहाँ पूजा करेंगे। यह कह विष्णु अन्तर्धान हुए। हम तुरन्त विष्णु की आज्ञा से वहीं आये और शिवलिङ्ग की स्थापना की। फिर हमने अपने पुत्रों और देवताओं समेत उस लिङ्ग की बड़ी स्तुति की। तब शिव वहाँ प्रकट हुए। मेरी प्रीति देख उन्होंने कहा कि हे ब्रह्मन्!

वर माँगो। मन विनय की कि मेरे ऊपर कृपा करके अपने पूर्णांश से वहीं स्थित रहिए; क्योंकि मेरी इच्छा है कि मैं यहीं यज्ञ करूँ और जो पुरी यहाँ बसाऊँ, उसके राजा आप हों और आपके लिङ्ग का नाम मत्तगयन्द हो। यात्रियों के पापों का वह नाश कर दे। जो मनुष्य यहाँ आकर आपके लिङ्ग का दर्शन न करे, उसे यात्रा का कुछ फल न हो। यह सुन शिवजी ने मान लिया और तुरन्त उस लिङ्ग के भीतर प्रवेश कर गये। हमने उसी स्थान पर यज्ञ करके एक पुरी विष्णु के लिए बसाई, जिसके देखने से पापों के समूह नष्ट होते हैं। मत्तगयन्द उसके राजा हुए। वह स्थान कैलास के नाम से प्रसिद्ध हुआ। शिवलिङ्ग के सामने मन्दाकिनी घाट शिवगङ्गा के नाम से प्रसिद्ध हुआ, जिसके स्नान से सब पाप दूर होते हैं। जो मनुष्य प्रभात को उठकर, मन्दाकिनी का स्नान कर, मत्तगयन्द की पूजा करे, वह सब मनोरथ पावे और मरने के उपरान्त शिवपुरी में वास करे। कदाचित् वहाँ जाकर कोई मनुष्य शिवपूजा न करे तो यात्रा भर का फल जाता रहे। जब मत्तगयन्द का दर्शन कर ले, तब यात्रा का फल मिलता है। रामचन्द्र ने आप वहाँ जाकर इस लिङ्ग की पूजा की है। अब हम कोटेश्वर लिङ्ग का वर्णन करते हैं। संकर्षण पर्वत के पूर्व, जहाँ कोटनाम का महापवित्र तीर्थ है, वहाँ कोटेश्वर नाम का शिवलिङ्ग है, जिसके दर्शन, पूजन और नदी में स्नान से कोई पाप नहीं रहता। अन्त में उसको शिवलोक मिलता है। जो मनुष्य संकर्षण पर्वत में जाकर तीर्थस्नान के उपरान्त कोटेश्वरलिङ्ग की पूजा करे तो सहस्र गोदान का फल पावे। उसके सब पाप भस्म हो जायँ और शिवजी उस पर प्रसन्न रहें। चित्रकूट के दक्षिण ओर से आगे पश्चिम ओर को तुङ्गारण्य पर्वत है, जहाँ गोदावरी नदी बह रही है। वहाँ पशुपति नाम का शिवलिङ्ग है। जो कोई

गोदावरी में स्नान करके शिवलिङ्ग की पूजा करे, वह सदा संसार में प्रसन्न रहे। रामचन्द्र ने पशुपतिलिङ्ग की पूजा के उपरान्त गोदावरी में स्नान किया। उसके दक्षिण कालञ्जर पर्वत है, जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध है, जहाँ बहुतों ने तप करके सिद्धि पाई है। उसका नाम मुक्तक्षेत्र है, जो सब पापों का क्षय कर अमित आनन्द देता है। वहाँ बहुत से अति पवित्र तीर्थ हैं। वहाँ मन्दाकिनी नदी बहती है, जिसके केवल अवलोकन से पाप नष्ट हो जाते हैं। उस स्थान पर नीलकण्ठ शिवजी का लिङ्ग है, जिसके देखने से पाप दूर हो जाते हैं। वह लिङ्ग गिरिजा-सहित विराजमान राजराजों के समान है। जो मनुष्य उस तीर्थ में स्नान करके नीलकण्ठ की पूजा करता है, वह सम्पूर्ण मनोरथ पाता है और फिर आवागमन से छूट जाता है। देवता, मुनि और सिद्ध आदि ने इस लिङ्ग की पूजा से परमपद पाया है। कालञ्जर तीर्थराज है, जहाँ नीलकण्ठ शिव हैं। उनकी महिमा पढ़-सुनकर फिर कोई मनुष्य संसार में नहीं उपजता। यह आख्यान अति पवित्र है।

तीसरा अध्याय

इतना सुन नारदजी बोले कि हे ब्रह्मन्! मुझको अत्रीश शिवलिङ्ग की महिमा विस्तार से सुनाइये। ब्रह्मा बोले कि जो हमने नीलकण्ठ शिवलिङ्ग का वर्णन किया है, उसके दक्षिण ओर अत्रीश्वर नाम शिवजी का लिङ्ग है। यह मधुवन में विराजमान है। हमारा पुत्र अत्रि, जो अनसूया का पति है, उसने चित्रकूट पर्वत के निकट अति श्रम से स्त्री-सहित तप किया है और शिव के ध्यान में लगा रहा। इतने में ऐसा काल पड़ा कि एक सौ वर्ष तक संसार भर में पानी न बरसने से लोग अति विकल रहे। यहाँ तक कि मुनीश्वरों को भी अति दुःख प्राप्त हुआ।

सब कुएँ, तालाब, नदी, समुद्र आदि सूख गये और वृक्ष आदि भी सूखे। बिना वर्षा के किसी को चैन न पड़ा। शुभ कार्य दिन दिन घटने लगे। ऐसी दशा देख अनसूया ने अत्रि से कहा कि संसार भर दुखी है। ऐसा कोई उपाय करो, जिसमें जल बरसे और धरती में आनन्द हो। पर अत्रि उसी तरह समाधि लगाये हुए बैठे रहे। कुछ अनसूया के वचन न सुने तो जो अत्रि के शिष्य थे, वे भी वर्षा न होने के कारण दुखी हो चले गये। तब तो अनसूया दृढ़तापूर्वक पार्थिव-पूजा करने लगीं। शिव प्रकट हुए, जिनके देखने को देवताओं और मुनीश्वरों का समूह इकट्ठा हो गया। यहाँ तक कि गङ्गा आदि सम्पूर्ण तीर्थ भी दौड़े आये। अत्रि और अनसूया का तप देख सब आश्चर्य में हुए और विष्णु आदि सबने कहा कि तप व उपासना के लिए कौन श्रेष्ठ है? निदान यह बात ठहरी कि तपके लिए शिव से अधिक कोई श्रेष्ठ नहीं है; क्योंकि वेद की भी यही आज्ञा पाई गई। इसके उपरान्त देवता आदि सब अपने अपने स्थान को चले गये। पर गङ्गा वहीं रहीं; क्योंकि शिव वहाँ विराजमान थे। इसी प्रकार चौवन वर्ष अत्रि मुनि को तप करते हुए बीत गये। एक दिन अत्रि ने ध्यान छोड़कर कहा कि जल दो। सो अनसूया कमण्डलु हाथ में लेकर वन के मार्ग से जल लेने गईं। गङ्गा ने अनसूया को चिन्तित देखकर कहा—हे अनसूया! कुछ चिन्ता मत करो। तुम धन्य हो। कहाँ जाती हो? तुम्हारी इच्छा मैं पूरी करूँगी। यह सुन अनसूया अति प्रसन्न हुई और कहा कि तुम कौन हो? क्यों यहाँ खड़ी हो? तुम्हारे देखने से मुझको तुम्हारे प्रति बड़ी प्रीति उपजी है। गङ्गा ने कहा कि इस स्थान पर शिव, ब्रह्मा, विष्णु आदि तुम्हारी और तुम्हारे पति की पूजा देखने के लिए आये थे और तुम दोनों की प्रशंसा करते हुए अपने-अपने लोक

को चले गये। पर मैं शिव के रहने से उनके प्रेम के कारण यहाँ रह गई हूँ। मैं तुम्हारे अधीन हूँ। जो तुमको चाहिए, वह वर मुझसे लो। अनसूया बोलीं कि यहीं स्थित रहो। गङ्गा वहीं रहीं। अनसूया ने जल कमण्डलु में भर अत्रि को दिया। अत्रि ने जल पी चिन्तित हो अनसूया से कहा कि यह जल तुमने कहाँ से पाया? अनसूया ने सब हाल कह सुनाया। अत्रि ने तुरन्त उठ गङ्गा को देखा और स्नान कर गङ्गा की स्तुति की। अनसूया ने भी बड़े आनन्द से गङ्गाजी में स्नान किया। फिर गङ्गाजी ने कहा कि अब मैं जाती हूँ। तब दोनों ने हाथ जोड़ बिनती की कि तुम यहीं रहो। गङ्गाजी ने कहा कि जो एक वर्ष की शिव-पूजा का फल मुझको दो तो मैं रहूँ। अनसूया ने मान लिया और गङ्गा वहाँ स्थित हुईं। इतने में शिव प्रसन्न हो उसी स्थान में अपने मुख्य चिह्नों समेत प्रकट हुए। अत्रि ने शिवजी को शक्ति समेत देख स्तुति की। शिवजी बोले कि हम प्रसन्न हैं। जो चाहिए, वर ले लो। अत्रि और अनसूया ने यह सुनकर बिनती की कि जो तुम प्रसन्न हो तो यहीं स्थित हो जाओ। शिव "अच्छा" कह गङ्गा-सहित वहाँ रहे, जहाँ अत्रि और अनसूया ने लिङ्ग की स्थापना की थी। वह अत्रीश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुए और गङ्गा का नाम मन्दाकिनी प्रसिद्ध हुआ। उसी स्थान पर बहुत से मुनि अपने परिवार सहित आकर स्थित हुए, जो गङ्गा-किनारे खेती और यज्ञ करने के अनन्तर शिवजी को प्रसन्न करते रहे। फिर शिव प्रसन्न हुए, जिससे भलीभाँति वर्षा हुई और सबको आनन्द प्राप्त हुआ। अत्रि और अनसूया धन्य हैं, जिन्होंने शिवजी को प्रसन्न कर वर्षा कराई। जो मनुष्य अत्रीश्वर के दर्शन करेगा, उसके सब मनोरथ पूरे होंगे। जो अत्रीश्वर चरित्र को पढ़े-सुनेगा, उसको इस लोक में आनन्द और परलोक में परमपद प्राप्त होगा।

चौथा अध्याय

नारदजी के पूछने पर ब्रह्माजी बोले कि नर्मदा नदी के तट पर असंख्य शिवालिङ्ग हैं, जिनकी गणना नहीं हो सकती। जितने पत्थर नदी में पड़े हैं, वे सब शिवरूप हैं। उनकी बड़ी महिमा है। पर हम प्रसिद्ध-प्रसिद्ध लिङ्गों का वर्णन करते हैं, जिनके केवल दर्शन से आनन्द प्राप्त होता है। वे ये हैं—अवतारेश्वर, परमेश्वर, सुखेश्वर, ब्रह्मेश्वर, रमेश्वर, विमलेश्वर, मदनेश्वर, कुमारेश्वर, पुण्डरीकपति, मण्डपेश्वर, तीक्ष्णेश्वर, धनुर्धरेश्वर, शूलेश्वर, कुम्भेश्वर, कुबेरेश्वर, भीमेश्वर, सूर्येश्वर, नागेश्वर, रामेश्वर, नन्देश्वर, कण्टकेश्वर और चन्द्रेश्वर। जहाँ पर समुद्र मिलता है, वहाँ घृतकेश शिव का भी लिङ्ग है। और सुरतेश्वर, वरचलेश्वर, सोमेश्वर, मङ्गलेश्वर, हरेश्वर, इन्द्रेश्वर और दये-श्वर भी हैं, जो दोनों लोकों में आनन्द देते हैं। नन्दिकेश्वर रेवा नदी के किनारे हैं। उसी स्थान पर ब्रह्महत्याहर तीर्थ भी है। इतना सुन नारदजी बोले—ब्रह्माजी, लिङ्ग की महिमा और ब्रह्महत्याहर तीर्थ का हाल विस्तार से कहिये। ब्रह्माजी बोले—एक समय कौरवों और पाण्डवों में बड़ा युद्ध हुआ था और उसमें दोनों ओर से बहुत से जीव मारे गये। युधिष्ठिर ने शत्रुओं को जीता भी, पर तो भी मन को कुछ आनन्द न हुआ। मन में हर समय लज्जा और दुःख बना रहा। एक दिन राजा युधिष्ठिर ने अति विकल हो श्रीकृष्ण से कहा कि मैंने अपने कुल को नष्ट किया, इससे हर समय मेरे मन में उदासी छाई रहती है; क्योंकि मुझको नाना प्रकार की हत्याएँ लगी हैं। ऐसी हत्याओं को दूर करने के निमित्त जो उपाय आप जानते हों, वह कहिये। श्रीकृष्ण बोले कि नन्दिकेश्वर नामक जो शिवजी का लिङ्ग है, उसी के दर्शन से सब पाप दूर हो जाते हैं। उसकी पूजा से सिद्धि प्राप्त

होती है। जो उनकी सेवा करते हैं, वे तो साक्षात् शिवरूप हैं। नन्दिकेश्वर में अर्थात् रेवानदी में एक हत्याहरण तीर्थ भी है, जिसके देखने से पाप दूर होते हैं। उसी रेवानदी के पश्चिमी तट पर कर्णिकापुरी है। उसकी महिमा अति प्रसिद्ध है। वहाँ घर घर शिवजी की सेवा पूजा हो रही है और असंख्य शिवालय वर्तमान हैं। रात-दिन वहाँ के मनुष्य शिवजी के भजन में लगे रहते हैं। वहाँ दुःख का लेश भी नहीं पाया जाता। वहाँ एक ब्राह्मण भी रहा करता था, जो उतथ्यवंश में उपजा था। वह काशी में मर गया। उसके सातों पुत्रों ने उसके धन को परस्पर बाँटा। कुछ दिनों के बाद उन लड़कों की माता ने मृत्यु के समय अपने पुत्रों से कहा कि मुझको केवल काशी देखने की इच्छा रह गई है; सो अब मेरा पहुँचना कठिन है; पर हमारी हड्डियाँ काशी में पहुँचा देना। सो इस बात को बड़े पुत्र ने माना और माता के मर जाने के उपरान्त जब कि क्रियाकर्म से सुचित्त हुआ तो वही बड़ा पुत्र, जिसका नाम सुबाहु था, माता की अस्थि ले अपने नौकर समेत काशी गया। पहिले दिन घर से चल बीस योजन पर गाँव में एक ब्राह्मण के घर ठहरा। जब चार घड़ी रात बीती तो घर का स्वामी अर्थात् ब्राह्मण बाहर से घर आया और गौ को घर में बाँध चाहा कि दूध दुहे। गाय के बच्चे ने कुपित हो उस ब्राह्मण को इस जोर से एक लात मारी कि वह मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। फिर ब्राह्मण ने उठकर उस बच्चे को इतना मारा कि वह मूर्च्छित हो गया। ब्राह्मण ने गौ दुहकर बच्चे को रस्सी से बाँध दिया, छोड़ा नहीं। अपने बच्चे की यह दशा देख गौ रोई। बच्चे ने बहुत समझाया, पर कुछ न माना और कहा कि प्रभात को जब ब्राह्मण का पुत्र मुझको दुहने आवेगा, उसे जब तक मैं अपने सींगों से छेद के मार न डालूँगी, तब तक मेरा

क्रोध शांत न होगा। बच्चे ने कहा कि तुमको बड़ा पाप होगा। वह ब्रह्म-हत्या क्योंकर दूर होगी ? यह बात उचित नहीं। गौ ने कहा कि वह स्थान मुझे स्मरण है, जहाँ जाने से हत्या नष्ट हो जाती है। यह सुन बच्चा चुप हो गया। वह विदेशी ब्राह्मण गौ का वचन सुन आश्चर्य में हुआ और इस बात के जाँचने के लिए अपना जाना बन्द कर यह तमाशा देखने को वहीं रहा। भोर हुआ। ब्राह्मण बाहर चला गया। उसके पुत्र ने चाहा कि गौ दुहूँ। गौ ने अपने सींगों से मारकर ब्राह्मण के पुत्र का बध कर दिया। यह देख सब पड़ोसी बान्धव ब्राह्मण के यहाँ इकट्ठे हो गये और गौ को छोड़ दिया। वह जो श्वेत रङ्ग की थी तुरन्त काली हो गई और पूँछ उठाये भाग चली। विदेशी ब्राह्मण, जो हत्याहरण स्थल देखना चाहता था, गौ के पीछे नौकर समेत चला। गौ नर्मदा में, जहाँ नन्दिकेश्वर शिवलिंग हैं, गई और स्नान कर वैसी ही श्वेत हो गई। ब्राह्मण ने देख बड़े आश्चर्य से कहा—धन्य है यह तीर्थ। यह स्थान अतिपवित्र है। आप नौकर समेत वहाँ स्नान कर आगे चला। मार्ग में उसको एक सुन्दर स्त्री मिली। उसने कहा—ठहर जाओ। अपनी माता की हड्डियाँ इसी तीर्थ में छोड़ दो। तुम्हारी माता देवतों के समान होकर मुक्ति पावेगी; क्योंकि सदा वैशाख शुक्ल सप्तमी को गंगा यहाँ आया करती हैं। सो आज वही दिन है। और मैं वही गंगा हूँ, उसी तीर्थ में जाती हूँ। यह कहकर वह गंगा अन्तर्धान हो गईं। ब्राह्मण ने भी लौटकर हड्डियों को उसी स्थान पर डाल दिया। ब्राह्मण की माता देवीरूप होगई। उसने अपने पुत्रको बहुत आशीर्वाद दिये। फिर शिवलोक को चली गई। ब्राह्मण ने आकर यह समाचार सबको सुनाया। इतना सुन नारद ने पूछा कि किस कारण वैशाख की सप्तमी को गङ्गा

वहाँ आती हैं ? और नन्दिकेश्वर शिवलिङ्ग उस स्थान पर क्यों-कर स्थित हुआ ? ब्रह्माजी बोले कि पूर्वकाल में ऋषिका नाम एक विधवा ब्राह्मणी शिवजी की बड़ी भक्त थी। वह लड़कपन में विधवा हुई। उसने पार्थिव-पूजन कर अति तप किया। उसी तप में एक मुर नाम दानव ने चाहा कि ब्राह्मणी के साथ भोग करके उसका तप नष्ट कर दे। सो ब्राह्मणी अति विकल हो शिवजी की स्तुति करने लगी और कहा—मेरी लज्जा अब आपके हाथ है; क्योंकि आप सदा अपने भक्तों की रक्षा करते हैं। शिव तुरन्त प्रकट हुए, दानव को मार डाला और ब्राह्मणी से कहा कि जो इच्छा हो, हमसे वरदान माँग ले। ब्राह्मणी ने प्रसन्न होकर शिव की बड़ी स्तुति की और कहा कि अब कौन वस्तु है, जो मुझको प्राप्त नहीं। आप अपने दर्शन से मुझको कृतार्थ करके सब कुछ दिया है। यह स्तुति सुनकर अति प्रसन्न हो बहुत वर दे अन्त-र्धान हुए और पूर्ण अंश से लिङ्गस्वरूप होकर नन्दिकेश्वर नाम से उसी स्थान पर स्थित हो गये। वहीं अंश-रूप हो वितललोक में हाटकेश्वर के नाम से प्रकट हुए। उस समय ब्राह्मणी ने गङ्गा से कहा कि तुम भी इसी स्थान पर स्थित हो जाओ, मेरी यह इच्छा है; क्योंकि तुम्हारे दर्शन से मुझको बड़ा आनन्द हुआ है। गङ्गा ने कहा कि तुम सी कोई धन्या, भाग्य की पूरी संसार में दूसरी स्त्री नहीं, जिसके लिए शिव प्रकट हुए हैं। मैं तुमसे अति प्रसन्न हूँ। मैं तुमसे कहती हूँ कि मैं सदा वैशाख शुक्लपक्ष की सप्तमी को आया करूँगी। यह कह गङ्गा अन्तर्धान हुईं। उसी दिन से वह स्थल तीर्थ हो गया, जहाँ सब मनोरथ पूरे होते हैं और जहाँ स्नान करने से सम्पूर्ण प्रकार के पाप शान्त हो जाते हैं। यह चरित्र अति पवित्र और दोनों लोकों में आनन्द देनेवाला है।

पाँचवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले --हे नारद! रेवा के किनारे असंख्य शिवलिङ्ग हैं, जिनको बुद्धिमान् जान सकते हैं। यह रेवा नदी शिव को गिरिजा के समान बहुत प्यारी है। इसके सब पत्थर शिवलिङ्ग के समान हैं। वे पत्थर सबके पूजने के योग्य हैं। उसके दोनों तटों पर शिव के असंख्य मन्दिर विराजमान हैं। वहाँ देवता, मुनि आदि प्रतिदिन पर्यटन किया करते हैं और अपनी पत्नियों सहित शिव की पूजा में लगे रहते हैं। उसके उत्तर की ओर हनुमान् का स्थापित किया हुआ कपीश्वर शिवलिङ्ग वर्त्तमान है। वहाँ पर हनुमान् ने बड़ा तप किया था, जिससे उनका ब्रह्महत्या का पाप छूट गया। इतना सुन नारद ने पूछा कि आप इस चरित्र का विस्तार से वर्णन कीजिये। ब्रह्मा ने कहा कि शिवजी रामचन्द्र की कामना पूर्ण होने के निमित्त वानर का रूप रख हनुमान् के नाम से प्रकट हुए थे। वह हर प्रकार से रामजी की सहायता कर दूत के नाम से प्रसिद्ध हुए और सीता के समाचार लाने के लिए समुद्र को नाँघ गये। लङ्का को जला दिया। रावण के लड़के को मार डाला। समुद्र में सेतु बाँधा और सब सेना उतार ले गये। रामचन्द्र को कुछ श्रम न करने दिया और आप रावण को कुल सहित मार डाला। रामचन्द्र और लक्ष्मण के सब दुःख दूर कर महिरावण की भुजा उखाड़ ली। लक्ष्मण को जिलाया। फिर रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता समेत आकर बहुत समय तक राज्य करते रहे। पर रामचन्द्र ब्राह्मण रावण का वध करने के कारण पश्चात्ताप करते रहे। निदान नैमिषारण्य में, जहाँ हत्याहरण तीर्थ है, अपने भाई सहित जाकर अपने पाप दूर किये। उसमें लक्ष्मण सहित स्नान करके शिवलिङ्ग की स्थापना की, जिससे वह अति पवित्र हो गये। एक दिन हनुमान्

कैलास पर्वत पर गये और अति गर्व से शिवजी के दर्शन की इच्छा कर चले। नन्दीश्वर ने आकर रोका और कहा कि तुम इतनी जल्दी शिव के दर्शन किया चाहते हो? तुम शिव के दर्शन योग्य नहीं। तुमने तो ब्राह्मण रावण का वध किया है। तुम अपने गर्व में धर्म को भूल गये। अब तुमको चाहिए कि रेवा के किनारे जाकर शिवलिङ्ग की स्थापना करो। तब तुम्हारा पाप दूर होगा। तब शिव के दर्शन को आना। शिव तुम पर कृपा करेंगे। यह सुन हनुमान् ने रेवा नदी के तट पर जाकर शिवलिङ्ग स्थापित किया और उसकी पूजा करने लगे। बार-बार शिव को प्रणाम करके बड़ी स्तुति की। तब शिव प्रसन्न हुए और हनुमान् के आगे प्रकट होकर कहा कि हम बहुत प्रसन्न हैं। तुम तो हमारा ही रूप हो। हमने तुमसे यह तप इसलिए कराया कि संसार में ब्राह्मण की महिमा स्थिर रहे। यह कहकर शिव अन्तर्धान हुए और हनुमान् के सब दुःख दूर हो गये। उन्होंने कैलास में जाकर शिव का दर्शन पाया। फिर कोई पाप न रह गया। जो कोई मनुष्य पवनेश्वरलिङ्ग की पूजा करता है, उसका कोई पाप नहीं रहता। जो मनुष्य इस चरित्र को पढ़े-सुनेगा, वह दोनों लोकों में आनन्द और मोक्ष पावेगा।

छठा अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद, एक दिन मैं और विष्णु दक्षिण की ओर जा रेवा नदी के तट पर स्नान के उपरान्त बैठ गये। उस स्थान पर सब देवता और मुनि आदि इकट्ठे हुए और एक उत्तम सभा रची गई। सबने मुझसे और विष्णु से पूछा कि तुम में वह कौन देवता है, जो नाशरहित, ब्रह्म, निर्दोष, सब सृष्टि का स्वामी, निर्गुण, अलख, ईश्वरों का ईश्वर, सबसे श्रेष्ठ, विश्वंभर और प्रलय करनेवाला है? कृपा करके वर्णन करो। मैं पहले

शिवकी माया में पड़कर कहा कि मैं परब्रह्म, तीनों लोकों का स्वामी और सबसे श्रेष्ठ हूँ। यह बात मेरे नामों से, जिन्हें वेद कहते हैं, प्रकट है। यह मेरा वचन सुनकर विष्णु क्रोधित हो कहने लगे कि तुम बिना जाने वेद के विरुद्ध ऐसी बातें मत कहो। क्या तुमने सब वेद भुला दिये? तुम तो वही हो, जो हमारी नाभि-कमल से उपजे। तुम तो हमारे अधीन हो। अतएव हम परब्रह्म हैं। हमसे बड़ा कोई संसार में नहीं। हमको वेद और पुराण सब ब्रह्म कहते हैं। तुम अपने नामों के गर्व में न रहो; क्योंकि अन्धे का नाम 'नयनसुख' और कृपण का नाम 'उदार' भी होता है। निदान मैंने विष्णु की बात न मानी। हम दोनों ने शिव की माया में भूलकर परमतत्त्व को भुला दिया और अपने को परब्रह्म ठहराया। निदान यह बात ठहरी कि वेद जिसको सर्वोपरि कह दें, वही बड़ा समझा जाय। मेरे स्मरण करने से वेद आये। पूछने पर उन्होंने कहा कि तीनों गुणों से भिन्न जो प्रकाशमान हैं और जिनके शरीर में करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं, वह सदाशिव हैं। वे प्रलय करनेवाले हैं। वे एक ही से सदा रहते हैं। योगी बड़े यत्न से उनका ध्यान करते हैं। इस प्रकार शिव की बड़ी प्रशंसा की। यह सुन हम दोनों ने मूर्खता से कहा कि शिव तो निर्गुण, विष के खानेवाले, जटाधारी, वृष पर सवार होनेवाले, नग्नशरीर, योगी, सर्पों के भूषण पहननेवाले, औढर, भूतों-प्रेतों के साथी और अशुभ वस्त्रधारी हैं। वे परब्रह्म क्योंकर हो सकते हैं? यह कह हम दोनों ने हँस-हँसकर वेदों को चुप कर दिया। यह हमारी दशा देख प्रणव ने कहा कि तुम दोनों संसार उपजानेवाले और पालनकर्ता हो। ऐसी मूर्खता न करो। तुम वेद के वचनों का निरादर न करो और शिव को पर-ब्रह्म समझो। उन्होंने तुम्हारे लिए, यद्यपि वे निर्गुण हैं, बहुत

शरीर धारण किये। उनके अगणित चरित्र और असंख्य भाव देखकर सत्य मार्ग को मत भूलो। पर प्रणव की इन बातों का हम पर कुछ भी प्रभाव न हुआ। तब तो शिवजी ने चाहा कि हम दोनों के अहंकार का नाश करें, जैसा कि आगे वर्णन होता है।

सातवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा कि उस समय हम दोनों के आगे एक बड़ी ज्वाला दिव्य रूप से प्रकट हुई, जो पृथ्वी से आकाश तक व्याप्त थी। उसका आदि या अन्त नहीं जाना जा सकता था। फिर शिवजी कृपादृष्टि से लिङ्गरूप रखकर उस स्थान में रेवा नदी के किनारे प्रकट हुए; क्योंकि शिवजी अपने भक्तों के क्लेश दूर करने के लिए करोड़ों उपाय करते हैं। शिवजी के प्रकट होते ही सबका अहंकार जाता रहा और पृथ्वी प्रकाशपूर्ण हो गई। सब जय-जय शब्द कहने लगे। वह लिङ्ग आठ अंगुल का था। चार अंगुल नीचे और चार अंगुल ऊपर। इस लिङ्ग के प्रकट होते ही शिवजी के गण शिवलोक से आये और लिङ्ग को पूजने लगे। फिर देवताओं और मुनीश्वरों ने पूजा की। उस स्थान पर बड़ा आनन्द हुआ और सबका शोक जाता रहा। नाना प्रकार के बाजे बजने लगे। सबों ने अपने-अपने मुख से शिवजी का यश गाया। मैं और विष्णुजी भी लिङ्ग के निकट आये। तब विष्णुजी ने कहा कि यह कौन तीसरा व्यक्ति है? मैंने कहा कि हे विष्णुजी! हमारा और आपका इसी बात पर निर्णय हो जायगा, अर्थात् जो यह लिङ्ग चार अंगुल नीचे और चार अंगुल ऊपर है, उसको जो छू लेगा वही हम दोनों में परब्रह्म है। विष्णुजी ने यह मानकर कहा कि हम नीचे का भाग छुएँगे और तुम ऊपर के भाग को छुओ। विष्णुजी शूकर का रूप रखकर नीचे को चले और मैं हंस बनकर ऊपर को उड़ा। शिवजी ने ऐसी लीला

की कि वह लिङ्ग अतललोक तक चला गया, जिससे वहाँ के लोग कृतकृत्य हो गये। अतलवालों ने शिवलिङ्ग को भली प्रकार पूजा और मयदानव के पुत्र ने शिवजी की स्तुति की। उस समय विष्णुजी वहाँ आये। शिवजी ने अपने लिङ्ग को बहुत बढ़ाया। यहाँ तक कि वितललोक में पहुँचा। वहाँ के निवासियों ने शिवलिङ्ग की बड़ी पूजा की। इतने में विष्णुजी भी वहाँ पहुँचे। पर वह लिङ्ग और नीचे को चला गया और सुतललोक में पहुँचा। वहाँ राजा बलि ने उनकी बड़ी पूजा की। जब विष्णुजी वहाँ पहुँचे तो शिवजी का लिङ्ग बढ़कर तलातल में गया। वहाँ त्रिपुरासुर ने उनकी पूजा की। जब विष्णुजी वहाँ पहुँचे तो लिङ्ग बढ़कर महातल में पहुँचा। वहाँ तक्षक नाग आदि ने उनकी पूजा की। वहाँ विष्णुजी के पहुँचने के समय वह लिङ्ग बढ़कर रसातल में गया, जहाँ मयदानव के पुत्र दत्त ने उनको पूजा। विष्णुजी वहाँ गये तो शिव का लिंग बढ़कर तुरन्त ही पाताल में चला गया, जहाँ वासुकि नाग आदि ने उनकी पूजा की। इसी प्रकार विष्णुजी चौदहों भुवन में गये, पर लिंग को न छू पाये। जब लिंग शेषलोक में गया, तब शेषजी ने उनका बड़ी धूमधाम से पूजन किया। अन्त में वह लिंग विष्णुजी को पीछे-पीछे फिरते देखकर गुप्त हो गया। विष्णुजी थककर लौट आये और शिवजी को सबसे बड़ा समझने लगे। वह बड़े लज्जित हुए। हे नारद! शिवजी ऐसे-ऐसे चरित्र करते हैं। तुम भली प्रकार से विचार लो।

आठवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! इस तरह तो विष्णु का अहंकार दूर हुआ। अब मेरी गति सुनो। जब मैंने चाहा कि शिवलिंग के ऊपर हाथ रक्खूँ तो वह लिंग तुरन्त भुवर्लोक को गया, जहाँ गुह्यक आदि ने शिवजी के लिंग की पूजा की। फिर वह लिंग

सूर्यलोक में पहुँचा, जहाँ सूर्य ने उनका पूजन किया। इतने में मैं वहाँ जा पहुँचा। पर शिवलिंग स्वर्गलोक में जा पहुँचा, जिसका प्रमाण वेद ने सूर्यलोक से ध्रुव तक वर्णन किया है। उसके भीतर और बहुत से लोक हैं। फिर शिव मुझको पीछा करते देख चन्द्रलोक में गये, जहाँ चन्द्रमा ने उनकी बड़ी पूजा की। इसी प्रकार वह लिंग उडुलोक, शक्रलोक, भूमिलोक, बृहस्पतिलोक, सप्तर्षिलोक, महर्लोक, जनलोक, विष्णुलोक, स्कन्दलोक, शिव-लोक, गोलोक आदि में गया, जहाँ उसकी बड़ी पूजा हुई। जब मैं पहुँच जाता था तो तुरन्त शिवलिंग आगे को चला जाता था। निदान मैं अति दुखी हुआ। तब केतकीपुष्प ने मुझसे कहा कि तुम यहाँ से कहाँ चले और तुम इतने घबराये हुए क्यों हो? तब मैंने अपना सब वृत्तान्त वर्णन कर दिया। केतकी के पुष्प ने मुझसे कहा कि मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। अब तुम लौट चलो। यह बात मैं सबके सामने कह दूँगा कि तुमने शिव की मूर्ति को छू लिया है। यह सुनकर मैं उसके साथ चला। मार्ग में सुरभी मिली। उसने मुझसे वृत्तान्त पूछा। मैंने सब वृत्तान्त उससे भी कह दिया। उसने भी मुझसे प्रतिज्ञा की कि मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण कर दूँगी। यह कहकर वह भी हमारे साथ चली। मैं अति अहंकार से दोनों को साथ लिये हुए विष्णु के समीप आया।

नवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि मैंने दोनों को साथ लिये हुए विष्णु के पास आकर उनसे पूछा कि तुमने शिवलिंग को छू लिया? विष्णु ने 'नहीं' करके मुझसे पूछा तो मैंने कहा कि हाँ, वास्तव में मैंने लिंग को स्पर्श किया है। जो तुमको विश्वास न हो तो मेरे इन दोनों गवाहों से पूछ लो। दोनों ने कहा कि हे विष्णु! हम पक्षपातरहित कहते हैं कि शिवलिंग को ब्रह्माजी ने छू लिया

है और ब्रह्माजी की विनती के अनुसार शिव ने हम दोनों को तुम्हारे सामने साक्षी देने को भेजा है। ऐसे दोनों के झूठे वचन सुन शिव अति क्रोधित हुए। ऊँचे शब्द से आकाशवाणी हुई कि हमारा लिंग कब ब्रह्माजी ने छुआ है? तुम दोनों धर्म के विरुद्ध क्या झूठ बकते हो। केतकी आज से हमारे ऊपर न चढ़ेगी। और हे सुरभी! जिस मुख से तुमने यह बात कही और अपने को नीच बनाया, उसी मुख से कलियुग में तुम विष्ठा भक्षण करोगी। तब मुझको ज्ञान हुआ कि जिसने हमारे अहंकार को दूर कर दिया, वही सबसे श्रेष्ठ है। फिर मैंने शिव का एक और लिंग देखा और नाना प्रकार के शिव के रूप दिखाई दिये। कहीं वे गणपति-सहित, कहीं देवी के साथ, कहीं उनको सब देवता और मुनीश्वर पूजते हुए और कहीं मैं और विष्णु उनकी पूजा करते हुए। जब विष्णु और मैंने आँखें खोलीं, तब शिव का केवल एक स्वरूप भासित हुआ। जब कि शिवजी ने अपनी माया समेट ली, तब हमने उनको अपना स्वामी जाना। दोनों ने हाथ जोड़ बड़ी स्तुति की और कहा कि हे शिवजी! हमको अपना सेवक जानकर यहीं प्रकट हो जाइये। सो शिव प्रकट हुए। उस स्वरूप का हम बखान नहीं कर सकते, जिस स्वरूप से शिवजी उस स्थान पर प्रकटे। हम दोनों दर्शन करते ही कृतार्थ हो गये और स्तुति करने लगे। हमने अपने अपराधों का क्षमापन चाहा। फिर सुरभी ने विनती की कि यद्यपि मैंने बड़ा पाप किया है, तथापि मेरी यह प्रार्थना है कि मेरे सिर पर हाथ रखकर आप मेरे पाप दूर कर दें। दूसरा यह मनोरथ है कि मैं अपने दुग्ध की धारा से आपका अभिषेक करूँ। मैंने और विष्णु और सुरभी ने बड़ी प्रसन्नता से अपने परिवार और गणों को बुलाया। वहाँ पर एक बड़ी सभा स्थित हुई। सबने शिवजी की पूजा और बार-बार स्तुति की और

शिवजी को सबसे श्रेठ समझा। शिवजी ने हम सबकी स्तुति सुनकर कहा कि हम केवल तुम्हारा गर्व दूर करने को लिंगरूप होकर प्रकटे कि तुम्हारे अहंकार का नाश कर तुमको अप्रमेय आनन्द कृपा करें। अब आगे ऐसा दुःखदायक विचार न करना। और यह दूसरा लिंग जो हमने प्रकट किया है, उसकी महिमा सुनो। इसकी पूजा से सब रोग दूर हो जायँगे। इससे अधिक और कोई लिंग अहंकार का नाश करनेवाला न होगा। जो हमारे इस लिंग की पूजा करेगा, उसके घर सम्पूर्ण प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि बनी रहेंगी, उसको वैसी ही कभी अधर्म की बुद्धि न उपजेगी, जैसे कि कमल के पत्ते को जल स्पर्श नहीं करता। उसे दोनों लोकों में मनोरथ प्राप्त होंगे। यह सबको वर दे शिव अन्तर्धान हो गये। सब मनुष्य "जय-जय" कह अपने अपने स्थान को चले गये। जो मनुष्य इस चरित्र को पढ़ेगा, वह अति प्रसन्न रहेगा और मोक्ष पावेगा। दक्षिण के लिंग सम्पूर्ण हुए।

दसवाँ अध्याय

पश्चिम के लिंगों का वर्णन

ब्रह्माजी बोले——हे नारद! अब हम पश्चिमदेश के शिव-लिंगों का वर्णन करते हैं, जिनकी पूजा, दर्शन और ध्यान से भक्तों को असंख्य धन, सम्पत्ति और यश कीर्ति प्राप्त होती है, सब पाप नष्ट हो जाते हैं। द्रुपदपुरी में रामेश्वर विराजमान हैं। वहाँ शिव का दूसरा लिंग कालेश्वर भी है। मथुरा में गोपेश्वर लिंग है, जिसकी पूजा से गोपों को अति सुख प्राप्त हुआ। कृष्ण ने भी उन्हीं की पूजा से तीनों लोकों का राज्य पाया। वहीं शिव का दूसरा लिंग रंगेश्वर है। कान्यकुब्जपुर अर्थात् कन्नौज के निकट मदारेश्वर शिवलिंग है, जिसके दर्शन से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। द्वारका में द्वारकेश्वर शिवलिंग है, जो महा

आनन्द कृपा करते हैं। अब हम उन लिंगों का वर्णन करते हैं जिनकी महिमा तीनों लोक जानते हैं। पश्चिम समुद्र के तट पर गोकर्ण तीर्थ है, जहाँ बड़ा पाप भी नहीं रह सकता, जिसके केवल स्मरण से तीनों प्रकार के ताप दूर हो जाते हैं। ब्रह्महत्या आदि बड़े-बड़े पाप जिस स्थान के केवल देखने से भाग जाते हैं। जिस प्रकार मन्दराचल आदि शिव के स्थान हैं, उसी प्रकार गोकर्ण भी उनका स्थल है। जैसा कि वेद और पुराण भी इस बात को कहते हैं। जिस तरह सूर्य के उदय से अँधियारा और तारे आदि नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार गोकर्ण के देखने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। पापों का क्षय करनेवाला दूसरा कोई ऐसा स्थान नहीं है। वहाँ असंख्य मनुष्यों ने तपकर मोक्ष पाया है। वहाँ मैं और विष्णु आदि देवताओं समेत रहकर शिव की आराधना में लगे रहते हैं। और स्थानों में करोड़ों वर्ष के तप से जो फल प्राप्त होता है, वह गोकर्ण में केवल एक दिवस में मिलता है। ऐसे गोकर्णक्षेत्र में महाबल नाम का शिवलिङ्ग है, जिसको रावण ने पकड़ न पाया। उस लिङ्ग को गणपति ने उसी स्थान पर स्थापित किया। यद्यपि उस स्थान पर और करोड़ों लिङ्ग हैं, पर सबके राजा महाबल हैं। वे पूर्ण शिव के रूप हैं। उनका मन्दिर सुवर्ण और रत्नों से अलंकृत है। चारों द्वारों पर सब देवता स्थित रहते हैं। अर्थात् विष्णु, मैं, इन्द्र, आठों वसु, मरुद्गण, विश्वेदेवा, सूर्य और चन्द्रमा तारोंसमेत पूर्व के द्वार पर रहते हैं। मृत्यु और अग्नि अपने गणों सहित, पितृगण, चित्रगुप्त और रुद्रगण दक्षिण के द्वार पर स्थित हैं। गङ्गा आदि प्रसिद्ध नदियाँ अन्य नदियों और समुद्र के साथ पश्चिम के द्वार पर स्थित हैं। पवन, कुबेर, चण्डी, जगन्माता भद्रकालिका उत्तर के द्वार पर विराजमान हैं। ये सब शिव को अपनी पूजा, सेवा

और उत्सव से प्रसन्न करते हैं। चित्रसेन और विश्वावसु आदि सब गन्धर्व महाबल लिङ्ग का प्रतिदिन यश गाते हैं। पूर्वचित्ती, मेनका, घृताची और रम्भा आदि अप्सराएँ नृत्य से शिव को प्रसन्न करती हैं। क्रतु, वशिष्ठ, कश्यप, याज्ञवल्क्य, विकम्प, आङ्गिरा, जैमिनि, भरद्वाज, विश्वामित्र, भृगु राजऋषि, सीमन्त आदि मुनि, अत्रि, मरीचि, दक्ष और हे नारद! तुम सन्यासी, वानप्रस्थ और सब आश्रमों के उत्तमोत्तम मनुष्य उनकी सेवा में लगे रहते हैं। महाबललिङ्ग सर्वोपरि है, जिनकी सेवा देवता करते हैं। सब मिल उनको प्रणाम करते हैं और नाच और गाने से उनको हर्ष देते हैं। वे सब देवताओं के स्वामी हैं।इनके सिवा और करोड़ों शिवलिङ्ग और तीर्थ वहाँ हैं, जिनकी सेवा से बड़े बड़े दुःख और पाप नष्ट होते हैं। स्वयं वेद उनकी महिमा वर्णन करते हैं। महाबललिङ्ग का रङ्ग कृतयुग में श्वेत, त्रेता में लाल, द्वापर में पीला और कलियुग में श्याम होता है। सो युग के अनुसार महाबललिङ्ग का उसी रङ्ग में ध्यान करना चाहिए। ब्रह्महत्या आदि पाप भी महाबल के दर्शन से दूर हो जाते हैं। दोनों लोकों में सिद्धि प्राप्त होती है। जो मनुष्य परस्त्री से भोग करते हैं, जो अनाचारी, दुश्शील, कृपण, नपुंसक, मूर्ख, वितण्डावाद करनेवाले, चोर, कामी और जुआ खेलनेवाले आदि बड़े-बड़े पापी हैं, वे भी महाबल के दर्शन कर शुद्ध हो जाते हैं। वहाँ अगस्त्य मुनि ने तप किया है। सनकादिक ने भी उसी स्थान पर तप किया है। नैऋति के पुत्रों ने भी उसी शिवलिङ्ग की पूजा कर राज्य पाया। वह्नि भी उसी स्थान पर तप करके दिक्पति हुए। कामदेव ने उसी स्थल पर तप करके संसार को जीत लिया। शिशुमार, भद्रकालिका, दुर्मुख मुनि, नाग, इलावर्त, गरुड़, रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण आदि सैकड़ों भक्तों ने उनकी सेवा

कर अपना-अपना मनोरथ पाया। हम कहाँ तक उनका वर्णन करें। उस क्षेत्र में असंख्य लिङ्ग हैं, जो स्थापन करनेवालों के नामों से प्रसिद्ध हैं। उनकी पूजा से परमपद प्राप्त होता है। जिस प्रकार गोकर्णक्षेत्र अति पवित्र है, उसी प्रकार महाबल शिवकी अप्रमेय महिमा है। जो कोई मनुष्य वहाँ जाकर चतुर्दशी का व्रत करे, वह अति सुगमता से अपनी कामना पाता है। वहाँ मित्रसह ने जाकर हत्या से छुटकारा पाया और मुक्ति पाकर पापों से रहित हुआ।

ग्यारहवाँ अध्याय

इतना सुन नारदजी ने पूछा कि आप मित्रसह का वृत्तान्त वर्णन कीजिये। ब्रह्माजी बोले कि यह महाबल शिवलिङ्ग का चरित्र मित्रसह के वृत्तान्त समेत गुप्त रखने के योग्य है। इसको गौतम ने प्रकट किया। गत समय में इक्ष्वाकुवंश में मित्रसह नाम का राजा बड़ा धर्मात्मा हुआ। वह बाणविद्या में अति-प्रवीण, बड़ा वीर, धीर, बलवान्, वेद-पुराण का ज्ञाता, धर्मज्ञ, शुद्ध मार्ग पर चलनेवाला, दयालु और सब राजाओं में शिरो-मणि, इन्द्रियजित् तथा केवल अपनी स्त्री से प्रेम करनेवाला था। एक दिन उसकी आखेट की इच्छा हुई। उसने वनमें जाकर भली भाँति शिकार किया और सिंह आदि बहुत से पशुओं को मारा, जिनके शब्द चारों ओर पूरित हुए। राजा ने ऐसी निर्दयता अपना कर प्रसन्न हो शुभमार्ग भुला दिया। वहाँ वन में एक निशाचर रहता था। वह राजा को देख पड़ा। राजा ने उसको मार डाला। उसके भाई को बड़ा दुःख हुआ। उसने अपने मन में सोचा कि यह राजा तो देवता और दैत्य दोनों का स्वामी है। मैं क्योंकर इसको जीतूँ ? यह युद्ध से तो जीता न जायगा। बड़ा वीर है। इसे छल से मारना उचित है; क्योंकि इसने मेरे भाई

को मार डाला है । यह सोचकर वह मनुष्य का रूप रख राजा के पास आया। उसने हाथ जोड़ सिर झुका, राजा से कहा कि हे महाराज ! आप सूर्यवंश के शिरोमणि हैं। मैं इस समय आपकी शरण में आया हूँ। मेरी रक्षा करो। मैं दीन ब्राह्मण हूँ । राजा ने उसे मित्रों के समान समझ अपना रसोईदार बना लिया । वह राजा शिकार खेल उसको साथ लिये अपनी राजधानी को लौट गया। उस समय राजा की रानी मदयन्ती ने, जो दमयन्ती के समान थी, सब अपने सम्बन्धियों की जेवनार की। वह पहले अपने गुरु को खिलाने लगी। उस राक्षस ने भोजन में आमिष अर्थात् नरमांस मिलाकर गुरु के सामने रख दिया, जिसको राजा ने न जाना। पर गुरु वशिष्ठ जान गये । उन्होंने राजा पर बड़ा क्रोध किया और कहा कि तुमको धिक्कार है । हमारे सामने मनुष्य का मांस रक्खा। तुम धूर्त हो । क्योंकि तुमने राक्षसों का भोजन हमारे सामने परोसा, इसलिए तुम राक्षस होकर अपने कर्म का फल पाओगे । राजा ने ध्यान करके देखा कि यह छल राक्षस (पाककर्त्ता) ने किया है। राजा ने निर्दोष होने के कारण कुपित हो विचार किया कि बिना अपराध वशिष्ठ ने वृथा ही मुझे शाप दिया है। मैं भी वशिष्ठ को शाप दूँगा । यह विचार शाप देने की इच्छा से उन्होंने हाथ में पानी लिया। पर रानी ने विनय की कि अपना गुरु चाहे कितना ही क्रोध करे, पर आपको क्रोध न करना चाहिए। यह बात वेद कहता है। उसने राजा के चरणों पर गिरकर बहुत समझाया कि गुरु को शाप देना उचित नहीं है। निदान राजा चुप हो रहा और गुरु के शाप से तुरन्त राक्षस हो वन में चला गया। वह कल्माषपाद के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ। वह महाभयंकर राक्षस होकर जीवों को खाने लगा । कुछ उसको धर्म-अधर्म का ध्यान न रहा । उसी दशा में एक दिन

कल्माषपाद ने एक मुनि को, जो अपनी युवा स्त्री से भोग कर रहा था, पकड़ लिया, जैसे शेर खरगोश को पकड़ लेता है। स्त्री अपने पति को राक्षस के पंजे में देख मूर्च्छित हो गई। उसने होश में आने पर कहा—हे राजन्! तुम यह क्या कुकर्म करते हो? तुम बड़े धर्मात्मा राजा थे। तुम्हीं राजा होकर अपनी प्रजा पर अनीति करते हो! क्या दया को तुमने भुला दिया है? तुम अन्यायियों के समान होकर ब्रह्महत्या करते हो। तुम मेरे पति को छोड़ दो, नहीं तो मेरा जीना कठिन है; क्योंकि विना पुरुष के स्त्री का जीना महा कष्ट है। मुझको यह पति प्राण से भी अधिक प्रिय है। विना उसके मेरा जीना नहीं हो सकता। हे राजन्! कृपा करके मेरे पति को छोड़ दो। यह ब्राह्मण युवा, वेदज्ञ, तपस्वी, पापरहित और दयावान् है। इसके छोड़ने से तुमको बड़ा फल प्राप्त होगा। अभी विवाह हुए थोड़े ही दिन बीते हैं। यद्यपि स्त्री बहुत रोई-पीटी, पर राजा को कुछ भी दया न उपजी। वह उस ब्राह्मण का शिर तोड़ उसको निगल गया। उसकी स्त्री ने चाहा कि सती हो जाय। इस इच्छा से उसने चिता बना राजा को शाप दिया कि हे राजन्! जब तुम अपनी स्त्री से भोग करना चाहोगे तो तुम उसी समय तुरंत मर जाओगे। यह कह वह तो जल गई और देवलोक में अपने पति के साथ भोग भोगने लगी। हे नारद! सती होना बड़ा धर्म है। राजा भी शाप की अवधि भोग पूर्वरूप से अपने घर आया। रानी को मुनि की स्त्री के शाप देने का हाल मालूम हो गया था। जब राजा ने मैथुन करना चाहा तो रानी ने निषेध किया; क्योंकि वह विधवा होने के दुःख भली भाँति जानती थी। निदान राजा मैथुन विना अन्य भोगों को वृथा समझ राज्यकाज छोड़ वन में चला गया और वन में फिरता रहा। संसार भर राजा विना अति दुखी रहा। राज्य के मन्त्रियों

ने जाकर गुरु से सब वृत्तान्त कहा। यह भी कहा कि अब सूर्य-वंश अस्त हुआ जाता है। यह आपके अनुग्रह का समय है। वशिष्ठ ने आकर सूर्यवंश के स्थिर रहने के निमित्त रानी से लड़का उपजाया, जिसका नाम अंशुमान् या अंशुक हुआ, जिससे संसार भर के मनोरथ पूरे हुए। कल्माषपाद ने वन में एक स्त्री को देखा, जो उसके पीछे-पीछे बड़े क्रोध से चलती थी। वह महाभयंकर रूपवाली ब्रह्महत्या थी, जो ब्राह्मण का वध करने के कारण राजा के पीछे लगी हुई थी। राजा ने इस बात को जान बड़े-बड़े तीर्थों की परिक्रमा की कि वह दूर हो जाय। उसने बड़े-बड़े पवित्र मन्त्रों का जप किया। यद्यपि इस तरह बहुत उपाय किये, पर कुछ लाभ न हुआ। तब राजा ने मिथिलापुरी में जाकर गौतम से भेंट कर प्रणाम किया और अपना सब वृत्तान्त कहा। गौतम ने महाबल शिवलिंग की पूजा के लिए आज्ञा दी। राजा ने तुरन्त स्नान कर गोकर्ण महाबललिंग की पूजा की। बस, राजा की ब्रह्महत्या छूट गई। उसने शिवकी सेवा कर परमपद पाया।

बारहवाँ अध्याय

इतना सुन नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! इस कथा का विस्तार से वर्णन कीजिये। ब्रह्मा बोले—जब राजा सब मन्दिरों और तीर्थों में घूम आये और ब्रह्महत्या ने पीछा न छोड़ा तो वह मिथिलापुरी को गये और नगर के किनारे बैठकर अति चिन्ता में मग्न हुए। उसी समय देखा कि गौतम मुनि चले आते हैं, जो शिष्य गणों में सुशोभित महातेजस्वरूप हैं। जब वह राजा के निकट पहुँचे तो राजा ने प्रणाम किया। गौतम ने भी राजा की बड़ी प्रशंसा कर कहा कि तुम और तुम्हारी प्रजा कुशल से तो है? यहाँ क्यों आये हो? तुम मुझको बड़े दुखी भासित होते हो। अपना वृत्तान्त वर्णन करो। राजा ने कहा कि सब कुशल है। पर मुझको ब्रह्महत्या

लगी है। अर्थात् मैंने एक ब्राह्मण को मार डाला। सो वही हत्या पिशाची के रूप से मुझे हर समय दुःख देती है। वह किसी प्रकार मेरा पीछा नहीं छोड़ती। मैंने यज्ञ, हवन, तीर्थ, दान, व्रत, मन्त्र, जप, ध्यान और देवपूजनआदि बहुत कुछ उपाय किए, पर वह हत्या नहीं छोड़ती। अब आप कहिये कि आप इस समय कहाँ से आते हैं; क्योंकि आपके मुख से विदेश का श्रम प्रतीत होता है। मेरे पाप कृपा करके दूर कर दीजिये। गौतम ने कहा कि धन्य हो, जो तुमने हमारे सामने अपना पाप वर्णन किया। तुम कुछ भय मत करो। सब प्रकार शिवजी अपने भक्तों के रक्षक हैं। शिवजी ने अपने भक्तों के पाप दूर करने को पृथ्वी में लिङ्गरूप प्रकट किया है। वे गोकर्ण में लिङ्ग रूप से विराजमान हैं, जिनको महाबल कहते हैं। उनकी महिमा वेद बखानते हैं। उनके समान पापों का क्षय करनेवाला और कोई नहीं। इसी प्रकार गोकर्णतीर्थ पापों को दूर करने में सबसे श्रेष्ठ है। वहाँ जाकर तुम पहले गोकर्ण में स्नान कर महाबललिङ्ग शिव की पूजा करो। हम अभी वहाँ से चले आते हैं। वहाँ बड़ा भारी मेला हुआ करता है। शिवरात्रि शिवजी को सब व्रतों से प्रिय है। उसके समान दूसरा व्रत नहीं। जैसा कि वेद कहते हैं, इस व्रत को करके चाण्डाल भी मुक्ति पाता है। वह शिवरात्रि फाल्गुन कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को होती है। व्रत करने के उपरान्त रात भर जागता रहे और शिवजी के लिङ्ग की पूजा करे। तण्डुल और बिल्वपत्र शिवजी पर चढ़ावे और प्रणाम करके बारम्बार दण्डवत् करे। यह शिवरात्रि का शिवव्रत शिवजी की बड़ी कृपा से मिलता है। देवता और सब मुनि आदि गोकर्ण में गये थे और सबदेशों से स्त्री, पुरुष, वृद्ध, बालक, युवा समूह के समूह आये। हमने भी अपने शिष्यों समेत जाकर महाबल की पूजा से बड़ा आनन्द उठाया और गोकर्ण में स्नान

कर दान दिया। महाबल की पूजा और जागरण कर सब मनुष्य अपने-अपने घरों को लौट गये। वहाँ राजा जनक भी गये थे। सो जनक की विनय के अनुसार हम यहाँ आये हैं; क्योंकि उनको यज्ञ करना है। हम इस समय वहाँ से आते हैं। मार्ग में हमने एक बड़े आश्चर्य की बात देखी है।

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! गौतम के इस वचन को सुनकर राजा ने पूछा कि तुमने मार्ग में आश्चर्य की जो बात देखी है, वह वर्णन करो। गौतम बोले कि लौटने के समय मार्ग में एक तालाब के ऊपर हम ठहरे और स्नान आदि नित्यकर्म से निश्चिन्त होकर बैठे। उसी समय एक स्त्री आई जो चाण्डाली के समान थी। उसके कुष्ठ भी था, शरीर भर में रक्त और चरबी भरी हुई थी, कृमि आदि उसको खाये जाते थे। हमने जाना कि यह स्त्री मरनेवाली है। यही बात हम देख रहे थे कि एक विमान उतरा, जो सूर्य के समान प्रकाशमान था और जिसमें शिवजी के गण बैठे हुए थे, जो परिपूर्ण लक्षणों से युक्त थे। मानो वे शिवजी के समान ही थे। गणों को देख हमने प्रणाम करके पूछा कि तुम कहाँ आये हो? उन्होंने कहा कि इस स्त्री को जिसे तुम देखते हो, लेने को आये हैं। यह सुन बड़े अचम्भे से मैंने पूछा कि यह स्त्री तो बड़ी पापिनी जानपड़ती है। बड़े आश्र्चर्य की बात है कि इस स्त्री को लेने तुम आये हो। इसकी दशा से तो यह बात नहीं पाई जाती कि इसने शिवपुर में जाने के योग्य कोई कर्म किया होगा। यह सुन शिवगण बोले कि यह स्त्री पहले जन्म में एक ब्राह्मण की स्त्री थी। उसका नाम सुमुनि था। जब इसका पति मर गया, तब यह धर्म छोड़ नाना प्रकार के पाप करने लगी। यहाँ तक कि जाति-पाँति से निकाली गई और संस्कारवश एक शूद्र के यहाँ

बैठ गई। एक दिन इसका मर्द कहीं बाहर गया। इसने मद्य-पान कर मांस खाने की इच्छा से एक गौ के बच्चे को बकरे के भ्रम से मार डाला। जब देखा कि यह तो बकरी का बच्चा नहीं है, बछड़ा है, तो भी जानबूझकर "शिव-शिव" रटते उस बछड़े का आधा शरीर खा गई। और आधा जो शेष रहा उसको इधर-उधर फेंककर प्रसिद्ध किया कि सिंह इसको खा गया है। निदान नाना प्रकार के पापकर अन्त में मरकर यमराज के यहाँ गई। यमराज ने नरक के दण्ड को भी छोटा समझ इसको चाण्डाल के घर में जन्म दिया। यह एक डोम के घर उपजकर जन्म की अन्धी और कोढ़िन हुई। सब भाई-बन्धुओं ने उसको छोड़ दिया और किसी ने उससे विवाह नहीं किया। थोड़े दिनों में उसके माता-पिता भी मर गये। यह भूखी-प्यासी इधर-उधर फिरने लगी। ऐसी दशा में बालकपन और युवा अवस्था बीत गई। बुढ़ापे में इसने बड़ा दुःख पाया। संयोग से जब मनुष्य गोकर्ण को चलने लगे तो उनके साथ यह स्त्री भी गई कि उनके साथ कुछ खाने-पीने का ठिकाना लगे। पर उसको कौन देता था। जिस दिन शिवरात्रि थी, उस दिन यह भी गोकर्ण में पहुँची। यह सब लोगों से माँगती थी कि मुझको भी कुछ भोजन-वस्त्र दो। यह सुन एक मनुष्य ने इसके दोनों हाथों में बेलपत्र फेंक दिया। इस डोमनी ने बेलपत्र को कुछ खाने की चीज़ न जानकर धरती पर फेंक दिया। अकस्मात् वह बेलपत्र शिवजी पर गिरा। यह रात भर इसी तरह माँगती रही, पर कुछ न मिला। रातभर इसी तरह जागती भी रही। जब सब मनुष्य प्रभात को स्नान कर महाबल शिवलिङ्ग की पूजाकर अपने-अपने घरों को गये, तब यह स्त्री निराश होकर उठती, बैठती, रोती, पीटती लौटकर यहाँ पहुँची और मूर्च्छित होकर पृथ्वी में गिर पड़ी। इतने में सदाशिव ने

प्रसन्न होकर एक विमान इस स्त्री को लेने को भेजा। अब यह स्त्री शिवलोक को जा रही है; क्योंकि पहले जन्म में इसने शिव-शिव कहा था और इस जन्म में शिवरात्रि के दिन जागरण कर शिवलिंग को बिल्वपत्र से पूजा। श्रीसदाशिवजी का नाम अति शुभ है। यह नाम पापों को जलाकर भस्म कर देता है। यह नाम लेकर बड़े-बड़े पापी परमपद पाते हैं और बहुतों ने शिवरात्रि व्रत किसी मनोरथ विना कर शिवपूजा और जागरण करने से कैलास पाया है। शिवरात्रि की महिमा कौन वर्णन कर सकता है। निदान शिव के चारों गणों ने उस स्त्री को तेज से पूर्ण कर दिया, जिससे उस स्त्री का अति सुन्दर स्वरूप हो गया। वे उसे उसी विमान में चढ़ाकर कैलास में ले गये। वहाँ वह गिरिजा की सखी हो गई। ऐसी महिमा गोकर्णक्षेत्र और महाबल लिङ्ग की है। यह कह गौतम चले गये। वह राजा तुरन्त गोकर्ण में आया। जिस तरह गौतम ने शिवलिङ्ग की पूजा बताई थी, उसी तरह मित्रसह राजा ने सब कार्य किये। गोकर्ण के सब तीर्थों में स्नान किया और नाना प्रकार का दान दिया। महाबल लिङ्ग की पूजाकर शिवरात्रि का व्रत धारण किया। रातभर जगकर बड़ा उत्सव मनाया। राजा की हत्या छूट गई, जिससे वह अति प्रसन्न हुआ। उसे शिवजी का परमपद मिला। यह मित्रसह राजा और महाबललिङ्ग की कथा सब रोगों को नष्ट कर देती है। इस चरित्र के पढ़ने और सुननेवाले प्रसन्न रहकर अन्त में परमपद को जाते हैं।

चौदहवाँ अध्याय

उत्तर के शिवलिङ्गों का वर्णन

ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद! अब हम उत्तर के शिवलिंगों का वर्णन करते हैं। मन लगाकर सुनो। नैमिषक्षेत्र जो प्रसिद्ध

है, वहाँ ललितेश्वर का शिवलिंग बड़ा आनन्ददायक है, जिसकी पूजा देवता, मुनि आदि करते हैं। यह लिङ्ग जगदम्बा ललिता ने स्थापित किया था। वहीं पर ललिता ने बड़ा कठिन तप किया। उन्हीं की सेवा से उन्होंने अपना मनोरथ पाया था। इस लिङ्ग की पूजा से असंख्य मनुष्यों को मुक्ति मिली है। वहाँ और एक दधीचीश्वर शिवलिङ्ग है। उसको दधीचि मुनि ने स्थापित किया था। यह दधीचि शिव के बड़े भक्त हैं जिन्होंने क्षवथु मुनि को जीता था। इनका वृत्तान्त हम पहले वर्णन कर चुके हैं। जो मनुष्य दधीचीश्वर शिवलिंग की पूजा करे, वह किसी समय में किसी से न हारे। सदा निर्भय रहकर हृष्ट-पुष्ट रहे। उसके शरीर में कोई शस्त्र और घाव न लगे। अब हम एक शिवलिंग का वर्णन करते हैं, जिनकी पूजा से पूजनेवाला मनुष्य प्रसन्न हो जाता है। जो हमने गोकर्णक्षेत्र का वर्णन किया था, वहाँ चन्द्रभाल नामक शिव का लिंग है, जिसको रावण कैलास से लाया था और अपने घर लिये जाता था। पर शिव वहीं रह गये। उसके साथ न गये। वैद्यनाथ, जो उसी लिंग के साथ आये थे, चिताभूमि में स्थित हो गये। दोनों लिंग रावण के साथ न गये। यहाँ अब इन लिंगों का संक्षेप में वर्णन करते हैं। पर आगे इसी खण्ड में विस्तार से वर्णन करेंगे। एक समय रावण ने हिमालय पर बड़ा तप किया और शिव का लिंग स्थापित कर बड़ा होम किया, पर शिव प्रसन्न न हुए। तब रावण ने अपने नव शिर काट शिव के लिङ्ग पर चढ़ा दिये और चाहा कि दसवाँ सिर भी काट कर चढ़ावे कि शिव अति प्रसन्न होकर प्रकट हुए और कहा कि वर ले लो। रावण ने कहा कि मुझको ऐसी शक्ति कृपा कर दीजिए कि तुमको ले जाकर मैं अपने नगर में स्थापित करूँ। शिव बोले कि अच्छा हमारे लिङ्ग को ले जाकर स्थापित करो,

पर जो मार्ग में तुम किसी स्थान पर हमको रख दोगे, तो हम वहीं रह जायँगे। तब रावण ने चतुरता से कहा कि अच्छा, पर दो रूप धारण करो। हम मञ्जूषा में रखकर ले जायँगे। यह सुन शिवलिङ्ग के दो रूप हो गये। रावण दोनों को मञ्जूषा में करके ले चला, मार्ग में शिव ने यह माया की कि रावण को बड़े वेग से लघुशङ्का लगी। रावण रोक न सका। उसने देखा कि एक गोप पशुओं को चरा रहा है। उससे रावण ने कहा कि मञ्जूषा ले लो। मैं मूत्र करूँ। अहीर ने कहा कि मैं एक मुहूर्त भर लिये रहूँगा, फिर मैं पृथ्वी पर रख दूँगा। यह कह गोप ने मञ्जूषा ले ली। रावण कि दो घड़ी तक मूत्र करता रहा, पर उसका मूत्र न रुका। अहीर मञ्जूषा को अधिक न रख सका। उसने उसको धरती पर रख दिया। दोनों लिङ्ग पृथ्वी में उसी स्थान पर स्थित हो गये। रावण उनको बड़े बल से उठाने लगा। जब वह बल करके थकित हुआ तो उसने अपने अँगूठे से शिवलिङ्ग को दबाया और निरुपाय हो अपने घर चला गया। दोनों लिङ्ग वहीं रह गये। जो लिङ्ग पीठ की ओर था, वह वैद्यनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह बारह ज्योतिर्लिङ्गों में गिना जाता है और चिताभूमि में विराजमान है। अगली तरफ़ जो लिङ्ग था, वह चन्द्रभाल के नाम से विख्यात होकर गोकर्णक्षेत्र में स्थित हुआ। उसकी अप्रमेय महिमा है। सब जीव चन्द्रभाल की महिमा तीनों लोकों में जानते हैं। वहाँ शिवरात्रि को बड़ी भीड़ होती है और देवता, मुनि और सिद्ध आदि सब आते हैं। सब देशों से चारों वर्णवाले समूह के समूह आते हैं, जिनके पाप छूट जाते हैं, सब रोग नष्ट होते हैं। वे निष्पाप होकर परमपद पाते हैं। जैसा कि वेद कहता है, और भी वहाँ पर असंख्य लिङ्ग हैं, जो दोनों लोक में आनन्द देते हैं। उनमें यह विचित्र सिद्धता है कि

माघमास की कृष्णा चतुर्दशी को चार कोस की दूरी तक के सब सिंह और हाथी आदि वहाँ से भाग जाते हैं और भी दुःखदायी जीव वन के चले जाते हैं। दशमी के दिन से तीनों प्रकार की पवन चलने लगती है और शिव के मन्दिर के पास आकर बन्द हो जाती है। नाना प्रकार के बाजे सुनाई देते हैं। इसी तरह बड़े-बड़े बादल आकर उसी स्थान पर अच्छे-अच्छे शब्द करते हैं। ये आश्चर्य की बातें देख सब जय-जय शब्द कहते हैं। सब स्त्री और पुरुष बड़ा आनन्द और धन्यवाद करते हैं। सब मनुष्य भली भाँति नाचते गाते हैं। चतुर्दशी पर्यन्त शिव वहाँ विराजमान रहते हैं, जिनकी पूजा सब लोग करते हैं। वहाँ शिवरात्रि व्रत को जागरण करके सब मनोरथ मिलते हैं। यह कथा जो कोई पढ़े और सुनेगा, वह संसार में प्रसन्न रहकर अन्त में परमपद पावेगा।

पन्द्रहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि अब हम उत्तर के प्रसिद्ध शिवलिङ्गों का वर्णन करते हैं, जिनके दर्शन से सब पाप नष्ट हो जाते हैं और सब मनोरथ पूरे होते हैं। उनकी पूजा से कोई दुःख और पाप नहीं रहता। उनमें से एक तीर्थ पञ्चप्रयाग है, जहाँ स्नान करने से तुरन्त ही सब प्रकार के दुःख जाते रहते हैं। वहाँ जो शिव के लिङ्ग हैं, उनका हम वर्णन करते हैं। देवप्रयाग में ललितेश्वर और देवेश्वर दो लिंग शिव के हैं, जो प्रसन्न होकर अपने भक्त को कृतार्थ कर देते हैं। उसके उत्तर ओर रुद्रप्रयाग में रुद्रेश्वर शिवलिंग है जिसकी पूजा से सम्पूर्ण पाप दूर हो जाते हैं। कनखलक्षेत्र में, जहाँ शिव ने दक्षप्रजापति के यज्ञ का विध्वंस कर फिर प्रसन्न हो यज्ञ पूर्ण कराया, लिंगस्वरूप होकर स्थित हुए और दक्षेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनकी बहुत बड़ी महिम

है। इनकी पूजा से कोई दोष और पाप नहीं रहता। उसके निकट सतीकुण्ड प्रसिद्ध है, जिसके ऊपर बिल्वेश्वर नाम शिवलिंग है। उनकी पूजा से धर्म की वृद्धि होती है। बिल्वपर्वत के ऊपर जो बेल का वृक्ष है उसके नीचे बिल्वेश्वर शिवलिंग स्थित है, जिसके केवल दर्शन से मनुष्य शिव समान हो जाता है। दक्षेश्वर के निकट नील शैल के ऊपर नीलेश्वर शिवलिंग है। वह लिंग भक्ति और प्रीति का बढ़ानेवाला है। उसके देखने से पाप दूर होकर बड़ी प्रसन्नता प्राप्त होती है। यह लिंग गङ्गाजी के तट पर है। वहाँ स्नान करना चाहिए। उसी जगह भीमचण्डिका का स्थान है। उसके निकट उत्तम कुण्ड है। उसमें स्नान करने से बड़ा आनन्द और भक्ति प्राप्त होती है। आज तक वहाँ शङ्खध्वनि सुन पड़ती है। पर पापी लोग उसको नहीं सुनते। पूर्वकाल में असमाचित्तनामक ब्राह्मण बड़ा पापी हुआ है। उसने किसी शिव के भक्त से उपदेश पाकर शिव के नाम का जप किया। शिव ने प्रसन्न होकर उसको अपना गण बनाया। उसका नाम नील रख लिया और आप भी नीलेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुए। तब से नीलेश्वर शिवलिंग की बड़ी महिमा हुई। वे दोनों लोकों में हर्ष देते हैं। बिल्वेश्वर शिवलिंग के निकट त्रिमूर्तीश्वर शिव का लिंग है। वहाँ रक्तजल तीर्थ अति पवित्र है। जो मनुष्य इस तीर्थ में स्नान करके शिव की पूजा करे, वह परमपद पावे। उसके निकट नन्दीश्वर शिव का लिंग है। शिवतीर्थ भी वहीं है। जो मनुष्य शिवतीर्थ में स्नान करके नन्दीश्वरलिंग को पूजता है, वह दोनों लोकों में आनन्द पाता है। उसी के निकट भद्रेश्वर शिव का लिंग है, जिसकी पूजा से मनुष्य शिव का गण हो जाता है। उसी जगह भैरवेश्वर शिवलिंग है, जिसकी सेवा से बड़ा सुख होता है। फिर शालिहोत्रेश्वर शिव का लिङ्ग है जिसकी

सेवा से शालिहोत्र ने सब विद्या पाई। कौमुदीतीर्थ के तट पर चन्द्रेश्वर शिवजी का लिङ्ग है, जहाँ चन्द्रमा ने शिव की पूजा कर शिवजी के भाल में स्थान पाया। कुब्जाम्र तीर्थ और पूर्ण तीर्थ गङ्गाजी के बीच में हैं। उस स्थान पर गङ्गा के बीच में सोमेश्वर शिवजी का लिङ्ग है। उसकी पूजा से दोनों लोकों में जीव प्रसन्न रहकर शिवजी का गण बन जाता है। अग्नितीर्थ में अग्नीश्वर शिवजी का लिङ्ग है, जिसकी पूजा से कभी मुख्य शक्ति कम नहीं होती। वायुतीर्थ में पवनेश्वर शिवजी का लिङ्ग सब पापों को क्षीण करनेवाला है। वहाँ गङ्गा के पश्चिमी तट पर तपोवन है, जहाँ लक्ष्मण ने बड़ा तप किया था और शिवजी की कृपा से पवित्र हुए थे। इस कथा का संक्षेप यह है कि जब रामचन्द्र लङ्का जीत चुके और सीता और लक्ष्मणसमेत घर आये तो लक्ष्मणजी को क्षयी रोग उपजा; क्योंकि उन्होंने मेघनाद को मारा था। वासिष्ठमुनि के उपदेश के अनुसार लक्ष्मण तपोवन में गये और बारह वर्ष तक बिना भोजन किये तप करते रहे। फिर सौ वर्ष पर्यन्त वनफल खाकर तप किया। फिर सौ वर्ष वायु भक्षण कर षडक्षर मन्त्र जपते रहे और एक चरण से धरती में खड़े होकर शिव का ध्यान किया। शिव ने प्रसन्न हो वहाँ पहुँच लक्ष्मण से कहा कि अब तुम शुद्ध हो गये। अब यह रोग तुमको नहीं रहेगा। यह कह शिवजी तो अन्तर्धान हो गये और लिङ्गरूप वहीं स्थित हुआ। उसका नाम लक्ष्मणनाथ विख्यात हुआ, जिसके दर्शन से कोई रोग नहीं रहता। लक्ष्मण भी शेष का शरीर धारण कर उसी स्थान पर स्थित हो गये। यह थोड़े लिङ्गों का, जो मायाक्षेत्र में हैं, हमने वर्णन किया। अब और सुनिये। जो नैपाल में पशुपतिनाथ शिव का लिङ्ग है, वह महिष भाग अर्थात् भैंसे के शरीर का एक भाग है। जिनकी महिमा वेद

बखानते हैं। इनका विस्तारपूर्वक वृत्तान्त हम आगे लिखेंगे। यह पशुपतिनाथ भक्तों को बड़ा आनन्द देनेवाले हैं। नैपाल में दूसरा शिव का लिङ्ग मुक्तिनाथ है, जिसकी पूजा से बड़ा आनन्द मिलता है। इतना कह ब्रह्माजी बोले कि हे नारद! हमने चारों दिशाओं के लिङ्गों का वर्णन किया। अब और क्या सुनोगे?

सोलहवाँ अध्याय

इतना सुन नारद बोले कि हे ब्रह्माजी! शिवलिङ्ग की पूजा किस समय में आरम्भ हुई, मैं इसको विस्तार से सुना चाहता हूँ। ब्रह्माजी बोले कि लिङ्ग की पूजा सनातन से है। हम उसका प्रारम्भ नहीं बता सकते। यह बात वेद कहते हैं। पर हमने कल्प-भेद के अनुसार जितना सुना है, वह कहते हैं। मन लगाकर सुनो। प्रसिद्ध दारुवन में शिव के बहुत से भक्त रहा करते थे। मुनि आदि भी वहाँ रहकर तीनों काल शिवपूजन करते, शिव का नाम हर समय जपते और हवन आदि हर समय करते थे। इसी प्रकार उनको बड़ा समय बीता और वह समय आया, जिसमें उनके ऊपर शिव प्रसन्न हो प्रकट हों। एक दिन मुनि आदि वन के बाहर भोजन की खोज में निकल गये और सदा-शिव सती के वियोग में रोते-चिल्लाते, नङ्गे, भस्म रमाये, सहस्रों कामदेव के समान सुन्दर गौर अङ्ग, बड़ी छवि से वहाँ पहुँचे। पहले तो मुनियों की स्त्रियाँ वहाँ से भाग गईं, पर जब ध्यान से सदाशिवजी को अवलोकन किया तो शिवजी की माया से सब स्त्रियाँ कामवश हो घरों से बाहर निकल आईं और शिव के समीप मैथुन के निमित्त खड़ी हो गईं। वे कामदेव के वेग से बेसुध हो शिवजी के शरीर में लिपट गईं। इतने में सब मुनि बाहर से आकर इस दशा को देख क्रोध से पूर्ण हो गये और शिवजी को मनुष्य के समान जान यह शाप दिया कि तेरा लिङ्ग

इसी समय गिर जाय। यह शाप देते ही तुरन्त शिवजी का लिङ्ग कटकर धरती पर गिर पड़ा। शिवजी की माया से वह लिङ्ग तीनों लोकों में भ्रमण कर सब को जलाने लगा। तीनों लोक दुखी हो उन मुनियों समेत मिलकर मेरे पास गये और कहा कि यह क्या चरित्र होता है कि सब सृष्टि जली जाती है? मैंने ध्यान कर सब हाल जान मुनियों से कहा कि तुमने मूर्ख होकर जो काम किया है, उसी का फल यह है। क्या तुम नहीं जानते, वेद कहता है कि जो दिन में अपने घर आवे, उसी का नाम अतिथि है। उसको प्रसन्न किये विना लौटा देना बड़ा पाप है। लौटाने-वाले मनुष्य के सब शुभ कार्य नष्ट हो जाते हैं। शिवजी तुम्हारी परीक्षा के निमित्त तुम लोगों के घर गये थे। पर तुमने उनको नहीं पहचाना और शाप दिया। वही शिवजी का लिङ्ग तीनों लोकों को जलाये देता है। शिवजी की अप्रसन्नता से कहाँ कुशल है। मैं और विष्णु भी जिसके सेवक हैं, वह शिवलिङ्ग जब तक स्थित न हो जायगा, तब तक सृष्टि में आनन्द न होगा। यह सुन सब मुनि शिवजी की शरण में गये। उनके साथ हम और विष्णु भी थे। निदान हम सबकी स्तुति सुन शिवजी ने प्रसन्न हो कहा कि वर माँगो। हम सबने विनती की कि लिङ्ग को रोककर शान्त करो। शिवजी बोले कि जो गिरिजा योनि-रूप से लिङ्ग को धारण करे तो हम शान्त होंगे। गिरिजा के सिवा तीनों भुवन में और कौन है, जो हमारे लिङ्ग को रोक सके। यह सुन सब देवता आदि ने गिरिजा को प्रसन्न किया। उन्होंने योनिरूप हो शिवजी का लिङ्ग धारण किया, जिससे सबको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। सबने बड़ी स्तुति की; पर संसार के माता-पिता को नग्न देख किसी ने उनकी पूजा न की। जब शिव ने आज्ञा दी कि हमारे लिङ्ग की पूजा करो तो सबने उसी दशा में पूजा की, उसी दिन से लिङ्ग पूजने की चाल हो गई।

सत्रहवाँ अध्याय

नारद बोले—अब मुझको अन्धकेश्वर शिवलिङ्ग की कथा सुनाओ। क्योंकर वह अन्धक के नाम से, जो उनका शत्रु था, प्रसिद्ध हुए? ब्रह्माजी बोले—हे नारद! युद्धखण्ड में हम विस्तार से अन्धकेश्वर की कथा कह चुके हैं। शिवजी ने अन्धक को अपने त्रिशूल से छेदकर फिर उसी शरीर से उसको अपना गण बना लिया और वह सदाशिवजी के निकट रहकर सेवा में रहता है। यह कथा एक कल्प की है। अब जो दूसरे कल्प में हुआ, वह हम कहते हैं। अन्धक कक्ष दैत्य से उपजा था। उसने मेरा बड़ा तप कर मुझसे यह वर पाया था कि तीनों लोकों में कोई उसको न मार सके। यह वर पाकर उसने तीनों लोकों को जीत अपने अधीन कर लिया। सब देवताओं को निकालकर आप तीनों भुवन का राज्य करने लगा। नैर्ऋत्य कोण के समुद्र में एक गर्त अर्थात् गढ़ा था। उसमें वह अपनी सेना सहित रहने लगा। उसी में से निकलकर वह सेना सहित देवताओं को दुःख दिया करता था और फिर उसी गर्त में चला जाता था। देवताओं की वहाँ कुछ नहीं चलती थी। सब देवता दुखी होकर शिवजी की शरण में गये। उस समय शिवजी मन्दराचल पर थे। उन्होंने देवताओं की स्तुति सुनकर कहा कि तुम कुछ सन्देह मत करो। हम अन्धक को मार डालेंगे। तुम जाकर उसके साथ युद्ध करो। फिर हम भी आते हैं। देवताओं ने सेना सजकर अन्धक के साथ युद्ध किया। देवताओं और दैत्यों का बड़ा युद्ध हुआ। निदान दैत्य परास्त हुए। अन्धक ने युद्ध से भाग कर चाहा कि अपने उसी गर्त में घुस जाय, पर शिवजी ने तुरन्त पहुँचकर शीघ्र ही उसको पकड़ लिया और अपने त्रिशूल से छेद कर ऊपर को उठा लिया। उस समय अन्धक त्रिशूल के

प्रभाव से भवजाल से छुट्टी पाकर स्तुति करने लगा। उसने कहा कि जो कोई मनुष्य तुमको मरने के समय देखता है, वह भी शिव-रूप हो जाता है। वही कृपा मेरे ऊपर होनी चाहिए। शिव ने कहा कि मैं तेरे भाव को देखकर प्रसन्न हुआ। वर माँग ले। अन्धक ने कहा कि मुझको अपनी भक्ति देकर अपना गण बना लो और लिङ्गरूप होकर यहीं स्थित रहो। शिव ने माना और वहीं लिङ्गरूप से स्थित हुए, जिसका नाम अन्धकेश्वर संसार में प्रसिद्ध हुआ। जो कोई उस लिङ्ग की षट् मास तक पूजा करे, उसका मनोरथ पूरा हो जाय। जिस तरह देवल ने पूजन कर सब मनोरथ पाये।

अठारहवाँ अध्याय

इतना सुन नारदजी बोले कि हे पिता, देवल का वृत्तान्त विस्तार से वर्णन कीजिये। ब्रह्माजी ने कहा कि दधीचि ब्राह्मण शिव के परमभक्त थे। उनका वर्णन हम पहले कर चुके हैं। उनका पुत्र शिवदर्शन था। शिवदर्शन की स्त्री का नाम दुकूला था। वह अपनी स्त्री के अधीन रहा करता और सदा भोगविलास में लगा रहता। उसके चार पुत्र उपजे। पर तो भी शिवदर्शन सदा दधीचि के भय से प्रतिदिन शिव की पूजा किया करता था। एक दिन दधीचि किसी दूसरे ग्राम में गये और शिवदर्शन से शिवपूजन के लिए कह गये। संयोग से दधीचि बहुत दिनों तक ग्राम से न लौटे। यहाँ तक कि शिवरात्रि आ गई। सबने व्रत रक्खा, पर शिवदर्शन ने कामवश हो अपनी स्त्री से भोग किया और सुचित्त हो स्नान किये विना ही शिवजी की पूजा की। शिवदर्शन की यह करनी देखकर शिव क्रोधित हुए और कहा कि हे मूर्ख! तूने हमारे व्रत में स्त्री के साथ अधर्म से भोग किया। इसके सिवा स्नान बिना हमारी पूजा की। तुमने जानबूझ कर

यह कुकर्म किया है, इसलिए हमारे शाप से तू जड़ हो जा। तू किसी को छू नहीं सकेगा। केवल नेत्रों से देखा करेगा। शिव-दर्शन तुरन्त जड़ हो गया। जब दधीचि मुनीश्वर ने लौटकर पुत्र की यह दशा देखी तो सब वृत्तान्त सुनने के उपरान्त अति चिन्तित हो रोने लगे और पुत्र को बहुत धिक्कार दिये। उसकी स्त्री को तुरन्त घर से निकाल दिया और पुत्र के मुक्त होने के निमित्त गिरिजा की पूजा आरम्भ कर दी। दधीचि और शिवदर्शन, दोनों ने गिरिजा को अपने तप से प्रसन्न किया। गिरिजा ने शिव को प्रसन्न कर शिवदर्शन को उनकी गोद में डाल दिया। शिव ने घृत से शिवदर्शन को स्नान कराकर एक गाँठ देकर जनेऊ पहनाया और उसका नाम वटुक रक्खा। फिर शिवगायत्री उसको देकर सोलहों वर्ण कृपा कर दिये और अपनी पूजा का अधिकार दिया। उसने शिव का नाम मुख से लिया तब शिव और गिरिजा ने प्रसन्न होकर उससे कहा कि जो धन और द्रव्य कोई हमारे ऊपर चढ़ावे, वह तुम लिया करो। हमारी पूजा में तुम प्रसन्न होगे। इसी प्रकार चण्डिका की पूजा में भी तुमको अधिकार है। यहाँ तक कि घृत और तैल आदि जो हमारे ऊपर चढ़े, वह भी तुम लिया करो। तुमको कुछ दोष नहीं है। तुम तिलक लगाकर स्नान के उपरान्त शिव का मन्त्र पढ़ प्रतिदिन शिवजी की सन्ध्या करते रहो और हमारी गायत्री को न भूलो। पहले हमारा भजन करके फिर और कार्य करना। हमने तुम्हारा अपराध क्षमा कर दिया। पर फिर ऐसा काम न करना। तुम ब्राह्मण की सन्तान हो। हमारी और शिवरानी की भक्ति में लगे रहो। तुम सबकी पूजा के योग्य होगे। विना तुम्हारी पूजा हम किसी के सहायक नहीं होंगे। युद्ध में तुम जिसकी ओर होगे, उसी की जय होगी। तुम तप से भ्रष्ट हुए, इससे तुम्हारा नाम भ्रष्ट भी होगा।

ब्रह्मभोज आदि में तुम्हारे खिलाने से वह काम पूरा हो जायगा। इसी तरह शिव और गिरिजा ने बटुक को बहुत वर देकर, चारों दिशाओं में उसको स्थापित कर सबकी पूजा के योग्य ठहराया। हे नारद! ब्रह्मभोज में जो बटुक को बड़ाई प्राप्त हुई, उसका वर्णन हम तुमको सुनाते हैं। उसी नगर में राजा भद्रक के यहाँ प्रतिदिन ब्रह्मभोज हुआ करता था। शिव ने एक ध्वजा उस राजा को देकर कहा था कि तुम इसको प्रभात के समय बाँध दिया करो। जब ब्रह्मभोज पूर्ण हो चुकेगा तो यह ध्वजा अपने आप गिर पड़ेगी। राजा प्रतिदिन ब्रह्मभोज किया करता। एक दिन अपने आप वह ध्वजा ब्रह्मभोज के विना गिर पड़ी। राजा ने आश्चर्य कर सब ब्राह्मणों से इसका हेतु पूछा। ब्राह्मणों ने कहा कि पहले शिव के पुत्र बटुक खा चुके, इससे यह ध्वजा यज्ञ के पूर्ण होने पर गिर पड़ी। अब तुम और ब्राह्मणों को खिलाओ। कुछ सन्देह की बात नहीं है। हे नारद! यह देवल की कथा अति पुनीत है। जो इसको पढ़ेगा, उसको शिव-गिरिजा की पूजा का फल मिलेगा। चारों दिशाओं के शिवलिङ्ग पूर्ण हुए।

उन्नीसवाँ अध्याय

बारहों ज्योतिर्लिङ्गों का वर्णन

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! अब बारहों ज्योतिर्लिङ्गों की कथा वर्णन कीजिये कि वे क्योंकर प्रकट हुए। ब्रह्मा ने अति प्रसन्न हो कहा कि बारहों ज्योतिर्लिङ्गों की कथा वर्णन करते हैं। पहला सोमेश्वर लिङ्ग है, जिसकी पूजा से सब मनोरथ प्राप्त होते हैं। उनकी अप्रमेय महिमा है। उनकी सेवा से बहुतों ने परम पद पाया है। उनके भजन से क्षयीरोग भी नष्ट हो जाता है और मनुष्य संसार में नाना प्रकार के भोग पाकर अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है। उसे बहुत सन्तान, सम्पदा, उत्तम यश और कीर्ति

प्राप्त होती है और सब कष्ट नष्ट होते हैं। उनके भजन से चन्द्रमा का क्षयीरोग नष्ट हो गया। इतना सुन नारदजी ने पूछा कि इस चरित्र का विस्तार से वर्णन करो। ब्रह्माजी बोले कि हमारे अंगुष्ठ से जो दक्षप्रजापति उपजा, उसने हमारी आज्ञा से सृष्टि को बहुत बढ़ाना चाहा। दक्ष ने वीर प्रजापति की कन्या से विवाह कर दश सहस्र पुत्र उपजाये, जिनको तुम भली विधि जानते हो। वे तुम्हारे उपदेश से त्यागी हो गये। फिर भी दक्ष ने एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये। वे भी तुम्हारे उपदेश से भ्रष्ट हो गये। तब दक्षप्रजापति ने क्रोधित होकर तुमको यह शाप दिया कि तुम सदा संसार में फिरकर कहीं पर न ठहरोगे। फिर दक्ष ने साठ कन्या उपजाकर दश धर्मराज को, तेरह कश्यप को, सत्ताईस चन्द्रमा को और इसी प्रकार अङ्गिरस और कृशाश्व आदि को दो-दो दीं। चन्द्रमा ने सबसे अधिक रोहिणी के साथ प्रेम बढ़ाया। हे नारद! जो मनुष्य बहुत स्त्रियों को ब्याह कर सबके साथ समान प्रीति न करे, उस पर असंख्य आपदाएँ आती हैं और उसको कभी आनन्द नहीं मिलता। वह सदा रोगी रहकर अन्त में नरक को जाता है। और दक्ष की कन्याओं को चन्द्रमा के समान प्रेम न करने के कारण बड़ा दुःख हुआ। वे सब दुखी होकर दक्ष के समीप गईं और रो-पीट कर उनसे सब वृत्तान्त वर्णन किया। दक्ष ने चन्द्रमा को बुलाकर बहुत समझाया और कहा कि वेद की रीति के अनुसार सब स्त्रियों से समान प्यार करो। फिर चन्द्रमा को बिदा किया। कुछ दिनों तक चन्द्रमा दक्ष के उपदेश पर चला, पर थोड़े दिनों के पीछे वह रोहिणी को पहले के समान सबसे अधिक चाहने लगा। तब वे फिर उसी प्रकार दक्ष के पास जाकर चिल्लाईं। दक्ष ने फिर चन्द्रमा को बुलाकर बड़े क्रोध से कहा कि अरे मूर्ख!

तूने हमारा उपदेश न माना। अब यहाँ से जा। तुझे क्षयीरोग हो जायगा, जिससे तू भोगविलास के काम का न रहेगा। यह कहते ही चन्द्रमा क्षयीरोग में ग्रसित हो बहुत दुखी हुआ। उसका तेज नष्ट हो गया। तब चन्द्रमा की सब स्त्रियाँ अति दुखी हुईं। देवता भी चन्द्रमा विना चिन्ता में पड़कर उसको मेरी शरण में लाये। मैंने चन्द्रमा को बहुत धिक्कार देकर कहा कि जब से इसने राजसूय यज्ञ किया, तब से इसको धर्म-अधर्म नहीं सूझता। इसने अपने गुरु की स्त्री तारा को भगाया। जो मैं इसको न बचाता तो शिवजी ने इसको जला ही दिया था। यह बात इसे भूल गई। यह सुन चन्द्रमा दुखी हो मेरे चरणों पर गिर पड़ा। उसने बार-बार मेरी स्तुति कर कहा कि वास्तव में मैंने बारम्बार बड़े पाप किये हैं। पर आपने मुझको हरबार बचा लिया है। फिर इस तरह का अधर्म नहीं करूँगा। ऐसी विनती कर वह मेरे सामने हाथ बाँधे खड़ा रहा।

बीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि चन्द्रमा की यह विनती और दीनता देख मुझे दया आई। मैंने कहा कि तुम सौराष्ट्रदेश में, जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध है और जहाँ प्रभासक्षेत्र में शिव पूर्णांश से विराजमान हैं, वह देश शिवजी को अति प्रिय है। वहाँ तप करने से सब दोष और पाप दूर हो जाते हैं। वहाँ पहुँचकर तुम शिवलिङ्ग को स्थापित करो और उत्तमोत्तम सामग्री चढ़ाकर शिवजी की पूजा करो। वहाँ मृत्युञ्जय मन्त्र का जप करना और सर्वन्यास कर एक ही आसन से बैठना। हर प्रकार के छल-कपट को छोड़ देना और योग धारणकर शिवजी का स्मरण करना। अपने मनोरथ के पूरे होने का निश्चय रख शिवजी के प्रेम में लगे रहना; क्योंकि शिवजी प्रेम विना प्रसन्न नहीं होते। उनके समान अपने भक्तोंको पालनेवाला

और कौन है? तुम हर प्रकार से मृत्युञ्जय शिवजी को प्रसन्न करो। तुम्हारा यह रोग नष्ट हो जायगा; क्योंकि असंख्य मनुष्यों ने शिवजी की भक्ति से सब कुछ पाया है और बहुतों ने मृत्यु को जीता है। बहुधा बड़े-बड़े पापी भी मुक्ति पा गये हैं। चन्द्रमा ने मेरे वचन को सुनकर तुरन्त प्रभासक्षेत्र में शिवलिङ्ग की स्थापना की और छः मास तक कठिन तप करता रहा। विधिपूर्वक एक अर्बुद मृत्युञ्जय का जप किया। शिवजी प्रसन्न हो प्रकटे और चन्द्रमा को वर माँगने के लिए आज्ञा दी। चन्द्रमा ने प्रणाम और स्तुति के अनन्तर क्षयीरोग के दूर होने के लिए विनय की और कहा कि तुम्हारी भक्ति मुझको सदा प्राप्त रहे। शिवजी बोले कि दक्ष का शाप पूर्ण रूप से नष्ट नहीं हो सकता। परन्तु तुम क्रम से प्रतिमास घटा बढ़ा करोगे। फिर चन्द्रमा ने स्तुति कर विनय की कि तुम यहाँ लिंगरूप से स्थित रहो। इतने में मैंने और विष्णु ने भी आकर चन्द्रमा की इच्छा के अनुसार कहा कि आप लिंगरूप होकर शक्ति सहित इस स्थान पर स्थित हो जाइए। इस प्रकार सबकी विनती शिवजी ने मान ली और पूर्ण अंश से गिरिजा सहित उसी स्थान पर स्थित हो गये। उस लिंग की सबने पूजा कर बड़ा उत्सव मनाया। उस दिन से शिव वहाँ पूर्ण अंश से स्थित हैं। फिर देवता आदि सब अपने-अपने स्थान को चले गये। सोमेश्वर लिङ्ग की बड़ी महिमा है। जैसा कि वेद कहते हैं, चन्द्रमा का क्षयीरोग दूर होते कुछ भी विलम्ब न हुआ। उनकी सेवा से हर प्रकार के रोग दूर हो जाते हैं। बहुधा मुनीश्वरों ने उनकी सेवा कर परमपद पाया है। इस लिङ्ग के सामने चन्द्रमा का बनाया हुआ एक कुण्ड है। जो मनुष्य उसमें स्नान करे, उसका मनोरथ पूर्ण होता है। यह चरित्र अति आनन्द देनेवाला है। देवता, मुनि और वेद-पुराण सब इस बात में सहमति रखते हैं कि उनकी

सेवा से फिर आवागमन नहीं होता। हे नारदजी! तुम, शारदा, सनकादिक और शेष आदि भी उनकी महिमा वर्णन करते गूँगे हो जाते हैं। इस चरित्र के सुनने से शिवजी अति प्रसन्न होते हैं।

इक्कीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि अब हम मल्लिकार्जुन शिवलिङ्ग का वर्णन करते हैं। यद्यपि हमने पहले इस चरित्र को अति विस्तार से बखाना है, तथापि यहाँ भी संक्षेप से कहते हैं। जब शिवजी के पुत्र स्कन्दजी संसार भर की परिक्रमा कर कैलास में आये तो हे नारद! तुमने उनसे गणपति के अधिकार का सब वृत्तान्त वर्णन किया, जिसको सुन गुह अतिदुखी हो अपने माता-पिता शिवजी और शिवरानीजी के पास जाकर चुपचाप बैठ रहे। फिर स्तुति करने के उपरान्त अप्रसन्न हो क्रौञ्चगिरि में गये। यद्यपि माता-पिता ने उनको बहुत मनाया, समझाया, पर स्कन्दजी ने न माना। तब गिरिजा ने अपने पुत्र के वियोग में बहुत रोदन किया। शिवजी ने गिरिजा से कहा कि तुम कुछ दुःख मत करो। तुम्हारा पुत्र तुरन्त ही तुम्हारे पास आवेगा। गिरिजा ने कहा कि तुम देवता आदि को मनाने के लिए भेजो कि हमारा पुत्र यहाँ आवे। कदाचित् वह यहाँ न आवेगा तो हम और तुम वहाँ चलेंगे। शिवजी ने गिरिजा को इतना दुखी देख देवताओं और मुनियों को गुह के पास भेजा। उन्होंने बहुतेरा स्कन्दजी को समझाया, पर उन्होंने किसी का कहना न मानकर और भी बहुत हठ किया। उन्होंने लौटकर शिवजी से सब हाल कह सुनाया। शिव और शिवरानी पुत्र के वियोग में अति दुखी हुए। वे वियोग का दुःख न सहकर स्कन्दजी के पास गये। गुह माता के आने का हाल जानकर तुरन्त तीन योजन और अधिक क्रौञ्चपर्वत पर चले गये कि माता-पिता से भेंट न हो। निदान माता-पिता भी

पुत्र का ऐसा हठ जानकर वहाँ न गये और ज्योतिरूप होकर उसी स्थान पर स्थित हो गये। वही संसार में ज्योतिर्लिङ्ग प्रसिद्ध है। उसी को सब मल्लिकार्जुन कहते हैं। हर पर्व में पुत्र के प्रेम से माता-पिता उस स्थान पर जाया करते हैं कि पुत्र की भेंट से प्रसन्न हों। पन्द्रहवें दिन तो शिवजी और पूर्णमासी को गिरिजा वहाँ जाया करती हैं। पर वहाँ वे ठहरते नहीं, अपने स्थान को लौट आया करते हैं और रात-दिन गुह का स्मरण करते हैं। यह दूसरा शिवलिङ्ग बारह ज्योतिर्लिङ्गों में से है। उसके दर्शन से हर प्रकार का आनन्द मिलता है। उसकी महिमा तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। हे नारदजी! जब यह ज्योतिर्लिङ्ग प्रकट हुआ तो मैं, विष्णु और सब देवता आदि ने जाकर उसकी पूजा की। हम सबने बड़ी स्तुति की। तब शिवजी प्रकट हुए और हम सबको वहीं वर देकर उसी स्थान में अन्तर्धान हो गये। इस दूसरे ज्योतिर्लिङ्ग का चरित्र पढ़ने-सुनने से सब प्रकार का आनन्द मिलता है।

बाईसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले—हे नारदजी! अब हम तीसरे ज्योतिर्लिङ्ग की महिमा का बखान करते हैं, जिनकी सेवा से बहुतेरों ने परमपद पाया है। अवन्तीपुरी सात पुरियों में से एक है और उसको उज्जयिनी कहते हैं। उसकी ओर देखने से ही पाप भाग जाते हैं और शिवजी व शिवरानी में प्रेम बहुत बढ़ता है। वहाँ एक शुद्धाचारी शिव-भक्त ब्राह्मण रहता। वह भस्म धारण किये हुए, रुद्राक्ष पहने, सदा शिवशंकर कहा करता था और निष्काम शिवजी की भक्ति में लगा रहता था। वह सब काम वेद की आज्ञा के अनुसार कर दान आदि नहीं लेता था और विधिपूर्वक पार्थिव-पूजन करता था। शिवजी ने प्रसन्न होकर उसे अपनी अप्रमेय

भक्ति कृपा की। उसके चार पुत्र थे। वे भी शिवजी की सेवा में तत्पर रहते थे। उनके ये नाम हैं—पहला देवप्रिय, दूसरा प्रिय-मेधा, तीसरा सुकृत, चौथा धर्मवादी। उसी समय में एक असुर बड़ा बलवान्, तीनों लोकों को दुःख देनेवाला दूषण नाम था। वह रत्नमालगिरि पर अपनी स्त्री सहित रहने लगा। उसने मेरा बड़ा तप किया। हमसे उसने बड़े बल का वर प्राप्त किया। उसने अहंकार से सब देवताओं को भी जीत लिया। वह उसी पर्वत पर रह तीनों लोक का राज्य करने लगा। उसने तीनों लोकों का धर्म मिटाकर भाँति-भाँति के पाप किये और सबको दुःख पहुँचाया। सब देवता और मुनि आदि मेरे पास आकर पुकारे। मैंने कहा कि मैं तो उसे वर दे चुका हूँ। पर उसको शिवजी मार डालेंगे। तुम धैर्य रक्खो। यह कह मैंने सब देवता आदि सहित शिवजी के समीप जा दण्डवत् प्रणाम और स्तुति के उपरान्त विनय की कि हम सबको दूषण दैत्य बड़ा दुःख देता है। तीनों लोक में कोई सुखी नहीं है। आप सदा दैत्यों का नाश किया करते हैं। कृपा करके उसका भी वध करिए। शिवजी बोले कि तुम सब अपने-अपने स्थान को चले जाओ। हम उसको नष्ट करेंगे। जब पुत्रों सहित हमारे भक्त को, जो उज्जयिनी में रहता है, यह दैत्य दुःख देगा, तब हम उसको मार डालेंगे। यह सुनकर हम सब अपने-अपने स्थान पर आकर समय की राह देखने लगे। शिवजी की माया से दूषण के मन में यह बात उपजी कि शिवजी के भक्तों को दुःख देना चाहिए। इसी विचार से उसने अपने वीरों को आज्ञा दी कि देवताओं का मूल ब्राह्मण हैं और उनका मूल शिवभक्त हैं। इससे तुमको उचित है कि शिवभक्तों को जड़-मूल से नष्ट करो। यह कह आप सेना सहित शिवभक्तों का वध करने के निमित्त चला। वह पहिले

उज्जयिनी में पहुँचा; क्योंकि उसने सुना था कि उज्जयिनी में बहुत से शिव के भक्त रहते हैं। उसने उज्जयिनी को चारों ओर से घेर लिया और इतना अन्याय और उपद्रव किया कि सब उज्जयिनी के निवासी अति दुखी होकर रोने लगे। वे लोग विकल हो घर-बार छोड़ बाहर को भागे। उनको दैत्यों ने पकड़ लिया। पर शिवजी के भक्त बराबर अपने घरों में बैठे रहे; क्योंकि उनको पूर्ण विश्वास था कि शिवजी हमारे सहायक हैं, हम क्यों भागें। निदान दैत्य सेना सहित उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ शिवजी के भक्त बैठे हुए थे। दैत्य ने आज्ञा दी कि इनको वन्दीगृह में डालो और तुरन्त मार डालो। यह कह आप दैत्यों सहित उनके मारने के लिए आगे चला। पर शिवभक्तों के मन में कुछ भी भय न हुआ। उस समय शिवजी ने यह चरित्र किया कि वे उस स्थान तक नहीं पहुँचे, जहाँ शिवभक्त ब्राह्मण पार्थिव-पूजा कर रहे थे। उनके चारों ओर की धरती फटकर वहाँ गढ़ा हो गया और ऐसा महा भयानक शब्द हुआ कि तीनों लोक काँप उठे। बहुत से दैत्य मूर्च्छित होकर गिर पड़े। बहुत से भाग गये। पर दूषण दैत्य तो भी उसके भीतर पैठ गया कि उनको मार डाले। वह ब्राह्मणों के समीप पहुँच ही गया था कि शिवजी ने प्रकट हो अति क्रोध से कहा—तुम्हीं हमारे भक्तों को मारोगे? देखो, हम इसीलिए प्रकटे हैं। तुम्हारे मरने में अब कुछ भी विलम्ब नहीं है। हम महाकाल हैं। अपने भक्तों को बचाते हैं। अब तुम आगे न बढ़ना। पर तो भी दूषण दैत्य ने न माना। आगे चला। शिव-जी ने एक हुंकार किया, जिससे दूषण जलकर भस्म हो गया। सब दैत्य, जो उसके साथ थे, उसी समय जल गये। बाकी दैत्य भागकर पृथ्वी के नीचे छिप रहे। ब्राह्मण अपने चारों पुत्रों सहित शिवजी को देख अति प्रसन्नता से शिवजी की स्तुति

करने लगा। इतने में सब देवता और मुनि आदि उस स्थान में आ गये। मैं और विष्णु भी बड़े प्रेम से सबके साथ हुए। देवताओं ने दुन्दुभी बजाई। आकाश से पुष्पों की वर्षा हुई। हम सबने शिवजी की स्तुति की। तब ब्राह्मण ने शिवजी से बिनती की कि हे सदाशिव ! आपने आकर अपने भक्तों को कृतार्थ कर दिया। हर प्रकार सब दुःखों को दूर करके तीनों लोकों को बचा लिया। पर मेरी विनय है कि इसी गर्त में आप भवानी और गणों समेत स्थित हों। दूषण दैत्य संसार का काल था, उसको आपने नष्ट कर डाला, इससे आपका नाम महाकाल हो। आपकी पूजा से संसार भर मनोरथ पावे। और सबने भी इसी बात की विनय की। शिवजी ने अङ्गीकार किया। ब्राह्मण की स्थापित की हुई जो शिवलिङ्ग की मूर्ति थी, उसी के भीतर शिवजी प्रवेश कर गये। उस समय ब्राह्मण ने अपने पुत्र, मैं, विष्णु, सब देवता और मुनि आदि समेत उस मूर्ति की पूजा की। फिर सब अपने-अपने लोक को चले गये।

तेईसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद ! महाकाली की पूजा से कोई बात दुर्लभ नहीं। वरन् परमपद मिलता है। और महाकाल के समान भक्त को आनन्द देनेवाला दूसरा कोई देवता नहीं। उनकी पूजा से सब मनोरथ पूर्ण और पाप दूर होते हैं। धन, स्त्री, पुत्र, आनन्द अधिक होकर दुःख का लेश भी नहीं रहता। आयु बढ़ती है और सब रोग नष्ट हो जाते हैं। राजा चन्द्रसेन की आपदा इन्हीं की पूजा से दूर हुई। इन्होंने श्रीकर को अपना सेवक बना लिया। इतना सुन नारद ने पूछा कि हे ब्रह्माजी ! श्रीकर का चरित्र विस्तार से वर्णन कीजिये। ब्रह्माजी बोले कि

उज्जयिनी में एक चन्द्रसेन राजा हुआ। वह शिव का बड़ा भक्त था और महाकाल की बड़ी सेवा किया करता था। मणिभद्र, जो शिव का गण था, उसकी चन्द्रसेन से बड़ी प्रीति हो गई। उसने प्रसन्न होकर राजा को एक चिन्तामणि दी, जिसके देखने, सुनने स्पर्श करने और स्मरण से सब दुःख दूर होकर आनन्द प्राप्त होता था और लोहा, पीतल और पत्थर आदि जो उसमें छू जाय, वह तुरन्त सोना हो जाय। राजा चन्द्रसेन उस मणि को पहनकर सूर्य के समान प्रकाशमान होता था। जब यह वृत्तान्त दूसरे राजाओं ने सुना तो उन सबको लोभ उपजा। उन्होंने आकर हर प्रकार के उपायों से राजा से वह मणि लेनी चाही; क्योंकि यह रीति है कि मूर्ख लोग दूसरे का धन देख जला करते हैं। यह भी प्रकट है कि देवता से जो वस्तु प्राप्त हो, उसको किसी को न देना चाहिए। असफल होने पर पृथ्वी भर के राजाओं ने इकट्ठे हो चन्द्रसेन पर धावा किया और उज्जयिनी को चारों ओर से घेर लिया। पर उस समय भी राजा अति दृढ़ता और सन्तोष से निर्जल रह महाकाल की शरण में गया और रात्रि-दिन उनकी पूजा की। महाकाल ने उस समय यह चरित्र किया कि एक गोपी अपना पाँच वर्ष का बालक लिये हुए वहाँ आई और चन्द्रसेन की पूजा देखने लगी। बालक को शिवजी की पूजा की बड़ी अभिलाषा उपजी। उसने प्रेम-पूर्वक एक पत्थर उठा उसको स्थापित किया। तन-मन से उसकी पूजा की और सब विधि से पूजा में लगा। केवल अपनी बुद्धि से सब बातें कीं। वह बारम्बार शिवजी को प्रणाम करके नाचने लगा। जब उसकी माता ने उसको भोजन के निमित्त बुलाया तो वह अपनी माता के पास न गया। तब उसकी माता ने उस स्थान पर जाकर अपने पुत्र को बहुत मारा और हाथ पकड़कर खींच लिया। पर तो भी वह शिवजी के प्रेम में डूब कर न गया। तब उसकी

माता ने शिवलिंग को बहुत दूर फेंक दिया और अति क्रोध से बालक को मारा। उस समय वह बालक बहुत रोया और मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। जब उसने नेत्र खोले तो उसको विचित्र लीला देख पड़ी। उसने अच्छा बना हुआ शिवालय देखा, जिसमें नाना प्रकार के रत्न और मणियाँ लगी हुई थीं। उसके खम्भे जड़ाऊ सोने के और द्वार भी सोने के थे। हज़ारों स्वर्ण के कलश चढ़े हुए थे। बीच में रत्नों का एक सिंहासन रक्खा हुआ था। ऐसी शिवजी की महिमा देख वह बालक आश्चर्यपूर्वक अति प्रसन्न हुआ। उसने शिवपूजा की महिमा जानी और दण्डवत् कर पृथ्वी में गिर पड़ा। शिवजी की बड़ी स्तुति की और कहा कि मेरी माता जो अपढ़ और मूर्ख है, उसका अपराध क्षमा कीजिये। जो फल मुझे आपकी पूजा में हुआ, उसके बदले में केवल यह चाहता हूँ कि मेरी माता का अपराध क्षमा कीजिए। जब सन्ध्या को वह लड़का अपने घर चला तो देखा कि इन्द्रलोक के समान स्वर्ण का एक नया नगर बस गया है। उसमें रत्न, मणि और मुक्ता चारों ओर जड़े हैं। उसमें सबसे श्रेष्ठ उसकी माता का मन्दिर है। उसमें रत्न से जड़ी हुई एक शय्या रक्खी है, जिस पर श्वेत वस्त्र बिछे हुए हैं। उसके ऊपर उसकी माता गोपी सो रही है। वह उत्तमोत्तम वस्त्राभूषणों से अलंकृत है। उसका स्वरूप और ही प्रकार का प्रकाशयुक्त हो गया है। पुत्र ने अपनी माता को नींद से जगाया। उसकी माता ने भी उठकर जब यह चरित्र देखा तो उसको बड़ा आश्चर्य हुआ। अति प्रसन्न हो उसने बालक को अपने हृदय से लगा लिया और शिवजी की कृपा समझ राजा के पास यह सब हाल कहला भेजा। राजा शिवजी का यह चरित्र सुन अति प्रसन्न हुआ। अपने मित्रों सहित जाकर उसने नगर को देखा और अति प्रेम में डूबकर बड़ा आनन्द माना। फिर बालक के

साथ बहुत प्रेम बढ़ाया और कहा कि उस राजा का बड़ा भाग्य है, जिसकी प्रजा शिव की भक्ति में इतनी दृढ़ हो।

चौबीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले कि इसी तरह रात भर शिवजी के चरित्र और महिमा कहते एक क्षण के समान बीत गई। शत्रुओं का कुछ भी भय किसी के मन में न रहा। प्रभात को जब राजाओं ने अपने दूतों से यह शिवजी का चरित्र सुना तो वे अति आश्चर्य में हुए और परस्पर कहने लगे कि जहाँ पर सदाशिवजी ऐसे प्रसन्न हैं, वहाँ किसी की क्या चल सकेगी? निदान वे सब शस्त्रों को डालकर चन्द्रसेन के समीप गये। चन्द्रसेन ने सबका आदर किया। फिर सबने महाकाल के दर्शन किये। फिर गोपी के मन्दिर में जाकर गोपी की बड़ी प्रशंसा की। जब गोपी के स्थापित किये हुए लिंग को देखा तो सब शिवजी की भक्ति में लीन हो गये। वहाँ एक बड़ी भारी सभा सजाई गई, जिसमें सब राजाओं ने गोपी के पुत्र से भेंट की और उसको बड़ी-बड़ी सौगातें दीं। पृथ्वीमण्डल पर जितने में गोप थे, उन सबका राजा उस लड़के को बना दिया। उस समय हनुमान्जी वहाँ पर प्रकट हुए। तब सब राजा उठ खड़े हुए और हनुमान्जी को जानकर सबने स्तुति की, जो बहुत बड़ी है। कहा कि हमारे बड़े भाग्य हैं, जो आप यहाँ आये। यह कह सब राजा प्रसन्न हुए। हनुमान्जी ने उस गोपी के लड़के को उठा लिया और अपने हृदय में लगाकर उसके सब शरीर को स्पर्श किया। सब राजाओं से हनुमान्जी ने कहा कि यह शिवजी का लिङ्ग महाकाल अति शुभ है। यह बड़ा सुख देनेवाला, सब दुःखों का नाश करनेवाला, भक्तों का मनोरञ्जन और शत्रुओं का नाश करनेवाला है। कल तेरसि तिथि और शनैश्चर का दिन था। सो प्रदोष के समय इस

गोपी के बालक ने शिवजी की पूजा की। महाकाल ने प्रसन्न होकर उसको राजा चन्द्रसेन सहित कृतार्थ कर दिया। महाकाल के समान दूसरा स्वामी नहीं। तीन बार महाकाल का नाम लेने से दुःख और पीड़ा नष्ट हो जाती है। यद्यपि प्रदोष व्रत सब व्रतों का राजा है, पर जो प्रदोष शनिवार को पड़े तो वह और भी अधिक शुभ है। जो कृष्णपक्ष में प्रदोष होता है उसकी अप्रमेय महिमा है। ऐसा योग पाकर जो महाकाल की पूजा करे तो व्रती और महाकाल का पूजक सब अच्छे फल पावें और मोक्ष पाकर सदाशिवजी के समीप रहा करें। इस बालक ने ऐसे ही योग में कल के दिन महाकाल की पूजा की थी। इस बालक के समान दूसरा कोई गोपों के यश को बढ़ानेवाला न होगा। इसकी आठवीं पीढ़ी में नन्द नाम गोप उपजेगा। वह पूर्ण शिवजी का सेवक होगा। वह गोपेश्वर शिवलिङ्ग की पूजा करेगा। शिवजी की आज्ञा से विष्णु आप उसके पुत्र होकर कृष्ण के नाम से प्रसिद्ध होंगे। आज से इस बालक का नाम श्रीकर होगा। यह कह हनुमान्‌जी ने उसको शिवजी के पूजन की विधि बता दी। इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जी राजा चन्द्रसेन और श्रीकर पर अनुग्रह कर अन्तर्धान हो गये। और सब राजा लोग चन्द्रसेन से आज्ञा लेकर अपनी-अपनी राजधानी को लौट गये। श्रीकर भी हनुमान्‌जी के उपदेश के अनुसार ब्राह्मण के द्वारा शिवजी की पूजा में लगे। चन्द्रसेन दोनों लोकों में प्रसन्न रहकर अन्त में परमपद को पहुँचे। हे नारद! महाकाल की ऐसी महिमा है। यह चरित्र अतिपवित्र है, जिसके पढ़ने-सुनने से दोनों लोकों में आनन्द प्राप्त होता है। तीसरा अवतार पूर्ण हुआ।

पच्चीसवाँ अध्याय
चौथे ज्योतिर्लिङ्ग का वर्णन

ब्रह्माजी बोले--हे नारद! एक समय तुम गोकर्णक्षेत्र में, जिसका हम वर्णन कर चुके हैं, गये और गोकर्ण में स्नान कर तुमने महाबल शिवलिङ्ग की पूजा की। वहाँ से लौटकर तुम शिवलिङ्गों के दर्शन करते रेवा नदी, जिसका नर्मदा भी नाम है, और जो शिव की पुत्री प्रसिद्ध है, उसके तट पर पहुँचे। रेवा नदी की महिमा तो तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। उसके दर्शनमात्र से सब पाप और दुःख दूर हो जाते हैं। उसमें स्नान करने से संसार में नाना प्रकार के आनन्द और अन्त में परमपद प्राप्त होता है। तीनों लोकों की नदियों में गङ्गा सर्वोपरि हैं। उन में स्नान करने से अप्रमेय सुख प्राप्त होता है। उनसे भी श्रेष्ठ रेवा है, जैसा कि वेद और पुराण बखानते हैं। चौदह दिन यमुना में स्नान करने से, तीन दिन सरस्वती में स्नान करने से और एक दिन गङ्गा में स्नान करने से सब पाप निवृत्त होते हैं। किन्तु रेवा के केवल दूर ही से दर्शन से उतना फल होता है। नर्मदा के कङ्कड़ भी शिवजी के समान हैं। वहाँ शिवनिर्माल्य लेने से भी कुछ दोष नहीं। वहाँ और जो तारयन्त्र तीर्थ है वह सब पापों को दूर करनेवाला है। हे नारद! तुमने वहाँ जाकर स्नान किया और प्रणवेश्वर शिवलिङ्ग की पूजा की। वहाँ तुमने विन्ध्याचल पर्वत को देखा, जहाँ संसार भर का आनन्द मालूम होता है। वहाँ नाना प्रकार के वृक्ष और जीवधारी हैं। वह पर्वत दो प्रकार के रूप रखता है। तुमको अति सुन्दरता से देवताओं के समान रूप धारण किये देख वह अति प्रसन्न हुआ। तुम्हारी अगवानी कर तुमको उसने प्रणाम किया, बहुत विनती के साथ अच्छे स्थान पर बैठाया और शुभ वस्तुओं से तुम्हारी पूजा की। तुम्हारे